TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182344

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—881—5-8-74—15,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No H 823/C49V Accession No 12389

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below

वैशाली की नगर-वधू

आचार्य चतुरसेन

प्रवचन

अपने जीवन के पूर्वाह्न में—सन १९०१ में, जब भाग्य रुपयों से भरी थैलियां मेरे हाथों में पकड़ाना चाहता था—मैंने कलम पकड़ी। इस बात को आज ४० वर्ष बीत रहे हैं। इस बीच मैंने छोटी बड़ी लगभग ८४ पुस्तकें विविध विषयों पर लिखीं, अथच दस हजार से अधिक पृष्ठ विविध सामयिक पत्रिकाओं में लिखे। इस साहित्य साधना से मैंने पाया कुछ भी नहीं, खोया बहुत कुछ। कहना चाहिए सब कुछ। धन, वैभव, आराम और शान्ति। इतना ही नहीं, यौवन और सम्मान भी। इतना मूल्य चुका कर, निरन्तर चालीस वर्षों की अर्जित इस सम्पूर्ण साहित्य सम्पदा को मैं आज प्रसन्नता से रद्द करता हूँ और यह घोषणा करता हूँ कि मैं अपनी यह पहिली कृति विनयाञ्जलि सहित आप की भेंट करता हूँ।

यह सत्य है कि यह उपन्यास है, परन्तु इससे अधिक सत्य यह है कि यह एक गम्भीर रहस्यपूर्ण संकेत है, जो उस काले पर्दे के प्रति है, जिस की ओट में आर्यों के धर्म, साहित्य, राजसत्ता और संस्कृति की पराजय और मिश्रित जातियों की प्रगतिशील संस्कृति की विजय सहस्राब्दियों से छिपी हुई है, जिसे सम्भवतः किसी इतिहासकार ने आंख उघाड़ कर देखा नहीं है।

मैंने जो चालीस वर्षों में तन, मन, धन से साधित अपनी अमूल्य साहित्य सम्पदा को प्रसन्नता से रद्द करके इस रचना को अपनी पहिली रचना घोषित किया है सो यह इस रचना के प्रतिमात्र मेरी व्यक्तिगत निष्ठा है, परन्तु इस रचना पर गर्व करने का मेरा कोई अधिकार नहीं है। मैं केवल आप से एक यह अनुरोध करता हूँ कि इस रचना को पढ़ते समय उपन्यास के कथानक से पृथक किसी निगूढ़ तत्व को ढूंढ़ निकालने में आप सजग रहें। सम्भव है, आपको वह सत्य मिल जाय जिस की खोज में मुझे आर्य, बौद्ध, जैन और हिन्दुओं का सांस्कृतिक अध्ययन १० वर्ष करना पड़ा है।

ज्ञानधाम
दिल्ली-शाहदरा
१ १ -- ४६

— चतुरसेन

परिच्छेद-सूची

	प्रवेश	१
१	धिक्कृत कानून	१२
२	गण सन्निपात	२३
३	नीलपद्मप्रासाद	३६
४	मंगलपुष्करिणी अभिषेक	३७
५	गृहिल अतिथि	४२
६	उरुवेला तीर्थ	४५
७	शाक्यपुत्र गौतम	४७
८	कुलपुत्र यश	५४
९	धर्मचक्र प्रवर्तन	५९
१०	वशाली का स्वर्ग	६३
११	राजगृह	६९
१२	रहस्यमया भेंट	७३
१३	बन्दी की मुक्ति	८३
१४	गीतगृह का वैज्ञानिक	८७
१५	मगध महामात्य आर्यवर्षकार	९३
१६	आर्या मातङ्गी	९९
१७	महाभिक्षन	१११
१८	ज्ञातिपुत्रपिंड	११३
१९	मल्लदम्पति	१३९
२०	साकेत	१४८
२१	कौशलेश प्रसेनजित	१५
२२	माणवक्य उपरिचर	१६०
२३	जीवक कौमारभृत्य	१६३

२४	नियुक्त	१७०
२५	नियुक्त की शुश्रूषा	१७५
२६.	चम्पारण्य में	१७६
२७	शम्बर असुर की नगरी में	१८४
२८	कुबडनी का अभियान	१९३
२९	असुर भोज	१९८
३०	मृत्यु चुम्बन	२०४
३१	चम्पा में	२१०
३२	शत्रुपुरी में मित्र	२१४
३३	पशुपुरी का रत्नविक्रेता	२१६
३४	असम साहस	२२१
३५	शम्बर असुर का साहस	२२५
३६	गुप्त पत्र	२२८
३७	आक्रमण	२३३
३८	मृत्युपाश	२३६
३९	पलायन	२३९
४०	चम्पा का पतन	२४३
४१	बादरायण व्यास	२४५
४२	सम्मान्य अतिथि	२४९
४३	गर्भगृह में	२५५
४४	भारी सौदा	२६०
४५.	भविष्य कथन	२६६
४६	साम्राज्य	२६९
४७	दास नहीं-अभिभावक	२७३
४८	सोम की भावधारा	२७७
४९.	मार्गबाधा	२८२
५०	श्रावस्ती	२८९

५१	वर्षकार का यन्त्र	२९९
५२	शोण कोटिविंश	३०३
५३	गृहपति अनाथ पिण्डिक	३०८
५४	मागध महामात्य की कूटनीति	३१४
५५	मागध विग्रह	३२०
५६	महाविद्य गुरु	३२३
५७	शालिभद्र	३२७
५८	सर्वजित् महावीर	३३०
५९	शालिभद्र का विराग	३३४
६०	पाखण्डों की परिषद्	३३८
६१	जैतवन में तथागत	३४८
६२	अजित केशकम्बल	३५१
६३	राजपुत्र विदूडभ	३५८
६४	दासों के हट्ट में	३६४
६५	युगयुग्म पुरुष	३७३
६६	विदूडभ का कूटयन्त्र	३७८
६७	राजसूय समारम्भ	३८२
६८	वज्रपात	३८६
६९	क्रीतादासी	३८८
७०	निगण्ठदर्शन	३९७
७१	दुर्मद	४००
७२	उद्धार	४०४
७३	कौशलपति का कौतूहल	४०९
७४	यज्ञ	४१३
७५	राजनन्दिनी	४१८

७६ सेनापति कात्यायन ४२१
७७ प्रसेन जित् का निष्कासन ४२३
७८ बन्धुल का दाव पेंच ४२६
७९ कुटिल ब्राह्मण ४३०
८० दुष्ट अन्त ४३३
८१ नाउन ४३७
८२ दीर्घदन्त का अड्डा ४४२
८३ कोसल दुर्ग ४४७
८४ नर्म साचव्य ४५०
८५ कठिन अभियान ४५३
८६ अभिषेक ४५४
८७ आत्मदान ४७०
८८ सहभोग्यमिदं राज्यम् ४७३
८९ मातृ भेंट ४७८
९० विरोधी ४९०

उत्तरार्द्ध समाप्त

" महभोग्यमिदराज्यम् "

प्रदेश

: १ :

मुजफ्फरपुर से पच्छिम की ओर, जो पक्की सड़क जाती है—उसपर, मुजफ्फरपुर से लगभग अठारह मील दूर "वैसौढ" नामक एक बिल्कुल छोटा सा गाँव है। उसमें अब तीस चालीस घर भूमिहार ब्राह्मणों के—और कुछ गिनती के घर क्षत्रियों के बचरह हैं। गाव के चारो ओर कोसो तक खण्डहर, टीले और पुरानी टूटी फूटी मूर्तियां ढेर की ढेर मिलती हैं जो इस बात की यह दिखाती हैं कि कभी यहां कोई बड़ा भारी समृद्ध नगर बसा रहा होगा।

वास्तव में यहां, अबसे कोई ढाई हजार वर्ष पूर्व एक विशाल नगर बसा था। आजकल जिसे खण्डहर कहते हैं उन दिनों उसका नाम 'मिहीं' था। आज यह नदी यद्यपि इस गाँव से कई कोस उत्तर की ओर हटकर बह रही है किन्तु उन दिनों यह दक्षिण की ओर इस वैभवशालिनी नगरी के चरणों को चूमती हुई दिघि वारा के निकट गंगा में मिल गई थी। इस विशाल नगरी का नाम वैशाली था। यह नगरी अति समृद्ध थी। उस में ७७७७ प्रासाद, ७७७७ कूटागार ७७७७ राम और, ७७७७ पुष्करिणियां थीं। धन जन से परिपूर्ण यह नगरी तब अपनी शोभा को समता नहीं रखती थी।

यह लिच्छवियों के वज्जी संघ की राजधानी थी। विदेह राज्य टूट कर यह वज्जी संघ बना था। इस संघ में विदेह, लिच्छवि, क्षात्रिक, वज्जी, उग्र, भोज, एक्ष्वाकु और कोरव ये आठ कुल सम्मिलित थे, जो अष्टकुल, कहलाते थे। इसमें प्रथम के चार प्रधान थे। विदेहों की राजधानी मिथिला, लिच्छवियों की वैशाला और क्षात्रिकों की कुण्डपुर और कोल्लाग थी।

वैशाली पूरे सघकी राजधानी थी। अष्टकुल सयुक्त लिच्छवियो का यह सघ व्रात्यसंकरो का संघ था। और इनका यह गणतन्त्र पूर्वी भारत में तब एकमात्र आदर्श और सामर्थ्यवान् सघ था, जो प्रतापी मगध साम्राज्य की उस समय की सबसे बडी राजनैतिक और सामरिक बाधा थी।

नगरी के चारो ओर काठ का तिहरा कोट था। जिसमें स्थान २ पर गोपुर और प्रवेश द्वार बन हुए थे। गोपुर बहुत ऊचे थे और उनपर खडे होकर कोसो तक देखा जा सकता था। प्रहरीगण हाथों में पीतल के तूर्ण ले इन्ही पर खडे पहरा दिया करते थे। आवश्यकता होते ही वे उन्हे बजाकर नगर प्रतिहारो को सावधान कर देते, और प्रतिहार तुरन्त नगररक्षको को सकेत कर देते, इसके बाद आनन-फानन सैनिक हलचल नगर के प्रकोष्ठो मे दीखने लगती थी। सहस्रो भीमकाय योद्धा लोह वर्म पहिने, शस्त्रसज्जित, धनुष-बाण लिये, खड्ग चमकाते, चचल घोडो को दौडाते प्राचीर के बाहिरी भाग में आ जुटते थे।

वज्जी सघ का शासन एक राज–परिषद करती थी। जिसका चुनाव हर सातव वर्ष उसी अष्टकुल मे से होता था। निर्वाचित सदस्य परिषद मे एकत्र होकर वज्जि चैत्यो, वज्जि सस्थाओ और राज्य व्यवस्था का पालन करते थे। शिल्पियो और सेट्ठियो के नगर में प्रथक् सघ थे। शिल्पियो के सघ श्रेणी कहाते थे, और प्रत्येक श्रेणी का सचालन उसका जेट्ठक करता था। जल, थल और अट्टवी के नियामको की श्रेणिया प्रथक थी। नगर में श्रेणियो के कार्यालय और निवास प्रथक् २ थे। बाहरी वस्तुओ का क्रयविक्रय भी प्रथक् २ हट्टियो मे हुआ करता था। परन्तु श्रेणियो का माल अन्तरायण मे बिकता था। सेट्ठियों के सघ निगम कहाते थे। सब निगमों का प्रधान नगर सेट्ठि कहाता था। और उसकी पदमर्यादा राजनैतिक और औद्योगिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती थी।

वत्स, कोसल, काशी और मगध साम्राज्य के बीच घिरा रहने, तथा श्रावस्ती से राजगृह के मार्ग पर अवस्थित रहने के कारण यह स्वतन्त्र नागरिकों का नगर उन दिनों व्यापारिक और राजनैतिक संघर्षों का केन्द्र बना हुआ था। देश २ के व्यापारी जौहरी, शिल्पकार और यात्री लोगों से यह नगर सदा परिपूर्ण रहता था। 'श्रेष्ठिचत्वर, जो यहां का प्रधान बाजार था, में जौहरियों की बड़ी २ कोठियां थीं। जिनकी व्यापारिक शाखाएं समस्त उत्तराखण्ड से दक्षिणापथ तक फैली हुई थीं। सुदूर पतित्थान से माहिष्मती, उज्जैन, गोनंद विदिशा, कौशाम्बी और साकेत होकर पहाड़ की तराई के रास्ते सेतव्य, कपिलवस्तु, कुशीनारा, पावा, हस्तिग्राम और भण्डग्राम के मार्ग से बड़े २ सार्थवाह वैशाली से व्यापार सम्बन्ध स्थापित किये हुए थे। पूर्व से पच्छिम का रास्ता नदियों द्वारा था। गंगा में महानदि और यमुना में कौशाम्बी पर्यन्त नावें चलती थीं। वैशाली से मिथिला के रास्ते गान्धार को, राजगृह के रास्ते सोवार का, तथा भरुकच्छ के रास्ते बर्मा को और पतित्थान के रास्ते बाबिलोन तथा चीन तक भी भारी २ सार्थवाह जल और थल पर चलते रहते थे। ताम्रपर्णी, स्वर्णद्वीप, यवद्वीप आदि सुदूर पूर्व के द्वीपों का यातायात चम्पा होकर था।

श्रेष्ठिचत्वर में बड़े २ दुकानदार स्वच्छ परिधान धारण किए, पान की गिलौरियां कल्लों में दबाए, हंस २ कर ग्राहकों से लेन देन करते थे। जौहरी पन्ना, लाल, मूंगा, मोती, पुखराज, हीरा, और अन्य रत्नों की परीक्षा तथा लेनदेन में व्यस्त रहते थे। निपुण कारीगर अनगढ़ रत्नों को सान पर चढ़ाते, स्वर्णाभरणों को रंगीन रत्नों से जड़ते और रेशम की डोरी में मोती गूंथते थे। गन्धी लोग केसर के दंले हिलाते, चन्दन के तेल में गन्ध मिलाकर इत्र बनाते थे, जिन का नागरिक खुला उपयोग करते थे। रेशम और बहुमूल्य महीन मलमल के व्यापारियों की दुकानों पर बैबिलोन और फारस के व्यापारी

सकरी और तंग थी, और उनमे गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ खडी थी, जिनके अधेरे और विशाल तहखानो में इन धनकुबेरो की अतोल सम्पदा और स्वर्णरत्न भरे पड रहते थे।

सध्या के समय सुन्दर वाहनो, रथो, घोडो, हाथियो और पालकियो पर नागरिक नगर के बाहर सैर करने राजपथ पर आ निकलते थे। इधर उधर हाथी झूमते बढा करते थे। और उनके अधिपति रत्नाभरणो से सज्जित अपने दलो तथा शरीर रक्षको से घिरे चला करते थे।

२

दिन निकलने मे अभी देर थी। पूर्व की ओर प्रकाश की आभा दिखाई पड रही थी। उसी वैशाली के राजप्रासादो के स्वर्ण कलशो की धुमल स्वर्ण कान्ति बडी प्रभावोत्पादक दीख पड रही थी। गगन मे अभी अधेरा था। राजप्रासाद के मुख्यतोरण पर अभी प्रकाश जल रहा था। पार्श्व के प्रकोष्ठो मे प्रहरी और प्रतिहार पड सो रहे थे। तोरण के बीचोबीच एक आजानबाहु मनुष्य भाले पर टेक दिये ऊघ रहा था।

धीरे २ दिन का प्रकाश फैलने लगा। राज कर्मचारी और नागरिक इधर उधर आने जाने लगे। किसी किसी अश्व से मुद्रा तूर्य की झंकार के साथ कोई अश्वारोही आ पहुँचता। तोरण पर आनेजाने वालो की भीड लगने लगी। प्रतिहारो ने एक नवागत को तोरण पर आ पहुँचा। उसके नायक ने आगे बढकर भाले के सहारे खडे ऊघते प्रतिहार को पुकारकर कहा—'सावन्त महानामन, सावधान हो जाओ, यों घर जाकर विश्राम करो।' महानामन ने सचेत होकर अपने दीर्घकाय शरीर को और भी विस्तार करके एक जोर की अगडाई ली, और 'तुम्हारा कल्याण हो नायक,' कहकर, वह अपना भाला पृथ्वी पर टेकता हुआ तृतीय तोरण की ओर बढ गया।

सप्तभूमि राज प्रासाद के पच्छिम की ओर प्रासाद का उपवन था,

जिसकी देखरेख नायक महानामन के ही सुपुर्द थी। यही वह अपनी प्रौढ़ा पत्नी के साथ ३८ वर्ष से अकेला एकरस आँधी पानी, सर्दी गर्मी में रहकर गण की सेवा करता था।

अभी भी वह नींद में ऊंघता हुआ झूम २ कर चला जा रहा था। अभी प्रभात का प्रकाश धूमिल था। उसने आगे बढ़कर, आम्रकुञ्ज में एक आम्रवृक्ष के नीचे, एक श्वेत वस्तु पड़ा रहने का भान किया। निकट जाकर देखा, एक नवजात शिशु स्वच्छ वस्त्र में लिपटा हुआ अपना अगूठा चूस रहा है। आश्चर्यचकित होकर भद्र नामन ने शिशु को उठा लिया। देखा—कन्या है। उसने कन्या को उठा कर हृदय से लगाया और अपनी स्त्री को वह कन्या देकर कहा— देखो, आज इस प्रकार हमारे जीवन की एक पुरानी साध मिटी।

और वह उसी आम्रकानन में उस एकाकी दम्पति की आखो के आगे शशि किरण की भाति बढने लगी। उसका नाम रखा गया 'आम्रपाली'। उसी आम्रवृक्ष की स्मृति में, जहा से उस पाया गया था।

३

ग्यारह बरस बाद। वैशाली के उत्तर पच्छिम पच्चीस तीस कोस पर अवस्थित एक छोटे से ग्राम में एक वृद्ध अपने घर के द्वार पर प्रातः काल के समय दतौन कर रहा था। पैरो की आहट सुनकर उसने पीछे की ओर देखा। चम्पक पुष्प की कली के समान ग्यारह वर्ष की एक अति सुन्दरी बालिका, जिसके घुघराले बाल हवा में लहरा रहे थे, दौड़ती हुई बाहर आई, और वृद्ध को देखकर उससे लिपटने के लिये लपकी, किन्तु पैर फिसलने से गिर गई। गिरकर रोने लगी। वृद्ध ने दातुन फेंक, दौड़कर बालिका को उठाया, उसकी धूल झाड़ी, और हृदय से लगा लिया। बालिका ने रोते २ कहा—"बाबा, देखा है तुमने

रोहण का वह कचुक ? वह कहता है तेरे पास नहीं है ऐसा। वैशाली की सभी लडकिया वैसा ही कचुक पहनती है, मै भी वैसा ही कंचुक लूंगी बाबा !"

वृद्ध की आखों मे पानी और होठो मे हास्य आया। उसने कहा—"अच्छा, अच्छा, मै तुझे वैशाली से वैसा ही कचुक मंगा दूंगा बेटी।"

पर बाबा, तुम्हारे पास दम्म कहा है, वैसा बढिया चमकीला कचुक छै दम्म मे आता है, जानते हो ?"

"हां, हां, जानता हू।"

वृद्ध की भृकुटी कुचित हुई, और ललाट पर चिन्ता की रेखा पड गई। वृद्ध की पत्नी को मरे आठ साल बीत चुके थे। उसके बाद कन्या की परिचर्या में बाधा पडती देख सावन्त महानामन राज सेवा त्यागकर अपने ग्राम मे आ कन्या की सेवा सुश्रूषा मे अबाधरूप से लगे रहते थे। अम्बपाली को उन्होने इस भांति पाला था जैसे पक्षी चुग्गा देकर अपने शिशु पक्षी को पालता है। अब उसकी छोटी सी कमाई की क्षुद्र पूजी यत्न मे खर्च करने पर भी समाप्त हो गयी थी। यहा तक कि पत्नी की स्मृति रूप जो दो चार आभरण थे, वे भी एक २ करके उदर गुहा मे पहुच चुके थे। अब आज जैसे उसने देखा – उसके प्राणो की पुतली यह बालिका जीवन म आगे बढ रही है, उसकी अभिलाषायें जाग्रत हो रही है, और भी जाग्रत होगी। यही सोचकर वृद्ध महानामन चिन्तित हो उठे। किन्तु उन्होने हसकर तड.तड तीन चार चुम्बन बालिका के लिए और गोद से उतारकर कहा–"वैसा ही बढ़िया कचुक ला दूगा बेटी।"

बालिका खुश होकर तितली की भाति घर में चली गई और वृद्ध की आखो से दो तीन बूद गर्म आसू टपक पडे। वे चिन्तित भाव से बैठकर सोचने लगे-एक बार फिर वैशाली चलकर पुरानी नौकरी की याचना की जाय वृद्ध का बाहुबल थक चुका था किन्तु क्या किया जाय। कन्या का विवाह सर्वोपरि था। परन्तु वृद्ध के चिन्तित होने का

केवल यही कारण न था। लाख वृद्ध होने पर भी उसकी भुजा मे बल था—बहुत था। पर उसकी चिन्ता थी—बालिका का अप्रतिम सौन्दर्य। सहस्त्राधिक बालिकाये भी क्या उस परिजात-कुसुमतुल्य कुन्द कलिका के समान हो सकती थी? किस पुष्प में इतनी गन्ध, कोमलता और सौंदर्य था? उन्हे भय था कि वज्जियो के उस विचित्र कानून के अनुसार उसकी कन्या विवाह से वंचित करके कही 'नगर वधू' न बना दी जाय। वज्जीगणतन्त्र मे यह विचित्र कानून था कि उस गण राज्य में जो कन्या सर्वाधिक सुन्दरी होती थी, वह किसी एक उस पुरुष का पत्नी न होकर 'नगर वधू' घोषित की जाती थी और उस पर सम्पूर्ण नागरिको का समान अधिकार रहता था। उसे 'जनपद कल्याणी' की उपाधि प्राप्त होती थी। कन्या के अप्रतिम सौन्दर्य को देखकर वृद्ध महानामन वैशाली मे इसी भय से राजधानी छोड कर भागे थे, जिससे किसी की दृष्टि बालिका पर न पडे। पर अब उपाय न था। महानामन ने एक बार फिर वैशाली जाने का निर्णय किया।

४

फागुन बीत रहा था। वैशाली मे सन्ध्या के दीये जल गये थे। नागरिक और राजपुरुष अपने २ वाहनो पर सवार घरो को लौट रहे थे। रंगबिरंगे वस्त्र पहिने बहुत से स्त्री पुरुष इधर से उधर आ जा रहे थे। धीरे धीरे यह चहल पहल कम होने लगी और राजपथ पर अन्धकार बढ चला। नगर के दक्षिण प्रान्त भाग मे मद्य की एक दूकान थी। दूकान मे दीया जल रहा था। उसके धीमे और पीले प्रकाश मे बडे २ मद्यपात्र कापते से प्रतीत हो रहे थे। बूढा दूकानदार बैठा ऊघ रहा था। सडके अभी से सूनी हो चली थी। अब कुछ असमृद्ध लोग ही इधर उधर आ जा रहे थे। जिनमे मछुऐ, कसाई, माझी, नाई, कम्मकार आदि थे। वास्तव में इधर उन्ही की बस्ती अधिक थी।

वृद्ध महानामन बालिका की उगली पकड दूकान के आगे आखडे हुए। वे बहुत थक गये थे और बालिका उनसे भी बहुत अधिक। महानामन ने थकित किन्तु स्नेह भरे स्वर में कहा—'अन्त मे हम आ पहुचे, बेटी'।

"क्या यही नगर है बाबा, कला ? वैसे कचुक यहा कहा बिकते है ?"

"यह उपनगर है, नगर और आगे है। परन्तु आज रात हम यही कही विश्राम करेंगे। अब हमे चलना नही होगा। तुम तनिक यही बैठो, बेटी।"

यह कहकर वृद्ध महानामन और आगे बढकर दूकान के सामने आगए। महानामन का कण्ठ स्वर सुनकर बूढा दूकानदार ऊघ से चौक उठा था, अब उसने उन्हे सामने खडा देखकर कहा—

"हा, हा, मेरी दूकान मे सब कुछ है, क्या चाहिए तुम्हे ? कैसा पान करोगे ? दाक्षा लाजा, गौड, माध्वीक, मैरेय ?" फिर उसने घूर कर वृद्ध महानामन को अन्धकार मे देखा और उसे एक दीन भिक्षुक समझ कर कहा—"किन्तु मित्र, मै उधार नहीं बेचता। दम्म या कपाहण पास हो तो निकालो। "वृद्ध महानामन ने एक कदम आगे बढाकर कहा—"तुम्हारा कल्याण हो नागरिक, परन्तु मुझे पान नही, आश्रय चाहिये। मेरे साथ मेरी बेटी है, हम लोग दूर से चले आ रहे है, यहा कहीं निकट में विश्राम मिलेगा ? मै शुल्क दे सकूगा।"

बूढे दूकानदार ने सन्देह से महानामन को देखते हुए कहा—शुल्क, तुम दे सकते हो, सो तो है। परन्तु भाई तुम हो कौन ? जानते हो, वैशाली में बड़े २ ठग, और चोर दस्यु नागरिक का वेष बनाकर आते है। वैशाली की सम्पदा ही ऐसी है भाई, मै यही सब देखते २ बूढा हुआ हूं।"

वह और भी कुछ कहना चाहता था। परन्तु इसी समय दो तरुण

बाते करते २ उसकी दूकान पर आखडे हुए । बूढे ने सावधान होकर दीपक के धुधले प्रकाश मे देखा दोनो राजवर्गी पुरुष है, उनके वस्त्र और शस्त्र अन्धेरे में भी चमक रहे थे ।

बूढे ने नम्रतापूर्वक हाथ जोडकर कहा--"श्रीमानो को क्या चाहिए ? गौडीय, माध्वीक, दाक्षा ।"

"अरे पहिले दस्यु की बात कह ? कहा है दस्यु, बोल ?" आगन्तुक में से एक तरुण ने अपना खड्ग हिलाते हुए कहा ।

बूढ़े की घिग्घी बध गई । उसने हाथ जोडकर कहा - "दस्यु की बात कुछ नही श्रीमान, यह बूढा ग्रामीण कही से आकर रात भर के लिये विश्राम खोजता है । मुझे भय है, नही, नही, श्रीमान-मै कभी भय नहीं करता, किसी से भी नही । परन्तु मुझे सन्देह हुआ-कौन जाने कौन है यह, महाराज आप तो देखते ही है कि वशाली का महावभव यहा बडे २ दस्युओ को खीच लाता है ।"

"तू बक मत कर बूढ।" उसी तरुण ने खड्ग झनकाते हुए कहा--"उन सब दस्युओ को मै आज ही पकडूंगा । ला माध्वीक दे ।"

दोनो आगन्तुक अब आसनो पर बैठ गए । बूढा चुपचाप मद्य ढालने लगा । अब आगन्तुको ने महानामन की ओर देखा । जो अभी भी चुपचाप अन्धेरे मे खडे थे । अम्बपाली थककर घुटनो पर सिर रखकर सो गई थी । दीपक की पीत प्रभा उसके पीले मुख पर खेलती हुई काली अलकावलियो पर पड रही थी ।

तरुण आगन्तुक ने महानामन को सिर से पैर तक देखा और फिर अम्बपाली पर आकर उसकी दृष्टि स्थिर हो गई । उसने वृद्ध महानामन से कहा--"बूढे, कहा से आ रहे हो ?"

"दूर से"

"साथ में यह कौन है ?"

"मेरी बेटी है।"

"बेटी ही है ? कहीं से उड़ा तो नहीं लाए हो ? यहां वैशाली में ऐसी सुन्दर लड़कियों के खूब दाम उठते हैं। कहो बेचोगे ?"

वृद्ध महानामन बोले नहीं। क्रोध से उनके नथुने फूल उठे और होंठ सम्पुटित हो गये। वह निश्चल खड़े रहे।

कहने वाले ने यह सब नहीं देखा। उसके होंठों में एक हास्य नाच रहा था। दूसरा साथी माध्वीक पी रहा था। पात्र खाली करके अब वह बोला। उसने झुककर साथी से कहा—"क्यों ? ब्याह करोगे ?"

दूसरा ठहाका मारकर हंसा। "नहीं, नहीं, मुझे एक दासी की आवश्यकता है। छोटी सी एक सुन्दर दासी।" वह फिर महानामन की ओर घूमा। महानामन धीरे २ वस्त्र के नीचे से खड्ग खींच रहा था। देखकर आगन्तुक चौंका।

वृद्ध महानामन ने शिष्टाचार से सिर झुकाया। उसने कहा—"नायक, तुम्हारे इस राजपरिच्छद को मैं अभिवादन करता हूं। तुम्हें मैं पहिचानता नहीं, तुम कदाचित् मेरे किसी मित्र के पुत्र, पात्र अथवा नाती होगे। अब से ११ वर्ष पूर्व मैं भी एक सेना का नायक था। यही राजपरिच्छद जो तुम पहिने हो, मैं पूरे २८ साल तक पहन चुका हूं। उसकी मर्यादा मैं जानता हूं और मैं चाहता हूं कि तुम भी जानो। इसके लिये मुझे तुम्हारे प्रस्ताव का उत्तर इस खड्ग से देने की आवश्यकता हो गई, जो अब पुराना हो गया है और इन हाथों का अभ्यास और शक्ति भी नष्ट हो गई है। परन्तु कोई हानि नहीं। आयुष्मान्! तुम खड्ग निकालो, और तनिक कष्ट उठाकर आगे बढ़कर उधर मैदान में आ जाओ। यहां लड़की थक कर सो गई है, ऐसा न हो, शस्त्रों की झनकार से वह जग जाय।"

तरुण मद्यपात्र हाथ में ले चुका था। अब वृद्ध महानामन की यह

अतर्कित वाणी सुन, उसने .ाथ का मद्यपात्र फेंक खड्ग निकाल लिया, और उछल कर आगे बढ़ा।

तरुण का दूसरा साथी कुछ प्रौढ था। उसने हाथ के सकेत से साथी को रोक कर आगे बढ़कर बूढ़े से कहा--"आप यदि कभी वैशाली की राज सेना मे नायक रह चुके है तो आपको नायक चन्द्रमणि का भी स्मरण होगा ?"

"चन्द्रमणि ! निस्सन्देह, वे मेरे परम सुहृद थ। नायक चन्द्रमणि क्या अभी है ?" महानामन ने दो कदम आगे बढकर कहा।

'है, यह तरुण उन्ही का पुत्र है, आपका नाम क्या है भन्ते ?"

महानामन ने खड्ग कोष में रख लिया। कहा—"मेरा नाम महानामन है। यदि यह आयुष्मान् मित्रवर चन्द्रमणि का पुत्र है तो अवश्य ही इसका नाम हर्षदेव है।" युवक ने धीरे से अपना खड्ग वृद्ध के परो में रखकर कहा—"मै हर्षदेव ही हू, भन्ते, मै आपका अभिवादन करता हू।"

वृद्ध न तरुण को छाती से लगा कर कहा—"अरे पुत्र, मैने तो तुझे अपने घुटनो पर बैठाकर खिलाया है। आह आज मै बडभागी सिद्ध हुआ। नायक के दर्शन हो सकेंगे तो ?"

"अवश्य, पर अब वे हिल डोल नही सकते। पक्षाघात से पीडित है। भन्ते किन्तु आप मुझे क्षमा कर दीजिये।"

"इसकी कुछ चिन्ता न करो आयुष्मान। तो, मै कल प्रात.काल मित्र चण्द्रमणि से मिलने आऊगा।"

"कल ? नही, नही', अभी। मै अच्छी तरह जानता हू, आप थके हुए है और वह बालिका..... कैसी लज्जा की बात है। भन्ते, मैने गुरुतर अपराध । "वृद्ध ने हसते-२ युवक को छाती से लगाकर उसका क्षोभ दूर किया और कहा—"वह मेरी कन्या अम्बपाली है।"

"मैं समझ गया भन्ते, पितृचरण ने बहुत बार आपके विषय में चर्चा की है। चलिये अब घर। रात्रि आप यों राजपथ पर न व्यतीत करने पावेंगे।"

महानामन ने और विरोध नहीं किया। बालिका को जगाकर दोनों तरुणों के साथ उन्होंने धीरे २ नगर में प्रवेश किया।

———▬—

: १ :

धिक्कृत-कानून

उस दिन वैशाली में बड़ी उत्तेजना फैली थी। सूर्योदय के साथ ही ठठ के ठठ नागरिक सथागार की ओर जा रहे थे। सथागार की ओर जाने वाला राजमार्ग मनुष्यों से भरा हुआ था। पैदल, अश्वारोही, रथ और पालकी पर सवार सभी प्रकार के पुरुष थे। उन में नगर सेट्ठि, श्रेणिक और सामन्त पुत्र भी थे। सथागार का प्राङ्गण विविध वाहनों, मनुष्यों और उनके कोलाहल से परिपूर्ण था। बहुत से नागरिक और सेट्ठिपुत्र सथागार की स्वच्छ संगमर्मर की सीढ़ियों पर बैठे थे। बहुत से खुले मैदान में अपने २ वाहनों को थामे उत्सुकता से सभा भवन की ओर देख रहे थे। अनेक सामन्त-पुत्र अपने २ शस्त्र चमका कर और भाले ऊंचे करके चिल्ला २ कर उत्तेजना प्रकट कर रहे थे। वहां उस समय सर्वत्र अव्यवस्था फैली हुई थी और लोग आपस में मनमानी बातें कर रहे थे। उनके बीच से होते हुए गणमहत्तम अपने २ वाहनों से उतर चुपचाप गम्भीर मूर्तिधारण किये सभा भवन में जारहे थे। दण्डधर आगे २ उनके लिये रास्ता करते और द्वारपाल पुकार कर उनका नाम लेकर उनका आगमन सूचित कर रहे थे।

सथागार का सभामण्डप मत्स्य देश के उज्ज्वल श्वेत मर्मर का बना था। और उसका फर्श चिकने और प्रतिबिम्बित काले पत्थर का बना था। उसकी छत एक सौ आठ खम्भों पर आधारित थी, ये खम्भे भी काले पत्थर के बने थे। सभा भवन के चारों ओर भीतर की तरफ नौ सौ निन्यानवे हाथीदांत की चौकियां रखी थीं,

जिन पर अपनी २ नियुक्ति के अनुसार आठों कुल के सम्पूर्ण गण आ-आकर चुपचाप बैठ रहे थे। भवन के बीचो बीच सुन्दर चित्रित हरे रंग के पत्थर की एक वेदी थी जिस पर दो बहुमूल्य स्वर्ण खचित चादी की चौकियां रक्खी थी। एक पर गणपति सुनन्द बैठते थे और दूसरी पर महाबलाधिकृत सुमन। ये दोनों ही आसन अभी खाली थे। गणपति और महाबलाधिकृत अभी संथागार में नहीं आए थे। वेदी के ऊपर सोने के दण्डो पर चदवा तना था जिस पर अद्भुत चित्रकारी हो रही थी और बीच मे रंगीन पताकाएं फहरा रही थी। वेदी के तीन ओर सीढ़िया थी। और सीढ़ियो के निकट वृद्ध गणिक गण सन्निपात की तमाम कार्यवाही लिखने को तैय्यार बैठे थे। उन्ही के लिये छन्दशलाका ग्राहक हाथ मे लाल काली छन्दशलाकाओ से भरी टोकरिया लिये चुपचाप खडे थे। अधेड अवस्था के कर्मचारी परिषद् की सब व्यवस्था देख भाल रहे थे तथा विनयधरो को आवश्यक आदेश दे रहे थे। उनके आदेश पर विनयधर इधर उधर दौड कर आदेश पालन कर रहे थे।

गणपति और महाबलाधिकृत भी आकर अपने आसन पर बैठ गए। प्रतिहार ने सन्निपात के कार्यारम्भ की सूचना तूय बजा कर दी।

सथागार के बाहर खडी भीड़ मे और भी क्षोभ फैल गया। सब के मुह उत्तेजना से लाल हो गए। प्रत्येक व्यक्ति की आंखे चमकने लगी। सथागार के अलिन्द में सामन्तपुत्रो और सेट्ठिपुत्रो के झुण्ड के झुण्ड जमा होगये। सामन्तपुत्र अपने २ भाले और खड्ग चमका २ कर मनमाना बकने और शोर करने लगे। सेट्ठिपुत्रों का सदा का हास्य पूर्ण और निश्चिन्त मुख भी आज रौद्रमूर्ति धारण कर रहा था। वैशाली का जनपद, अन्तरायण, हट्ट और श्रेष्टिचत्वर सब बन्द थे। भीतर गणपति और गण चिन्तित भाव से बैठे किसी अयाचित घटना की

प्रतीक्षा कर रहे थे। वातावरण अत्यन्त अशान्त, उत्तेजित और उद्वेगपूर्ण था।

एकाएक रथ का गम्भीर घोष सुनकर कोलाहल थम गया। जो जहां था, चित्रलिखित सा खड़ा रह गया। सब उन्मुख हो परिषद् प्राङ्गण की ओर बढ़ते हुए रथ की ओर देखने लगे। रथ पर श्वेत कौशेय मढ़ा था और श्वेत पताका स्वर्ण कलश पर फहरा रही थी। रथ धीर मन्थर गति से अपनी सहस्र स्वर्ण घण्टिकाओं का घोष करता हुआ, सथागार के प्राङ्गण में आ खड़ा हुआ। लोगों ने कौतूहल से देखा-एक भव्य प्रशान्त भद्र वृद्ध पुरुष रथ से उतर रहे हैं। उनका स्वच्छ श्वेत परिधान और लम्बा श्वेत दाढ़ी हवा में फहरा रही थी। कमर में एक लम्बा खड्ग लटक रहा था जिसकी मूठ और कोष पर रत्न जड़े थे। वृद्ध के मस्तक पर श्वेत उष्णीष था, जिस पर एक बड़ा हीरा धक् धक् चमक रहा था। वे एक तरुण के कन्धे पर महाराजियों धीर भाव से सथागार की सीढ़िया चढ़ने लगे। लोगों ने आपही उन्हें मार्ग दे दिया। सर्वत्र सन्नाटा छागया।

परन्तु शान्त वातावरण क्षण भर बाद ही क्षुब्ध हो उठा। पहिले धीरे २, फिर बड़े वेग से जनरव उठा। एक उद्धत युवक साहस करके अपना भाला सीढ़ियों पर टेककर भद्र वृद्ध के सम्मुख अड़कर खड़ा होगया। उसके नथुने क्रोध से फूल रहे थे और मुख पर समस्त शरीर का रक्त एकत्रित हो रहा था। उसने दांत पीस कर कहा--"तो भन्ते महानामन, आप एकाकी ही आये हैं! देवी अम्बपाली नहीं आईं?"

तुरन्त दस बीस फिर शत सहस्र सामन्त पुत्र और सेट्ठिपुत्र, श्रेणिक और नागरिक चीत्कार कर उठे। "यह हमारा, हम सबका, वैशाली के गणविधान का, कानून का घोर अपमान है, हम इसे सहन नहीं करेंगे।"

शत सहस्र सामन्त पुत्र अपने भाले ऊचे उठा २ कर और खड्ग चमका २ कर चिल्ला उठे । "हम रक्त की नदी बहा देगे, परन्तु कानून की अवज्ञा नही होने देगे ।" भद्र नागरिको ने विद्रोही मुद्रा से कहा—"यह सरासर कानून की अवहेलना है । यह गुरुतर अपराध है । कानून की मर्यादा का पालन होना ही चाहिए । प्रत्येक मूल्य पर ।"

शत सहस्र कण्ठो ने चिल्लाकर कहा —"किसी भी मूल्य पर ।"

वृद्ध महानामन कामुख क्षण भर के लिय पत्थर के सामान भाव हीन और सफद होगया । उनका सीधा लम्बा शरीर जैसे तनकर और भी लम्बा होगया । उन्मुक्त वायु मे उनके श्वेत वस्त्र और श्वेत डाढी लहरा रही थी और उष्णीष पर बंधा हीरा धक् धक् चम रहा था । उनकी गति रुकी, वे तनिक विचलित हुए और उनके कमर मे बधा खड्ग खडखडा उठा । उनका हाथ खड्ग की मूंठ पर गया ।

किसी अतर्किन शक्ति से युवक सहम कर पाछे हट गया । और वृद्ध महानामन उसी धीर मन्थर गति से सीढियां चढ़ सभागार के भीतर जाकर वेदी के सम्मुख खडे हो गए ।

एक बार संथागार मे सर्वत्र सन्नाटा छागया । एक सूई के गिरने का भी शब्द होता ।

गणपति सुनन्द ने कहा—'भन्तेगण सुनें, आज किस गुरुतर कार्य के लिये अष्टकुल का गण सन्निपात हुआ है वह आप सब जानते है । मै आप सबसे प्रार्थना करूगा कि आप सब शान्ति और व्यवस्था भग न करे, और उत्तेजित न हो । ऐसा होगा तो हम सान्निपात भग करने को विविश होना पडेगा । अब सबसे पहिले मै आयुष्मान गणपूरक से यह जानना चाहता हू कि आज सन्निपात में कितने सदस्य उपस्थित है ?"

गणपूरक ने उत्तर दिया—"कुल नौ सौ दो है ।"

"भन्ते गण, वज्जी के प्रत्येक गण को आजके सन्निपात की सूचना देदी गई थी। और अब जितने सदस्य उपस्थित हो सकते थे उपस्थित हैं। क्या उपस्थित सदस्यों में से कोई पागल तो नहीं है? हो, तो पास वाले आयुष्मान सूचित करें।"

परिषद् में सन्नाटा रहा। गणपति ने कहा—"कोई, रोगी उन्मत्त या मद्य पिये हो तो भी सूचना करें?"

सर्वत्र सन्नाटा रहा। गणपति ने कहा, "अब भन्तेगण सुनें।" 'भन्ते महानामन, आज आपकी पुत्री अम्बपाली अठारह वर्ष की आयु पूरी कर चुकी। वैशाली जनपद में वह सर्व श्रेष्ठ सुन्दरी है। इस लिये वज्जी गण तन्त्र के कानून के अनुसार उसे यह परिषद् 'वैशाली की नगर वधू' घोषित किया चाहती है। और आज उसे 'वैशाली की जनपद कल्याणी' का पद देना चाहती है। गणसन्निपात की आज्ञा है कि वह आज से सार्वजनिक स्त्री की भाँति जीवन व्यतीत करे, इसी से आज उसे सभागार में उपस्थित होकर अष्टकुल के गण सन्निपात के सम्मुख शपथ ग्रहण करने की आज्ञा दी गई थी। उसके अभिभावक की हैसियत से आपपर उसे गण सन्निपात के सम्मुख उपस्थित करने का दायित्व है। अब आप क्या देवी अम्बपाली को गण सन्निपात के सम्मुख उपस्थित करते हैं, और उसे वैधानिक रीति पर घोषित 'वैशाली की नगरवधू' स्वीकार करते हैं?"

महानामन ने एक बार सम्पूर्ण पन्निपात को देखकर आंखें नीची करली। वे कुछ झुके और उनके होठ कांपे। परन्तु फिर तुरन्त ही वे तनकर खड़े होगये, और बोले—

"भन्ते, मैं स्वयं लिच्छवी हूं, और मैंने बयालीस वर्ष वज्जी संघ की निष्ठापूर्वक सेवा इस शरीर से इसी खड्ग के द्वारा की है। अनेकों बार मैंने इन भुजदण्डों के बल पर वैशाली गण तन्त्र के

दुर्धर्ष शत्रुओ को दलित करके कठिन समय मे वैशाली का लाज रखी है। मैने सदैव ही वज्जीसघ के विधान, कानून और मर्यादा की रक्षा की है और अब भी करूगा। यह प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह कानून की मर्यादा का पालन करे।" महानामन इतना कहकर चुप होगए। उनके होठ जैसे आगे कुछ कहने मे असमर्थ होकर जड होगए। उन्होने आखे फैला कर परिषद भवन मे उमडती उत्तेजित भीड को देखा, जिनकी जलती हुई आखे उन्ही पर लगी थीं। फिर सहज शान्त स्वर मे स्थिर वाणी से कहा—"मेरी पुत्री अम्बपाली के सम्बन्ध मे वज्जीगणतन्त्र के कानून के अनुसार गणसन्निपात ने जो निर्णय किया था, उसे जानकर मैने अठारह वर्ष की अवस्था तक उसका विवाह करना स्थगित कर दिया था। अब

बीच ही मे सामन्तपुत्र चिल्ला उठे—"स्थगित कर दिया था! इसका क्या अर्थ है? यह सन्दिग्ध बात है।"

सहस्रो कण्ठ चिल्ला उठे। "यह सन्दिग्ध बात है, हम स्पष्ट सुना चाहते है। देवी अम्बपाली किसी एक पुरुष की पत्नी नही हो सकती। वह हमारी, हम सबकी है। हमारा उसपर समान अधिकार है। और उसे हम शस्त्र के बल से भी प्राप्त करेगे।"

गणपति सुनन्द ने हाथ उठा कर कहा—'आयुष्मान् शान्त होकर सुनें, सन्निपात क कार्य म बाधा न दे। अभी भन्ते महानामन का वक्तव्य पूरा नही हुआ है। उन्हे पूरी बात कह लेने दीजिए।

परिषद् मे फिर सन्नाटा छागया। सबकी दृष्टि महानामन के ऊपर जाकर जम गई।"

महानामन ने परिषद् के बाहर भीतर दृष्टि फेककर आख नीची करलीं। और फिर कहा—'भन्तेगण, आज अम्बपाली अठारह वर्ष की आयु पूरी कर चुकी। वज्जी सघ के कानून के अनुसार अब वह स्वाधीन है और अपने प्रत्येक स्वार्थ के लिये उत्तरदात्री है।

अतः आजसे मैं उसका अभिभावक नहीं हूँ। वह स्वयं ही परिषद् को अपना मन्तव्य देगी।"

सथागार का वातावरण फिर बड़े वेग से क्षुब्ध हो उठा। तरुण सामन्तपुत्रों ने अपने खड्ग कोष से खींच लिये। बहुतों ने अपने २ भालों को हवा में ऊंचा करके चीत्कार करना प्रारम्भ कर दिया। सब लोग चिल्लाने लगे "विश्वासघात! विश्वासघात! भन्ते महानामन ने वज्रीसंघ से विश्वासघात किया है!! उन्हें इसका दण्ड मिलना चाहिए।" बहुतों ने अपने पैर धरती में पटक २ कर और भाले हवा में हिला २ कर कहा—'हमारे जीवन रहते अम्बपाली हमारी, हम—सबकी है, वह वैशाली की नगर वधू है। संघ यदि अपने कर्तव्य पालन में ढील करेगा तो हम अपने भालों और खड्ग की तीखी धार के बल पर उसे कर्तव्य पालन पर विवश करेंगे।"

गड्डमा कोलाहल स्तब्ध हो गया। जैसे किसी ने जादू कर दिया हो। सब कोई चकित स्तम्भित होकर परिषद के द्वार की ओर देखने लगे, एक अवगुण्ठनवती नारी वातावरण को सुरभित करती हुई और मार्ग में सुषमा फैलाती हुई आ रही थी। तरुणों का उद्धत भाव एक बारगी ही विलीन हो गया। सबने माया प्रेरित से हो कर उसे मार्ग दिया। गण के सदस्य और अन्य जनपद उस अलौकिक मूर्ति को उत्फुल्ल होकर देखते रह गये। उसने वेदी के सम्मुख आकर ऊपर का अवगुण्ठन उतार डाला। अब वैशाली के जनपद ने पहिली ही बार रूप की उस विभूति के दर्शन किए जो गत तीन वर्ष से सम्पूर्ण वैशाली जनपद की चर्चा का एक महत्त्वपूर्ण विषय बन गया था। और जिसके लिए आज सम्पूर्ण जनपद में ऐसा भारी क्षोभ फैल रहा था। सहस्र २ नेत्र उस रूप को देख अपलक रह गये, वाणी जड़ हो गई। अङ्ग अचल हो गए। तरुणों के हृदय जोर २ से धड़कने लगे। बहुतों की सांस की गति रुक गई। अम्बपाली की वह अलौकिक रूप-माधुरी शरतचन्द्र की पूर्ण

विकसित कौमुदी की भांति संथागार के कोने कोने में फैल गई। उसके स्निग्ध प्रभाव से जैसे वहां की सारी उत्तेजना और उद्वेग शांत हो गया।

अम्बपाली ने शुभ्रकौशेय धारण किया था। उसके जूडाग्रथित केश कुन्तल ताजे फूलो से गूथे गए थे। ऊपरी वक्ष खुला हुआ था। देहयष्ठि जैसे किसी दिव्य कारीगर ने हीरे के समूचे अखण्ड टुकडे से यत्नपूर्वक खोदकर गढ़ी थी। उससे तेज, आभा, प्रकाश, माधुर्य कोमलता और सौरभ का अटूट झरना झर रहा था। इतना रूप, इतना सौष्ठव, इतनी कोमलता, इतनी अपूर्वता कभी किसी ने एक स्थान पर देखी नही थी। उसने कण्ठ में बडे बडे पिप्पल के मोतियों की माला धारण की थी। कटि प्रदेश की हीरे जडी करधनी उसकी क्षीण कटि को पुष्ट नितम्बो से विभाजित सी कर रही थी। उसके सुडौल गुल्फ मणि खचित उपानत से, जिनके ऊपर स्वर्ण पैजानिया चमक रही थी, अपूर्व शोभा विस्तार कर रही थी। मानो वह संथागार में रूप, यौवन मद, सौरभ को बखेरती चली आई थी। जनपद लुटा सा, खोया सा, मूर्छित सा स्तब्ध सा खड़ा था।

यही वह अम्बपाली थी जिसे पाने के लिए वैशाली का जनपद उन्मत्त होकर लोहू की नदी बहाने को तैयार हो गया था। जिसे एक बार देख पाने के लिए वर्षों से धनकुबेर श्रेष्ठिपुत्रो तथा सामन्तपुत्रों ने न जाने कितने यत्न किए थे, षड्यन्त्र रचे थे। कितनो ने उसकी न जाने कितनी कल्पना मूर्ति बनाई थी, जो वैशाली में ही गत तीन वर्षों से यत्नपूर्वक गुप्त करके रखी गयी थी और जिसे सर्वगुण विभूषिता करने के लिए वैशाली राज परिषद ने मनो स्वर्ण रत्न खर्च कर दिये थे। आज वैशाली का जनपद देख रहा था कि विश्व की यौवनश्री अम्बपाली की देहयष्ठि में एकीभूत हो रही थी। जिसे देख जनपद

स्तम्भित चकित और जड हो गया था । वह अपने को, जीवन को और जगत को भी भूल गया था ।

अम्बपाली जैसे उस सुषुमा की सम्पदा को आंचल में भरे, नीची दृष्टि किए वृद्ध महानामन के पार्श्व मे आ खडी हुई । गणपति सुमस्त ने कहा—"भन्ते, देवी अम्बपाली अपना मत परिषद के सामने प्रकट करने आई हुई है । सब कोई उनका वक्तव्य सुने ।"

एकबार गगन भेदी जयनाद से परिषद भवन हिल उठा—"देवी अम्बपाली की जय, वैशाली की नगर वधू की जय, वशाली जनपद कल्याणी की जय ।"

अम्बपाली के होठ हिले । जैसे गुलाब की पखडियों को प्रातः समीर ने आन्दोलित किया हो । वीणा की झंकार के समान उसकी वाणी ने संथागार मे सुधावर्षण किया—"भन्ते आपके आदेश पर मैंने विचार कर लिया है । मैं वज्जीसघ के धिक्कृत कानून को स्वीकार करती हूं । यदि गणसन्निपात को मेरी शर्तें स्वीकार हो । वे शर्तें भन्ते-गणपति आपको बता देंगे ।"

परिषद भवन मे मन्द जनरव सुनाई दिया । एक अधेड सदस्य ने अपनी मूछो को दातो से दाबकर कहा—"क्या कहा ? धिक्कृत कानून ? देवी अम्बपाली, तुम यह वाक्य वापस लो, यह परिषद का घोर अपमान है ।"

चारो ओर से आवाजे आने लगी । "यह शब्द वापस लो, धिक्कृत कानून, शब्द अनुचित है ।"

अम्बपाली ने सहज शान्त स्वर मे कहा—"मै सहस्त्र बार इस शब्द को दुहराती हूं । वज्जी सघ का यह धिक्कृत कानून वैशाली जनपद के यशस्वी गणतन्त्र का कलंक है । भन्ते, मेरा अपराध केवल यही है कि विधाता ने मुझे यह प्रवाह रूप दिया, इसी अपराध के लिए आज मै अपने जीवन के गौरव को लाञ्छना और अपमान के पंक मे डुबो

देने को विवश की जा रही हू । इसीमे मुझे स्त्रीत्व के उन सब अधिकारो से वचित किया जा रहा है जिस पर प्रत्येक कुलवधू का अधिकार है । अब मै अपनी रुचि और पसन्द से किसी व्यक्ति को प्रेम नही कर सकती, उसे अपनी देह और हृदय अर्पण नही कर सकती । अपना स्नेह भरा हृदय और रूप से लतपत यह अधम देह लेकर अब मै वैशाली की हाट मे ऊचे नीचे दाम मे बेचन बैठूगी । आप जिस कानून के बल पर मुझे ऐसा करने को विवश कर रहे है—वह एक बार नही—लाख बार धिक्कृत होनयोग्य है, जिसे आज ये स्वर्ण तरुण सामन्तपुत्र अपने खड्ग की नोकी धार और भालो की नोक के बल पर अक्षुण्ण और सुरक्षित रखा चाहते है, और ये सेट्ठिपुत्र अपनी रत्नराशि जिस पर लुटाने को दृढ़ प्रतिज्ञ है । अम्बपाली यह कह कर रुकी । उसका अग काप रहा था और वाणी तीखी हो रही थी । परिषद भवन मे सन्नाटा था ।

उसने फिर कहा—' भन्ते, मै अपना अभिप्राय निवेदन कर चुकी । यदि सन्निपात को मेरी शर्तें स्वीकार हो—तो मै अपना सतीत्व, स्त्रीत्व, मर्यादा, यौवन, रूप और देह आपके इस धिक्कृत कानून के अर्पण करती हू । यदि आपको मेरी शर्तें स्वीकार न हो तो मै नीलपद्मप्रासाद में आपके वधिको की प्रतीक्षा करूंगी ।"

इतना कह कर उसने अवगुण्ठन से शरीर को आच्छादित किया और वृद्ध महानामन का हाथ पकड कर कहा "—चलिए ।" महानामन अम्बपाली के कन्धे का सहारा लिये सथागार से बाहर हो गए । वैशाली का जनपद मूढ अवाक होकर देखता रह गया ।

: २ :

गण-सन्निपात

जब तक रथ की घण्टियो का घोष सुनाई देता रहा, और रथ की ध्वजा दीख पडती रही, वैशाली का जनपद मार्ग पर उसी ओर मन्त्र विमोहित सा देखता रह गया। अम्बपाली का वह अपूर्व रूप ही नही — उसका तेज, दर्प, साहस और दृढता सब कुछ उन्हे अकल्पित दीख पडी। जो थोडे से वाक्य अम्बपाली ने सभा में कहे, उनका सभी पर भारी प्रभाव पडा। कुछ लोग निरीह नारीत्व की इस कानूनी लाञ्छना के विरोधी हो गए। उन्होने चिल्ला २ कर कहना आरम्भ किया कि—"कौन देवी अम्बपाली को बलात् 'नगर वधू' बनावेगा? हम उसके रक्त मे वसुन्धरा को डुबो देगे। निस्सन्देह यह धिक्कृत कानून वैशाली जनपद और वज्जीसघ शासन का कलंक रूप है। यह स्वाधीन जनपद के अन्तस्तल पर पराधीनता की कालिमा है। अग, वग, कलिङ्ग, चम्पा, काशी, कोशल, ताम्रपर्णी और राजगृह कही भी तो स्त्रीत्व का ऐसा बलात् अपहरण नही है। फिर वज्जियो का यह गण-तन्त्र ही क्या? जहा नारी का नारीत्व इस प्रकार अपहरण हो। यह हमारी रक्षणीया कुलवधुओ, पुत्रियो और बहिनो की प्रतिष्ठा और मर्यादा का घोर अपमान है। इसे हम सहन नहीं करेगे। हम विद्रोह करेंगे। समाज से, संघ से, अष्टकुल के गण-तन्त्र से और गण परिषद् से।"

कुछ सामन्तो ने अपने २ खड्ग कोष से खींच लिये, चलती बार अम्बापाली जो शब्द कह गई थी, उससे उनके हृदय तीर से बिद्ध पक्षी की भाँति आहत हो गये थे। उन्होने क्रुद्ध स्वर में हथियार ऊंचे उठाकर कहा—'अरे, वैशाली की जनपद कल्याणी-देवी अम्बपाली

नील पद्म प्रासाद में परिषद् के वधिकों की प्रतीक्षा कर रही है। कौन उसे वध करने के लिये वधिकों को भेजता है, हम देखेंगे। हम अभी २ उसके खण्ड २ कर डालेंगे। हम इस सथागार का एक २ पत्थर धूल में मिला देंगे।"

कुछ सेट्ठिपुत्र पागल की भांति बक रहे थे। "वज्जियों के इस गणतन्त्र का नाश हो। हम राजगृह में जा बसेंगे। देवी अम्बपाली जिएं। हमारे धन प्राण देवी अम्बपाली पर उत्सर्ग है।"

इस पर सबने उच्च स्वर में जय घोष किया। "जय, देवी अम्बपाली की जय, जनपद कल्याणी की अभय"

परन्तु बहुत से उद्धत तरुण सामन्त पुत्र शस्त्र चमका २ कर और हवा में भाले उछाल २ कर अपने अश्व दौड़ाने लगे। वे कह रहे थे कि—"उसका वध वधिक नहीं कर सकते। हम उसके दिव्य देह का उपयोग चाहते हैं। हम उसकी शरच्चन्द्र की चांदनी के समान रूप सुधा का पान किया चाहते हैं। उसके अनिन्द्य यौवन का आनन्द लिया चाहते हैं। वह हमारी है, हम सबकी हैं। वह वैशाली का प्राण वैशाली की शोभा, वैशाली के जीवन की केन्द्रस्थली है। वह वैशाली की नगर वधू है। उसने कुछ शर्तों पर कानून के आधीन होना स्वीकार कर लिया है। उसकी वे शर्तें कुछ भी हों, हम स्वीकार हैं। हम सर्वस्व देकर भी उसे प्राप्त करेंगे या स्वयं मर मिटेंगे।

प्रतीहार और दण्डधर परिषद् की व्यवस्था स्थापन में असमर्थ हो गए। तब गणपति भुनन्द ने खड़े होकर कहा—"आयुष्मान् शान्त होकर देवी अम्बपाली की शर्तों को सुनें। उन पर अभी गण सन्निपात का छन्द ग्रहण होगा। उन शर्तों के पूरी होने पर देवी अम्बपाली स्वेच्छा से नगर वधू होने को तैयार है।"

एक बार सथागार में फिर सन्नाटा छा गया। परन्तु क्षण भर बाद ही बहुत से कण्ठ एक साथ चिल्ला उठे—"कहिये, भन्ते—गणपति वे शर्तें क्या हैं, और कैसे उनकी पूर्ति की जा सकती है?"

गणपति ने कहा—"सब आयुष्मान् और भन्तेगण सुने। देवी की पहिली शर्त यह है कि—उसे रहने के लिये सप्त भूमि प्रासाद, नौ कोटि स्वर्ण भार, प्रासाद के समस्त साधन और वैभव सहित दिया जाय।"

गण सदस्य जड हो गये। नागरिक भी विचलित हुए। बहुत से राजवर्गियों की भृकुटियो मे बल पड गये। महामात्य सुप्रिय ने क्रुद्ध होकर कहा—"भन्ते, यह असम्भव है, ऐसा कभी नही हुआ। सप्तभूमि प्रासाद जम्बूद्वीप भर मे अद्वितीय है, उसका वैभव और साधन एक राजतन्त्र को सचालन करने योग्य है। उसका सौष्ठव ताम्रलिप्त, राजगृह, श्रावस्ती और चम्पा के राजमहलों से बढचढकर है। फिर नौ कोटि स्वर्ण भार? नही, नही। नौ कोटि स्वर्ण भार देने पर वज्जी सघ का राजकोष ही खाली हो जायेगा। नही, यह शर्त नही स्वीकार की जा सकती। किसी भाति भी नही। किसी भाति भी नही।" उद्वेग से उनका वृद्ध शरीर काँपने लगा और वे हाँपते से बैठ गये।

बहुत से सेट्ठिपुत्र एक साथ ही बोल उठे—"क्यो नही दिया जा सकता? राजकोष यदि रिक्त हो जायगा तो हम उसे भर देंगे। श्रेष्ठिकुल दूसरे प्रासाद का निर्माण कर सकता है। हम शत कोटि स्वर्ण भार देने को प्रस्तुत है।"

सामन्त पुत्रों ने अपने भाले चमका चमका कर कहा—"देवी अम्बपाली का सप्तभूमि प्रासाद सम्पूर्ण साधन और वैभव तथा नौ कोटि स्वर्ण भार सहित दे दिया जाय। वह प्रासाद वह वैभव वैशाली के जनपद का है, वह हमारा है, हम सब का है, हमने गम रक्त के मूल्य पर उसका निर्माण कराया है। जिस प्रकार अनुपम रूप यौवन श्री की अधिष्ठात्री देवी अम्बपाली हमारी—हम सबकी है उसी प्रकार अप्रतिम वैभव और सौष्ठव का आगार सप्तभूमि प्रासाद भी हमारा, हम सब का है। वह अवश्य वैशाली के जनपद का सान्ध्य क्रीडा स्थल होना चाहिये।"

गणपति ने खडे होकर हाथ के इशारे से सबको चुप रहने को कहा। फिर कहा--भन्तेगण, अब मै आपसे पूछता हूं कि क्या आपको देवी अम्बपाली की पहली शर्त स्वीकार है? यदि किसी को आपत्ति हो तो बोले। सभा भवन मे सब चुप थ। गणपति ने कहा--"सब चुप है। मै फिर दूसरी बार पूछता हू और अब तीसरी बार भी? "सब चुप है। तो भन्ते, वज्जियो का यह सन्निपात देवी अम्बपाली की पहली शर्त स्वीकार करता है।"

सभा के बाहर भीतर हर्ष की लहर दौड गई। एक बार फिर देवी अम्बपाली के जयनाद से सथागार गूज उठा।

गणपति ने कुछ ठहरकर कहा,--"भन्ते, अब देवी की शेष दो शर्तें भी सुनिये। उसकी दूसरी शर्त यह है कि उसके आवास की दुर्ग की भाति व्यवस्था की जाय। और तीसरी यह कि उसके आवास म आने जाने वाले अतिथियो की जाच पडताल गणिकाध्यक्ष न करे।"

गणपति के यह कहकर बैठने ही महाबलाधिकृत सुमन ने क्रोध से आसन पर पैर पटक कर कहा--भन्ते, यह तो आत्मघात से भी अधिक है। मै कभी इसका समर्थन नही कर सकता कि देवी का आवास दुर्ग की भाति व्यवस्थित रहे। इसका तो स्पष्ट यह अर्थ है कि देवी अम्बपाली अलग ही अपनी सेना रखेगी और नागर कानून उसके आवास मे रहने वालो पर लागू ही नही होगे।

सान्धि विग्राहिक जयराज ने कहा--"और उसके आवास मे कौन आता जाता है, यदि इसकी जाच पडताल गणिकाध्यक्ष न करेगे तो निश्चय ही अम्बपाली का आवास शीघ्र ही षड्यन्त्रकारी शत्रुओ का एक अच्छा खासा अड्डा बन जायगा। और वे लोग निश्चिन्तता से वैशाली ही मे बैठकर वैशाली के गणतन्त्र की जड उखाडने के सब प्रयत्न करते रहेगे। और यदि कभी नगर रक्षक को किसी चोर या षड्यन्त्रकारी के वहा रहने का सन्देह होगा तभी देवी की सेना राज्य की सेना के कार्य मे बाधा डाल सकेगी। और यदि वह चोर कोई

शत्रु राजा या सम्राट् हुआ तो उसकी सेना को भीतर बाहर से पूरी सहायता प्राप्त हो जायगी। भन्ते, मैं कहना चाहता हू कि इस समय वैशाली का गण सघ चारो ओर से शत्रुओ से घिरा हुआ है। एक तरफ राजगृह के सम्राट् बिम्बसार उसे विषम लोचन से देखते है, दूसरा ओर मत्स्य, अङ्ग, बंग, कलिङ्ग, कोशल और अवन्ती के राजाओ की उस पर सदा की वज्र दृष्टि बनी हुई है। वे सदा वैशाली के गण सघ को ध्वस करने की ताक मे रहते है। यदि हमने देवी अम्बपाली की ये शर्तें स्वीकार कर ली तो निस्सन्देह उसका आवास शत्रुओ के गुप्तचरो का एक केन्द्र बन जायगा। और हमारे घर मे एक ऐसा छिद्र हो जायगा जिससे हम वैशाली जनपद की रक्षा नहीं कर सकेंगे।"

सथागार के बाहर भीतर फिर विषम कोलाहल हुआ। परन्तु गणनायक सुमन्त के खडे होते ही सब चुप हो गए। गणपति ने कहा भन्ते, अम्बपाली जैसी गुण गरिमा पूर्ण जनपद कल्याणी के लिए जनपद को कुछ बलिदान तो करना ही होगा। इस समय जबकि वैशाली का जनपद पद पद पर शत्रुओ मे घिरा है, हमे छोटी-छोटी बातो पर गृह कलह नहीं करना चाहिए। मैं अपने तरुण सामन्त पुत्रो से जो बार २ अपने खड्ग और भाले चमका २ कर बात २ पर रोष प्रकट करते है यह कहना चाहता हू--कि वह समय आ रहा है जब उनके बाहुबल और शस्त्रो की परीक्षा होगी, जिन पर उन्हे इतना गर्व है। पर हमे अपनी शक्ति शत्रु पर ही लगानी चाहिए, गृहकलह से आपस मे टकरा कर नष्ट नही होना चाहिए। इसलिए गणसन्निपात से मैं अनुरोध करूगा कि वह देवी की दूसरा शर्त स्वीकार कर ले। तीसरी शर्त की बात यह कि जब कभी देवी के आवास की जाच करने की आवश्यकता समझी जाय तो उसे एक सप्ताह पहले इसकी सूचना दे देनी चाहिए।"

सभा भवन मे सन्नाटा ही रहा। गणपति कुछ देर को चुप रहकर बोले—"भन्तेगण सुने, जैसा कि मैंने प्रस्ताव किया है, देवीअम्बपाली

की दूसरी शर्त ज्यों की त्यों और तीसरी प्रस्तावित संशोधन के साथ स्वीकार कर ली जाय। इस पर जो सहमत हों वे चुप रहें। जो असहमत हों, वे बोलें"।

सब कोई चुप रहे। गणपति ने कहा—"सब चुप हैं। अब मैं दूसरी बार और तीसरी बार भी पूछता हूं जिन्हें मेरा प्रस्ताव स्वीकार हो वे चुप रहें।"

'साधु भन्ते। सब चुप हैं। तो तीसरी शर्त थोड़े संशोधन के साथ स्वीकार करके देवी अम्बपाली की तीनों शर्त अष्टकुल का गण सन्निपात स्वीकार करता है। मैं अभी नीलपद्म प्रासाद में देवी अम्बपाली से मिलकर सब बातें तय करने जाता हूं और कल इसके निर्णय की घोषणा कर दी जायगी। आज गणसंघ का कार्य समाप्त होता है।

गणपति के आसन त्यागते ही एक बार तीव्र कोलाहल से सथागार का भवन गूंज उठा और सामन्त पुत्र, सेट्ठि पुत्र तथा नागरिक भांति भांति की बातें करते परिषद् भवन में लौटे।

: ३ :

नीलपद्म प्रासाद

नील पद्म प्रासाद नीलपद्म सरोवर के बीचोबीच बना था। प्रासाद का बाहरी घेरा और फर्श मत्स्य देश के श्वेत मर्मर का था, किन्तु उसकी दीवारों पर ऊपर से नीचे तक विविध रंगीन रत्नों की पच्चीकारी हो रही थी। बाहरी प्राङ्गण से प्रासाद तक एक प्रशस्त किन्तु सुन्दर पुल था। जिसके दोनों ओर स्वर्ण दण्ड लगे थे। नीलपद्म सरोवर का जल वास्तव में नीलमणि के समान स्वच्छ और चमकीला था। और उसमें पारस्य देश के यत्न पूर्वक लगे हुऐ बड़े २ नीलपद्म सदा खिले रहते थे। सरोवर में बीच २ में कृत्रिम टापू बने थे, जिनमें हंस-चक्रवाक-बक, सारंग के कृत्रिम निवास बनाऐ गये थे। इन पक्षियों का कलरव, निर्मल जल में नीलपद्मों की शोभा, और उसपर प्रासाद की काँपती हुई परछाई देखते ही बनती थी। परिषद की अतिथि रूप देवी अम्बपाली इसी प्रासाद में आज कल निवास कर रही थी।

सरोवर के तट पर एक स्वच्छ मर्मर की वेदीपर देवी अम्बपाली, विषण्णवदन बैठी सान्ध्याकाश में सुदूर एक क्षीण तारे को एक टक देख रही थी। अनेक प्रकार के विचार उसके मन में उदय हो रहे थे। वह सोच रही थी अपना भूत और भविष्य। एक द्वन्द उसके भीतर चल रहा था। आज से सात वर्ष पूर्व एक ग्यारह वर्ष की बालिका के रूप में जब उसने वैशाली की पौर में सन्ध्या के बढ़ते हुए अन्धकार में पिता की उंगली पकड़कर प्रवेश किया था, उसने नवीन जीवन, नवीन चहल पहल, नवीन भाव देखे थे। नायक चन्द्रमणि की कृपा से उसके पिता को उसकी नष्ट सम्पत्ति और स्यक्त पद मिल गया था। और अब उसके

उद्ग्रीव यौवन और विकसित जीवन की क्रीडा के दिन थे। सब वैभव उसे प्राप्त थे, भाग्य उसके साथ असाधारण खेल खेल रहा था। जो बालिका एक दिन छै दम्म के कचुक के लिये लालायित हो गीली आँखो से पिता से याचना कर चुकी थी, आज जीवन के ऐसे सघर्ष मे आ पडी थी, जिसकी कदाचित ही कोई युवती सम्भावना कर सकती है। वैशाली का जनपद आज उसके लिये क्षुब्ध था और अष्टकुल के एक महासकट को टालने की शक्ति केवल उसी में थी।

एक दिन, उसके अज्ञान मे धृष्टता पूर्वक जिस हर्षदेव ने उसके पिता से उसके सम्बन्ध मे उपहास किया था, उसी हर्षदेव की प्रणयाभिलाष उसने एक बार अपनी कच्ची मति मे आखो मे हसकर स्वीकार कर ली थी। उस स्वीकृति मे कितना विवेक और कितना अज्ञान था, इसका विश्लेषण करना व्यर्थ है। परन्तु जब उन दोनो के बूढ़े पिता, पुरातन मैत्री और नवीन कृतज्ञता के पाश मे बधकर उनके विवाह का वचन दे चुके, तबसे वह हर्षदेव को आखो मे 'हाँ' और होठो मे 'ना' भरकर कितनी बार ठग कर चुकी थी। इसके इतिहास पर आज अनायास ही उसका ध्यान जा पहुचा था। उसकी अप्रतिम रूप राशि को वैशाली के जनपद से छिपाने के सभी प्रयत्न, सभी सतर्कता व्यर्थ हुई। प्रभात की धूप की भाति उसके रूप की ख्याति बढती ही गई और अन्तत वह वैशाली के घर २ का चर्चा की वस्तु बन गई। तब से कितने सामन्त पुत्रो ने अयाचित रूप से उसके लिये द्वन्द युद्ध किये, कितने सेट्ठि पुत्रो ने उसे एक बार देख पाने भर के लिये हीरा मोती रत्न और स्वर्ण की राशि जिस तिस को दी। पर अम्बपाली को जनपद मे कोई, देख न सका। ज्यो २ दिन बीतते गये, अम्बपाली के रूप की काल्पनिक सैकडो कहानिया वैशाली के घर २ कही जाने लगी। और इस प्रकार अम्बपाली वैशाली जनपद की चर्चा का मुख्य विषय बन गई।

फिर एक दिन, जब महानामन ने अम्बपाली के वाग्दान की

अनुमति नायक चन्द्रमणि के पुत्र हर्षदेव के साथ करने की गण से मांगी तो संथागार मे एक हंगामा उठ खडा हुआ और गणपति को आज्ञापत्र जारी करके महानामन को विवश किया गया कि जब तक अम्बपाली वयस्क न हो जाय, वह उसका विवाह न करे। और महानामन को प्रतिज्ञा लिखनी पडी कि वह अम्बपाली का विवाह तब तक नही करेंगे, जब तक कि वह अठारह वर्ष की नही हो जाती। अठारह वर्ष की आयु होने पर वह उसे संथागार में उपस्थित करगे।

उस बात को आज तीन वर्ष बीत गए। इन तीन वर्षों मे जनपद न खुल्लम खुला अम्बपाली को जनपद कल्याणी कहना प्रारम्भ कर दिया और गणसघ पर जोर दिया कि वह उसे 'नगर वधू' घोषित कर देने का आश्वासन अभी द। यह आदोलन इतना उग्र रूप धारण कर गया कि अष्टकुल के गणपति को अम्बपाली और महानामन को गण सघ के समक्ष प्रत्युत्तर के लिए सथागार मे उपस्थित करने को वाध्य होना पडा।

अम्बपाली ने अपने उस नए जीवन के सम्बन्ध म, जिसमे वैशाली का जनपद उसे डालना चाहता था, जब कल्पना की, तो वह सहम गई। हर्षदेव के प्रति प्रेम नही तो स्नेह उसे था। कुल वधू होने पर वही स्नेह बढ़कर प्रेम हो जाता है। अब एक ओर उसके सामने कुलवधू की अस्पष्ट धुधली आकृति थी, और दूसरी ओर 'नगरवधू' बनकर सर्वजन भोग्या होने का चित्र था। दोनो ही चीजे उसके लिए अज्ञात थी, उसकी कल्पनाये बाल सुलभ थी, वह भावुक थी, उसका स्वभाव आग्रही था और जीवन आशामय। एक ओर बन्धन और दूसरी ओर उन्मुक्त जीवन। एक ओर एक व्यक्ति को मध्य बिन्दु बना कर आत्मार्पण करने की भावना थी, दूसरी ओर विशाल वैभव, उत्सुक जीवन और महा-विलास की मूर्ति थी। उसका विकसित साहसी हृदय द्वन्द मे पड गया। और उसने अपनी तीन शर्तें परिषद मे रख दीं। उसने सोचा, जब कानून की मर्यादा पालन करना ही है तो फिर जीवन को वैभव और अधिकार की चोटी पर पहुचाना ही चाहिए और वैशाली के जिस

जनपद ने उसे इस मोर जान का विवश किया है उसे अपने समर्थ चरणो मे रोद रोद कर दलित करना चाहिए।

विचारो की उत्तेजना के मारे उसका वक्षस्थल लुहार की धोकनी की भाति उठने बैठने लगा। उसने दातो मे होट दाब कर कहा—'मै वैशाली के स्त्रैण पुरुषो से पूरा बदला लूगी। मै अपने स्त्रीत्व का पूरा सौदा करूगी। मै अपनी आत्मा का हनन करूगी। और उसकी लोथ इन लोलुप गृद्धों को उन्ही की प्रतिष्ठा और मर्यादा के दामो पर बेचूगी।'

धीरे २ पूर्णचन्द्र का प्रकाश आकाश में फैल गया, और भी तारे आकाश मे उदय हुए। उन सब का प्रतिबिम्ब नीलपद्म सरोवर के निर्मल जल की लहरो पर थिरकने लगा। अम्बपाली सोचने लगी—'आह, मै इस प्रकार अपने मन को चंचल न होने दूगी। मै दृढतापूर्वक जीवन युद्ध करूगी और उसमे विजय प्राप्त करूगी।'

यही सब बाते अम्बपाली सोच रही थी। शुभ्रचन्द्र की ज्योत्स्ना मे, शुभ्र वसनभूषिता, शुभ्रवर्णा, शुभानना अम्बपाली उस स्वच्छ शुभ्रशिलाखण्ड पर बैठी मूर्तिमती ज्योत्स्ना मालूम हो रही थी। उसका अन्तर्द्वन्द अथाह था और वह बाह्य जगत को भूल गयी थी। इसीसे जब मदलेखा ने आकर नम्रतापूर्वक कहा—'देवी की जय हो। गणपति आए है और द्वार पर खडे अनुमति की प्रतीक्षा कर रहे है।'

तब वह चौंक उठी। उसने भृकुटी चढ़ा कर कहा—'उन्हे यहीं ले आ।'

वह प्रस्तर पीठ पर सावधान होकर बैठ गई। गण नायक सुमन्त ने आकर कहा—'देवी अम्बपाली प्रसन्न हो! मै वज्जीसघ का संदेश लाया हूं।'

"तो आपके अधिक कहा है? उनसे कहिए कि मै तैयार हू। वैशाली जनपद के ये हिंस्र नरपशु किस प्रकार मेरा हनन किया चाहते है?"

"वे तुम्हारा शरीर चाहते है।"

"वह तो उन्हे अनायास ही मिल जायगा।"

"वे जीवित शरीर चाहते है, सस्मित शरीर। देवी अम्बपाली, वज्जीसघ ने तुम्हारी शर्तें स्वीकार कर ली है। केवल अन्तिम शर्त '

"अन्तिम शर्त क्या ?" अम्बपाली ने उत्तेजना से कहा—"क्या वे उसे अस्वीकार करेंगे ? मै किसी भी प्रकार अपनी शर्तों की अवहेलना सहन न करूंगी।"

वृद्ध गणपति ने कहा—"देवी अम्बपाली, तुम रोष और असन्तोष को त्याग दो। तुम्हे सप्तभूमि प्रासाद, समस्त वैभव और साधन सहित तथा नौ कोटि स्वर्णभारसहित मिलेगा। तुम्हारा आवास दुर्ग की भाँति सुरक्षित रहेगा। किन्तु यदि तुम्हारे आवास के आगन्तुको की कभी जाच की आवश्यकता हुई तो उसकी एक सप्ताह पूर्व तुम्हे सूचना दे दी जाएगी। अब तुम अदृष्ट की नियति को स्वीकार करो, देवी अम्बपाली! महान व्यक्तित्व की सदैव सार्वजनिक स्वार्थों पर बलि होती है। आज वैशाली के जनपद को तुम्हारे स्त्रीत्व की बलि की आवश्यकता है। वह बलि उसे दो, वैशाली जनपद को अपने ही लोहू मे डूबने से बचा लो।"

अम्बपाली ने उत्तेजित होकर कहा—"क्यो, किस लिये ? जहाँ स्त्री स्वाधीनता पर हस्तक्षेप हो, उस जनपद को जितनी जल्दी लोहू में डुबोया जाय उतना ही अच्छा है। मै आपके वधिकों का स्वागत करूगी, पर अपनी शर्तों मे तनिक भी हेर फेर स्वीकार न करूगी। भले ही वैशाली का यह स्त्रैण जनपद कल की जगह आज ही लोहू मे डूब जाय।"

"परन्तु यह अत्यन्त भयानक है, देवी अम्बपाली! तुम ऐसा कदापि नही करने पाओगी। तुम्हे वैशाली के जनपद को बचाना होगा। अष्टकुल के स्थापित गणतन्त्र की रक्षा करनी होगी। यह जनपद तुम्हारा है, तुम उसकी एक अंग हो। कहो तुम अपना प्राण देकर उसे बचाओगी।"

"मैं, मैं अभी प्राण देने को तैयार हू । आप वधिको को भेजिए तो ''

गणपति ने आर्द्रकण्ठ से कहा–"तुम चिरजीवी होओ देवी अम्बपाली । तुम अमर होओ । जनपद की रक्षा का भार स्त्री पुरुष दोनो ही पर है । पुरुष सदैव इस पर अपनी बलि देते आए है । स्त्रियों को भी बलि देनी पडती है । तुम्हारा यह दिव्य रूप, यह अनिन्द्य सौन्दर्य, यह विकसित यौवन, यह तेज, यह दर्प, यह व्यक्तित्व स्त्रीत्व के नाम पर, किसी एक नगण्य व्यक्ति के दासत्व मे क्यों सौप दिया जाय ? तुम्हारी जैसी असाधारण स्त्री क्यो एक पुरुष की दासी बने ? यही क्यो धर्म है देवी अम्बपाली । समय पाकर रूढियां ही धर्म का प धारण कर लेती है । और का पुरुष उन्ही की लीक पीटते है । स्त्री अपना तन मन प्रचलित रूढि के आधार पर एक पुरुष को सौंपकर उसकी दासी बन जाती है, और अपनी इच्छा, अपना जीवन, उसी में लगा देती है । यह तो साधारण जीवन है । पर देवी अम्बपाली, तुम असाधारण स्त्री रत्न हो तुम्हारा जीवन भी असाधारण ही होना चाहिए ।"

"तो इसीलिये वैशाली का राष्ट्र मेरी देह को आक्रान्त किया चाहता है क्यो ?" अम्बपाली ने होठ चबाकर कहा ।

"इसीलिये" वृद्ध गणपति ने स्थिर मुद्रा मे कहा । "देवी अम्बपाली, वैशाली का जनपद अप्रतिम सप्तभूमि प्रासाद, नौकोटि स्वर्णभार और प्रासाद की सब सज्जा–रत्न, वस्त्र और साधन तुम्हे दे रहा है । तुम्हे दुर्ग मे की भाति शासक रहने की प्रतिष्ठा दे रहा है । यह वह प्रतिष्ठा है देवी अम्बपाली, जो आज तक वज्जीसघ के अष्टकुलो मे से किसी गण को यहा तक कि गणपति को भी प्राप्त नही हुई । अब और तुम चाहती क्या हो ?"

"तो यह मेरा मूल्य ही है न ? इसे लेकर मैं अपनी देह वैशाली जनपद के अर्पण कर दू आप यही तो कहने आए है ?"

"निस्सदेह, मेरे आने का यही अभिप्राय है । देवी अम्बपाली,

अभी जो तुम्हे अटूट सम्पदा मिल रही है, यह तुम्हारा मूल्य नहीं है। यह तो उसका एक क्षुद्र भाग है। विश्व की बड़ी २ सम्पदाएं और बड़े २ सम्राटों के मस्तक तुम्हारे चरणों पर आ गिरेंगे। तुम स्वर्ण, रत्न, प्रतिष्ठा और श्री से लद जाओगी। इस सौभाग्य को-इस अवसर को मत जाने दो, देवी अम्बपाली।"

"तो आप यह एक सौदा कर रहे हैं? किन्तु यदि मैं यह कहूं कि मैं अपनी देह का सौदा नहीं करना चाहती, मैं हृदय को बाजार में नहीं रख सकती, तब आप क्या कहेंगे?" अम्बपाली ने वक्र दृष्टि से वृद्ध गणपति को देखकर कहा।

गणपति ने संयत स्वर में कहा—"मैं केवल सौदा ही नहीं कर रहा हूं देवी, मैं तुमसे कुछ बलिदान भी चाहता हूं, जनपद कल्याण के नाते। सोचो तो, इस समय वैशाली का जनपद किस प्रकार चारों ओर से संकट में घिरा हुआ है। शत्रु उसे ध्वस्त करने को मौका ताक रहे हैं और अब तुम्हीं एक ऐसी केन्द्रित शक्ति बन सकती हो जिसके संकेत पर वैशाली जनपद के सप्तपुत्रों और सामन्त पुत्रों की क्रियाशक्ति अवलम्बित होगी। तुम्हीं उनमें आशा आनन्द, उत्साह और उमङ्ग भर सकोगी तुम्हीं इन तरुणों को एक सूत्र में बांध सकोगी। वैशाली के तरुण तुम्हारे एक संकेत से एक स्निग्ध कटाक्ष से वह कार्य कर सकेंगे जो अष्टकुल का गणसंघ तथा सेनागार के सम्पूर्ण राज पुरुष मिलकर भी नहीं कर सकते।"

वृद्ध गणपति इतना कहकर घुटनों के बल धरती पर झुक गये। उन्होंने आंखों में आंसू भर कर कहा—"देवी अम्बपाली, मैं जानता हूं कि तुम्हारे हृदय में एक ज्वाला जल रही है। परन्तु देवी, तुम वैशाली के स्वतन्त्र जनपद को बचालो, नहीं तो वह गृह कलह करके अपने ही रक्त में डूबकर मर जायगा। वह आज तुम्हारे जीवित शरीर की बलि चाहता है वह उसे तुम दो, मैं समस्त वज्जियों के जनपद की ओर से तुम से भीख मांगता हूं।"

अम्बपाली उठ खडी हुई। उसने कहा—"उठिए, भन्ते गणपति" वह सीधी तनकर खडी हो गई। उसके नथुने फूल उठे, हाथो की मुट्ठिया बध गई। उसने कहा, "जाइए आप, वैशाली के जनपद को सन्देश दे दीजिये कि मैंने उस धिक्कृत कानून को अगीकार कर लिया है। आजसे अम्बपाली कुलवधू की सब मर्यादा, सब अधिकार त्याग कर वैशाली की नगर वधू बनना स्वीकार करती है।"

वृद्ध गणपति ने कापते हुए दोनो हाथ ऊचे उठा कर कहा—'आयुष्मती होओ, देवी अम्बपाली, तुम धन्य हो, तुमने वैशाली के जनपद को बचा लिया।"

उनकी आँखों मे झर-झर आसू गिरने लगे। और वे नीची गर्दन करके धीरे २ वहा से चले गये।

अम्बपाली कुछ देर तक टकटकी लगाऐ इस आहत वृद्ध राजपुरुष को देखती रही। फिर वह उसी स्फटिक शिला पीठ पर, उसी धवल चन्द्र की ज्योत्सना मे, उसी स्तब्ध शीतल रात मे, दोनो हाथो से मुह ढाककर औधे मूंह गिर कर फूट २ कर रोने लगी।

नील पद्म सरोवर की आन्दोलित तरगो म कम्पित चन्द्रबिम्ब ही इस दलित द्रवित हृदय के करुण रुदन का एक मात्र साक्षी था।

: ४ :

मङ्गलपुष्करिणी अभिषेक

वैशाली की मङ्गलपुष्करिणी का अभिषेक वैशाली जनपद का सब से बडा सम्मान था। इस पुष्करिणी मे स्नान करने का जीवन मे एक बार सिर्फ उसी लिच्छवी को अधिकार मिलता था जो गण संथा का सदस्य निर्वाचित किया जाता था। उस समय बडा उत्सव समारोह होता था। और उस दिन 'गण नक्षत्र' मनाया जाता था। यह पुष्करिणी उस समय बनाई गई थी जब वैशाली प्रथम बार बसाई गई थी। उसमे लिच्छवियो के उन पूर्वजो के शरीर की पूत गन्ध होने की कल्पना की गई थी, जिन्हे आर्यों ने व्रात्य करक बहिष्कृत कर दिया था और जिन्होने अपने भुजबल से अष्टकुल की स्थापना की थी। इस समय लिच्छवियों के अष्टकुल के ७७७ सदस्य ही ऐसे थे जिन्हे इस पुष्करिणी मे स्नान करने की प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी। अन्य लिच्छवि भी इस मे स्नान नही कर सकते थ। औरा की तो बात ही क्या है। बहुत बार आर्य सम्राटो और उनकी राजमहिषियो ने इस पुष्करिणी मे स्नान करने के लिये वैशाली पर चढाई की परन्तु हरबार उन्हे लिच्छवि तरुणो के बाणो से विद्ध होकर भागना पडा। इस पुष्करिणी पर सदैव नगी तल्वारो का पहरा रहता था, और उस पर ताम्बे का एक जाल बिछा हुआ था। कोई पक्षी भी उसमे चोच नही डुबो सकता था। यदि कोई चोरी छिपे इस पुष्करिणी मे स्नान करने की चेष्टा करता तो उसे निश्चय प्राण दण्ड मिलता था।

यह पुष्करिणी छोटी सी किन्तु अति स्वच्छ और मनोरम थी। उसके चारो ओर श्वेत सगमरमर के घाट और सीढिया बनी थी।

स्थान २ पर छत्र और अलिन्द बने हुए थे, जिन पर खुदाई और पच्चिकारी का अति सुन्दर काम किया हुआ था। पुष्करिणी का जल इतना निर्मल था कि उसके तल की प्रत्येक वस्तु स्पष्ट दीख पडती थी। उसमे अनेक रगो के बडे २ कमल खिले थे। समय २ पर उसका जल बदल कर तल साफ कर दिया जाता था। पुष्करिणी मे सन्ध्या समय बहुत सी रग बिरगी मछलिया क्रीडा किया करती थी। पुष्करिणी के चारो ओर जो कमल वन था उसकी शोभा अनोखी मोहनी शक्ति रखती थी।

अम्बपाली लिच्छवि थी और वैशाली की जनपद कल्याणी का पद उसे मिला था, उसे विशेषाधिकार के तौर पर वैशाली के जनपद ने यह सम्मान दिया था। तीन दिन से इस अभिषेक महोत्सव की धूम वैशाली मे मची थी। उस दिन अम्बपाली शोभायात्रा बना कर पहली बार सार्वजनिक रूप म वैशाली के नागरिको के सामने अनवगुण्ठनवती होकर निकलने वाली थी। उसे देखने वैशाली का जनपद अधीर हो गया था। नागरिको ने विविध रग की पताकाओ से अपने घर, वीथी, हाट और राजमार्ग सजाए थे। मगल पुष्करिणी पर फूलो का अनोखा शृगार किया गया था। कदाचित उस दिन वैशाली जनपद की सम्पूर्ण कुसुम राशि वही आ जुटी थी। तीन दिन से गणनक्षत्र घोषित किया गया था। और सब कोई आनन्द उत्सव मना रहे थे।

पहर दिन चढे, उस मनोरम वसन्त के प्रभात मे, नीलपद्म प्रासाद से देवी अम्बपाली की शोभायात्रा चली। उसका विमान विविध वर्ण के फूलो मे बनाया गया था। उसपर देवी अम्बपाली केवल अन्तरवासक और उत्तरीय पहिने लज्जावनत मुख बैठी निराभरण होने के कारण तारकाहीन ऊषा की शुषमा धारण कर रही थी। वह फूलो के ढेर मे एक सजीव पुष्प गुच्छ सी प्रतीत हो रही थी। लज्जा और संकोच से जैसे उसकी आखे झुकी जा रही थी। उसका

मुंह रह २ कर लाल हो रहा था। उसकी सुडौल शुभ्रग्रीवा, उज्ज्वल उन्नतवक्ष और लहराते हुए चिक्कण कुन्तल, उन में गुथे हुए ताजे विविध रंग के कुसुम, इन सब की शोभा अपार थी।

शोभायात्रा में आगे वाद्य बज रहे थे। उसके पीछे हाथियों पर ध्वज पताका और निशान थे। उसके पीछे उज्ज्वल परिधान पहने दासियाँ स्नान और पूजन की सामग्री लिए चल रही थीं। इनके पीछे अम्बपाली का कुसुम विमान था। उसे घेरकर वैशाली के सामन्त पुत्र और सेट्ठिपुत्र अम्बपाली पर पुष्प गन्ध की वर्षा करते चल रहे थे। नगर जन अपने २ मकानों से पुष्प गन्ध फेंक रहे थे। चारों ओर रंगीन पताकाएं ही पताकाएं चमक रही थीं। सब के पीछे नागरिक-जन चल रहे थे।

पुष्करिणी के अन्तर द्वार के इधर ही सब लोग रोक दिये गये। केवल सेट्ठिपुत्र और सामन्त पुत्र ही भीतर कमलवन में आ सके। इसके बाद घाट पर उन्हें भी रोक दिया गया। केवल गण सदस्य ही वहां जा पाए। शोभायात्रा रुक गई। लोग जहां तहां वृक्षों की छाया में बैठ कर गप्पें हांकने लगे। पुष्करिणी के घाट पर खड्गधारी भट पंक्तियां बांध कर खड़े थे। उन सब की पीठ पुष्करिणी की ओर थी। गणपति ने हाथ का सहारा देकर अम्बपाली को विमान से उतारा, और धीरे २ उसे पुष्करिणी की सीढ़ियों पर से उतार कर जल के निकट तक ले गये।

फिर उन्होंने पुष्करिणी का पवित्र जल हाथ में लेकर अम्बपाली की अंजली में दिया और कहा—कहो देवी अम्बपाली, "मैं वज्जी संघ के आधीन हूं।"

अम्बापाली ने ऐसा ही कहा। तब गणपति उसे जल में और एक सीढ़ी उतार कर घुटनों तक पानी में खड़े होकर बोले—कहो अम्बपाली, मैं वैशाली के जनपद की हूं।'

अम्बपाली ने ऐसा ही कहा।

गणपति ने अब कमर तक जल मे घुसकर कहा– कहो, देवी अम्बपाली, क्या तुम लिच्छवियो की सात मर्यादाओ का पालन करोगी ?"

अम्बपाली ने मृदु कण्ठ से स्वीकृती दी।

तब गणपति ने उच्च स्वर से पुकार कहा—"भन्ते, आयुष्मान सब कोई सुने। मै अष्टकुल के वज्जीतन्त्र की ओर से घोषित करता हू कि देवी अम्बपाली वैशाली की जनपद कल्याणी है। वह आज वैशाली की नगरवधु घोषित की गई।"

उन्होने सुगन्धित तेल से अम्बपाली के सिर पर अभिषेक किया। और फिर उसका मस्तक चूमा। इसके बाद वे जल से बाहर निकल आए। गण सदस्यो ने गन्धपुष्प अम्बपाली के पर फेंके। सामन्तपुत्र और सेट्ठिपुत्र हर्षनाद करने लगे। अम्बपाली ने तीन डुबकियाँ लगाईं महीन अन्तर वासक उसके स्वर्ण गात्र से चिपक गया, उसका अंगसौष्ठव स्पष्ट दीख पडने लगा। केश राशि से मोतियो की बूद के समान जल बिन्दु टपकने लगे। पुष्करिणी से अम्बपाली बाहर निकल आई।

विविध वाद्य बजने लगे। दासियो ने उसे नए अन्तर वासक और उत्तरीय पहिनाए। केशों को झाडकर हवा मे फैला दिया। भाति भाति के गन्ध माल्य पहिनाए गये तरुणो ने अम्बपाली पर गन्ध पुष्प और अगराग की वर्षा करदी। फिर अम्बपाली को पारस्य देश के सुन्दर बिछावन पर बैठाया गया।

अब गणभोज प्रारम्भ हुआ। गण के प्रत्येक सदस्य ने अम्बपाली की पत्तल से कुछ खाया। नीलगाय, सूअर, पक्षियो के मास निर्धूम आग पर भून २ कर अम्बपाली के सन्मुख धर किये जा रहे थे। मेरेय के घट भर २ कर उसके चारो ओर एकत्र हो रहे थे। अम्बपाली की दासिया उसमें से पात्र भर भर कर तरुणों को और गण सदस्यो को

दे रही थी। वे लोग हंस हंस कर अम्बपाली की कल्याण कामना कर कर के स्वच्छन्दता से सुरा पी रहे थे।

अन्त में अम्बपाली रथ में सवार होकर सप्तभूमि प्रासाद की ओर चली। साथ ही सम्पूर्ण गण सदस्य, सामन्तपुत्र और श्रेष्ठिपुत्र एवं नागरिक थे। सप्तभूमि प्रासाद की सिंह पौर पर शोभायात्रा के पहुंचते ही प्रासाद की प्राचीर पर से सैकड़ों तूर्य बजाऐ गए। प्रासाद पाल ने उपस्थित होकर अश्व और खड्ग निवेदन किया। अम्बपाली ने रथ त्याग खड्ग छुआ और अश्व पर सवार होकर प्रासाद में चली गई। वैशाली का जनपद विविध वार्तालाप करता अपने २ घर लौटा।

: ५ :

पहिला अतिथि

अभी सूर्योदय नही हुआ था। पूर्वाकाश की पीत प्रभा पर शुक्र नक्षत्र हीरे की भाँति दिप रहा था। सप्तभूमि प्रासाद के प्रहरीगण अलसाई उनीदी आखो को लिए विश्राम की तैयारी म थ। एकाध पक्षी जग गया था। एक तरुण धूलधूसरित मलिन वेश अर्द्ध विक्षिप्त अवस्था मे धीरे २ प्रासाद के बाहरी तोरण पर आ खडा हुआ। प्रहरी ने पूछा—"कौन है ?"

"मै देवी अम्बपाली से मिलना चाहता हू।"

"अभी देवी अम्बपाली शयनकक्ष मे है, यह समय उनसे मिलने का नहीं है, अभी तुम जाओ।"

"मै नही जा सकता, देवी के जागने तक मै प्रतीक्षा करूगा।" यह कह वह प्रहरी की अनुमति लिये बिना ही वही तोरण पर बैठ गया।

प्रहरी ने क्रुद्ध होकर कहा—"चले जाओ तरुण, यहा बैठने की आज्ञा नहीं है। देवी से सन्ध्या काल मे मिलना होता है। इस समय नही।"

"कुछ हर्ज नहीं, मै सन्ध्या काल तक प्रतीक्षा करूगा।"

"नही, नही, भाई, चले जाओ तुम, यहा विक्षिप्तो के प्रवेश का निषेध है।"

"मुझे अनुमति मिल जायगी मित्र, मै वैसा विक्षिप्त नही हू।"

प्रहरी क्रुद्ध होकर बलपूर्वक उसे हटाने लगा, तो तरुण ने खड्ग खीच लिया। प्रहरी ने सहायता के लिए सैनिको को पुकारा। इतने ही में ऊपर से किसी ने कहा—"इन्हें आने दो प्रहरी।"

प्रहरी और आगन्तुक दोनो ने देखा, स्वय देवी अम्बपाली अलिन्द

पर खड़ी आदेश दे रही है। प्रहरी ने देवी का अभिवादन किया और पा हट गया। तरुण तीनो प्रागण पार करके ऊपर शयनकक्ष में पहुंच गया।

अम्बपाली ने पूछा—"रात भर सोए नही हर्षदेव ?"

"तुम भी तो कदाचित जगी ही रही, देवी अम्बपाली !"

"मेरी बात छोडो। परन्तु तुम क्या रात भर भटकते रहे हो ?"

"कही चैन नही मिला, यह हृदय जल रहा है। यह ज्वाला सही नही जाती अब"

"एक तुम्हारा ही हृदय जल रहा है हर्षदेव ! परन्तु यदि यह सत्य है तो इसी ज्वाला से वैशाली के जनपद को फूक दो। यह भस्म हो जाय। तुम बेचारे यदि अकेले जलकर नष्ट हो जाओगे तो उस से क्या लाभ होगा ?"

"परन्तु अम्बपाली, तुम क्या एक बारगी ही ऐसी निष्ठुर हो जाओगी ? क्या इस आवास मे तुम मुझे आने की अनुमति नही दोगी ? मै तुम्हारे बिना रहूगा कैसे ? जीऊगा कैसे ?"

"आओगे तुम इस आवास म ? यदि तुम म इतना साहस हो तो आओ और देखो कि तुम्हारी वाग्दत्ता पत्नी से वैशाली के तरुण सेट्ठिपुत्र और सामन्त पुत्र किस प्रकार प्रेम प्रदर्शन करते है। और वह किस कौशल स हृदय के एक २ खण्ड का क्रय-विक्रय करती है। देखोगे तुम ? देख सकोगे ? तुम्हे मनाई किस बात की है। यह तो सार्वजनिक आवास है। यहा सभी आवेगे, तुम भी आना। परन्तु इस प्रकार दीन हीन पागल की भाति नही। दीन हीन पुरुष का इस आवास मे प्रवेश निषिद्ध है, तुम्हे यह न भूल जाना चाहिये कि यह वैशाली की नगर वधू देवी अम्बपाली का आवास है। जैसे और सब आते है, उसी भाति आओ तुम, सज धज कर, हीरे मोती स्वर्ण बखेरते हुए। होठो पर हास्य और पलको पर विलास का नृत्य करते हुए। सबको देवी अम्बपाली से प्रेमाभिनय करते देखो। तुम भी वैसा ही

प्रेमाभिनय करो, हसो, बोलो, शुल्क दो, और फिर छूछे हाथ, शून्यहृदय अपने घर चले जाओ। फिर आओ और फिर जाओ। जब तक पद मर्यादा शेष रहे, जब तक हाथ मे स्वर्ण रत्न भरपूर हो, आते रहो, जाते रहो, लुटाते जाओ, लुटते जाओ, यह नगरवधू का घर है, यह नगरवधू का जीवन है, यह मत भूलो।"

अम्बपाली कहती ही चली गई। उसका चेहरा हिम के समान श्वेत हो रहा था। हर्षदेव पागल की भाति मुह फाडकर देखते रह गए। उनसे कुछ भी कहते न बन पडा। कुछ क्षण स्तब्ध रहकर अम्बपाली ने कहा—"क्यो, कर सकोगे ऐसा ?"

"नही, नही, मै नही कर सकूगा।

"तब जाओ तुम। इधर भूलकर भी पैर न धरना। इस नगरवधू के आवास में कभी आने का साहस न करना। तुम्हारी वाग्दत्ता स्त्री अम्बपाली मर गई। यह देवी अम्बपाली का सार्वजनिक आवास है। और यह वैशाली की नगर वधू है। यदि तुमम कुछ मनुष्यत्व है तो तुम जिस ज्वाला से मर रहे हो उसी म वैशाली के जनपद को जला दो। भस्म कर दो।"

हर्षदेव पागल की भाति चीत्कार कर उठा। उसने कहा—"ऐसा ही होगा। देवी अम्बपाली, मै इसे भस्म करूगा। वैशाली के इस जनपद की राख तुम देखोगी, सप्तभूमि प्रासाद की इन वैभवपूर्ण अट्टालिकाओं में अष्टकुल के वज्जी सघ की चिता धधकेगी। और वह गणतत्र का धिक्कृत कानून उसमें इस आवास के वैभव के साथ ही भस्म होगा।"

"तब जाओ, तुम अभी चले जाओ। मै तुम्हारी जलाई हुई उस ज्वाला को उत्सुक नेत्रो से देखने की प्रतीक्षा करूगी।"

हर्षदेव फिर ठहरे नही। उसी भाति उन्मत्त की भाति वे आवास से चले गए।"

अम्बपाली पत्थर की प्रतिमा की भाति क्षण २ म उदय होते हुए अपने नगरवध जीवन के प्रथम प्रभात का देखती खडी रही।

: ६ :

उरुवेलातीर्थ

उन दिनो उरूवेला-तीर्थ मे निरजना नदी के किनारे बहुत से तपस्वी तप किया करते थे। नदी किनारे दूर तक उनकी कुटियो के छप्पर दीख पडते थे। जिनमे अग्नि होत्र का धूम सदैव उठा करता था। वे तपस्वी विविध सम्प्रदायो को मानते और अपने शिष्यो सहित जत्थे बना कर रहते थे। उनमे से अनेक नगर मे भिक्षा मागते, अपने आश्रमो मे पशु पालते और श्रद्धालु जनो से प्रचुर दान पाकर खूब सम्पन्न हालत मे रहते थे। बहुत से बडे २ कठोर व्रत करते, कुछ कृच्छ्र चन्द्रायण करते, अर्थात चन्द्रमा के घटने बढने के साथ ही एक २ ग्रास भोजन घटाते बढाते थे। इस प्रकार वे अमावस को उपवास रखकर प्रतिपदा को एक, द्वितीया को दो, इसी प्रकार पूर्णिमा तक पन्द्रह ग्रास भोजन कर फिर क्रमशः कम करते थे। बहुत से केवल दूध ही आहार करते, कितने ही एक पैर से खडे होकर वृक्षो मे लटक कर, आकण्ठ जल मे खडे होकर, शूल शैय्याओ पर पडे रह कर, विविध भाति से शरीर को कष्ट देते। बहुतसे शीत मे, खुली हवा मे, नगे पडे रहते और ग्रीष्म मे पंचाग्नि तापते, बहुत से महीनों समाधिस्थ रहते। कितने ही नगे दिगम्बर रहते, कितने ही जटिल और कितने ही मुण्डित। नदी तट से तनिक हटकर जो पर्वत शृङ्ग है उसमे बहुत सी गुफाए थी। कुछ तपस्वी उन गुफाओ मे एकान्त बन्द रह कर सप्ताहो और महीनो की समाधि लगाया करते थे। पर्वत कन्दराओ मे बहुत से तपस्वी निरीह दिगम्बर वेश मे पडे रहते। वे भूख, प्यास, शीत, ऊष्म सब ईतियो और भीतियो से मुक्त थे। वे देह का सब मोह त्याग चुके थे। बहुत से तपस्वी रातभर हठपूर्वक जागरण करते थे। बहुत से इनमे सर्व त्यागी थे। बहुत से अवधूत नंग ध ग

निर्भय विचरण करते, बहुत से कापालिक मुर्दो की खोपडी को मुण्ड माल गले मे धारण कर पशु की ताजा रक्तचूती खाल अङ्ग म लपेटे तन्त्र वाक्यो का उच्चारण करते घूमते, श्मशान मे रात्रि वास करते, विविध कुत्सित और वीभत्स क्रियाए और चेष्टाएं करते थे। वे यह दावा करते थे कि उन्होने इन्द्रियो की वासनाओ को जीत लिया है और वे सिद्ध पुरुष है। बहुत तान्त्रिक मारण मोहन उच्चारण के अभिचार करते थे। उनसे लोग बहुत भय खाते थे। इन सब सन्तों मे तीन जटिल बहुत प्रसिद्ध थे। वे जटाधारी होने से जटिल कहाते थे। उनके शिष्य भी मुण्डन नही करते थे। इन मे एक उरुवेल काश्यप थे जिनके आधीन ५०० जटिल ब्रह्मचारी थे। दूसरे नदी काश्यप तीन सौ जटिलो के, और तीसरे गया काश्यप दो सौ जटिलो के स्वामी थे। ये तीनो महा काश्यप के नाम से प्रसिद्ध थे। इनके शास्त्र ज्ञान सिद्धि तप और निष्ठा की बडी धूम थी। दूर २ के राजा और श्रीमन्त सेठी गण विविध स्वर्ण रत्न अन्न भेट करके उनका प्रासाद ग्रहण करते थे। लोग उन्हे महाशक्तिसम्पन्न, महा चमत्कारी सिद्ध समझते थे। और ये तीनो भी अपने को अर्हन्त कहते थे। ये महाकाश्यप बहुधा बडे २ यज्ञ किया करते थे। जिनमे वत्स मगध, कोशल और अङ्ग निवासी श्रद्धा पूर्वक अन्न घृत, स्वर्ण, रत्न, कोशल और मधु आदि लेकर आते थे। उस समय उरुवेला मे पक्ष-पक्ष पर्यन्त बडा भारी मेला लगा रहता था।

आज उसी उरुवेला तीर्थ को बद्ध गया के नाम से लोग जानते है, और वह निरञ्जना नदी फल्गु के नाम से पुकारी जाती है। अब वहा भारत भर के हिन्दू श्रद्धा पूर्वक अपने पितरो को पिण्ड दान देते और बडे २ दान करते है। यही पर लोक विश्रुत बोधि वृक्ष और बुद्ध की अप्रतिम मूर्ति है। आज भी वहा के चारो ओर के वातावरण को देख कर कहा जा सकता है कि कभी अत्यन्त प्राचीन काल में यह स्थान भारी तीर्थ रहा होगा।

: ७ :

शाक्यपुत्र गौतम

उसी उरुवेला तीर्थ मे उसी निरजना नदी के किनारे एक विशाल वट वृक्ष के नीचे एक तरुण तपस्वी समाधिस्थ बैठे थे। अनाहार और कष्ट सहने से उनका शरीर कृश हो गया था, फिरभी उनकी कान्ति तप्त स्वर्ण के समान थी। उनके अग पर कोई वस्त्र न था, केवल एक कौपीन कमर म बधी थी। उनकी देह, नेत्र और श्वास तक अचल थी। ये कपिलवस्तु के राजकुमार शाक्यपुत्र गौतम थे, जिन्होने अक्षय आनन्द की खोज मे लोकोत्तर सुख साधन त्याग दिय थे।

तरुण तपस्वी ने नेत्र खोले, सामने पीपल के वृक्ष के नीचे कई बालक बकरी चरा रहे थे। उनकी काली लाल सफेद बकरिया हरे २ मैदानो मे उछल कूद कर रही थी। गौतम ने स्थिर दृष्टि से इन सबको देखा। बडा मनोहर प्रभात था, वैसाखी पूर्णिमा के दूसरे दिन का उदय था। स्वच्छाकाश मे प्रभात सूर्य की सुनहरी किरणे हरे भरे खेतो पर शोभा विस्तार कर रही थी, गौतम को विश्व आशा और आनन्द से ओतप्रोत ज्ञात हुआ। उन्होने अनुभव किया कि उनके हृदय मे एक प्रकाश की किरण उदय हुई है और वह सारे विश्व को ओतप्रोत कर रही है। विश्व उससे उज्ज्वल, आलोकित और पूत हो रहा है, उस आलोक में भय व्याधि नही है, अमरत्व है, अमृत है, मुक्ति है, आनन्द है। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि मै बुद्ध हू। तथागत हू। अर्हत ह।

उसी समय उत्कल देश से दो बंजारे उधर आ निकले। वे इस तरुण कृश तपस्वी को देखकर कहने लगे—"भन्ते, यह मट्ठा और मधुगोलक है, हम इससे आपका सम्मान करना चाहते है, इन्हें ग्रहण

कीजिए।" गौतम ने स्निग्ध दृष्टि उन पर डाली और कहा--"मैं तथागत हू, बुद्ध हू, मैं बिना पात्र के भिक्षा ग्रहण नही कर सकता।" तब उन्होने एक पत्थर के पात्र मे उन्हे मट्ठा और मधुगोलक दिये। जब गौतम उन्हे खा चुके तो बंजारो ने कहा--"भन्ते, मेरा नाम भिल्लक और इसका नाम तपस्सू है। आज से हम दोनो आपकी तथा धर्म की शरण है।"

ससार मे वही दोनो दो वचनो से प्रथम उपासक हुए।

उनके जाने पर गौतम बहुत देर तक उस वट वृक्ष को और ममत्व से देखते रहे। फिर उसी आसन पर बैठ कर उन्होने प्रतीत्य, तथा समुत्पाद का अनुलोम और प्रतिलोम मनन किया। अविद्या के कारण संस्कार होता है, संस्कार के कारण विज्ञान होता है, विज्ञान के कारण नाम रूप और नाम रूप के कारण छै आयतन होते है। छै आयतनो के कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपादान, उपादान के कारण भव, भव के कारण जाति, जाति के कारण जरा, मरण, शोक, दुःख, चित्त विकार और खेद उत्पन्न होता है। इस प्रकार ससार की उत्पत्ति है। अविद्या के विनाश से सस्कार का, संस्कार नाश से विज्ञान का, विज्ञान नाश से नाम रूप का, और नाम रूप के नाश से ६ आयतनो का नाश होता है। छै आयतनो के नाश से स्पर्श का नाश होता है। स्पर्श के नाश से वेदना का नाश होता है। वेदना के नाश से तृष्णा का नाश होता है। तृष्णा नाश से उपादान का नाश होता है। उपादान नाश से भव का नाश होता है। भव नाश से जाति का नाश होता है। जाति नाश से जरा, मरण, शोक, दुःख और चित्त विकार नाश होता है। इस प्रकार दुःख पुञ्ज का नाश होता है, यही सत्य ज्ञान प्राप्त कर गौतम ने बुद्धत्व पद ग्रहण किया। वे समाधि से उठकर आनन्दित हो कहने लगे--"मैंने गम्भीर, दुर्दर्शन, दुर्ज्ञेय, शान्त, उत्तम, तर्क से अप्राप्य धर्मतत्त्व को जान लिया।" "उनके अन्तस्तल में एक आवाज उठी--"लोक नाश हो जायगा रे, यदि तथागत का सम्बुद्ध

चित्त धर्म प्रवर्तन न करेगा। उन्होंने अपनी ही शुद्ध बुद्ध मुक्त आत्मा से कहा—"हे शोकरहित! शोक निमग्न और जन्म जरा से पीडित जनता की ओर देख, उठ। हे सग्रामजित! हे सार्थवाह! हे अनृण ऋण! जग में विचर, धर्म चक्र प्रवर्तन कर।"

उन्होंने प्रबुद्ध चक्षु से लोक को देखा। जैसे सरोवर मे बहुत से कमल जल के भीतर ही डूबकर पोषित हो रहे है, बहुत से जल के बराबर, बहुत से उत्पल पद्म पुण्डरीक जल मे बहुत ऊपर खडे है, इसी भाति अत्पमल, तीक्ष्ण बुद्धि, सुस्वभाव सुबोध्य प्राणी है जो परलोक और बुराई से भय खाते है।

बुद्ध ने निश्चय किया कि मै विश्व प्राणियो को अमृत का दान दूगा। और वे तब उरुबेला से काशी की ओर चल खडे हुए। मार्ग में उन्हें उपक आजीवक मिला। उसने उस तेजस्वी, शान्त, तृप्त गौतम को देखकर कहा—

"आयुष्मान तेरी इन्द्रियां प्रसन्न है, तेरी कान्ति निर्मल है, तू किसे गुरू मान कर प्रव्रजित हुआ है?"

गौतम ने कहा—

"मै सर्वज्जय और सर्वज्ञ हूं निर्लेप हू, सर्व त्यागी हू, तृष्णा के क्षय से मुक्त हू। मेरा गुरू नही है। मै अर्हत हू, मै सम्यक्, सम्बुद्ध, शाति तथा निर्वाण को प्राप्त हू। मै धर्म चक्र प्रवर्तन के लिये काशियो के नगर में जा रहा हू।"

उपक ने कहा—तब तो तू आयुष्मान्, जिन हो सकता है?

"मेरे चित्तमल नष्ट हो गए है, मै जिन हू।"

"सम्भव है आयुष्मान्"—यह कहकर वह दिगम्बर उपक चला गया।

गौतम बाराणसी मे ऋषि पतन मृगदाव में आ पहुचे। पञ्चवर्गीय साधुओं ने उन्हे देखकर पहचान लिया। गौतम उनके साथ कठिन तपश्चरण कर चुके थे। एकने कहा—"अरे, यह साधना-भ्रष्ट जोरू

बटोरू श्रमण गौतम आ रहा है, इसे अभिवादन नही करना चाहिए, प्रत्युत्थान भी नही देना चाहिए, न आगे बढकर इसका पात्र चीवर लेना चाहिए, केवल आसन रख देना चाहिए, बैठना हो तो बैठे।"

परन्तु गौतम के निकट आने पर एकने उन्हे आसन दिया, एक ने उठकर पात्र चीवर लिये, एक ने पादोदक, पादपीठ, पादकठलिका पास ला रखी। गौतम ने पैर धोए, आसन पर बैठे, बैठकर कहा—"भिक्षुओ, मैने जिस अमृत को पाया है, उसे मै तुम्हें प्रदान करता हू।"

पञ्चवर्गीय साधुओ ने कहा—"आवुस गौतम हम जानते है, तुम उस साधना मे, उस धारणा मे, उस दुष्कर तपस्या मे भी आर्यों के ज्ञान दर्शन की पराकाष्ठा को नही प्राप्त हो सके, और अब साधना भ्रष्ट हो ।"

गौतम ने कहा—"भिक्षुओ, तथागत को आवुस कहकर मत पुकारो। तथागत अर्हत् सम्य सम्बुद्ध है। इधर कान दो, मै तुम्हे अमृत प्रदान करता हूं, उस पर आचरण करके इसी जन्म मे अर्हत पद प्राप्त करोगे।"

परन्तु पञ्च भिक्षुओ ने फिर भी उन्हे आवुस कहकर पुकारा। इसपर तथागत ने कहा—'भिक्षुओ, क्या मैने पहिले भी कभी ऐसा कहा था?"

"नही, भन्ते।"

"तब इधर कान दो भिक्षुओ। साधु को दो अतिया नही सेवन करनी चाहिए। एक वह जो हीन, ग्राम्य, अनार्यसेवित अनर्थयुक्त और काम वासनाओ से लिप्त है, और दूसरी जो दुःखमय, अनार्यसेवित है। भिक्षुओ, इन दोनो अतियो से बचकर तथागत के मध्यम मार्ग पर चलो। जो निर्वाण के लिये है। वह मध्यम मार्ग आर्य अष्टाङ्गिक है। यथा ठीक दृष्टि; ठीक सकल्प, ठीक वचन, ठीक कर्म, ठीक जीविका, ठीक प्रयत्न ठीक स्मृति, ठीक समाधि। यही मध्यम मार्ग है भिक्षुओ।

"दुःख सत्य है। जन्म दुःख है, जरा दुःख है, व्याधि दुःख है, मरण दुःख है, अप्रिय संयोग दुःख है, प्रिय वियोग दुःख है, इच्छित वस्तु का न मिलना दुःख है।

"दुःख के कारण भी सत्य है। यह जो तृष्णा है फिर जन्मने की, सुख प्राप्ति की, रागसहित प्रसन्न होने की, ये तीनों काम-भव-विभव तृष्णा दुःख है।

"और भिक्षुओ, यह दुःख निरोध भी सत्य है। जिसमें तृष्णा का सर्वथा विलय होकर त्याग और मुक्ति होती है। फिर दुःख-निरोध गामिनी प्रतिपद् दुःख निरोध की ओर जाने वाला मार्ग भी सत्य है।

"भिक्षुओ! यही चार सत्य है। यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग है। इन चार सत्यों के तेहरा—इस प्रकार १२ प्रकार का शुद्ध ज्ञान दर्शन करके ही मैं बुद्ध हुआ हूं। मेरी मुक्ति अचल है, यह अंतिम जन्म है, फिर आवागमन नहीं है।"

तथागत के इस व्याख्यान को सुनकर पञ्चवर्गीय भिक्षुओं में से कौण्डिन्य ने कहा—"तब भन्ते, जो कुछ उत्पन्न होने वाला है वह सब नाशमान् है?"

"सत्य है, सत्य है, आयुष्मान् कौण्डिन्य। तुम्हें विमल विरज धर्म चक्षु उत्पन्न हुआ। जो कुछ उत्पन्न होने वाला है वह नाशवान् है, ओहो, कौण्डिन्य ने जान लिया, कौण्डिन्य ने जान लिया। आयुष्मान कौण्डिन्य, आज से तुम 'कौण्डिन्य आज्ञात' के नाम से प्रसिद्ध होओ।"

तब कौण्डिन्य ने प्रणिपात करके कहा—"भगवन्, मुझे प्रव्रज्या मिले। उप सम्पदा मिले।"

बुद्ध ने कहा—'तो कौण्डिन्य, तुम सत्य ही धर्म का साक्षात्कार करके संशयरहित, विवादरहित, बुद्ध धर्म में विशारद और स्वतन्त्र हो।"

कौण्डिन्य ने बद्धाञ्जलि कहा—"ऐसा ही है, भन्ते!"

"तब आओ भिक्षु, यह धर्म सुन्दर व्याख्यात है, दुःखनाश के लिये ब्रह्मचर्य का पालन करो। यही तुम्हारी उप सम्पदा हुई।"

तब भिक्षु वप्प और भद्दिय ने भी कहा—"भगवन्, जो कुछ उत्पन्न होने वाला है वह सब नाशमान् है। भन्ते, हमें प्रव्रज्या मिलनी चाहिए, उपसम्पदा मिलनी चाहिए।"

"साधु भिक्षुओं, साधु। तुम्हें विमल विरज धर्म नेत्र मिला। आओ धर्म सुव्याख्यात है, भलीभांति दुःख क्षय के लिये ब्रह्मचर्य का पालन करो।"

आयुष्मान् महानाभ और अश्वजित ने भी प्रणिपात कर निवेदन किया—"भगवन्, हमने भी सत्य को जान लिया, हमें उपसम्पदा मिले। प्रव्रज्या मिले। बुद्ध ने उन्हें ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश देते हुए कहा—'भिक्षुओ, सब भौतिक पदार्थ अन-आत्मा हैं। यदि इनकी आत्मा होती तो ये पीडादायक न होते। वेदना भी अन-आत्मा है। अभौतिक पदार्थ विज्ञान भी अन-आत्मा है क्योंकि वह पीडादायक है। तब, क्या मानते हो भिक्षुओं! रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य भन्ते।"

"जो अनित्य है, वह दुःख है या सुख?"

"दुःख, भन्ते।"

"जो अनित्य दुःख, और विकार को प्राप्त होने वाला है क्या उसके लिये यह समझना उचित है कि यह पदार्थ मेरा है, यह मैं हूं, यह मेरा आत्मा है?"

"नहीं, भन्ते।"

"तब क्या मानते हो भिक्षुओ। जो कुछ भी भूत-भविष्य-वर्तमान सम्बन्धी, भीतरी या बाहरी, स्थूल या सूक्ष्म, अच्छा या बुरा, दूर या नजदीक का रूप है, वह-न मेरा है, न मैं हूं, न मेरा आत्मा है—ऐसे समझना चाहिए।"

"सत्य है, भन्ते।"

"और इसी प्रकार 'वेदना, सज्ञा, सस्कार, विज्ञान भी, भिक्षुओ!"

"सत्य है भन्ते, हमने इस सत्य को समझ लिया।"

"तो भिक्षुओ! विद्वान् आर्य को रूप से, वेदना से, संज्ञा से और विज्ञान से उदास रहना चाहिए। उदास रहने से इन पर विराग होगा, विराग से मुक्ति। मुक्ति से आवागमन छूट जायगा भिक्षुओ। आवागमन नष्ट हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हो गया। करना था सो कर लिया। अब कुछ करना शेष नही रहा।"

भाषण के अन्त मे पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने तथागत को प्रणिपात किया और कहा—"भगवन्, हमारा चित्त मलो से मुक्त हो गया है।"

"तब भिक्षुओ, अब इस लोक मे कुल छै अर्हत है। एक मै और पाच तुम।" इतना कहकर तथागत, वृक्ष के सहारे पीठ टेककर अन्तस्थ हो गये। भिक्षुगण प्रणिपात कर भिक्षाटन को गये।

: ८ :

कुलपुत्र यश

कुलपुत्र यश वाराणसी के नगरसेट्ठि का एकमात्र पुत्र था । वह सुन्दर युवक भावुक और कोमल हृदय था । उसके तीन प्रासाद थे । एक हेमन्त का, दूसरा ग्रीष्म का, तीसरा वर्षा का । जिस समय की बात हम कह रहे हैं वह वर्षा-कालिक प्रासाद में अप्सरोपो में सेवित सुख लूट रहा था । श्रवण गौतम मृगदाव में आए हैं यह उसने सुना । यह श्रवण गौतम राज सम्पदा और शाक्यो की प्रख्यात वंश परम्परा त्याग, सुन्दरी पत्नी, नवजात पुत्र, सम्पन्न वैभव, वाहन और अनुचरो का आश्रय त्याग, वाराणसी में पाव पैदल, हाथ में भिक्षा पात्र लिए, सद् गृहस्थो के द्वार पर नीची दृष्टि किए मौन भाव से भिक्षा माँगता फिरता है । उसने काशी के विश्रुत विद्वान् पञ्चजनो को उपसम्पदा दी है । यह गौतम किस सम्पदा से आप्यायित है ? यह श्रमण किस अमृत से तृप्त है ? यह श्रमण किस निधि से ओत-प्रोत है ? उस दिन यश बडी देर तक बैठा यही सोचता रहा ।

अधेरी रात थी । रिमझिम वर्षा हो रही थी । ठण्डी हवा बह रही थी, यश का वर्षा प्रासाद गन्धदीपो के मन्द आलोक से आलोकित और गन्धद्रव्यो से सुरभित हो रहा था । रात गहन होती गई, और यश और भी गहन मुद्रा से उसी श्रमण गौतम के विषय में सोचने लगा । प्रासाद में मृदुल वाद्यो की झकारपूरित थी । नूपुर और किङ्किणी की रुमकिया आ रही थी । दासियो ने आकर निवेदन किया "यह कुलपुत्र के शयन का समय है, यह श्रमदर्दक, पीठमर्द उपस्थित है, यह चरण दासियां है । कुलपुत्र विश्राम कर, शैयारूढ हो, हम चरण सेवा कर । आज्ञा हो, नृत्य वाद्य

हो। वाराणसी की श्रेष्ठ सुन्दरी वेश्या कादम्बरी नृत्य के लिए प्रतीक्षा कर रही है।"

यश ने थकित भाव से कहा—"अभी ठहरो शुभे, मुझे कुछ सोचने दो। यही तो मैं नित्य देखता भोगता रहा हूं। सुन्दरियों के नृत्य, रूपसी का रूप, कोकिलकण्ठी का कलगान, तन्त्री की स्वरलहरी, नहीं नहीं, अब मुझे इनसे तृप्ति नहीं होती। कौन है, वह श्रमण ? वह किस सम्पदा से सम्पन्न है ? यही तो सब कुछ, इससे भी अधिक—बहुत अधिक वह त्याग चुका, इनसे विरत हो चुका! फिर भी वह चिन्तारहित है, उद्वेगरहित है, विकाररहित है। वह पाव प्यादा चलकर प्रत्येक गृहस्थ से भिक्षा लेता है और चला जाता है, पृथ्वी में दृष्टि दिए, शान्त, तृप्त, मौन!

"नहीं, नहीं, अभी नहीं। नृत्य रहने दो, पीठमर्द और अवमर्दक से कहदो—वे शयन करें और तुम भी शुभे, शयन करो। अभी मुझे कुछ सोचने दो, कुछ समझने दो। वह श्रमण वह शाक्य पुत्र.....।"

दासियां चली गईं। रात गम्भीर होती गई। नूपुर ध्वनि बन्द हुई। प्रासाद में शान्ति छा गई। सुगन्धित दीप जल रहे थे। स्निग्ध प्रकाश फैल रहा था। आकाश में काले अंधेरे बादल घूम रहे थे। नन्ही नन्ही फुहार चल रही थी। तभी यश की विचारधारा टूटी। वह धीरे २ शयन कक्ष में गया। देखा अपना परिजन—दासियां और सखियां इधर उधर पड़ी सो रहीं थीं। किसी की बगल में वीणा थी, किसी के गले में मृदङ्ग, किसी के बाल बिखर कर फैल गए थे, किसी के मुंह से लार निकल रही थी, कोई मुंह फैलाये, कोई मुंह को विकराल किये बेसुध पड़ी थी।

यश ने कहा—"यही वह मोह है जिसे उस श्रमण ने त्याग दिया। पर वह सम्पदा क्या है ? जो उसने पाई है।" उसने एकबार परिजन को रोते फिर देखा—फिर कहा—"अरे, मैं सन्तप्त हूं, मैं पीड़ित हूं।।।"

उसने अपना सुनहरा जूता पहना और प्रथम घर के द्वार की ओर

और फिर नगर द्वार की ओर चल दिया। घोर अंधेरी रात थी। शीतल वायु बह रहा था, जनपद सो रहा था। आकाश मेघाच्छन्न था। यश अपना सुनहरी जूता पहिने कीचड में अपने अनभ्यस्त पदचिन्ह बनाता आज कदाचित अपने जीवन मे पहली बार ही पादत्राणादा उस पथ पर जा रहा था जो मृगदाव ऋषि पतन की ओर जाता है।

गौतम उस समय भिनसार ही मे उठकर खुले स्थान मे टहल रहे थे। उन्होने दूर से कुलपुत्र को अपनी ओर आते देखा तो टहलने के स्थान से हट कर आसन पर आ बैठे। तब कुलपुत्र ने निकट पहुच कर कहा—"हाय, मै संतप्त हू, हाय, मै पीडित हू।"

गौतम ने कहा—"यश, यह तथागत असंतप्त है। अपीडित है। आ बैठ। मै तुझे आनन्द का अमृत पान कराऊगा।" कुलपुत्र ने प्रसन्न हो कर कहा—"भन्ते, क्या आप असंतप्त है अपीडित है?" वह जूता उतार कर गौतम के निकट गया और अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

गौतम ने तब यश को आनुपूर्वी कथा कही और काम वासनाओ का दुष्परिणाम, अपकार, क्लेश और निष्कामता का माहात्म्य बताया। उन्होने कुलपुत्र यश को भव्यचित्त, मृदुचित्त, अनाच्छादित चित्त, आह्लादितचित्त और प्रसन्न देखा। तब उसे दुख का कारण उसका नाश और नाश के उपाय बताए। जैसे कालिमारहित शुद्ध वस्त्र अच्छा रंग पकडता है उसी प्रकार कुलपुत्र यश को उसी आसन पर उसी एक उपदेश से—'जो कुछ उत्पन्न होने वाला है वह सब नाशवान् है" यह धर्म चक्षु प्राप्त हुआ।

यश कुलपुत्र की माता ने भोर होने पर सुना कि यश कुलपुत्र रात को शयनागार में सोए नही और प्रासाद मे उपस्थित भी नही है तो वह पुत्रप्रेम से विकल हो श्रेष्ठी गृहपति के पास गई। गृहपति सेट्ठि कुलपुत्र के सुनहले जूतो के चिन्ह खोजता हुआ ऋषि पतन मृगदाव तक गया। वहा श्रमण गौतम को आसीन देख कर कहा—"भन्ते, क्या आपने कुलपुत्र यश को देखा है?" गौतम ने कहा—"गहपति, बैठ, तू भी

उसे देखेगा।" गृहपति ने हर्षोत्फुल्ल हो भगवान गौतम को प्रणाम किया और एक ओर बैठ गया। भगवान् ने आनुपूर्वी कथा कही और गहपति सेट्ठि को उसी स्थान पर धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ।

उसने कहा—"आश्चर्य भन्ते! आश्चर्य! जैसे औंधे को सीधा करदे, ढके को उघाड दे, भूले को रास्ता बतादे, अन्धकार मे तेल का दीपक रखदे, जिससे आंख वाले रूप देखे, उसी भांति भगवान ने धर्म को प्रकाशित कर दिया। वह मैं, भगवान् की शरण जाता हू, धर्म की शरण जाता हूं, सघ की शरण जाता हू। आप मुझे अञ्जलिबद्ध उपासक ग्रहण करे।"

तथागत ने जलद गम्भीर स्वर मे कहा—"स्वस्ति सेट्ठि गृहपति, संसार मे एक तू ही तीन वचनो वाला प्रथम उपासक हुआ।"

इसी समय कुलपुत्र यश पिता के सम्मुख आकर खडा हो गया उसका मुख सत्य ज्ञान से दैदीप्यमान था, और उसका चित्त अलिप्त और दोषो से मुक्त था।

गृहपति ने पुत्र को देखकर दीन भाव से कहा—"पुत्र यश! तेरी मा शोक मे पडी रोती है, और पत्नि तेरे वियोग मे मूर्छित है। अरे कुलपुत्र, तेरे बिना हमारा सब कुछ नष्ट है।"

तथागत गौतम ने कहा—"श्रेष्ठि गृहपति, जैसे तुमने अपूर्व ज्ञान और अपूर्व साक्षात्कार से धर्म को देखा, वैसे ही यश ने भी देखा है। देखे और जाने हुए को मनन करके पत्यवेक्षण करके उसका चित्त अलिप्त होकर मलो से शुद्ध होगया है। सो गृहपति, अब यश क्या पहिले की भांति गृहस्थ अवस्था की हीन स्थिति मे रहकर गृहस्थ सुख भोगने योग्य है?"

"नही भन्ते!

"गृहपति, इसे तुम कैसा समझते हो?"

"लाभ है भन्ते, यश कुलपुत्र को। सुलाभ किया भन्ते, यश कुल-

पुत्र ने, जो कि यश कुलपुत्र का चित्त अलिप्त हो मलो से मुक्त होगया। भन्ते, भगवन्! यश को अनुगामी भिक्षु बनाकर मेरा आज का भोजन स्वीकार कीजिए।" भगवान ने मौन स्वीकृति दी। सेट्ठि गृहपति स्वीकृति समझ आसन से उठ भगवान गौतम को प्रणाम कर प्रदक्षिणा कर चले गए।

तब यश कुलपुत्र ने सम्मुख आ प्रणाम कर गौतम से कहा—"भन्ते भगवन्, मुझे प्रवज्या दे, उपसम्पदा दे।

गौतम तथागत ने कहा—'भिक्षु आओ, धर्म सुव्याख्यात है अच्छी तरह दुःख के क्षय के लिये ब्रह्मचर्य का पालन करो। तुम्हे उपसम्पदा प्राप्त हुई। अब इस समय तथागत सहित लोक में सात अर्हत है।"

: ६ :

धर्मचक्रप्रवर्त्तन

कासियों में बड़ी उत्तेजना फैल गई। वाराणसी की वीथिका में लोगों ने आश्चर्यचकित होकर देखा कि शाक्य पुत्र गौतम चीवर और भिक्षा पात्र हाथ में लिये नीचा सिर किए अपने स्वर्ण समान दमकते हुए मुख को पृथ्वी की ओर झुकाए पाव प्यादे जा रहे हैं। उनके पीछे २ नगरसेट्ठक नगरसेट्ठि का कुलपुत्र यश उसी भाँति सिर मुण्डाए नगे पैर चीवर और भिक्षा पात्र हाथ में लिये नीची दृष्टि किये जा रहा है। किसी ने कहा—"अरे यही वह शाक्य राजकुमार गौतम है। जिसने पत्नि, पुत्र, राज्यसब सब त्याग दिया है। जिसने मार को जीता है, जिसने अमत प्राप्त किया है, जो अपने को सम्पूर्ण बुद्ध कहता है।" कोई कह रहा था—"देखो, देखो, यही कुलपुत्र यश है जो कलतक सुनहरी जूते पहन, कानो में हीरे के कुण्डल पहिने अपने रथ की स्वर्ण घटियो के घोष से वीथियो को गुञ्जायमान करते हुए नगर मे आता था। आज वह नंगे पैर श्रमण गौतम का अनुगत हो भिक्षापात्र लिए अपने ही घर भिक्षान्न की याचना करने जा रहा है।"

किसी न कहा—"अरे कुलपुत्र यश के मुख का वैभव तो देखो! सुना है, उसे परम सम्पदा प्राप्त हुई है, उसे अमृत तत्त्व मिला है।"

पौर वधुओ ने झरोखो मे से झाककर कहा—"अरे कुलपुत्र की नववधू का भाग्य कैसा है री? अरे, यह स्वर्णगात, यह मृदुल मनोहर गति, यह कामविमोहन रूप लेकर कैसे इसी वयस मे यश कुलपुत्र भिक्षु बन गया?"

कोई कहती—"देखो री देखो, कुलपुत्र का भिक्षु वेश? अरे!

इसने अपने चिक्कण घनकुंचित कुन्तल केश मुंडवा दिये। यह निराभरण होकर पाव प्यादा चल कर भी कितना सुखी है, शांत है तेज से व्याप्त है।"

सबने कहा—"उसने अमृत पाया है री। उसने उपसम्पदा प्राप्त की है।"

पौर जन कहने लगे। काशी मे यह श्रमण गौतम उदय हुआ है और वैशाली मे वह अम्बपाली। अब इन दोनो के मारे जनपद में कोई युवक घर मे नही रहने पावेगा। कासी के सब कुलपुत्रो को यह श्रमण गौतम भिक्षु बना डालेगा और वैशाली मे अम्बपाली सब सेट्ठिपुत्रो और सामन्तपुत्रो को अपने रूप की हाट मे खरीद लेगी।"

उस समय के सम्पूर्ण लोक में जो सात अर्हत थे। वे चुपचाप बढे चले जा रहे थे। उनकी दृष्टि पृथ्वी पर थी, कन्धो पर चीवर था, हाथ मे भिक्षा पात्र था, नेत्रो में धर्म ज्योति, मुख पर ज्ञान दीप्ति, अङ्ग मे उपसम्पदा की सुषमा, गति मे त्याग और तृप्ति थी। लोग ससम्मान झुकते थे, परिक्रमा करते थे, अभिवादन करते थे, उंगली उठा २ कर एक एक का बखान करते थे।

गृहपति ने आगे बढकर सातो अर्हतो का स्वागत किया। उन्हे आसन देकर पाद्य, पादपीठ और पाठकाष्ठ दिया। जब भगवान् बुद्ध स्वस्थ होकर आसन पर बैठे तब यश कुलपुत्र की माता और पत्नि आईं और तथागत का पदवन्दन करके बैठ गईं। उनसे तथागत ने आनुपूर्वी कथा कही और जब भगवान् ने उन्हे भव्यचित्त देखा तो जो बुद्धि को उठाने वाली देशना है—दुःख समुदय, निरोध और मार्ग उसे प्रकाशित किया। उन दोनो को उसी आसन पर विमल विरज धर्मचक्षु उदय हुआ। उन्होंने कहा, आश्चर्य भन्ते, आजसे हमें अञ्जलि-बद्ध शरणागत उपासिकाएँ जानें।"

तथागत ने उन्हें उपसम्पदा दी। और विश्व में वही दोनो प्रथम तीन वचनों वाली प्रथम उपासिका बनीं।

इसके बाद सातो अर्हतो ने तृप्तिपूर्वक भोजन किया। फिर स्वस्थ हो भगवान ने उन्हे सदर्शन, समादापन, समुत्तेजन, संप्रहर्षण प्रदान किया और आसन से उठे।

आगे २ तथागत, पीछे पञ्चजन भिक्षु और उनके पीछे यश कुलपुत्र उसी भांति जब मृगदाव लौटे तो यश के चार परम मित्र यश के पीछे २ हो लिये। एकने कहा--"यह यश कैसे डाढी मूछ मुडा, काषाय वस्त्र पहिन एक बारगी ही घर से बेघर होकर प्रव्रजित हो गया?" दूसरे ने कहा—"वह धर्मविनय छोटा न होगा, वह सन्यास छोटा न होगा, जिसमे कुलपुत्र यश सिर डाढी मुडा—काषाय वस्त्र पहन घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ है।"

तब चारो मित्रो ने निश्चय किया कि हम भी कुलपुत्र यश की सम्पदा के भागी बनेंगे। जब सब कोई मृगदाव पहुचे और अपने अपने आसनो पर स्वस्थ्य होकर बैठे, तो चारो मित्र अभिवादन करके यश के एक ओर खडे हो गये। उनमे एकने कहा—"भन्ते, यश कुलपुत्र! हमें भी धर्म लाभ होने दो। हमे भी वह अमृत तत्त्व प्राप्त होने दो।"

यश उन्हे लेकर वहा पहुचा, जहा तथागत बुद्ध शान्त मुद्रा से स्थिर बैठ थे। यश ने कहा—"भगवन, ये मेरे चार अन्तरङ्ग गृही मित्र बाराणसी के श्रेष्ठी, अनुश्रेष्ठियो के कुलपुत्र है। इसका नाम सुबल, इसका सुबाहु, इसका पूर्णजित और इसका गवाम्पति है। इन्हे भगवान अनुशासन करे।"

तथागत ने उनसे अनुपूर्वी कथा कही। और सत्य चतुष्ठय का उपदेश दिया। तब वे सुव्याख्यात धर्म मे विशारद् स्वतन्त्र हो बोले—"भगवान् हमें उपसम्पदा दें।"

भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ, आओ, धर्म सुविख्यात है। अच्छी तरह दुःख के क्षय के लिये ब्रह्मचर्य का पालन करो।" यही उनकी उपसम्पदा हुई। तब भगवान् ने उनकी अनशासना की, अब लोक में ग्यारह अर्हत थे।

आग की भांति यह समाचार सारे काशी राज्य मे फैल गया। यश के ग्रामवासी पूर्वज परिवारो के पुत्र, पचासगृही मित्रो ने सुना कि यश कुलपुत्र भिक्ष हो गया है, वे भी बुद्ध का शरण आए और प्रवज्ञा ले ली।

अब लोक में एकसठ अर्हत थे।

भगवान गौतम ने कहा--

"भिक्षुओ, अब तुम सब मानुष और दिव्य बन्धनो स मुक्त हो। बहुत जनो के हित के लिये, बहुत जनो के सुख के लिये, लोक पर दया करने के लिए, देवताओ और मनुष्यो के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। एक साथ दो मत जाओ। आदि मे कल्याणकारक, मध्य में कल्याणकारक, अन्त मे कल्याणकारण इस धर्म का उपदेश करो। अर्थ सहित, व्यंजन सहित, परिपूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का सेवन करो। अल्पदोष वाले प्राणी भी है, कल्याणकारक धर्म के न सुनने से उनकी हानि होगी, सुनने मे वे धर्म को जानेगे। जाओ भिक्षुओ, दिशा दिशा में जाओ। अनुमति देता हूं उन्हे प्रवज्ञा दो, उपसम्पदा प्रदान करो।"

: १० :

वैशाली का स्वर्ग

वैशाली का सप्तभूमि प्रासाद उस युग के नन्दन वन की होड लगाता था। वहा की सम्पदा, सम्पन्नता, विभूति और सजावट देखकर सम्राटो को ईर्षा होती थी। यह समूचा महल श्वेत मर्मर का बना था, जिसम सात खण्ड और सात ही प्रांगण थे। उसकी सबसे ऊंची अट्टालिका पर लगे स्वर्ण कगूर प्रभात की सुनहली धूप मे चमकते हुये दूर तक बडी भारी शोभा विस्तार करते थे। वह प्रासाद बहुत विशाल था। उसके सभी द्वार तोरणो पर प्रत्येक सायकाल को जूही, चम्पा, चम्पक, मालती और शतदल की मालाएं मोहक ढग से टागी जाती थी। ये मालाए दूर २ के देशो के अधिपतियो और सेट्ठीकुवेरो की ओर से भेट स्वरूप भेजी जाती थीं। अलिन्दो और प्रकोष्ठो मे शुक, सारिका, मयूर, हस, करण्ड, सारस, लाव चित्तिर के निवास थे। प्रथम प्रागण मे विशाल मैदान था जहाँ सन्ध्या होने से पूर्व सुगन्धित जल छिडक दिया जाता था, जो सन्ध्या होते ही नागरिको, सेट्ठिपुत्रो और सामन्तपुत्रो के विविध वाहन, रथ, हाथी, शिविका, पालकी, सुखपाल आदि से खचाखच भर जाता था। दूसरे प्रकोष्ठ में अम्बपाली की सेना, अश्व, गज, रथ, मेष. गो, पशु आदि का स्थान था। यहा भिन्न देशो के अद्भुत और लोकोत्तर पशुओ का सग्रह था जिन्हे अम्बपाली की कृपादृष्टि पाने के लिये अंग, बंग, कलिङ्ग, चम्पा, ताम्रलिप्त और राजगृह के सम्राट, महाराज, एवम् सेट्ठिजन, उपहार रूप भेजते रहते थे। तीसरे प्रागण मे सुनार, जड़िये, जौहरी, मूर्तिकार और अन्य कलाकार अपना २ कार्य करते थे। उनकी प्रचुर कला और मनोहर कारीगरी से देवी अम्बपाली का वह अप्रतिम आवास

और उसका दिव्य रूप शत् सहस्र गुण दैदीप्यमान हो जाता था। चौथे प्रागण में अन्न, वस्त्र, खाद्य, मेवा, फल और मिष्ठान्न का भण्डार था। देश २ के फलो, पक्वानो का वहा पाक होता था। बडे २ विद्वान, अनुभवी वैद्यराज अनेक प्रकार के अर्क, आसव, मद्य और पौष्टिक पदार्थ बनाते रहते थे और उनकी सुगन्ध से यह प्रकोष्ट सुगन्धित रहता था। यहा भाति २ के इत्र, गंध, सार, और अगराग भी तयार कराये जाते थे। पाचवे कोष्ठ मे अम्बपाली का धन, रत्नकोष, बहीखट और प्रबन्ध व्यवस्था का खाता था जहा बूढे करणिक, दण्डधर, कचुकी और वाहक तत्परता से इधर उधर घूमते, हिसाब लिखते, लेनदेन करते और स्वर्ण गणना करते थे। छठे प्रागण के विशाल सुसज्जित प्रकोष्ठ में देवी अम्बपाली अपनी चेटिकाओ और दासियो को लेकर नागरिको की अभ्यर्थना करती, उनका मनोरजन करती और वही द्यूत, पान, नृत्य और गान होता था। अर्धरात्रि तक वह गन्धर्व नगरी जैसी, भूतल पर सर्वापेक्षा जाग्रत रहती थी। सातवे अलिन्द में देवी अम्बपाली स्वय निवास करती थी, वहा किसी भी आगन्तुक को प्रवेश का अधिकार न था। इस अलिन्द की दीवारो और स्फटिक स्तम्भों पर रत्न खचित किये गये थे, तथा छत पर स्वर्ण का बारीक रगीन काम किया गया था। बडे बडे सम्राट इस अलिन्द की शोभा एकबार देखने को लालायित रहते थे, परवहा किसी का पहुचना सम्भव नहीं था।

दिये जल चुके थे। सप्तभूमि प्रासाद का सिंहद्वार उन्मुक्त था। भीतर बाहर सर्वत्र सुगन्धित सहस्रदीपगुच्छ जल रहे थे। दासी, बांदी, चेटी और दण्डधर, प्रबन्ध व्यवस्था में व्यस्त बाहर भीतर आ जा रहे थे। सेट्ठिपुत्र और सामन्तपुत्र अपने २ वाहनों पर आ रहे थे। भृत्य गण दौड़ २ कर उनके वाहनों की व्यवस्था कर रहे थे, वे आगन्तुक मित्रों के साथ गप्पें उडाते आ जा रहे थे। छटे अलिन्द के द्वार पर प्रतिहार उनका स्वागत करके प्रमोद भवन के द्वार पर पहुंचा रहे थे जहा मदलेखा अपनी सहायक सखियों के साथ आगन्तुकों को

आदरपूर्वक ले जाकर उनकी पदमर्यादा के अनुसार भिन्न २ पीठीकाओं पर बैठाती थी। पाठीकाओ पर धवल दुग्धफेन सम कोमल गद्दे और तकिये बिछे थे। वहा स्थान २ पर करीने से आसदी, पलग, चित्रक, पटिक, पर्यंलक, तूलिका विकतिक, उद्दलोमी, एकान्तलोमी, कटिस्स, कौशेय और समूरीमृग की खालो के कोमल कीमती बिछौने बिछे थे। जिन पर आकर सकुमार सेट्ठिपुत्र और अलस सामन्तपुत्र अपने शरीर लुढका देते थे। दासागण बात की बात में पान पात्र, मद्य, सोने के पासे और दूसरे विनोद के साधन जुटा रही थी। धूमधाम बढती ही जा रही थी। बहुत लोग दल बाँधकर, द्यूत खेलने मे लग गये। कुछ चुपचाप आराम से मद्य पीने लगे। कुमारी दासिया पार्श्व में बैठ कर मद्य ढाल २ कर देने लगी। कुछ लोग भाति २ के वाद्य बजाने लगे। प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर नृत्य गान प्रारम्भ हुआ। सुन्दरी कुमारी किशोरिया रत्नावली कण्ठ मे धारण कर, लोध्ररेणु से कपोल सस्कार कर, कमर मे स्वर्ण करधनी और पैरो मे जडाऊ पैजनी पहन, आलक्तक पैरो को कुसुम स्तवक वाले उपानहो से सज्जित करके कोमलतन्तु वाद्य और गम्भीर घोष मृदग की धमक पर शुद्ध स्वर ताल पर उठाने गिराने और भू पर आघात करने लगी। उनकी नवीन केले के पत्ते के समान कोमल और सुन्दर देहयष्ठि पद पद पर बल खाने लगी। उनके नूपुरो की क्वणन ध्वनि ने प्रकोष्ठ के वातावरण को तरगित कर दिया, उनके नूतन वक्ष और नितम्बो की शोभा ने मद्य की लाली मे मद विस्तार कर दिया। उनके अशुप्रान्त से निकले हुए नग्न बाहु युगल विषधर सर्प की भाति लहरा २ कर नृत्य कला का विस्तार करने लगे। उन की पतली पारदर्शी उंगलियों की नख प्रभा मृणाल दण्ड की भाति हवा मे तैरने लगी और फिर जब उनके प्रवाल के समान लाल २ उत्फुल्ल अधरोष्ठो के भीतर हीरक मणिखचित दन्त पंक्ति को भेदकर अनुराग सागर की रस धार बहने लगी, तब सभी उपस्थित सेट्ठि, सामन्त, राजपुत्र, बन्धुल, विट, लम्पट उसी रंगभूमि

में, जैसे भूलोक नरलोक सब को भूलकर डूब गये। वे थिरक २ कर सावधानी और व्यवस्था से स्वर ताल पर पादाघात करके कामुक युवको को मूर्छित सा करने लगी। उनके गण्डस्थल की रक्ताभदान कान्ति देख कर मदिरा रस से पूर्ण माणिक्य सुक्ति के सम्पुट की याद आने लगी। उनकी काली २, बडी २ अलसाई आखे कमलबद्ध भ्रमर की शोभा विस्तार करने लगी। भ्रू लताये मत्त गजराज की मदराजी की भाति तरगित होने लगी। उनके श्वेत रजत भाल पर मनःशिला का लाल बिन्दु अनुराग प्रदीप की भाति जलता दीख रहा था। उनके माणिक्य कुण्डलों में गण्डस्थल पर लगे पाण्डुर लोध्ररेणु उड २ कर लगने लगे। ललाट मणि की लाल किरणों से प्रतिविम्बित हुए उन के केशपाश सान्ध्य मेघाडम्बर की शोभा विस्तीर्ण करने लगे। इस प्रकार एक अतर्कित अकल्पित मद धारा लोचन जगत को हठात् विह्वल करने लगी।

इसके बाद सगीत सुधा का वर्षण हुआ तो जैसे सभी उपस्थित पौरगण का पौरुष विगलित होकर उसमे बह गया।

धीरे २ अर्ध रात्री व्यतीत हो चली। अब देवी अम्बपाली ने हंसते हुये प्रमोद प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। प्रत्येक कामुक पर उसने लीला कटाक्षपात करके उन्हे निहाल किया। इस समय उसने वक्षस्थल को मकडी के जाले के समान महीन वस्त्र से ढाप रखा था। कण्ठ मे महा तेजस्वी हीरो का एक हार था। हीरो के ही मकर-कुण्डल कपोलो पर डोलायमान हो रहे थे। वक्ष के ऊपर का श्वेत निर्दोष भाग बिलकुल खुला था। कटिप्रदेश के नीचे के भाग का स्वर्ण मण्डित रत्नखचित पाटम्बर से ढापा गया था। परन्तु उसके नीचे गुल्फ और अरुण चरणो की शोभा प्रथक विकीर्ण हो रही थी। उसकी अनिद्य सुन्दर देहयष्ठि, तेजपूर्ण दृष्टि, मोहक मन्द मुस्कान, मराल की सी गति, सिंहनी की सी उठान सब कुछ अलौकिक थी। उस प्रमोद कानन में मुस्कान बखेरती हुई, नागरिको को मन्द मुस्कान

से निहाल करती हुई धीरे २ वह एक अति सुसज्जित स्वर्ण पीठ की ओर बढी। वहा तीन युवक सामन्तपुत्र उपधानो के सहारे पडे मद्यपान कर रहे थे। मदलेखा स्वयं उन्हे मद्य ढाल २ कर पिला रही थी।

मदलेखा एक षोडशी बाला थी। उसकी लाज भरी बडी २ आखे उसके उन्मत्त यौवन को जैसे उभरने नही देती थी। वह पद्मराग की बढी हुई पुतली के समान सौन्दर्य की खान थी। व्यासपीठ पर पडे युवक की ओर उसने लाल मद्य से भरा स्वर्ण पात्र बढाया। स्वर्ण पात्र को छूती हुई किशोरी मदलेखा की चम्पक कली के समान उंगलियो को अपने हाथ में लेकर मदमत्त युवक सामन्त ने कहा—"मदलेखा, इतनी लाज का भार लेकर जीवन पथ कैसे पार करोगी भला? तनिक और निकट आओ," उसने किशोरी की उगली को पोर पकड कर अपनी ओर खीचा।

किशोरी कण्टकित हो उठी। उसने मूक कटाक्ष से युवक को ओर देखा, फिर मन्द कोमल स्वर से कहा "देवी आरही है, छोड दीजिये।"

युवक ने मद विह्वल नेत्र फैलाकर देखा—देवी अम्बपाली साक्षात् रति मूर्ति की भाति खडी बकिम कटाक्ष करके मुस्करा रही है। युवक ससभ्रम उठ खडा हुआ। उसने कहा—"अब इतनी देर बाद यह सुधा वर्षण हुआ?"

"हुआ तो," देवी ने कुटिल भ्रू भग करके कहा—'किन्तु तुम्हारा सौदा पटा नही क्या, युवराज?"

"कैसा सौदा?" युवक ने आश्चर्य मुद्रा से कहा?

अम्बपाली ने मदलेखा को संकेत किया, वह भीतर चली गई।

अम्बपाली ने पीठिका पर बैठते हुए कहा—"मदलेखा से कुछ व्यापार चल रहा था न?"

युवराज ने झेपते हुए कहा "देवी को निश्चय ही भ्रम हुआ है।" "भ्रम विभ्रम कुछ नहीं।" उसने एक मन्द हास्य करके कहा। "मेरे ये दोनो मित्र इस सौदे के साक्षी है। मित्र जयराज और सूर्यमल्ल,

कह सकते हो, युवराज स्वर्णसेन कुछ सौदा नही पटा रहे थे ?"

जयराज ने हँसकर कहा--"देवी प्रसन्न हो। जब तक कोई सौदा हो नही जाता, तब तक वह सौदा नही कहला सकता।" अम्बपाली खिलखिला कर हस पडी। उसने तीन पात्र मद्य से भरकर अपने हाथ से तीनो मित्रो को अर्पण किये, और कहा—"मेरे सर्व श्रेष्ठ तीनो मित्रो की स्वास्थ्य मङ्गल कामना से ये तीनो पात्र परिपूर्ण है।"

फिर उसने युवराज स्वर्णसेन के और निकट खिसक कर कहा—"युवराज, क्या मै तुम्हारा कुछ प्रिय कर सकती हू ?"

युवराज ने तृषित नेत्रो से उसे देखते हुए कहा--"केवल इन प्राणो का-इस खण्डित हृदय को अपने निकट लेजा कर।"

अम्बपाली ने मुस्कराकर कहा "युवराज का यह प्रणय निवेदन विचारणीय है, मेरे प्रति भी और मदलेखा के प्रति भी।"

वह उठ खडी हुई। उसने हंसकर तीनो युवको का हाथ पकडकर कहा, "युवराज स्वर्णसेन, जयराज और मित्र सूर्यमल्ल अब जाओ—तुम्हारी रात्रि सुखनिद्रा और सुखस्वप्नो की रात्रि हो।"

वह आनन्द बखेरती हुई, किसी को मुस्कराकर, किसी की ओर मृदुदृष्टिपात करती हुई, किसी से एकाध बात करती हुई भीतरी अलिन्द की ओर चली गई। तीनो मित्र अतृप्त से खडे रह गये। धीरे २ सब लोग कक्ष से बाहर निकलने लगे और कुछ देर मे कक्ष शून्य होगया। खाली मद्यपात्र, अस्तव्यस्त उपाधान, दलित कुसुम, गन्ध और बिखरे हुए पासे यहा वहा पडे रह गये थे, चेटिया व्यवस्था व्यस्त की और दण्डधर सावधानी से दीप गुच्छो को बुझा रहे थे। तीनो मित्र शून्य हृदय मे कसक लेकर बाहर आये। दूर तक उच्च सप्तभूमि प्रासाद के सातवे आलिन्द के गवाक्षो में से रंगीन प्रकाश छन छन कर राजपथ पर यत्र तत्र आलोक बखेर रहा था।

*

: ११ :

राजगृह

अति रमणीय हरितवसना पर्वत स्थली को पहाडी नदी सदानीरा अर्धचन्द्राकार काट रही थी। उसी के बायें तट पर अवस्थित शैल पर कुशल शिल्पियो ने मगध साम्राज्य की राजधानी राजगृह का निर्माण किया था। दूर तक इस मनोरम सुन्दर नगरी को हरीभरी पर्वत शृखला ने ढाप रखा था। उत्तर और पूर्व की ओर दुर्लंघ्य पर्वत श्रेणिया थी जो दक्षिण की ओर दूर तक फैली थी। पच्छिम की ओर मीलो तक बडे बडे पत्थरो की मोटी अजेय दीवार बनाई गई थी। पर्वत का जलवायु स्वास्थ्यकर था और वहा स्थान २ पर गर्म जल के श्रोत थे। बहुत सी पर्वत कन्दराओ को काट २ कर गुफाये बनाई गई थी। जिन्हे प्रासादों की भाति चित्रित एव विभूषित किया गया था। नगर की शोभा अलौकिक थी तथा उसका कोट दुर्लंघ्य था। राजमहालय मे पीढियो की सम्पदा एकत्र थी। नगर के बाहर अनेक बौद्धविहार बन गए थे। सम्राट् बिम्बसार स्वय तथागत गौतम के उपासक बन चुके थे। सम्राट् के अनुरोध से गौतम राजगृह मे आ चुके थे। राजगृह के विश्वविद्यालय की भारी प्रतिष्ठा थी। उस समय तक नालन्द के विश्वविद्यालय को भी उतनी प्रतिष्ठा नही प्राप्त हुई थी। राजगृह के जगद्विख्यात विश्वविद्यालय मे दूर २ के नागरिको के उपाध्याय, वटु प्रकाण्ड विद्वानों के चरणतल मे बैठ कर अपनी २ ज्ञानपिपासा शांत करते थे। वहा सुदूर चीन के लम्बी चोटी वाले पातमुख और छोटी आखो वाले मंगोल, तिब्बत, भूटान के ठिगने गठीले, भावुक तरुण, दीर्घ, गौरवर्ण, नीलनेत्र एवम स्वर्णकेशी पारसीक और यवन तरुण, सिंहल के उज्ज्वल, श्यामवर्ण चमकीली आँखो मे प्रतिभा भरे, स्वर्ण

द्वीप, यवद्वीप, ताम्रपर्णी, चम्पा, कम्बोज और ब्रह्मदेशीय तरुण वटुको के साथ बैठ कर अपनी ज्ञानपिपासा मिटाते थे । कपिशा, उद्यान, तुषार कूचा के पिङ्गल पुरुष भी वहा थे । उन दिनो मगध साम्राज्य का केन्द्र राजगृह विश्व की तत्कालीन जातियो का संगम हो रहा था ।

कोशल के अधिपति प्रसेनजित ने मागध सम्राट् बिम्बसार को अपनी बहिन कोशलदेवी ब्याही थी और उसके दहेज मे काशी का राज्य दे दिया था । इस समय काशी पर बिम्बसार के आधीन ब्रह्मदत्त शासन करता था । बिम्बसार की दूसरी राजमहिषी विदेह कुमारी कूकिना थी । जिसके विषय मे प्रसिद्ध था कि वह ब्रह्मविद्या की पारंगत पण्डिता है । इन दिनो सम्पूर्ण भारत मे चार राज्य ही प्रमुख थे । मगध, वत्स, कोशल और अवन्ती । इन चारो राज्यो मे परस्पर सघर्ष रहता था, कोशल से सम्बन्ध होने पर भी मगध सम्राट् की महत्वाकाक्षा ने कोशल और मगध मे सदैव सघर्ष रखा । जिस समय की बात हम कर रहे है उस समय मगध सम्राट् बिम्बसार ने स्वयं कोशल पर चढ़ाई की थी और उसके महान् सेनापति भद्रिकचण्ड ने चम्पा का घेरा डाला हुआ था, जिसे आठ मास बीत चुके थे । चम्पा और कोशल के इस अभियान का उद्देश्य यह था कि भारत के पूर्वीय और पश्चिमी वाणिज्य द्वार सर्वतोभावेन मागधो के हाथ मे रहे । चम्पा उन दिनो सम्पूर्ण पूर्वी द्वीप समूहो का एकमात्र वाणिज्य मुख था । इस समय मगधराज की राजधानी राजगृह मे प्रसिद्ध मगध अमात्य वर्षकार, जिनकी बुद्धि कौशल की उपमा, बृहस्पति और शुक्राचार्य्य से ही दी जा सकती थी, बैठे शासन चक्र चला रहे थे ।

आर्यों के बोए हुए वर्णसंकरत्व के विष वृक्ष का पहिला फल मगध साम्राज्य था । जिसने असुरवशियो से रक्त सम्बन्ध स्थापित करके शीघ्र ही भारत भूमि से आर्य राजवंशो को हतप्रभ कर दिया था । ब्राह्मणो और क्षत्रियो ने इतर जाति की युवतियो को अपने उपभोग मे लेकर उनकी सन्तानो को अपने कुल गोत्र एव सम्पति से च्युत करके

उनकी जो नवीन संकर जाति बना दी थी, इनमें तीन प्रधान थीं। जिनमें मागध प्रमुख थे। इन्हीं मागधों ने राजगृह की राजधानी बसाई। मागध सम्राट् जरासन्ध ने महाभारत काल में अपने दामाद कंस का वध हुआ सुन कर बीस अक्षौहिणी सैन्य लेकर मथुरा पर १८ बार चढ़ाई की थी। इस चढ़ाई में उसकी कमान के नीचे कारुष के राजा दन्तवक्र, चेदि के शिशुपाल, कलिङ्गपति, शाल्व, पुण्ड्र के महाराजा पौण्ड्रवर्धन, कैषिक के ऋषि, सङ्कृति तथा भीष्मक, रुक्मी, वेणुदार, श्रुतस्सु, क्राथ, अशुमान, अङ्ग, बङ्ग, कोशल, काशी, दशार्ह और सुह्म के राजागण एकत्र हुए थे। विदेहपति, मन्द्रपति, त्रिगर्तराज, दरद, यवन, भगदत्त, सौवीर का शैव्य, गधार का सुबल, पाण्ड, नग्नजित्, काश्मीर का गोनंद, हस्तिनापुर का दुर्योधन, बलख का चेकितान तथा प्रतापी कालयवन आदि भरतखण्ड के कितने ही नरपति उसके आधीन लड़े थे। इनमें भगदत्त और कालयवन महाप्रतापी राजे थे। भगदत्त का हाथी ऐरावत के कुल का था और उसकी सेना में चीन और तातार के असंख्य हूण थे। कलिङ्गपति शाल्व के पास आकाशचारी विमान था। जरासन्ध ने उसे दूत बना कर कालयवन के पास युद्ध के निमन्त्रण देने भेजा था। जरासन्ध के इस दूत का कालयवन ने मन्त्रियोंसहित आगे आकर सत्कार किया था और जरासन्ध के विषय में ये शब्द कहे थे कि—"जिन महाराज जरासन्ध की कृपा से हम सब राजे भयहीन हैं, उनकी हमारे लिए क्या आज्ञा है?"

ऐसा ही जरासन्ध का प्रताप था जिसके भय से यादवों को लेकर श्रीकृष्ण अठारह वर्ष तक इधर उधर भटकते फिरे और अन्त में ब्रज-भूमि त्याग द्वारिका में उन्हें शरण लेनी पड़ी। महाभारत से प्रथम भीम ने द्वन्द युद्ध में जरासन्ध को कौशल से मारा। उसके बाद निरन्तर इस साम्राज्य पर अनेक संकर वंश के राजा बैठते रहे। हम जिस समय का यह वर्णन कर रहे हैं उस समय मगध साम्राज्य के अधिपति शिशुनाग वंशी सम्राट् बिम्बसार की आयु पचास वर्ष की थी।

उनका रंग, उज्ज्वल गौर वर्ण था, आखें बडी बडी और काली थी, कद लम्बा था, व्यक्तित्व प्रभावशाली था। परन्तु उनके चित्त में दृढता न थी, स्वभाव कोमल और हठी था। फिर भी वे एक विचारशील और वीर पुरुष थे और उन्होने अपने साम्राज्य को बहुत समृद्ध किया था। इस समय मगध साम्राज्य मे ८० हजार ग्राम लगते थे और राजगृह एशिया के प्रसिद्ध ६ महासमृद्ध नगरो में से एक था। यह साम्राज्य विंध्याचल, गगा, चम्पा और सोन नदियो के बीच फैला हुआ था जो ३०० योजन के विस्तृत भूखण्ड की आय का था। इस साम्राज्य के अन्तर्गत १८ करोड जनपद थे।

: १२ :

रहस्यमयी भेंट

एक पहर रात जा चुकी थी। राजगृह के प्रान्त भाग सुनसान थे। उन्ही सूनी और अधेरी गलियो में एक तरुण अश्वारोही चुपचाप आगे बढता जा रहा था। उसका सारा शरीर काले लबादे से ढका था, उसके शरीर और वस्त्रो पर गर्द छा रही थी, तरुण का मुख प्रभाव-शाली था, उसके गौरवर्ण मुख मे तेज कारी आखे चमक रही थी, उसके लबादे के नीचे भारी भारी अस्त्र यदाकदा ही दीख पडते थ, तरुण का अश्व भी एक असाधारण सिंधु देश का अश्व था। अश्व और आरोही दोनों थके हुए थे। परन्तु तरुण नगर के पूर्वी भाग की ओर बढ़ता जा रहा था, उधर ही उसे किसी अभीष्ट स्थान पर पहुंचना था, उसी की खोज में वह अटकता, इधर उधर देखता चुपचाप उन टेढी तिरछी गलियो को पारकर नगर के बिल्कुल बाहरी भाग पर आ पहुचा, यहा न तो राजपथ पर लालटेनें थीं, न कोई आदमी ही दीख पडता था, जिससे वह अपने अभीष्ट स्थान का पता पूछे। एक चौराहे पर वह इसी असमंजस मे खडा होकर इधर उ र देखने लगा।

उसने देखा, एक पुराने बडे भारी मकान के आगे सीढियो पर कोई सो रहा है, तरुण ने उसके निकट जाकर उसे पुकार कर जगाया। जगकर सामने सशस्त्र योद्धा को देखकर वह पुरुष डर गया। डरकर उसने कहा—"दुहाई, मेरे पास फूटी कौडी भी नही है, मैं अति दीन भिक्षुक हू, आज भीख में कुछ भी नही मिला, इससे इस गृहस्थ के द्वार पर थककर पड रहा हू, आप जानते है कि यह कोई अपराध नही है।"

युवक ने हसकर कहा—"नही, यह कोई अपराध नही है, परन्तु तुम यदि आज भूखे ही यहा सो रहे हो तो यह वस्तु तुम्हारे काम आ सकती है, आगे बढो और हाथ में लेकर देखो।"

बूढा कांपता हुआ उठा। तरुण ने उसके हाथ पर जो वस्तु रखदी वह सीने का एक सिक्का था। उस अंधेरे मे भी वह चमक रहा था। उसे देख और प्रसन्न होकर वृद्ध ने हाथ उठाकर कहा—"मै ब्राह्मण हू, आपको सात सहस्त्र आशीर्वाद देता हू, अपराध क्षमा हो, मैंने समझा, आप दस्यु है, दरिद्र को लूटा चाहते है इसी से।" दरिद्र ब्राह्मण की बात काटकर तरुण ने कहा—"तो ब्राह्मण, तुम यदि थोडा मेरा काम कर दो तो तुम्हे स्वर्ण का ऐसा ही एक और निष्क मिल सकता है, जो तुम्हारे बहुत काम आएगा।"

"साधु, साधु, मै समझ गया। आप अवश्य कही के राजकुमार है। आपकी जय हो, कहिए, क्या करना होगा।"

तरुण ने कहा—"इनिक मेरे साथ चलो और आचार्य शाम्बव्य काश्यप का मठ किधर है यह मुझे दिखा दो।"

आचार्य शाम्बव्य काश्यप का नाम सुन कर बूढे ब्राह्मण की घिग्घी बध गई। उसने भय और सन्देह से तरुण को देखकर कांपते २ कहा—"किन्तु इस समय .....

"कुछ भय नही ब्राह्मण, तुम केवल दूर से वह स्थान मुझे दिखा दो।"

"परन्तु राजकुमार, आपको इस समय वहा नही जाना चाहिए। वहा तो इस समय भूत प्रेत वेतालो का नृत्यभोज हो रहा होगा।"

"तो मालूम होता है तुम यह स्वर्ण निष्क नही लेना चाहते?"

"ओह, उसकी मुझे अत्यन्त आवश्यकता है भन्ते, परन्तु आप नही जानते-आचार्य पाद भूत प्रेत वेतालो के स्वामी है।"

"कोई चिन्ता नही ब्राह्मण, तुम वह स्थान दिखा दो और यह निष्क लो।"

युवक ने निष्क ब्राह्मण की हथेली पर धर दिया। उसे भली भाति टेट में छिपाकर उसने कहा—'तब चलिये, परन्तु मै दूर से वह स्थान दिखा दूगा।"

आगे २ वह ब्राह्मण और पीछे पीछे अश्वारोही उस अन्धकार मे चलने लगे।

बस्ती से अलग वृक्षो के झुरमुट मे एक अशुभ सा मकान अंधकार मे भूत की भाति दीख रहा था। वृद्ध ब्राह्मण ने कापते स्वर मे कहा—"वही हैं भन्ते, बस अब मै आगे नही जाऊगा। और मै आपसे भी कहता हू इस समय वहा मत जाइये।" ब्राह्मण की दृष्टि और वाणी मे बहुत भय था, पर तरुण ने उस पर विचार नही किया। अश्व को बढाकर वह अन्धकार मे विलीन हो गया।

मठ बहुत बडा था। तरुण ने एक बार उसके चारो ओर चक्कर लगाया। मठ में कोई जीवित व्यक्ति है या नही, इसका पता नही लग रहा था, उसका प्रवेश द्वार भी नही दीख रहा था। एक बार उसने फिर उस मठ के चारों ओर परिक्रमा दी। इस बार उसे एक कोने मे छोटा सा द्वार दिखाई दिया। उसी को खूब जोर से खटखटाकर तरुण ने पुकारना प्रारम्भ किया। इस पर कुछ आशा का संचार हुआ। मकान की खिडकी मे प्रकाश की झलक दीख पडी। किसी ने आकर खिडकी मे झाककर बाहर खडे अश्वारोहो को देखकर कर्कश स्वर मे कहा—"कौन है?"

"मै अतिथि हू। आचार्य पाद शाम्बव्य काश्यप से मुझे काम है।"

"आए कहा से हो?"

"गान्धार से।"

"किसके पास से?"

"तक्षशिला के आचार्य बहुलाश्व के पास से।"

"क्या तुम सोमप्रभ हो?"

"जी हा।"

"तब ठीक है।"

वह सिर भीतर घुस गया। थोडी देर मे उसी व्यक्ति ने आकर द्वार खोल दिया। उस के हाथ मे दीपक था। उसी के प्रकाश में तरुण

ने उस व्यक्ति का चेहरा देखा, देखकर भय से काप गया। चेहरे पर मास का नाम न था। सिर्फ गोल २ दो आंखे गहरे गढ़ो मे स्थिर चमक रही थी। चेहरे पर खिचडी डाढी मूछो का अस्त-व्यस्त गुलझट था। सिर के बडे २ रुखे बाल उलझे हुए और खडे थे। गालों की हड्डिया ऊपर को उठी हुई थी और नाक बीच से धनुष की भाति उभरी हुई थी। वह व्यक्ति असाधारण ऊचा था। उसका वह हाथ, जिसमे वह दिया थामे था, एक कंकाल का हाथ दीख रहा था।

उसने थोडी देर दीपक उठाकर तरुण को गौर से देखा, फिर उसके पतले सफेद होठो पर मुस्कान आई। उसने यथासाध्य अपनी वाणी को कोमल बना कर कहा—"अश्व को सामने उस गोवाट् मे बाध दो, वहा एक बालक सो रहा है उसे जगादो—वह उसकी सब व्यवस्था कर देगा और तुम भीतर आओ।"

तरुण घोडे से उतर पडा। उसने उस व्यक्ति के कहे अनुसार अश्व की व्यवस्था करके घर मे प्रवेश किया। घर मे प्रवेश करते ही वह सिहिर उठा। एक विचित्र गन्ध उसमे भर रही थी। वहा का वातावरण ही अद्भुत था। भीतर एक बडा भारी खुला मैदान था। उसमे अन्धकार फैला हुआ था। कही भी जीवित व्यक्ति का चिन्ह नही दीख रहा था। वही दीर्घकाय अस्थिककाल सा पुरुष दीपक हाथ मे लिये आगे २ चल रहा था और उसके पीछ २ भय और उद्वेग से विमोहित सा वह तरुण जा रहा था। उनके चलने का शब्द उन्हे ही चौंका रहा था। मठ के पश्चिम प्रान्तभाग मे कुछ घर बने थे। उन्ही को ओर वे जारहे थे। निकट आने पर उसने उच्च स्वर से पुकारा 'सुन्दरम्।'

एक तरुण बटुक आख मलता हुआ सामने की कुटीर से निकला। तरुण सुन्दर बलिष्ठ और नवयुवक था। उसकी कमर मे पीताम्बर और गले में स्वच्छ जनेऊ था। सिर पर बडी सी चुटिया थी। युवक के हाथ में दीपक देकर दीर्घकाय व्यक्ति ने कहा—'इस आयुष्मान की शयन

व्यवस्था यज्ञशाला में कर दो।" फिर उसने आगन्तुक की ओर घूमकर कहा—"प्रभात में और बात होगी। अभी मैं बहुत व्यस्त हू।" इतना कह वह तेजी से अन्धकार मे विलीन होगया।]

बटुक ने युवक से कहा—"आओ मित्र, इधर से।"

तरुण चुपचाप बटुक के पीछे २ यज्ञशाला मे गया। वहां एक मृग-चर्म की ओर सकेत करके उसने कहा—"यह यथेष्ट होगा मित्र?"

"यथेष्ट होगा।"

बटुक जल्दी से एक ओर चला गया। थोडी देर में एक पात्र दूध से भरा तथा थोडे मधुगोलक लेकर आया। उन्हे तरुण के सन्मुख रखकर कहा—"वहा पात्र मे जल है, हाथ मुह धोलो, वस्त्र उतार डालो और यह थोडा आहार करलो। बलि मास भी है, इच्छा हो तो लाऊ?"

"नही मित्र, यही यथेष्ट है। मै बलि मास नही खाता।"

"तो मित्र, और कुछ चाहिए।"

"कुछ नही, धन्यवाद।"

बटुक चला गया। और युवक ने अन्यमनस्क होकर वस्त्र उतारे, शस्त्रो को खूंटी पर टांग दिया। मधुगोलक खाकर दूध पिया। और मृगचर्म पर बैठकर चुपचाप उस अन्धकार को देखने लगा। उसे अपने बालकाल की विस्मृतस्मृतिया याद आने लगी। आठ वर्ष की अवस्था मे उसने यही से तक्षशिला को एक सार्थवाह के साथ प्रस्थान किया था। तब से अब तक १८ वर्ष निरन्तर उसने तक्षशिला के विश्वविश्रुत विद्यालय मे विविध शस्त्र शास्त्रो का अध्ययन किया था। वह अतीत काल की बहुत सी बातो को सोचने लगा। इन १८ वर्षों मे उसने केवल शस्त्राभ्यास और अध्ययन ही नहीं किया। पार्शुपुर, यवन देश तथा उत्तरकुरु तक यात्रा भी की। देवासुर सग्राम मे सक्रिय भाग लिया। पर्शुपुर के शासानुशास• से सिन्धुनद पर लोहा लिया। इसके बाद लगभग सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की यात्रा कर

डाली। अब यह राजगृह था वह पुरातन मठ न मालूम उसे कैसा कुछ अशुभ, तुच्छ और अप्रिय सा लग रहा था। इस दीर्घ काल मे आचार्य की तो आकृति ही बदल गई है।

अकस्मात्, एक अस्पष्ट चीत्कार से वह चौक उठा। जैसे गहरी वेदना से कोई दबे कण्ठ से चिल्ला उठा हो। भय और आशका से वह चचल हो उठा। उसने खूंटी से खड्ग लिया और चुपचाप दीवार से कान लगा कर सुनने लगा। उस ओर कुछ हो रहा था। ऐसा उसे प्रतीत हुआ कि कही कुछ अनैतिक कार्य किया जा रहा है। उसने दीवार टटोल कर देखा—शीघ्र ही एक छोटा सा द्वार उसे दीख गया। यत्न करने से वह खुल गया। परन्तु द्वार खुलने पर भी अन्धकार के सिवा और कुछ उसे नही प्रतीत हुआ। फिर भी किसी के बोलने का अस्फुट स्वर उसे कुछ और साफ सुनाई पड़ने लगा। उसने साहस करके हाथ मे खड्ग ले कर उस द्वार के भीतर अन्धकार मे कदम बढाया। टटोल कर उसने देखा तो वह एक पतली गलियारी सी मालूम हुई। आगे चल कर वह गलियारी कुछ घूम गई। घूमने पर प्रकाश की एक क्षीण रेखा उसे दीख पडी। तरुण और भी साहस करके आगे बढा। सामने नीचे उतरने की सीढिया थी। तरुण ने देखा वह—एक गर्भगृह का द्वार है, शब्द और प्रकाश दोनो वही से आ रहे है। वह चुपके से सीढी उतर कर गर्भगृह की ओर अग्रसर हुआ। सामने पुरानी किवाडों की दरार से प्रकाश आ रहा था। उसी मे से झाक कर जो कुछ उसने देखा, देखकर उसकी हड्डिया काप उठी। गर्भगृह अधिक बडा न था। उसमे दीपक का धीमा प्रकाश हो रहा था। आचार्य एक व्याघ्रचर्म पर स्थिर बैठे थे। उनके सन्मुख कोई राजपुरुष वीरासन से दूसरे व्याघ्रचर्म पर बैठे थे। इनकी आयु भी पचास के लगभग होगी। इनका शरीर मासल, कद ठिगना, सिर और डाढी मूछे मुडी हुई, बडी२ तेज पूर्ण आखें, दृढ़ सम्पुटित ओठ। उनके पास लम्बा नग्न खड्ग रखा था। वे एक बहुमूल्य कौशेय उत्तरीय पहन थे। उनके कण्ठ मे बहुमूल्य मणिमाल

थी और कानो मे हीरक कुण्डल थ। उनके पास ही बगल में एक अतिसुन्दर बाला अधोमुखी बैठी थी। उसका शरीर लगभग नग्न था। उसकी सुडौल गौर भुजलता अनावृत्त थी। काली लटे चादी के समान श्वेत मस्तक पर लहरा रहीं थी। पीठ पर पदतल चुम्बी चोटी लटक रही थी। उसका गौर वक्ष अनावृत था, सिर्फ विल्वस्तन कौशेय पट्ट से बंधे थे। कमर मे मणिजटित करधनी थी जिससे अधोवस्त्र कसा हुआ था। इस सुन्दरी के नेत्रों मे अद्भुत मद था। कुछ देर उसकी ओर देखने ही से जैसे नशा आजाता था। उसके बिम्बाफल जैसे ओष्ठ इतने सरस और आग्रही प्रतीत हो रहे थे कि उन्हे देखकर मनुष्य का काम अनायास ही जाग्रत हो जाता था। इस तरुणी की आयु कोई बीस वर्ष की होगी। इस समय वह अति उदास एवं भीत हो रही थी। तरुण ने झाक कर देखा—तरुणी कह रही थी—"नही पिता, अब नही, मै सहन न कर सकूंगी"। आचार्य ने कठोर मुद्रा से उसकी ओर ज्वाला नेत्रो से देखा– "सावधान कुण्डनी, मुझे क्रुद्ध न कर।" उन्होने हाथ मे चमडे का एक चाबुक हिला कर रूक्ष हिंस्त्र भाव से कहा—"दश ले"

बाला ने एक बार असहाय दृष्टि से आचार्य की ओर, फिर उस राज पुरुष की ओर देख कर पास रखे हुऐ पिटक का ढकना उठाया। एक भीमकाय काला नाग फुफकार मार और फन उठा कर हाथ भर ऊचा खडा हो गया। राज पुरुष भय से तनिक पीछे हट गए। बाला ने अनायास ही नाग का मुह पकड कर कण्ठ मे लपेट लिया। एक बार फिर उसने करुण दृष्टि से आचार्य की ओर देखा। और फिर अपने सुन्दर लाल अधरो के निकट सर्प का फन ले जाकर अपनी जीभ बाहर निकाली और नाग की चुटकी ढीली कर दी। नाग ने फूं करके बाला की जीभ पर दश किया और उलट गया।

आचार्य ने सन्तोष की दृष्टि से राज पुरुष की ओर देखा। बाला ने सर्प को अपने गले से खीच कर दूर फेक दिया। वह क्रुद्ध दृष्टि से आचार्य को देखती रही। सर्प निस्तेज हो कर एक कोने मे पडा रहा।

बाला के मस्तक पर स्वेद बिन्दु झलकने लगे। यह देख कर तरुण का सारा शरीर भय से शीतल हो गया।

आचार्य ने एक लम्बी लोह शलाका से सर्प को अर्धमूर्छित अवस्था मे उठा कर पिटक मे बन्द कर दिया। और मद्यपात्र आगे धरका कर स्नेह के स्वर मे कहा—"मद्य पीले कुण्डनी।" बाला ने मद्यपात्र मुह से लगाकर गटागट सारा मद्य पी लिया।

राजपुरुष ने अब मुह खोला। उन्होने कहा—"ठीक है आचार्य, मै कल प्रातःकाल ही कुण्डनी को चम्पा भेजने का व्यवस्था करूंगा परन्तु यदि आप जाते तो "

"नही, नही, राजकार्य राजपुरुषो का है मेरा नही।" आचार्य ने रूखे स्वर से कहा। फिर युवती की ओर लक्ष्य करके कहा—

"कुण्डनी, तुझे अङ्गराज दधिवाहन पर अपने प्रयोग करने होगे, पुत्री!"

कुण्डनी विष की ज्वाला मे लहरा रही थी। उसने सर्पिणी की भाति होठो पर जीभ का पुचारा फेरते हुए भ्रात नेत्रों से आचार्य की ओर देखकर कहा—"मै नही जाऊंगी पिता, मुझ पर दया करो।"

आचार्य ने कठोर स्वर मे कहा—"मूर्ख लडकी, क्या तू राजकाज का विरोध करेगी?"

"तो आप मार डालिये पिता, मै नही जाऊंगी।"

आचार्य ने फिर चाबुक उठाया। तरुण अब अपने को आपे मे नही रख सका। खड्ग ऊचा करके धडधडाता गर्भगृह मे घुस गया। उसने कहा—"आचार्य पाद, यह घोर अन्याय है, यह मै नही देख सकता।"

आचार्य और राजपुरुष दोनो ही अवाक् रह गये। वे हडबड़ा कर खडे हो गये। राजपुरुष ने खड्ग उठाकर कहा—

"तू कौन है रे, छिद्रान्वेषी? तूने यदि हमारी बाते सुन ली है तो तुझे अभी मरना होगा।"

उन्होने ताली बजाई और चार सशस्त्र योद्धा गर्भगृह मे आ उपस्थित हुए। राजपुरुष ने कहा—"इसे बन्दी करो।"

युवक ने खड्ग ऊचा करके कहा—'कदापि नही।'

आचार्य ने कडी दृष्टि से युवक को ताक कर उच्च स्वर से कहा—"खड्ग रख दो, आज्ञा देता हूं।"

एक अतर्कित अनुशासन के वशीभूत होकर युवक ने खड्ग रख दिया। सैनिको ने उसे बाध लिया।

राजपुरुष ने कहा —"इसे बाहर ले जाकर तुरन्त बध कर दो।"

आचार्य ने कहा—"नही, अभी बन्दी करो।"

राजपुरुष ने आचार्य की बात रख ली। सैनिक तरुण को ले गये। आचार्य ने राजपुरुष के कान मे कुछ कहा, उसे सुनकर वे चौंक पड़े। उनका चेहरा पत्थर की भाति कठोर हो गया।

आचार्य ने मुस्कराकर कहा-"चिन्ता की कोई बात नही। मै उसे ठीक कर लूगा। मेरे विचार में कुण्डनी के साथ इसी का चम्पा जाना ठीक होगा।"

राजपुरुष विचार मे पड गये। आचार्य ने कहा—"द्विविधा की कोई बात नही है।"

"जैसा आपका मत हो, परन्तु अभी उसे उसका तथा कुण्डनी का परिचय नही दिया जाना चाहिए।"

"किन्तु आर्या मातङ्गी से उसे भेट करनी होगी।"

"क्यो ?"

"आवश्यकता है, मैंने आर्या को वचन दिया है।"

"नही, नही आचार्य, ऐसा नही हो सकता।"

आचार्य ने रूखे नेत्रो से राजपुरुष को देखकर कहा—चाहे भी जो हो, मै निर्मम नीरस वैज्ञानिक हू, फिर भी आर्या का कष्ट अब नही देख सकता। आप राजपुरुष मुझ वैज्ञानिक स भी अधिक कठोर और निर्दय है।"

"किन्तु आर्या जब तक उस रहस्य का उद्घाटन नही करतीं . ।"

"उन पर बल प्रयोग का आपको अधिकार नही है ।"

"किन्तु सम्राट् की आज्ञा ·· · ।"

"अब मै उनकी प्रतीक्षा नही कर सकता, मै सम्राट् से समझ लूगा, आप जाइये । कुण्डनी प्रात: आप के पास पहुच जायगी ।"

"और वह · · वह खैर, वह तरुण भी ?"

आचार्य हंस दिये । उन्होने कहा—उसका नाम सोमप्रभ है, वह भी सेवा मे पहुच जायगा ।"

राजपुरुष का सिर नीचा हो गया । वे किसी गहन चिन्ता के मन मे उदय होने के कारण व्यथित दृष्टि से आचार्य की ओर देखने लगे । आचार्य ने करुण स्वर मे कहा—

"जाइये आप, विश्राम कीजिये, दु स्वप्नो की स्मृति से कोई लाभ नही है ।"

राजपुरुष ने एक दीर्घश्वास ली और अन्धकार मे विलीन हो गये । शस्त्रधारी शरीर रक्षक उसी अन्धकार म उन्हे घेर कर चलने लगे ।

: १३ :

बन्दी की मुक्ति

बहुत देर तक राजगृह का वह अद्भुत वैज्ञानिक उस एकात भयानक कुज मे चपचाप अकेला टहलता रहा। वह होठो ही होठो मे गुन गुना रहा था। कभी २ उसके हाथो की मुट्ठियाँ बंध जाती और वह बहुत उत्तेजित हो जाता। सम्भवतः वह अतीत की अति कटु और वेदनापूर्ण स्मृतियो को विस्मृत करने की चेष्टा कर रहा था। थोड़ी देर मे वह शात होकर एक व्याघ्र चर्म पर बैठ गया। बहुत देर तक वह ध्यानस्थ वही बैठा रहा। फिर वह उठा, कक्ष का द्वार सावधानी से बन्द करके वह उसी अन्धकारपूर्ण गर्भ गृह मे टेढी तिरछी सुरगो मे चलता रहा, एक जलती हुई मशाल उसके हाथ मे थी। अन्त मे वह एक गर्भ गृह के द्वार पर आकर खडा हो गया। प्रहरियो ने उसका प्रणिपातपूर्वक अभिवादन किया। प्रहरी से उसने कहा—

"क्या बन्दी सो रहा है।"

"नही जग रहा है?"

"तब ठीक है, द्वार खोल दो।"

प्रहरी ने द्वार खोल दिया। वैज्ञानिक ने भीतर जा कर देखा, युवक एक प्रशात मुद्रा से एक काष्ट फलक पर बैठा है। आचार्य ने स्निग्ध स्वर मे कहा—"तुम्हारा ऐसा अविनय आयुष्मान।"

"किन्तु मै ....."

"चुप, एक शब्द भी नही—मेरे पीछे आओ।" आचार्य ने द्वार की ओर मुह किया। पीछे २ युवक था। वे उन्हीं टेढी-तिरछी सुरगो में चलते गये। अन्त मे एक कक्ष के द्वार पर आकर वे रुके। वह एक प्रशस्त कक्ष था। एक दीपक वहा जल रहा था। बहुत से मृतक पशु

पक्षियो के शरीर वहा लटक रहे थे। अनेक जडी बूटिया थैलियो में भरी हुई थी। बहुतसी पिटक, भाण्ड, और काच की शीशियो मे रसायन द्रव्य भरे थे। यह सब देख कर युवक भय और घबराहट से भौचक रह गया। एक शिला पीठ पर बैठ कर आचार्य ने तरुण को भी निकट बैठने का सकेत किया। वे कुछ देर उसके नेत्रो की ओर देख कर बोले—"तुम्हे अपने बाल्य काल की कुछ स्मृति है ?"

"बहुत कम आचार्यपाद।"

"तुम आठ वर्ष की अवस्था तक मेरे पास यहीं रहे हो। स्मरण है ?"

"कुछ कुछ।"

"अब, जब तुम तक्षशिला से चले थे—तब वयस्य बहुलाश्व ने तुम से मेरे विषय मे कुछ कहा था ?"

"कहा था आचार्य। आचार्य बहुलाश्व ने कहा था—सोम, तुम्हे मैंने स्त्र और शास्त्रो का पूर्ण अध्ययन करा दिया, तुम्हारी बुद्धि प्रखर कर दी। १८ वर्षों में तुम एक अजेय योद्धा, रणपण्डित और सर्व शास्त्र निष्णान्त पण्डित हो गये। अब इस शौर्य और प्रखर बुद्धि का उपयोग तुम्हे राजगृह के समर्थ सिद्ध योगेश्वर वयस्य शाम्बव्य काश्यप बतायगे।"

'बस इतना ही कहा था ?"

"और भी कहा था। कहा था, तुम सीधे उन्ही के पास जाना, वे जो कुछ कहे वही करना। तुम पूर्वीय भारत के एक महान् साम्राज्य के महारथी सूत्रधार होगे। तुम्हारा दायित्व बहुत भारी होगा।"

"ठीक है, परन्तु अभी तुमने अविनय ही नहीं किया, गुरुतर अपराध भी किया है, जिसका दण्ड मृत्यु है, परन्तु इस बार तो मैंने तुम्हे बचा लिया, पर मै सोच रहा हू कि कही वयस्य बहुलाश्व ने तुम्हारे बुद्धिवाद के सम्बन्ध में धोखा तो नही खाया। गुरुजन के क्रिया-कलाप पर इस प्रकार उत्तेजित हो जाना, बड़ी ही मूर्खता की बात है।"

तरुण लज्जित हो गया । उसने कहा—"आचार्यपाद, मुझे क्षमा कीजिए, मैंने समझा एक निरीह अबला पर अत्याचार हो रहा है ।"

आचार्य ने क्रुद्ध होकर कहा—"वत्स, अत्याचार तुम्हारे जैसे अविवेकी तरुण करते है, न कि हमारे जैसे विरक्त, जिन्होने विश्व मे अपने लिए घृणा, भय, विरक्ति और अशौच ही प्राप्त किया है । तुम्हे अभी यह जानना शेष है कि राजतन्त्र शस्त्र विद्या और बुद्धि बल पर ही नही चलता । यदि ऐसा होता तो योद्धा लोग ही सम्राट् बन जाते । वत्स, राजतन्त्र के बडे जटिल तान-बाने है, उनके अनेक रूप बडे कुत्सित, बडे वीभत्स और अप्रिय है । राजवर्गी पुरुष को वे सब करने पडते है, जो सत्य है, शिव है वहा सुन्दर नही है आयुष्मान्, नही तो मानव समाज सदैव लोहू की नदी बहाना ही अपना परम पुरुषार्थ न समझता ।"

यह कहते कहते आचार्य उत्तेजना के मारे कापने लगे । उनका पीला भयानक अस्थिककाल जैसा शरीर एक प्रेत के समान दीखने लगा और उनकी वाणी प्रेतलोक से प्रेरित सी प्रतीत होने लगी ।

युवक भय, और आचार्य के विचित्र प्रभाव से ऐसा अभिभूत हुआ कि कुछ बोल ही न सका । आचार्य एकाएक उ खडे हुए । उन्होने कहा—"जाओ, अब तुम विश्राम करो, कल प्रातः तुम्हे आर्य वर्षकार की सेवा मे उपस्थित होकर तुमने अब तक जो सीखा है, उसका यथावत् परिचय आर्य वर्षकार को देना होगा ।"

आचार्य ने अपनी सूखी कापती हुई उंगली उठाई । तीखी चितवन से देखा और युवक को जाने का सकेत किया । तरुण ने उठकर आचार्य को नमस्कार किया और कहा—"एक निवेदन और है । मुझे अभी तक मेरे माता पिता का नाम नही मालूम है, मेरा क्या कुलगोत्र है यह भी मै नही जानता हू, क्या आचार्यपाद मुझे मेरे माता पिता और कुलगोत्र से परिचित कर सकेगे ?"

"वयस्य बहुलाश्व ने क्या कहा था ?"

"उन्होने कहा था—तुम्हारा आत्मपरिचय ससार मे केवल तीन व्यक्ति जानते है, उनमे एक आचार्य शाम्बव्य काश्यप है। शेष दो का नाम नही बताया। इसी से मैंने आचार्यपाद से निवेदन किया।"

"वह समय पर जानोगे।"

और वे तेज़ चाल से एक ओर जाकर अधकार मे विलीन हो गये। उस भयानक स्थान मे तरुण अकेला ठहरने का क्षण भर भी साहस न कर सका। वह शीघ्रता से यज्ञशाला मे चला आया। उस अद्भुत वैज्ञानिक का विचित्र प्रभाव और उस आनन्द सुदरी बाला का वह अप्रतिमरूप और वह मर्मदंश उसके मस्तक म तूफान उठाने लगा।

: १४ :

राजगृह का वैज्ञानिक

"रात मे सो नही पाए आयुष्मान्, तुम्हारी आखे भारा ा रही है ?"

"आचार्य, नही ही सो सका।"

"ठीक है, अकस्मात् ही तुम्हे अतर्कित तथ्य देखना पडा। परन्तु क्या तुमने मेरी प्रयोगशाला देखी ?"

"अभी मित्र सुन्दरम् ने जो यत्किञ्चित दिखाई, वही।"

'अधिक तो समय समय पर जानोगे सोम, ये सब विविध जन्तुओ के पित्त, रक्त और आतो के रस, विविध द्रव्य गुण विपाक वाली वनस्पति, अमोघ सामर्थ्यवान् रस रसायन, जो इन पिटको और भाण्डो एवं काँचकूप्यको मे देख रहे हो, वास्तव मे इनमे जीवन और मृत्यु बन्द है।"

"जीवन और मृत्यु ? इसका क्या अभिप्राय है आचार्य ?"

"अभिप्राय है राजतन्त्र, तुमने योद्धा का कार्य किया है, तुम जानते हो युद्ध करना और युद्ध मे विजय पाना दोनो भिन्न २ कार्य है, और दोनो का मूल्य बहुत अधिक है। अपरिमित धन जन नाश करके ही युद्ध किए जाते है और युद्ध जय किये जाते है।"

"यह तो सत्य है, आचार्य।"

"परन्तु इन काँच कूप्यको में बन्द रसायन उस कठिनाई को कम कर देते है। बहुत धन जन का क्षय बच जाता है। तथा जय निश्चित मिल जाती है।"

"किस प्रकार आचार्य ?"

"इनमें बहुतो मे ऐसे हलाहल विष है जिन्हे कूप, तालाब

और जलाशयो मे डाल देने से, उसके जल को पीने ही से शत्रुपक्ष में महामारी फैल जाती है। बहत से ऐसे रसायन है कि शत्रु सैन्य विविध रोग मे ग्रसित हो जाता है। वायु विपरीत हो जाता है, ऋतु विपर्यय हो जाती है। इनमें कुछ ऐसे द्रव्य है कि यदि उन्हे हवा के रुख पर उडा दिया जाय तो शत्रु सैन्य के सम्पूर्ण अश्व, गज अन्धे हो जाय। सैनिक मूक, बधिर और जड हो जाय।"

"परन्तु यह तो अति भयानक है, आचार्य ?"

"फिर भी युद्ध से अधिक नही। युद्ध तो जीवन की अपरिहार्य घटना है आयुष्मान। युद्ध ही मानव सभ्यता का इतिहास है। युद्ध ही मानवता का विकास है, तुमने यही तो अपने जीवन मे सीखा है।"

"मैंने और भी कुछ सीखा है आर्य।"

"और क्या सीखा है, आयुष्मान् ?"

"मैंने सीखा है, ये युद्ध मानवता के प्रतीक नही, पशुता के प्रतीक हैं। मनुष्य मे ज्यो ज्यो पशुत्व कम होकर मानवता का विकास होगा वह युद्ध नही करेगा। जब वह पूर्ण मानव होगा तो उसमे से युद्ध भावना नष्ट हो जायगी। वह रोषहीन सतृप्त मानव होगा।"

"अरे, यह तूने उस शाक्य श्रमण गौतम से ही सीखा है न आयुष्मान्, जो आर्यधर्म का प्रबल विरोधी है। वह वेद प्रतिपादित श्रेणी विभाग को नही मानता है। वह आर्य अनार्य को समान पद देता है। वह ब्राह्मणो के उत्कर्ष का विरोधी है। यज्ञो को हेय बताता है, और स्त्रियो को निर्वाण का अधिकार देता है।"

"परन्तु आचार्य, मनुष्य तो जन्मत विभागरहित है। आचरण और बुद्धि के विकास से ही तो सौष्ठव होता है, रहे वे यज्ञ जो मूक पशुओं के रुधिर मे डूबे हुए है, वे झूठे देवताओ के नाम पर भारी ढोग है।"

"शान्त पाप, यह ब्राह्मण विद्रोह है सौम्य, सम्राट् भी यही कहते है। वे भी उसी गौतम के शिष्य हो गये है। शारिपुत्र मौद्गलायन,

अश्वजित, आचार्य महाकाश्यप और उनके भाई जो प्रख्यात विद्वान् कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे, सब उसके शिष्य बन गए है। मगध के सेट्ठि शतकोटयाधिप यश सभी अपने चारो पुत्रो के सहित उसके शिष्य बन गये है और तुम भी आयुष्मान···

"किन्तु आचार्य, यह छल कपट "

"यह कौशल है तात, अपनी हानि न कर शत्रु का सर्वनाश करना। सम्मुख युद्ध करके समान खतरा उठाना पशु बुद्धि है और कौशल से शत्रु को नष्टकर देना तथा स्वय सुरक्षित रहना मनुष्य बुद्धि है। यही कूटनीति है।"

"तो आचार्य आपकी इन काचकूप्यको पे सब कौशल ही कौशल बन्द है?"

"अधिक वही है, कहना चाहिये। इन काचकूप्यको के रसायन को छूकर, खाकर, देखकर मनुष्य और जनपद अन्धा, बहरा, उन्मत्त, नपुसक, मूर्च्छित तथा मृतक हो जाता है, वत्स!"

"ओह, कितना दुस्सह है आचार्य?"

"पर उससे अधिक नही। जब तुम स्वस्थ पुरुष के कलेजे मे दया-भाव हीन होकर खड्ग घुसेड देते हो, तुम्हारे बाण निरीह व्यक्तियो की पसलियो मे बलात् घुस जाते है, जब तुम जीवित, आशापूर्ण हृदय रखने वाले तरुण का अनायास ही सिरच्छेद कर डालते हो। रणोन्माद मे यही तो करना पडता है तुम्हे।"

"पर वह युद्ध है आचार्य।"

"यह भी वही है वत्स, उसमे शौर्य चाहिये इसमे बुद्धि कौशल।" राजतन्त्र की धवल अट्टालिकाये और राजमहलो के मोहक वैभव ऐसे ही कदर्य कार्यों से प्राप्त होते है। तुम देखोगे वत्स, कि जिस विजय का सेहरा तुम्हारी सेना के सिर बधता है वह इन्ही पिटको और काच्यकूप्यको से प्राप्त होती है। परन्तु अधिक वितण्डा से क्या, तुम्हे अभी आर्य वर्षकार के निकट जाना है। स्मरण रखो, तुम भरत खण्ड

के एक महान् व्यक्तित्व के सामने जा रहे हो। आज पृथ्वी पर दो ही राजतन्त्री पुरुष जीवित हैं। एक कौशाम्बी में यौगन्धरायण और दूसरे राजगृह में वर्षकार।"

"योगन्धरायण को देख चुका हूं। आचार्य, कौशाम्बीपति उदयन के साथ मैं देवासुर संग्राम में सम्मिलित हुआ हूं। तभी आर्य यौगन्धरायण का कौशल देखा है।"

"तो अब आर्य वर्षकार को देखो आयुष्मान्। परन्तु एक बात याद रखना, मगध साम्राज्य के प्रति एकान्त, एकनिष्ठ रहना और दो व्यक्तियों के प्रति अविनय न करना, एक सम्राट् के प्रति, दूसरे वर्षकार के प्रति।"

"और आचार्यपाद ?"

"मैं तुम्हें अभय देता हूं, मेरे लिए तुम वही आठ वर्ष के बालक हो।"

"आचार्यपाद का यह आदेश याद रखूंगा, अनुग्रह भी।"

"तो तुम अभी कुण्डनी को लेकर वयस्य वर्षकार के पास जाओ और उनके आदेश का यत्नपूर्वक पालन करो।"

"कुण्डनी कौन ?"

"कल रात जिसे देखा था।"

"वह कौन है ?"

"तुम्हारी भगिनी।"

"इस अज्ञात कुलशील भाग्यहीन की कोई भगिनी भी है ?

"कहा तो, है। परन्तु इससे अधिक जानने की चेष्टा न करो। गुरुजन के आदेशों पर कौतूहल ठीक नहीं, एक वचन दो सोम।"

"आचार्य की क्या आज्ञा है ?"

"यदि वयस्य वर्षकार तुम्हें किसी अभियान पर कुण्डनी के साथ भेजें तो · "

"अभियान पर कुण्डनी के साथ ?

"छी, छी, मैंने कहा था गुरुजन के आदेश पर कौतूहल नहीं प्रकट करना चाहिए।"

"भूल हुई आचार्य, इस बार क्षमा करें।"

"मैं कह रहा था यदि कुण्डनी के साथ तुम्हें यात्रा करनी पड़े तो प्राण देकर कुण्डनी की रक्षा करना।"

"ऐसा ही होगा आचार्य, किन्तु इस समय राजगृह पर मालवराज चण्डमहासेन के अभियान का भय है। मैं समझता था यहां मेरी सेवाओं की आवश्यकता होगी।"

"यह मगध महामात्य के विचार का विषय है भद्र।" आचार्य ने उपेक्षा से कहा। फिर आचार्य ने उच्च स्वर से कुण्डनी को पुकारा। कुछ ही क्षण में वही रात वाली बाला आ खड़ी हुई। इस समय वह एक काले लम्बे वस्त्र से अपने को आवेष्ठित किये हुई थी। उसका चम्पे की कली के समान पीतप्रभमुख, उस पर वही विलासपूर्ण मदभरी आखें और लालसा से लबालब होठ, कुंचित भृकुटि विलास, सब कुछ वही रात वाला था। देख कर युवक ने आंखें नीची कर लीं।

आचार्य ने कहा—"सो तुम बिल्कुल तैयार हो? यह तुम्हारा भाई और रक्षक सोम है, इस पर विश्वास करना पुत्री! और यह लो, इसे अत्यन्त सावधानी से प्रयोग करना।" इतना कह कर एक हाथी दांत के मूठ की छोटी सी किन्तु अति सुन्दर कटार उसे पकड़ा दी। फिर उन्होंने दोनों हाथ उठा कर कहा—"शुभास्ते पन्थान स्यु।" वे कुछ देर चुप रहे।

मालूम होता है, कहीं से प्रादुर्भाव उनके नेत्रों में आ गया। उसे क्षणभर ही में रोक कर कहा—

"सोम्य सोम, तुम्हें एक और आवश्यक काम करना होगा, महामात्य से आदेश लेकर जब राजगृह से प्रस्थान करने लगो तब प्रस्थान से पूर्व तुम एकबार आर्यामातङ्गी से साक्षात् करना।"

"आर्यामातङ्गी कौन?"

आचार्य ने क्रुद्ध नेत्रों से सोम की ओर ताक कर कहा—"फिर कौतूहल? क्या तुमने मेरा आदेश नहीं सुना।"

सोम ने नत शिर होकर कहा—"क्षमा आचार्य, मेरी भूल हुई ।"

"तुम्हारे अश्व बाहर तैयार है ।" आचार्य ने रुखाई से कहा—"अब जाओ तुम ।"

कुण्डनी ने कटार को वेणी मे छिपा कर भूमि मे गिर कर आचार्य को प्रणिपात किया । फिर दृढ स्वर मे कहा—"चलो साम ।"

सोम ने पाषाण कङ्काल के समान खडे आचार्य का अभिवादन किया और मन्त्रप्रेरित सा कुण्डनी के पीछे चल दिया ।

———

: १५ :

मगध महामात्य आर्य वर्षकार

मगधमहामात्य के सौध, सौष्ठव और वैभव को देखकर सोम हतबुद्धि हो गया। उसने कुभा, कपिशा, काम्बोज, पार्शुक, यवन, पाचाल, अवन्ती, और कौशाम्बी के राजवैभव देखे थे। कोसल की राजनगरी श्रावस्ती और साकेत भी देखी थी, पर इस समय जब उसने कुण्डनी के साथ राजगृह के अन्तरायण के अभूतपूर्व वैभव को देखते हुए महामात्य के सौध के सम्मुख आकर वहा का विराट् रूप देखा तो वह समझ ही न सका कि वह जाग्रत है या स्वप्न देख रहा है।

प्रतिक्षा गृह मे बहुत से राजवर्गी और अर्थी नागरिक बैठे थे। दण्डधर और प्रतीहार दौड धूप कर रहे थे। राजकर्मचारी अपने २ कार्य मे रत थे। सोम के वहा पहुंचते ही एक दण्डधर ने उसके निकट आकर पूछा—"भन्ते, यदि आप आचार्य शाम्बव्य काश्यप के यहा से आ रहे है तो आमत्यचरण आपकी प्रतीक्षा कर रहे है।"

"निस्सदेह मित्र, मैं वही से आया हू, मेरा नाम सोमप्रभ है।"

"तो भन्ते, इधर से आइये।"

दण्डधर उसे भीतर ले गया। अनेक अलिन्दो और प्रकोष्ठो को पार कर जब वह आमात्य के कक्ष मे पहुंचा तो देखा, आमात्य रजत पीठ पर झुके हुए कुछ लिख रहे है। सोम को एक स्थान पर खडा कर दण्डधर चला गया। थोडी देर मे लेख समाप्त कर आमात्य ने ज्यो ही सिर उठाया, उसे देखते ही सोमप्रभ भयभीत होकर दो कदम पीछे हट गया। उसने देखा—महामात्य और कोई नही, रात मे आचार्य के गर्भगृह में जिन राजपुरुष को देखा था वही है।

आमात्य भी सोम को देखकर एक दम विचलित हो उठे। वे हठात्

आसन छोडकर उठ खडे हुए, परन्तु तत्क्षण ही वे सयत होकर आसन पर आ बैठे।

सोम ने आत्मसवरण करके खड्ग कोश से निकाल कर उष्णीष से लगा आमात्य को सैनिक पद्धति से अभिवादन किया। आमात्य पीठ पर बल देकर बैठे और कठोर दृष्टि से उसकी ओर कुछ देर देखते रहे। फिर भृकुटी मे बल डालकर बोले—

"अच्छा, तुम्ही वह उद्धत युवक हो, जिसे छिद्रान्वेषण की गन्दी आदत है।"

"आर्य, मै अनजान में अविनय और गुरुतर अपराध कर बैठा, किन्तु मेरा अभि प्राय बुरा न था।"

"तुमने तक्षशिला में शस्त्र शास्त्र और राजनीति की शिक्षा पाई है न ?"

"आर्य का अनुमान सत्य है।"

"तब तो तुम्हारे इस अपराध का गौरव बहुत बढ जाता है।"

"किन्तु आचार्य ने मेरी मन शुद्धि को जानकर मेरा अपराध क्षम कर दिया है, अब मै आर्य से क्षमा प्रार्थना करता हू।"

आमात्य बडी देर तक होठ चबाते और दोनो हाथो की उंगलिया ऐंठते रहे, फिर एक मर्मभेदिनी दृष्टि युवक पर डालकर कहा—

"हुआ, परन्तु क्या तुम अपने दायित्व को समझने मे समर्थ हो ?

"मै आर्य का अनुगत हू।"

"क्या कहा तुमने ?"

"मै सोमप्रभ, मगधमहामात्य का अनुगत सेवक हू।"

"और मगधसाम्राज्य का भी ?"

"अवश्य आर्य, मै सम्राट् के प्रति भी अपना एकनिष्ठ सेवा भाव निवेदन करता हू ?

आमात्य ने घृणा से होठ सिकोड कर कहा—'यह तो मैंने नहीं पूछा, परन्तु जब तुमने निवेदन किया है तो पूछता हू यदि सम्राट्

और साम्राज्य मे मतभेद हो तो तुम किस के अनुगत होगे।"

"साम्राज्य के आर्य।"

आमात्य ने मुस्करा कर कहा—"और यदि आमात्य और साम्राज्य मे मतभेद हुआ तब ?"

क्षण भर सोमप्रभ विचलित हुआ, फिर उसने दृढ़ स्वर में किन्तु विनम्र भाव से कहा—

'साम्राज्य के आर्य।"

आमात्य की भृकुटी मे बल पड़ गये। उन्होने रूखे स्वर मे कहा—

"किंतु युवक, तुम अज्ञात कुल शील हो।"

"तो मगध महामात्य मेरी सेवाओ को अमान्य कर सकते है और अनुमति दे सकते है कि मै आचार्य बहुलाश्व और आचार्य पाद काश्यप से की गई प्रतिज्ञाओ से मुक्त हो जाऊ ?"

'अपने आचार्यों से तुमने क्या प्रतिज्ञाए की है आयुष्मान, ?"

"मगध के प्रति एकनिष्ठ रहने की, आर्य !"

"क्यो ?"

"क्योकि मै मागध हूं। तक्षशिला से चलते समय बहुलाश्व आचार्य पाद ने कहा था कि तुम मगध साम्राज्य के प्रति प्राण देकर भी एक निष्ठ रहना, और आचार्य पाद काश्यप ने कहा था—महामात्य के आदेश का पालन प्रत्येक मूल्य पर करना।"

"आचार्य ने ऐसा कहा था ?" आमात्य ने मुस्करा कर कहा। फिर कुछ ठहर कर धीमे स्वर से बोले —

"यह यथेष्ट है आयुष्मान, कि तुम मागध हो, अच्छा तो तुम याद रखो—मगध साम्राज्य और मगध आमात्य के तुम एक सेवक हो।"

"निश्चय आर्य।"

"ठीक है, कुण्डनी से तुम परिचित हुए ?"

"वह मेरी भगिनी है आर्य"

"और वयस्य काश्यप ने तुम्हे उसका रक्षक नियत किया है"

"जी हा आर्य।"

"मै तुम्हे अभी एक गुरुतर भार देता हू। तुम्हे इसी क्षण एक जोखिम पूर्ण और अतिगोपनीय यात्रा करनी होगी।"

"मै प्रस्तुत हू।"

"तो तुम इसी क्षण कुण्डनी को ले कर चम्पा को प्रस्थान करो। तुम्हारे साथ केवल ५ योद्धा रहेगे। वे मैने चुन दिये है। सभी जीवट के आदमी है, वे बाहर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे है। किन्तु तुम्हारी यात्रा कोई जान न पावेगा, तथा तुम्हे कुण्डनी की रक्षा भी करनी होगी, उससे भी अधिक और एक वस्तु की।"

"वह क्या आर्य ?"

"यह, "वर्षकार ने एक पत्र सोमप्रभ को देकर कहा—'इसे जल्द से जल्द सेनापति चन्डभद्रिक को पहुचाना होगा। पत्र निरापद उनके स्थान पर पहुचना अत्यन्त आवश्यक है।"

"आर्य निश्चिन्त रहे।"

"परन्तु यह सहज नही है आयुष्मान, राह मे दस्यु और असुरो के जनपद है। फिर तुम्हे मै अधिक सैनिक भी नही ले जाने देता।"

"वचन देता हू, पत्र और कुण्डनी ठीक समय पर सेनापति के पास पहुच जावेगे।"

"कुण्डनी नहीं, केवल पत्र। कुण्डनी सेनापति के पास नही जायगी। सेनापति को उसकी सूचना भी नही होनी चाहिये।"

"ऐसा ही होगा आर्य, किन्तु कुण्डनी को किसके सुपुर्द करना होगा ?"

"यह तुम्हे चम्पा पहुचने पर मालूम हो जायगा।"

"जो आज्ञा आर्य।"

आमात्य ने दण्डधर को कुण्डनी को भेज देने का सकेत किया। कुण्डनी ने आमात्य के निकट आकर उनके चरणो में प्रणाम किया। आमात्य ने उसके मस्तक पर हाथ धर कर कहा—

"कुण्डनी"

कुण्डनी ने विह्वल नेत्रो से आमात्य की ओर देखा।

आमात्य ने कहा—"सम्राट् के लिये।"

कुण्डनी उसी भाति स्थिर रही। आमात्य ने फिर कहा--"साम्राज्य के लिये।"

कुण्डनी फिर भी स्तब्ध रही। आमात्य ने कहा--"मागध जनपद के लिये।"

कुण्डनी अब भी अचल रही। आमात्य ने कहा—"हाथ दो कुण्डनी।"

कुण्डनी ने अपना दक्षिण हाथ आमात्य के हाथ मे दे दिया।

आमात्य ने कहा—"काप क्यो रही हो कुण्डनी?"

कुण्डनी बोली नही। आमात्य ने उसके मस्तक पर हाथ धर के कहा—'सोम की रक्षा करना, सोम तुम्हारी रक्षा करेगा, जाओ।'

कुण्डनी ने एक शब्द भी बिना कहे भूमि में गिरकर प्रणाम किया।

आमात्य ने एक बहुमूल्य रत्नजटित खड्ग तरुण को देकर कहा—'सोम, इसे धारण करो। आजसे तुम मगध महामात्य की अगरक्षिणी सेना के अधिनायक हुए।'

सोम ने झुककर खड्ग दोनो हाथों मे लेकर आमात्य का अभिवादन किया और दोनो व्यक्ति पीठ फेरकर चल दिये।

आमात्य के मुख पर एक स्याही की रेखा फैल गई। उन्हे प्राचीन स्मृतियो व्यथित करने लगी। और वे अधीर भाव से कक्ष में टहलने लगे।

बाहर आकर सोम ने कहा—"कुण्डनी, अभी मुझे एक मुहूर्त भर राजगृह में और काम है।"

"आर्या मातङ्गी के दर्शन न?"

"हां, क्या तुम उन्हे जानती हो?"

"जानती हूं।"

"तो तुम कह सकती हो वे कौन हैं ?"

"क्या तुम भूल गये सोम, राजनीति मे कौतूहलाक्रान्त नहीं होना चाहिए।"

"ओह, मै बारम्बार भूल करता हू। पर क्या तुम भी साथ चलोगी ?"

"नही, वहा प्रत्येक व्यक्ति का जाना निषिद्ध है।"

"तब मै कैसे जाऊंगा ?"

"पिता ने कुछ व्यवस्था कर दी होगी।"

"तब तुम सैनिको को लेकर दक्षिण तोरण पर मेरी प्रतीक्षा करो और मै आर्या मातङ्गी के दर्शन करके आता हूं।"

दोनो ने दो दिशाओं मे अपने अश्व फेरे।

"प्रतीक्षा क्यो ? तुम भी चलो कुण्डनो।"

"नही सोम, वहा प्रत्येक व्यक्ति का जाना निषिद्ध है।"

सोम ने और हठ नही किया। सोम आर्या मातङ्गी के मठ की ओर और कुण्डनी सैनिको के साथ नगर के दक्षिण तोरण की ओर चल दिये।

———

: १६ :

आर्या मातङ्गी

नगर के बाहर एक बहुत पुराना सूना मठ था। वह मठ गोविन्द स्वामी के मठ के नाम से प्रसिद्ध था। गोविन्द स्वामी अब नही है, केवल उनकी गद्दी है। राजगृह के आबाल-वृद्ध उसी गद्दी को आज भी पूजा करते है। गोविन्द स्वामी वेदपाठी ब्राह्मण थे और उनके तप और दिव्य ज्ञान की बहुत गाथाए राजगृही मे प्रसिद्ध है। यह मठ बहुत विस्तार मे था। कहते है कि जब राजगृही विद्यापीठ की स्थापना नही हुई थी तब इसी मठ मे रह कर देश देश के बटुक षड्ङ्ग वेद का अध्ययन करते थे। यह भी कहा जाता है कि वर्तमान सम्राट् बिम्बसार के पिता को इन्ही गोविन्द स्वामी ने अश्वमेध यज्ञ कराकर सम्राट् की उपाधि दी थी। यह भी कहा जाता है कि राजगृही का शिशुनाग वश असुरो का है। उन्हे आर्य धर्म मे गोविन्द स्वामी ही ने प्रतिष्ठित किया, और सर्व प्रथम "सम्राटोऽयमिति सम्राट्ऽयमिति" घोषित करके शिशुनाग वशो राजा को देवपद दिया। तभी से मगध के सम्राट को लोग 'देव' कह कर पुकारते है। सम्राट् के पिता गोविन्द स्वामी की बहुत पूजा अचना तथा सम्मान करते थे। वे सदैव पाव प्यादे उनसे मिलने जाते थे। उन्ही के जीवन काल मे गोविन्द स्वामी की मृत्यु हुई। उस समय उन्होने एक अबोध आठ वर्ष की बालिका अपने पीछे छोडी। उसे सम्राट् के हाथ मे सौप कर कहा—'सम्राट् इसकी रक्षा का भार ले।' और सम्राट् ने कहा था—'मेरे पुत्र बिम्बसार के बाद यही कन्या मेरी पुत्री है। राजपुत्री की भाति ही उसका लालन पालन होगा।' परन्तु गोविन्द स्वामी ने कहा—'नही, नही सम्राट्! मातङ्गी का लालन पालन ब्राह्मण कन्या की ही भाति होना चाहिये और उसकी शिक्षा भी उसी प्रकार होनी चाहिए।' गोविन्द स्वामी की इस

पुत्री के अतिरिक्त उनका एक शिष्य ब्राह्मण कुमार था। वह किसका पुत्र था यह कोई नहीं जानता। सभी जानते थे कि गोविन्द स्वामी के किसी अतिप्रिय स्वजन का वह बालक है। गोविन्द स्वामी के पास वह बहुत छोटी अवस्था से था। उसका नाम वर्षकार था। वर्षकार और मातङ्गी साथ ही साथ बालकाल मे रहे। गोविन्द स्वामी ने बालक वर्षकार को भी जो उस समय ११ वर्ष का था, सम्राट् को सौंप कर कहा था—'यह मेरे एक अतिप्रिय आत्मीय का पुत्र है, इसके लक्षण राजपुरुषों के है और एक दिन यह बालक तुम्हारे साम्राज्य का कर्णधार बनेगा। इसकी शिक्षा दीक्षा देखभाल कर सावधानी से करना। और इसे मगध का महामात्य बनाना। "परन्तु गोविन्द स्वामी ने अत्यन्त सतर्कता से सम्राट् से वचन ले लिया था कि वर्षकार और मातङ्गी दोनो ही अन्ततः इसी मठ मे उस समय तक रहे जब तक दोनो का विवाह उपयुक्त समय पर उपयुक्त पात्रो से न हो जाय। सम्राट् के सदेह करने पर गोविन्द स्वामी ने यह भी कह दिया था कि मातङ्गी के साथ कदापि वर्षकार का विवाह नहीं हो सकता। परन्तु मातङ्गी का विवाह उसके वयस्क होने पर उसकी स्वीकृति से ही किया जाना चाहिये।

गोविन्द स्वामी मर गये और सम्राट् ने मृत्यो और उपाध्यायो की व्यवस्था करके वर्षकार और मातङ्गी की शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया। इस बालक वर्षकार के सबध में केवल एक पागल अपवाद करता सुना गया था। वह कभी राजगृही में दिखाई दे जाता और पुकार २ कर कहता, 'देखो देखो इस पाखण्डी गोविन्द स्वामी को—इस बालक का मुह इससे कितना मिलता है। इसके बाद वह उन्मत्त हास हंसता कहीं को भाग जाता था। गोविन्द स्वामी इस पागल से बहुत डरते थे। वह राजगृह में आया है यह सुनकर वे बहुधा विचलित हो जाते थे। बहुत लोग सन्देह करने लगे थे कि हो न हो, इस पागल से इस बालक का कुछ सम्बन्ध अवश्य है। एक बार तो यह अपवाद इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि इसी पागल की परिणीता पत्नी से गोविन्द

स्वामी ने जार करके यह पुत्र उत्पन्न किया है। इस पर क्रुद्ध होकर उसने पत्नी को मार डाला है और स्वय पागल हो गया है। जो हो, सत्य बात कोई नही जानता था। मरने के समय जो गोविन्द स्वामी ने मातङ्गी मे वर्षकार के विवाह का निषेध किया—इससे लोगो मे यह शका और घर कर गई। परन्तु गोविन्द स्वामी ने सम्राट् से अति गोपनीय रीति से वह बात कही थी, इसी से वह बालक बालिका दोनो ने सुनी भी नही। वही आठ बर्ष की बालिका मातङ्गी और ग्यारह वर्ष का बालक वर्षकार बाललीला समाप्त कर किशोर हुए और यौवन के प्राङ्गण में आ पहुँचे। युवक वर्षकार की तीक्ष्ण बुद्धि, प्रबल धारणा और बलिष्ट देह, शस्त्र और शास्त्र मे उसकी एकनिष्ट सत्ता देख सभी उसका आदर करते थे। सम्राट् उसे पुत्रवत समझते और राजवर्गी लोग उसकी अभ्यर्थना करते। युवराज बिम्बसार उसके अन्तरङ्ग मित्र हो गये थे। दोनो बहुधा अश्व पर आखेट के लिए जाते तथा भाति भाति की क्रीडा करते। परन्तु उधर भीतर ही भीतर अनङ्ग रङ्ग जमा रहा था। देवी मातङ्गी का यौवन विकास पा रहा था और दोनो बाल सखा परस्पर दूसरे ही भाव से एक दूसरे के प्रति आकर्षित हो रहे थे। यह देखकर सम्राट् को चिन्ता बढ गई। परन्तु उसने युवक युवती से कुछ कहना ठीक नही समझा। केवल वर्षकार को राजकाज सीखने के बहाने मठ से हटाकर राजमहालय में बुला कर रख लिया। वर्षकार महालय मे रहने लगे, परन्तु इससे दोनो ही प्राणी वियोग विदग्ध रहने लगे। देवी मातङ्गी का रूप यौवन असाधारण था। निराभरणा तापसी के वेश मे उसका शरीर तप्त काचन की भाति दमकता था। युवराज बिम्बसार भी उस पर मन ही मन विमोहित हो मठ मे अधिक आने जाने लगे थे। परन्तु शीघ्र ही वर्षकार ने ये आखे ताड ली। और एक बार उन्होने खड्ग नंगा करके कहा—"वयस्य युवराज, मगध का सम्पूर्ण साम्राज्य तुम्हारा है, केवल मातङ्गी मेरी है, इस पर दृष्टि मत देना। नही तो मेरे तुम्हारे बीच यह खड्ग है।" बिम्बसार ने हंसकर

और मित्र का हाथ पकड कर कहा—"नही मित्र, मातङ्गी तुम्हारी ही रहे। चिन्ता न करो।" पीछे जब वर्षकार को सम्राट् ने राजमहालय मे बुला कर रखा तो युवराज को मातङ्गी के एकान्त साहचर्य का अधिक अवसर मिल गया। उनके ही अनुग्रह से वर्षकार भी अत्यन्त गुप्तभाव से मातङ्गी से मिलते रहते थे।

अकस्मात् मातङ्गी ने देखा कि वह गर्भवती है, वह अत्यन्त भयभीत हो गई। परन्तु गर्भ युवराज और वर्षकार दोनो मे से किसके औरस से था, मातङ्गी ने यह भेद दोनो पर प्रकट नही किया। वर्षकार और युवराज दोनों ने मिलकर इस अवस्था को सम्राट् से छिपा लिया। और जब शिशु का जन्म हुआ तो वर्षकार ने उसे हठ करके दासी द्वारा कूडे के ढेर पर फेंक आने को कहा। उसे सदेह था कि वह उसका पुत्र नही है। मातङ्गी ने बहुत निषेध किया, रोई, पीटी। पर वर्षकार ने एक न सुनी। दासी एक सूप मे नवजात शिशु को लेकर कूडे पर फेंक आई। दैवयोग से उधर ही से राजगृह के महा वैज्ञानिक सिद्ध साम्बध्य काश्यप जा रहे थे। घूरे पर लाल वस्तु में लपेटी कोई वस्तु पडी देखकर और उसपर कौओं को मण्डराता देख उनके मन में यह जानने की जिज्ञासा हुई कि यह क्या है? निकट जाकर देखा, एक सद्योजात शिशु मुह में अंगूठा डालकर चूस रहा है, निकट ही स्वर्ण दम्म से भरी एक चमडे की थैली भी पड़ी है। आचार्य ने शिशु को उठा लिया और उत्तरीय से ढांप कर अपने मठ मे ले आए, तथा लालन पालन करने लगे। उन्हें शीघ्र ही यह भी पता लग गया कि वह आर्या मातङ्गी का पुत्र है, उन्होने उनपर और युवराज पर यह बात प्रकट भी कर दी। युवराज भयभीत हुए, परन्तु आचार्य ने आश्वासन दिलाया कि चिन्ता न करो। वे यह भेद न खोलेंगे। बालक का भी अनिष्ट न होगा। युवराज बिम्बसार ने आचार्य को बहुत सा स्वर्ण देकर सन्तुष्ट कर दिया। परन्तु वर्षकार के इस ईर्षापूर्ण क्रूर कृत्य से मातङ्गी का हृदय फट गया। उसकी

कोमल भावनाओ पर बडा आघात हुआ और वह एकान्त में उदासीन भाव से रहने लगी। युवराज भी वर्षकार से भयभीत रहने लगे, क्योकि उसे युवराज पर अब पूरा सन्देह था। इसी बीच सम्राट् की मृत्यु हो गई। मरने के समय उन्होने युवराज बिम्बसार और वर्षकार को मृत्यु शैया के निकट बुलाकर दो बातें कही। एक यह कि वर्षकार बिम्बसार के महाआमात्य होंगे। दूसरे अपने राज्य के तीसरे वर्ष बिम्बसार देवी मातङ्गी का उनकी पसन्द के वर से विवाह करके उन्हे आजीविका को अस्सी ग्राम दे दे। साथ ही एक पत्र गुप्तभाव से युवराज को देकर कहा—इसे तुम अपने राज्यारोहण के तीन वर्ष बाद खोलना। तब मातङ्गी का विवाह करना।

सम्राट् मर गये। बिम्बसार सम्राट् और वर्षकार उनके महाामात्य हुए। वर्षकार अब खुल्लमखुल्ला मठ मे जाकर देवी मातङ्गी से मिलने लगे। मातङ्गी ने वर्षकार से विवाह करने का आग्रह किया। परन्तु वर्षकार ने कहा—"स्वर्गीय सम्राट् ने हमारे पूज्य पिता गोविन्द स्वामी के आदेश से यह व्यवस्था की है कि सम्राट् बिम्बसार अपने राज्यारोहण के तीसरे वर्ष विवाह व्यवस्था करेंगे।" मातङ्गी मन मारकर रहने लगी। परन्तु उसका चित्त उचाट् रहने लगा। तीन वर्ष बीत गये और अपने राज्यारोहण की तीसरी वर्षगाठ के दिन सम्राट् ने वह गुप्त पत्र खोला। उसमे लिखा था कि मातङ्गी वर्षकार की भगिनी है। उन दोनो का परस्पर विवाह नही हो सकता। किन्तु मातङ्गी की सहमति से सम्राट् उपयुक्त पात्र से उसका विवाह करदें और अस्सी ग्राम उसकी आजीविका को दे दें।

वर्षकार और बिम्बसार दोनो ही भीतचकित रह गये। भय का सबसे बडा कारण यह था कि मातङ्गी इस समय फिर गर्भवती थी और यह स्पष्ट था कि यह गर्भ वर्षकार का था। अत इस दारुण और हृदय विदारक समाचार को उसे सुनाना सम्राट् ने ठीक नहीं समझा

दिया। कुछ दिन बाद एक कन्या को गुप्त रूप से जन्म देकर और स्वस्थ होकर मातङ्गी राजगृह में आई और तभी उन्हे सत्य बात का पता चला। सुनकर वे एक बारगी ही विक्षिप्त हो गईं। उन्होने मठ के सभी राज सेवको को पृथक् कर दिया और कठोर एकान्त वास ग्रहण किया। वर्षकार का मठ मे आना निषिद्ध करार दे दिया गया। सम्राट् बिम्बसार से भी मिलने से उन्होने इन्कार कर दिया तथा अपने विवाह से भी। तब से किसी ने भी देवी मातङ्गी के दर्शन नही किए, किसी ने भी उन्हे नही देखा, तथापि उनका नाम अब भी राजगृही में आर्या मातङ्गी के नाम से घर २ सम्मान के साथ लिया जाता था। वे एक पूर्ण ब्रह्मचारिणी तपस्विनी प्रसिद्ध थी।

वर्षकार ने भी ग्लानि के मारे विवाह नहीं किया। आज आर्य वर्षकार की आयु ६५ वर्ष की हो गई, तथा देवी मातङ्गी भी ६० को पार कर चुकी। वर्षकार का तेज प्रताप दिगन्त मे व्याप्त हो गया। वे मगध के प्रतापी महामात्य और विश्व के अप्रतिम राजनीति विशारद प्रसिद्ध हुए। साथ ही किसी ने उनके अखण्ड ब्रह्मचर्य पर भी सन्देह नही किया। देवी मातङ्गी के साथ उनके तथा सम्राट् के सम्बन्ध की बात तथा उनके १ पुत्र और १ पुत्री की गुप्त जन्म कथा आचार्य साम्बव्य काश्यप को छोड कर और कोई जानता भी नही। सोमप्रभ मातङ्गी के गर्भ से जन्मे अर्वध पुत्र है, यह बात आचार्य काश्यप, सम्राट् और स्वय वे ही जानते है। परन्तु वे सम्राट् के पुत्र है या वर्षकार के यह केवल मातङ्गी ही जानती है। मातङ्गी की पुत्री कौन है, कहा है, यह बात एक मात्र आर्य वर्षकार ही जानते हैं, दूसरे नही। आर्य वर्षकार ने देवी मातङ्गी से एक बार मिलने का बहुत अनुनय विनय किया था परन्तु मातङ्गी ने भेंट करना स्वीकार नहीं किया। लाचार वर्षकार मन मारकर बैठे रहे। जो ग्राम देवी मातङ्गी को राज्य से दिये गये थे उसकी आय सार्वजनिक कार्यों में खर्च करने की उन्होंने व्यवस्था की और स्वयं अत्यन्त निरीह भाव से रहने लगीं।

सोमप्रभ ज्योही मठ के द्वार को पार कर भीतर जाने लगे, वहा का सुनसानपन और निर्जन भाव देखकर उनका मन कैसा कुछ होने लगा। जैसे शताब्दियो से यहा कोई नही रह रहा हो। वे लता गुल्मो से भरी टेढी तिरछी वीथियो को पार कर अन्तत एक पुष्करिणी के किनारे जा पहुचे। पुष्करिणी मे शतदल कमल खिला था, उसकी भीनी सुगन्धी वहा व्याप्त हो रही थी। पुष्करिणी के किनारे पर सघन वृक्षो की छाया थी, उसी शीतल छाया मे क्षणभर सोमप्रभ चुपचाप खडे रहे। वे सोच रहे थे किसलिये आचार्यपाद ने मुझे आर्या मातङ्गी के पास भेजा है।

एकाएक पीछे से पद शब्द सुनकर वे चमक उठे, उन्होने देखा एक वृद्धा स्त्री जल का घडा लिये आ रही है। उसने युवक को देखकर आश्चर्यचकित होकर कहा—"तुम कौन हो और यहा कैसे चले आए? क्या तुम नही जानते, आर्या मातङ्गी की आज्ञा से यहा किसी भी मनुष्य का आना निषिद्ध है।"

"जानता हू भद्रे, परन्तु मै इच्छापूर्वक ही आया हू। मै आर्या मातङ्गी के दर्शन किया चाहता हूं।"

"यह सम्भव नही, आर्या किसी को दर्शन नही देती।"

"परन्तु भद्रे, मै आचार्यपाद काश्यप की आज्ञा से आया हू, मेरा नाम सोमप्रभ है।"

दासी ने अवाक् होकर क्षण भर युवक को देखा, फिर उसने भय-भीत दृष्टि से युवक को देखकर कहा—"आचार्य काश्यप ने! तब ठहरो भद्रे, मै देवी से जाकर निवेदन करदूं।" वह बिना ही उत्तर की प्रतीक्षा किए चली गई।

सोमप्रभ एक शिला खण्ड पर बैठकर कुछ सोचने लगे—वे सोच रहे थे यह कैसा रहस्य है।

कुछ क्षणो बाद ही दासी ने आकर कहा—"आर्या तुमसे भेट करेगी, मेरे साथ आओ।" सोमप्रभ धीरे २ वृद्धा के पीछे २ चले।

सामने एक स्वच्छ छोटा सा कुटीर था, उसी मे एक चटाई पर आर्या-मातङ्गी अधोमुख बैठी थी। पद शब्द सुनते ही उन्होने आंख उठाकर देखा, उनके होठ कम्पित हुए, उन्होने दोनो हाथो से आखो की धुन्ध पोछी, फिर अस्फुट स्वर से आपही आप कहा—"कौन तुम, सोम ·· वही हो, वही, पहचानती हूं मेरे बच्चे।" और वे उसी प्रकार युवक को ओर दौडी जैसे गाय बछडे की ओर दौडती है। उन्होने युवक को छाती से लगा लिया। उनकी आखो से अविरल अश्रुधारा बह चली।

सोमप्रभ हतप्रभ होकर विमूढ हो गये। एक अचिन्तनीय आनन्द ने उनके नेत्रो को भी प्लावित कर दिया। उन्होने प्रकृतिस्थ होकर कहा—

"आर्या मातङ्गी, अकिञ्चन सोम आपका अभिवादन करता है।"

"नही, नही, आर्या मातङ्गी नही, मा कहो वत्स!"

सोमप्रभ ने अटकते हुए कहा—"किन्तु आर्ये "

"मा कहो वत्स, माँ कहो।"

"आर्ये, हतभाग्य सोम अज्ञात कुलशील, अज्ञातकुलगोत्र है। कल्याणी मातङ्गी उसे इतना गौरव क्यों दे रही है?"

"मां कहो, प्रिय, मा कहो, जीवन के इस छोर से उस छोर तक मै यह शब्द सुनने को तरस रही हू।" मातङ्गी के स्वर, भावभगी और करुण वाणी से विवश हो अनायास ही बरबस सोम के मुंह से निकल गया "·मा ·· "

"आप्यायित हो गई मै, मरकर जी गई मै, वत्स सोम, अभी और कुछ देर हृदय से लगे रहो। अरे, मैने २४ वर्ष तुम्हारी प्रतीक्षा की है भद्र।"

"किन्तु आर्ये।"

"मै कौन हूं, यही जानना चाहते हो? बच्चे मै अभागिनी तुम्हारी मा हूं।"

"आप आर्ये मातङ्गी ? देवपूजित द्विज गोविन्द स्वामी की महाभागी पुत्री, देवी मातङ्गी मुझ भाग्यहीन की मा है ?"

"निश्चय वत्स, यह ध्रुव सत्य है, क्या आचार्य ने कहा नही ?"

"नही, उन्होने केवल इतना ही कहा था कि देवी के दर्शन करना अवश्य ।"

"अभी मुहूर्त भर प्रथम उन्होने मुझे सदेश भेजा था कि तुम्हारा पुत्र आया है । वह तुमसे मिलने आ रहा है । सो सोम, तनिक मैं तुम्हे देखूं । मेरे सामने खडे तो हो जाओ प्रिय !" और मातङ्गी अबोध बालक के समान सोम के सम्पूर्ण शरीर पर हाथ फेरने लगी ।

सोम ने धीरे २ झुककर मस्तक मा के चरणो मे टेककर कहा—"मा, आज मै सनाथ हुआ । परन्तु मुझे अधिक समय नही है, मुझे एक दुरुह यात्रा करनी है । इतना बतादो मेरे पिता कौन है ?"

"पिता ? मातङ्गी के होठ भय से सफेद हो गये और उनका चेहरा पत्थर की भाति भावहीन हो गया । उन्होने डूबती वाणी से कहा—"पुत्र, उनका नाम लेना निषिद्ध है ।"

"क्यों मा ?"

"क्या तुमने मेरे आजन्म एकान्त वास को नही सुना ?"

"सुन चुका हू आर्ये ?"

"तो बस यही यथेष्ठ है ।"

"मै क्या उनके विषय मे कुछ भी नही जान सकता ?"

"क्या जानना चाहते हो वत्स ?"

"उनकी पद मर्यादा ।"

"वे विश्वविश्रुत विभूति के अधिकारी है ।"

"जीवित है ?"

"हा !"

"तो अभी यही यथेष्ठ है, मा, शेष सब मै अपने कौशल से जान लूंगा ।"

"परन्तु पुत्र मेरा आदेश मानना। इधर उद्योग मत करना, इससे तुम्हारा अनिष्ट होगा।"

"माता की जैसी आज्ञा, पर अब मैं जाऊंगा आर्ये।"

"क्या इतनी जल्दी भद्र, अभी तो मैंने तुम्हें देखा भी नहीं।"

"शीघ्र ही मैं लौटूंगा आर्ये।"

"अभी कुछ दिन रहो पुत्र !"

"नहीं रह सकता आदेश है।"

"किसका भद्र ?"

"आर्य वर्षकार का।"

मातङ्गी चौंककर दो कदम हट गई। उसने कहा—"अच्छा, अच्छा, समझी। तो तुम वहां तक पहुंच चुके ?"

"आर्ये, आज प्रातः ही मुझे उनका दर्शन लाभ हुआ।"

"तो अब कहां जा रहे हो भद्र ?"

"चम्पा"

"एकाकी हो ?"

"नहीं, भगिनी भी है मा, आप तो जानती हैं, मेरी एक भगिनी भी है।"

मातङ्गी ने कांपकर कहा—"किसने कहा भद्र ?"

"आचार्यपाद ने।"

"कौन है वह ?"

"कुण्डनी।"

"कुण्डनी ? सर्वनाश। तुम उसके साथ जा रहे हो पुत्र, ऐसा नहीं हो सकेगा।"

"क्यों मा, क्या बात है ?"

"नहीं, वह मैं नहीं कह सकूंगी, कहते ही शिरच्छेद होगा। किसने तुझे कुण्डनी के साथ जाने को कहा है ?"

"आर्य वर्षकार ने।"

"इन्कार कर दो। कह दो देवी मातङ्गी की आज्ञा है।"

"आपकी आज्ञा क्या मगधमहामात्य वर्षकार सुनेंगे ?"

"उन्हे सुननी होगी। नहीं तो मैं स्वय आज २८ वर्ष बाद पुस्करिणी के उस पार ····"

'देवी मातङ्गी!' सामने से किसी ने पुकारा। दोनो ने देखा आचार्य काश्यप है। उन्होने कहा--"कोई भय नही है। देवी मातङ्गी उसे आने दो।"

"तुमने आचार्य, उसे कुण्डनी के सुपुर्द किया है ?"

"नही, मातङ्गी आर्ये, कुण्डनी राजकार्य से केवल उसकी सुरक्षा में चम्पा जा रही है।"

"सोम क्या जानता है कि कुण्डनी कौन है ?"

"वह जानता है कि वह उसकी भगिनी है।"

"वह क्या यथेष्ठ है।"

"है, आप निश्चिन्त रहिये।" फिर उन्होने घूमकर कहा--"जाओ सोम, विलम्ब मत करो।"

आर्या ने आकुल नेत्रो से पुत्र को देखकर कहा--

"एक क्षण ठहरो, क्या तुमने महामात्य से कुछ प्रतिज्ञा भी की है ?"

"की है, आर्ये।"

"कैसी ?"

"एकनिष्ठ रहने की।"

"किसके प्रति ?"

"साम्राज्य के।"

"और"

"मगधमहामात्य के।"

"और ?"

"और किसी के प्रति नहीं ?"

"नही ?"

"सम्राट् के प्रति नही ?"

"नही ।"

आर्या के नेत्रो मे भय की भावना दौड गई, उनके हाठ काप आचार्य के रूखे होठो पर मुसकान फैल गई, उन्होने आगे बढ़कर कहा--'बस अब और अधिक नही, देवी मातङ्गी किसी अनिष्ट का आशका न करे । जाओ, तुम सोमभद्र ।"

: १७ :

महा मिलन

अम्बपाली अपने उपवन के लताकुंज मे बैठी गहन चिन्तन मे व्यस्त थी। वह सोच रही थी जीवन के तत्त्व को। सप्तभूमि प्रासाद मे आकर, वहा की अतुल सम्पदा, कोमल सुखसाधन, सान्ध्यवेला मे आने वाले कामुक तरुणो के गर्मागर्म प्रेम सम्भाषण, उनके प्रति अपने अनुराग का प्रदर्शन, त्यदेव का प्रेमोन्माद, और अपने पूर्ण जीवन का सम्पूर्ण वैशाली के प्रति विद्रोह। वह प्रत्यक्ष देख रही थी कि प्रारम्भ मे जिस सुख सज्जा को तुच्छ समझा था वह उसके जीवन की अब अनिवार्य सामग्री होगई है। उसके रूप की दोपहरी खिली थी और इसी अल्पकाल मे उसके तेज, माधुर्य, विलास, और अलौकिक बुद्धि वैचित्र्य की कहानिया देश देशान्तरो मे फैल चुकी थी। उसकी आखो के सामने अब अपने बाल्यकाल का वह चित्र कभी २ आजाता था जब वह एक साधारण कचुक के लिये रोई थी। वह अपने पिता के अकपट स्नेह की याद कर बहुधा आसू बहाती। परन्तु आज उसके अंग यौवन के अमृत से स्नात होकर ऐसी सुषमा बिखेर रहे थे कि बूढे और युवा, नगर के चौकीदार, चाण्डाल और कर्मकर से लेकर परिषद के सम्भ्रान्त सदस्य, तरुण सामन्तपुत्र और सेट्ठिपुत्र, नागरिक, देशान्तर के श्रीमन्त, नरपति, और सम्राट् जिसे एक आख देखने भर के लिये प्राण न्याछावर करने को तैयार थे। अपनी इस विजय पर उसे गर्व था। वह जब शिविका पर सवार हो राजपथ पर निकलती तो नागरिक उत्सव मनाते। नित्य प्रात काल से सन्ध्या तक उसके तोरण पर देश देशान्तरो से आये हुये विदेशी और वैशाली के नागरिक उसके प्रति अपना उत्कट प्रेम प्रकट करने के लिये सप्तभूमि प्रासाद के तोरण पर बहुमूल्य सुगन्धित पुष्पो की जो

मालाये चढ़ाते थे, उससे नित्य तोरण पट जाता था । अपने प्रेमियो से उसे जो अतुल धन मिलने लगा था उसका गिनना असम्भव था। उसके कोषरक्षक तराजू से स्वर्ण तोला करते थे। कृपण वृद्ध सेट्ठियो और सम्राटों की जीवन भर की सचित सम्पदा उसके ऊपर लुटाई जाती थी। प्रेमियो के प्रेम सन्देश, और मिलने वालो की प्रार्थनाओं से उसे सास लेने का अवकाश न था। वह सोचने लगती—वह क्या से क्या होगई। वह कभी २ अपने प्रेमियो की बात सोचने लगती, जिनमे से प्रत्येक उसे आकर्षित करने मे असमर्थ सिद्ध हुआ था।

उसने देवताओ, प्रेतो, तान्त्रिको, सिद्ध और योगियो के विषय मे बहुत कुछ सुना था। वह इन विषयों पर सोचती रहती। कभी २ मित्रो से वार्तालाप करती। मारण, उच्चाटन, वशीकरण के प्रति कौतुहल प्रकट करती। अन्त में सबसे विरक्त हो वह अनमनी हो, एकान्त मे इसी कुंज में आ आत्मचिन्तन करती। उसके यहा ओझे सयाने, तान्त्रिक बहुधा आते, भविष्य वर्णन करते। वह स्वय कभी २ प्रसिद्ध सिद्धो से मिलने, भविष्य पूछने जाती। बहुत लोग उससे कहते—जीवनका उद्देश्य सुख भोग है। आओ जीवन की बहार लूटे। इन्द्रियो द्वारा प्राप्त होने वाली ज्ञान अनुभूति ही सत्य है, और सब असत्य है। मिथ्या है। परन्तु इस विचार से और ऐसे लोगो से वह शीघ्र ही ऊब जाती। उनका तिरस्कार कर बैठती। जीवन के रहस्यों को समझने के लिए उसने दर्शनों और उसके तत्त्वो को अध्ययन किया था, पर उनसे उसे शान्ति नही मिली थी। उसका सर्व प्रिय विषय उसकी बाल्यावस्था की स्मृति थी जो दिन २ उससे दूर होती जाती थी और अब सत्य यह था कि उसके अधर धधकती अग्नि के समान दाहक और मधुर से मधु थे। इन्ही सब बातो पर विचार करते २ वह कभी २ उत्तेजित होकर चिल्लाने लगती—"नहीं नहीं, मै किसी से प्रेम नहीं करती, नही कर सकती, किसी व्यक्ति से भी नहीं। मैं उन सबसे घृणा करती हूं जो आनन्दभोगी है। यह सप्त

भूमि प्रासाद मेरे जीवन पर बोझ है। यह सान्ध्य मित्र मेरे हृदय पर रेंगने वाले घृणित कीट हैं, वह उनके स्त्रैण चरित्र और स्त्रैण वेशभूषा को स्मरण कर घृणा से होठ सिकोड लेती। कभी २ विचलित होकर चिल्ला उठती।

फिर उसका ध्यान अपने अप्रतिम अग सौष्ठव पर जाता, वह अपने अदभुत रूप को पुष्करिणी के स्वच्छ जल मे जाकर निहार कर कभी २ बहुत प्रसन्न हो जाती। उस समय वे सब वासनाए, जिनकी उसे चाट पडगई थी, एक २ उसके निकट आकर उसके अग प्रत्यङ्ग में पैठ जाती थी और वह मन्द मुस्कान के साथ कहती—कोई हानि नहीं इसी रूप की ज्वाला मे मै विश्व को भस्म करुगी। इस अछूते रूप को सदा अछूता रखूंगी। इस सुषुमा की खान गात्र को किसी को छूने भी न दूगी। विश्व इसे भोग न सकेगा। वह इसकी पूजा ही करे। उसका हृदय गर्व और तेज से भर जाता। वह अब उन कवियो, चित्रकारो और कलाकारों का स्मरण करती जिनकी कृति से वह प्रभावित हो चुकी थी और उन पर एक संतोष की विचार धारा दौडा कर बहुधा उसी लताकुञ्ज मे उसी श्वेत मर्मर की श्वेत शीतल पटिया पर वह सो जाती।

उपवन मे देश विदेश के बहुत से वृक्ष लगे थे। उन्हे देश देशान्तरों से लाने, उनकी प्रकृति के अनुकूल जलवायु मे उन्हे पालने में बहुत द्रव्य खर्च हुआ था। उनकी सिचाई के लिये निर्मल मीठे जल की एक कृत्रिम उपकुल्लिका पुष्करिणी से निकल कर उपवन के चारो ओर बहाई गई थी। कामपुष्करिणी मे कुशल शिल्पियो ने कई एक कृत्रिम पहाडियो, स्तम्भ चिन्हो, और कला की प्रतीक मूर्तियो का सर्जन किया था, जिनका प्रतिबिम्ब पुष्करिणी के मोती के समान जल में भव्य प्रतीत होता था। जिस लताकुञ्ज मे अम्बपाली बैठी थी, उसमें जो प्रकाश आता था, वह पानी की पतली चादर से छन कर मद्धिम और रगीन छटा धारण करता था। कुञ्ज मे एक हाथीदात

का महार्घ छत्रखट भी था जिसकी दुग्धफेन सम शैया पर कभी २ अम्बपाली सुख नीद लेती थी। रत्नजटित स्वर्ण के धूपदानो मे वहा कीमती सुगन्ध द्रव्य सदा जलते रहते थे। बडे २ आधारो में दुर्लभ रंग विरगे पौदे सजाकर रखे गए थे। कुछ के फूल ऊदे रग के थे, कुछ के पीत, और कुछ के नील वर्ण। ऐसा ही वह अद्भुत लताकुञ्ज और उपवन था।

एकाएक आख खुलने पर उसने देखा उसी सुरक्षित लताकुञ्ज में एक प्रभावशाली पुरुष उसके सम्मुख खडा है। उसकी अवस्था तरुणाई को उल्लघन करने लगी है—परन्तु उसका गौर वर्ण, तेजस्वी मुख सूर्य के समान देदीप्यमान है। उसके सघन काले बाल काक पक्षी के रूप में पीछे को सवारे हुए है। प्रशस्त वक्ष और प्रलम्ब पुष्ट बाहु बहुमूल्य दुकूल से आवृत है। अधोअग मे एक कोमल पीत कौशेय सुशोभित है। उसकी सघन काली मूछे उसके दर्शनीय मुख पर अद्भुत शोभा विस्तार कर रही है। कानो में हीरक कुण्डल, और कण्ठ मे गुलाबी आभा के असाधारण दुर्लभ मुक्ता सुशोभायमान है। उसके बडे २ काले चमकीले नेत्रो और उत्फुल्ल सरस ओष्टो से आनन्द विलास और प्रेम की अदृष्ट धारा प्रवाहित हो रही है। उसके एक हाथ मे महार्घ अप्रतिम वीणा है। अम्बपाली हडबडा कर उठ खडी हुई। उसने आश्चर्यचकित होकर उस पुरुष पुङ्गव की ओर देखा। अनायास ही उस पर उस पुरुष का प्रभाव छागया। वह अम्बपाली जो आज तक किसी पुरुष से प्रभावित नही हुई थी, इस पुरुष को देख कर क्षण भर जड स्तम्भित रह गई। पुरुष ने ही पहले कहा—

"जनपद कल्याणी देवी अम्बपाली! प्रसन्न हो। क्या मैने तुम्हारे इस एकान्त विश्राम में व्याघात करके तुम्हे रुष्ट कर दिया है?"

"नही, नही। परन्तु आप भन्ते, यहा इस सुरक्षित कोष्ठ मे बिना अनुमति आ कैसे पहुचे? क्या प्रहरी सो गये है? या आपने उन्हे अपनी माया से विमोहित कर दिया है?"

पुरुष ने हसकर कहा—"नही, कल्याणी, मै अदृश्य होकर आकाश मार्ग से आया हू। बेचारे प्रहरी मुझे देख नही सके।"

अम्बपाली और भी आश्चर्यमूढ होकर बोली—"किन्तु आप है कौन भन्ते? क्या आप गान्धर्व है?"

"नही भद्रे—मै मनुष्य हू।"

"परन्तु आपका ऐसा आगमन?"

"मुझे सिद्धिया प्राप्त है। मै लोपाञ्जन विद्या और खेचर विद्या जानता हू।"

अम्बपाली खडी हो गई। उसने पूछा—"आप साधारण मनुष्य नही है। महानुभाव आप क्या कोई देव, दानव, यक्ष मुझे ठगने आये है?"

"नही, जनपद कल्याणी, मैने तुम्हारे अप्रतिम रूप, लावण्य, असह्य तेज, दर्प, और लोकोत्तर प्रतिभा की चर्चा अपने देश मे सुनी थी। इसी से केवल तुम्हे देखने मे बहुत दूर से छद्मवेश में आया हू। अब मैने जाना कि सुनी हुई बातो से भी प्रत्यक्ष बहुत बढकर है। तुमसी रूपसी बाला कदाचित विश्व मे दूसरी नही है।" अम्बपाली का कौतुहल कुछ कम हो गया था और उसका साहस लौट आया था। उसने अपने रूप लावण्य की प्रशसा सुन कहा—"भन्ते। औरो की प्रशसा करने और अपना गुप्त प्रेम प्रदर्शन करने मे आप वैसे ही कुशल है जैसे अदृश्यरूप से आकाश मार्ग द्वारा किसी स्त्री के एकान्त-वास मे पहुच जाने मे। किन्तु

"किन्तु भद्रे अम्बपाली, मेरे हृदय मे तुम्हारा असाधारण प्रेम बहुत प्रथम घर कर गया था। तुम मुझे जीवन और आत्मा से भी प्रिय हो।"

"भन्ते, जरा सम्हल कर इस प्रेम मार्ग पर कदम रखिये। कदाचित् वहा आपकी खेचर सिद्धि और लोपाञ्जन माया काम न दे सकेगी।"

"भद्रे, प्रेम के सत्य मार्ग में सारी ही सिद्धियां तुच्छ हैं। किन्तु मेरा प्रेम वासना की आग में जलता हुआ नहीं है। मैं तुम्हें फलों की सुवासित मदिरा की अपेक्षा अधिक नित्य, अमर, और अखण्ड समझता हूं, देवी अम्बपाली।"

"ओह, तो भन्ते! आपका यह प्रेम तो कुछ अलौकिक सा प्रतीत होता है।" अम्बपाली ने मुस्कराकर कहा। "किन्तु भन्ते, इस कोरी प्रशंसा से मेरे हाथ क्या आयेगा?"

"प्रेम।"

"प्रेम का व्यवसाय करते यद्यपि मुझे अधिक काल नहीं बीता फिर भी मैं अब और किसी नवीनता की आशा नहीं करती। आपकी बातें दार्शनिकों जैसी हैं, किन्तु भन्ते, प्रेम का रहस्य दार्शनिकों की अपेक्षा प्रेमीजन ही अधिक जानते हैं।"

"वैशाली की जनपद कल्याणी देवी अम्बपाली से मैं ऐसे ही प्रत्युत्तर की आशा करता था। परन्तु भद्रे, तुम्हें वशीभूत करने की एक और वस्तु मेरे पास है।"

"वह क्या भन्ते?"

भद्र पुरुष ने महार्घ वीणा का आवरण उठाया। उस पर आश्चर्यजनक हाथी-दांत का काम हो रहा था। और वह दिव्य वीणा साधारण वीणाओं से अद्भुत थी। अम्बपाली ने आश्चर्य-चकित होकर कहा—"

"निश्चय यह वीणा अद्भुत है। परन्तु भन्ते, आप मेरा मूल्य इससे आंकने का दुस्साहस मत किजिये।"

"इसका तो अभी फैसला होगा, जब इस वीणा वादन के साथ देवी अम्बपाली को विवश नृत्य करना होगा।"

"विवश नृत्य?"

"निश्चय।"

"असम्भव।"

निश्चय।"

आगन्तुक रहस्यमय पुरुष वहीं श्वेतमर्मर की पीठ पर बैठ गये। उन्होंने वीणा को झंकृत किया, अम्बपाली मूढवत् बैठी रही। एक ग्राम, दो ग्राम, पर जब उस आश्चर्य पुरुष की उंगलियां नृत्य करने लगीं, और वातावरण में वीणा का स्वर भर गया तो अम्बपाली जैसे मत्त होने लगी। उसे अपने चारों ओर एक मूर्तिमान संगीत, एक प्रिय सुखस्पर्शी घोष, एक सुषमा से ओतप्रोत वातावरण प्रतीत होने लगा।

वीणा बज रही थी। उसकी गति तीव्र से तीव्रतर होती जाती थी। अम्बपाली को ऐसा प्रतीत हो रहा था तन्तुवाद्य के कम्पन से जो स्वरलहरी उत्पन्न हो रही है वह उसके चर्मकूपों को भेद कर उसके रक्त में प्रविष्ट हो रक्त को उत्तप्त कर रही है। उसका मुंह लाल हो गया, नेत्रों में मद छा गया, गात्र कांपने लगा। वह अपनी सम्पूर्ण सावधानता से उस पुरुष पुङ्गव के असाधारण वीणावादन को विस्फारित नेत्रों से देखती रही।

एकाएक ही वादक ने उंगलियों की गति में हेर फेर किया, और तब अम्बपाली ने मूढ़ होकर देखा—वीणा एक ही काल में तीन ग्रामों में बज रही है। ऐसा तो न देखा, न सुना था। कुछ ही क्षणों में अम्बपाली विवश हो गई। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके शरीर में रक्त के स्थान पर जलती हुई मदिरा बह रही है। और अब वह स्थिर नहीं रह सकती। वह टकटकी बांधकर वीणा पर विद्युत वेग से थिरकती उंगलियों को देखते २ अचेत सी हो गई। अब उसे ऐसा प्रतीत हुआ, उसका मृदुल गात्र ही वीणा के रूप में झंकृत हो रहा है। उसी अचेतावस्था में उसने उठकर नृत्य करना आरम्भ कर दिया। पहले मन्द, फिर तीव्र, फिर तीव्रतर। और अब उन उंगलियों में और उन चरणों में प्रगति की होड़ बदी थी। नृत्य और वादन एकीभूत हो गया था। वादक की उंगलियां और

नर्तकी के चरण चाप एक मूर्त हो गये थे। कौन नृत्य कर रहा है, कौन वीणा वादन, और कौन उस अलौकिक दृश्य को देख सुन रहा है, यह नही कहा जा सकता था। धीरे २ अम्बपाली अवश होने लगी और वादक की उगलियाँ भी विराम पर आने लगी। अम्बपाली धीरे से एक लता गुल्म पर झुक गई और महार्घ पुरुष ने वीणा रख कर उसे हाथो ही मे उठा कर श्वेत मर्मर की पीठिका पर लिटा दिया।

धीरे २ अम्बपाली ने आखे खोली। आगन्तुक महापुरुष ने मुस्करा कर कहा—"देवी अम्बपाली की जय हो"

"मै परास्त हो गई, भन्ते"

"भद्रे, प्रेम में जय पराजय नही होती। वहा तो दो का भेद नष्ट होकर एकीकरण हो जाता है।"

"किन्तु भन्ते, जो कुछ अनुभूति मुझे इस समय हुई, वह अभूतपूर्व है। क्या आप स्वय गान्धर्वराज चित्ररथ अलकापुरी से मुझे कृत कृत्य करने पधारे है?"

"भद्रे, मै उदयन हू"

"आर्य कौशाम्बीपति महाराज उदयन है? देव, अज्ञान मे हुई मेरी अविनय को क्षमा करे।"

"सत्य प्रेम मे अविनय विनय नही है, भद्रे।"

"देव, कैसे तीन ग्रामो मे एक ही काल मे वीणा वादन करन मे समर्थ है। ऐसा त्रिलोकी में कोई पुरुष नही कर सकता है।"

"और न त्रिलोकी में कोई जीवधारी वैशाली की जनपद कल्याणी अम्बपाली के समान तीन ग्रामो की ताल पर नृत्य कर सकता है।"

"किन्तु देव, वह नृत्य मैने अवश अवस्था मे किया है। क्या अब मै फिर वैसा ही नृत्य कर सकती हू?"

"यदि फिर वैसा ही वीणा वादन हो तो।"

"किन्तु देव, इस वीणा से जड़ जगम सभी अवश हो जाते हैं।"

"तुम्हारे अप्रतिम नृत्य से भी कल्याणी।"

"तो देव, आपको छोड़कर और भी कोई मनुष्य इस प्रकार वीणा वादन कर सकता है?"

"केवल गान्धर्वराज चित्ररथ, जिन्होंने यह वीणा अपनी सम्पूर्ण विद्या सहित मुझे दी थी।"

"देव, कौशाम्बीपति, क्या मैं फिर एकबार आपसे वैसी ही वीणा वादन की प्रार्थना कर सकती हूँ?"

"नहीं भद्रे, परन्तु अब तुम दिव्य नृत्य कभी न भूलोगी। जब भी तीन ग्राम में यह वीणा कोई बजायेगा, तुम ऐसा ही अलौकिक नृत्य कर सकोगी।"

"तो देव, आप क्या अपनी शिष्या अम्बपाली का आज आतिथ्य ग्रहण करेंगे?"

"नहीं भद्रे, मैं जैसे आया था वैसे ही गुप्त भाव से चला जाऊंगा?"

"क्या अम्बपाली आपका कोई प्रिय कर सकती है?"

"वह कर चुकी। मैं अपना प्राप्तव्य पा चुका।"

"किन्तु देव . ।"

"ओह भद्रे, क्या मैं ने नहीं कहा था कि मेरा प्रेम वासना की अग्नि से जलता हुआ नहीं है। मैंने तुम्हें देख कर नेत्र सार्थक किये, और तुम्हारा वह देव दुर्लभ नृत्य अपनी वीणा ध्वनि के साथ अंगीभूत कर लिया।"

"देव कौशाम्बीपति, जब सम्पूर्ण जनपद मेरे चरणों में आखें बिछाता है, लाखों प्राणधारी इन चरणों का चुम्बन करने को अपने प्राण भेंट देने को उत्सुक हैं, मेरी प्राप्ती के लिये जनपद में होड़ ईर्ष्या, निराशा और अभिलाषा का इतना संचार हुआ है कि इसके बोझ से पर्वत भी उठ जायेगा। क्या मैं आपका कुछ भी प्रिय नहीं कर सकती?"

"क्यो नही भद्रे, अम्बपाली, यदि मेरा प्रिय करना चाहती हो तो मेरी यह साधारण स्नेह भेट स्वीकार करो, जिसे एकबार तुम अस्वीकार कर चुकी थीं।"

यह कहकर महाराज उदयन ने अपने कण्ठ से वह अलौकिक मोतियो की माला उतारकर अम्बपाली के गले मे डालदी।

अम्बपाली ने कहा—"अनुग्रहीत हुई, किन्तु क्या मै अपना कौतूहल निवेदन करूं ?"

"कहो भद्रे।"

"क्या मुझमी कोई स्त्री आपने देखा ह ?"

"देखी है, पर तुमसी नही कल्याणी।"

"कौन है वह ?"

"गान्धार कन्या कलिङ्गसेना।"

"उसमे त्रुटि क्या है ?"

"तीन ग्रामो पर वह नृत्य नही कर सकती।"

"क्या वह दे। के सान्निध्य मे है ?"

"नही भद्रे, मै उसे प्राप्त करके भी प्राप्त न कर सका।"

"प्राप्त करके भी प्राप्त न कर सके ? देव !"

"ऐसा ही हुआ भद्रे।"

"कैसे देव, क्या देवी कलिङ्गसेना द्वितीय कामदेव के समान सुन्दर महाराज उदयन को प्यार नही कर सकी—या तक्षशिला के महाराज ने इन्द्र के मित्र वत्सनरेश सहस्त्रानीक के पुत्र को ही अयोग्य समझा जिसके लिये देवराज इन्द्र अपना रथ भेजता था।"

"ऐसा नही हुआ भद्रे, इसमे कुछ कौतुक हुआ।"

"यदि देव कौतुक वर्णन करे तो अच्छा।"

"कहता हू सुनो। विगलित यौवन कौशलनरेश प्रसेनजित ने गान्धारपति कलिङ्गसेन से उसे मागा था। गान्धारपति राजतन्त्र के स्वार्थवश प्रसेनजित को अप्रसन्न नही कर सकते थे। उन्होने

कौशलपति को कन्या देना स्वीकार कर लिया था। भाग्यविधि से कलिङ्गसेना की मित्रता मायासुर की कन्या सोमप्रभा से होगई थी। उसी ने सखी की कल्याण की कामना से उससे कहा था कि हेमन्त ऋतु की कमलिनी के समान तुम उस चमेली के मुर्झाये हुये पुष्प प्रसेनजित के योग्य नही हो। उसीने उससे मेरा सत्यासत्य वर्णन करके उसे मेरे प्रति आकर्षित कर दिया था। मुझे भी इसकी सूचना मिल चुकी थी। परन्तु देवी अम्बपाली, मैं अवन्ती नरेश चण्डमहासेन को अप्रसन्न नही कर सकता था, इसी से गान्धारपति कलिङ्गसेन से मैंने उनकी दिव्य पुत्री नहीं मागी।"

"अम्बपाली ने हंसकर कहा—"देव को महादेवी वासवदता का भी तो लिहाज करना उचित था, जिन्होने शकुन्तला और ऊषा से भी बढकर साहस किया है। परन्तु क्या सुश्री कलिङ्गसेना बहुत सुन्दरी है?"

"भद्रे अम्बपाली,—विश्व की स्त्रियो मे तुम्ही उसकी होड ले सकती हो। केवल नृत्य को छोडकर जिसमें तुम उससे बढ़गई। परन्तु असुर कन्या मय की मित्रता से वह अक्षय यौवना होगई है। असुर नन्दिनी ने उसे विन्ध्य गर्भ मे स्थित मायापुरी में लेजाकर दिव्यौषध भक्षण कराया है। तथा माया के यन्त्रों से भरा पिटक भी दिया है। इससे वह अद्भुत कर्मिणी होगई है। एक दिन वह अपनी सखी असुरनन्दिनी की सहायता से इन्ही यन्त्रो के विमान पर चढकर कौशाम्बी मे आगई।"

"तो देव, घर बैठे गगा आई।"

"हुआ ऐसा ही भद्रे, किन्तु राजसम्पदा भी कैसा दुर्भाग्य है।"

"राजसम्पदा ने बाधा दी महाराज?"

"ज्योही मैंने सुना कि गान्धार कन्या कलिङ्गसेना स्वयवर का इच्छा से आई है, मैंने आर्य योगान्धरायण को उसका सत्कार करने, और विवाह का मुहूर्त देखने को कहा। परन्तु आर्य योगन्धरायण ने

सोचा कि त्रैलोक्य सुन्दरी कलिङ्गसेना पर आसक्त होकर राजा मोह में फंस जायेगा, देवी वासवदत्ता सतत शोक में प्राण देदेगी। पद्मावती उनके बिना न रह सकेगी, इससे चण्डमहासेन और महाराज प्रद्योत दोनो ही शत्रु हो जायेंगे। इन सब बातो को विचार उन्होने देवी कलिङ्गसेना के सत्कार निवास का तो समुचित प्रबन्ध कर दिया परन्तु विवाह मे टालटूल करते रहे।

उन्होने कौशलपति और गान्धारराज दोनो ही को इसकी सूचना दे दी। कौशलपति ने सैन्य भेज कर गान्धारराज को विवश कर दिया। कौशलपति को नाराज करने की सामर्थ्य गान्धारपति मे नही थी। वे न उसकी सैन्य का सामना कर सकते थे और न सुदूरपूर्व के व्यापार वाणिज्य का मार्ग बन्द होना ही सहन कर सकते थे। उन्होने पुत्री को अपनी कठिनाइया बताई तो देवी कलिङ्गसेना ने पिता और जनपद के स्वार्थरक्षण के लिये अपनी बलि देदी और विगलित यौवन प्रसेनजित से विवाह करना अगीकार करके वे श्रावस्ती चली गई।"

"पूजार्हं है देवी कलिङ्गसेना, देव।"

"पूजार्हं ही है भद्रे, परन्तु जनपद के लिये आत्मबलि देने वाली पूजार्द अकेली देवी कलिङ्गसेना ही नहीं है, देवी अम्बपाली भी है।"

"देव कौशाम्बीपति के इस अनुग्रह वचन से आप्यायित हुई।"

"तो भद्रे मै जाता हूं, तुम्हारा कल्याण हो। मेरा यह अनुरोध रखना कि किसी मनुष्य के सन्मुख दिव्य नृत्य न करना, जब तक कि तीन ग्रामो मे वीणा वादन करने वाला कोई पुरुष न मिल जाये।"

"ऐसा ही होगा महाराज।"

"उदयन तत्क्षण अन्तर्ध्यान हो गये। अम्बपाली विमूढ भाव से आश्चर्यचकित हो उसी श्वेत मर्मर की पीठ पर बैठी देखती रही।

———

: १८ :

ज्ञातिपुत्र सिंह

ज्ञातिपुत्र सिंह तक्षशिला के विश्व विश्रुत विश्वविद्यालय में वहां के दिशाप्रमुख युद्धविद्या के एकान्त आचार्य बहुलाश्व से रणचातुरी और राजनीति का अध्ययन कर ससम्मान स्नातक हो, दस वर्ष बाद वैशाली मे लौटे थे। विश्व विद्यालय मे अध्ययन करते हुए उन्होने पशुपुरी के शासानुशास के साथ हुए विकट युद्धो मे अपने स्थर्य, प्रत्युत्पन्न मति और चातुरी का बडा भारी परिचय दिया था और उनके शौर्य पर मुग्ध हो आचार्य बहुलाश्व ने अपनी एकनौती पुत्री रोहिणी उन्हे ब्याह दी थी। सो ज्ञातिपुत्र बहुत सामान, बहुत सा यश, और चन्द्रकिरण के समान दिव्य देवाङ्गना पत्नी को सग ले वैशाली आये थे। इससे वैशाली मे उनके स्वागत सत्कार की धूम मच गई थी। उनके साथ पाच और लिच्छवि तरुण विविध विद्याओ मे पारङ्गत हो तक्षशिला के स्नातक की प्रतिष्ठासहित वैशाली लौटे थे। तथा गान्धारपति ने वैशालीगणतन्त्र से मैत्री बन्धन दृढ करने के अभिप्राय से गान्धार के दश नागरिको का एक शिष्टदल दश अजानीय असाधारण अश्व और बहुत सी उपानय सामग्री देकर भेजा था। इस दल का नायक एक वीर गाधार तरुण था। यह वही वीर योद्धा था, जिसने उत्तर कुरु के देवासुर सग्राम में देवराज इन्द्र के आमत्रण पर असाधारण सहायता देकर असुरो को पददलित किया था, और देवराज इन्द्र ने जिसे अपने हाथो से पारिजात पुष्पो की अम्लान दिव्य माला भेंटकर देवो के समान सम्मानित किया था।

इन सम्पूर्ण बहुमान्य अतिथियो के सम्मान म गणपति सुनन्द ने एक उद्यान भोज और पानगोष्ठी का आयोजन किया था। इस

समारोह में सम्मिलित होने के लिये वैशाली के अनेक प्रमुख लिच्छवि और अलिच्छवी नागरिक और महिलायें आमन्त्रित की गई थी। तथा गण उद्यान रंगीन पताकाओं और स्वस्तिकों से खूब सजाया गया था, तथा विशेष प्रकार से रोशनी की व्यवस्था की गई थी। सुगन्धित तेलों से भरे हुए दीप और शलाकाएं स्थान २ पर आधारों में जल रहे थे।

ज्ञातिपुत्र सिंह ने एथेन्स का बना एक महामूल्यवान तोगा पहना था। तोगा यवन राजा ने उन्हें उस समय भेंट किया था जब उन्होंने ऐथेन्स के वीरों के साथ मिलकर पर्शुपुरी के शासानुशास से युद्ध करके असाधारण शौर्य प्रकट किया था। उनके पैरों में एक पुटबद्ध लाल रंग का उपानत था, और सिर पर लाल रंग के कमलों की एक माला यावनीक पद्धति से बांधी गई थी जो उनके सुन्दर चमकदार केशों पर खूब सज रही थी। इस सज्जा में वे एक सम्पन्न यवन तरुण से दीख पड़ रहे थे।

उनकी गान्धारी पत्नी रोहिणी ने सुरुचि सम्पन्न काशिक कौशेय का उत्तरीय, अन्तरवासक और कचुकी धारण की थी। उसके सुनहरे केशों को ताजे फूलों से सजाया गया था—जिसमें अद्भुत कला का प्रदर्शन था। चेहरे पर हल्का वर्ण चूर्ण था। कानों में हीरक कुण्डल और कण्ठ में केवल एक मुक्तामाला थी। उसकी लम्बी छरहरी देह यष्टि अत्यन्त गौर स्वच्छ, संगमर्मर सा चिकना गात्र, कमल के समान मुख और बहुमूल्य नीलम के समान पानीदार आंखें उसे दुनिया की लाखों करोड़ों स्त्रियों से प्रथक कर रही थी। उस असाधारण तेज रूप और गरिमामयी रमणी की ओर उस पानगोष्ठी में अनगिनत आंखें उठकर अपलक रह जाती थी। अन्य स्नातकों ने और गान्धार शिष्टदल के सदस्यों ने भी अपनी अपनी रुचि और समय के अनुकूल परिधान धारण किया था और वे सब बहुत ही शोभायमान हो रहे थे। वे जिधर से जाते नागरिक स्त्री पुरुष उनका ससम्मान स्वागत कर रहे थ ।

वैशाली के नागरिकों में महाबलाधिकृत सुमन थे जिनकी श्वेत लम्बी दाढी और गम्भीर चिंतवन उनके अधिकार और गौरव को प्रकट करती था। नौबलाधिप चन्द्रभद्र अपने स्थूल किन्तु फुर्तीले शरीर के साथ उपस्थित थे। उनकी आयु साठ भाग को पार कर गई थी, उनका चेहरा रूआबदार था। उस पर श्वेत गलमुच्छे, और छोटी छोटी चमकीली आंखे उन्हे सबो प्रभाव कर रही थी। वे जन्मजात सेनापति मालूम देते थे। वे फक्कड, दृढमुष्ठ, और मिलनसार थे, और इधर उधर चुहुल करते फिर रहे थे। इस समय वे खूब भडकीली पोशाक पहने थे। श्रोत्रीय आश्वलायन भी इस गोष्ठी की शोभा बढा रहे थे। ये प्रसिद्ध गृहसूत्रो के निर्माता कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे। ये पाटम्बर कमर मे दहिने, और कन्धे पर काशा का बहुमूल्य शाल डाले, लम्बी चुटिया फटकारे बढ २ कर बाते बना रहे थे और बात बात पर अपने गृह सूत्रो का ही राग गा रहे थे। इनकी कमर मे श्वेत जनेऊ था। इनकी खोपडी गंजी, चेहरा सफाचट, और दात कुछ गायब, कुछ सडे हुए। शरीर लम्बा दुबला, जैसे हड्डियो पर खोल चढा दी हो, अपनी मिचमिची आंखो से घूर घूर कर सुन्दरियो को ताक रहे थ।

इनकी बगल मे उपनायक शूरसेन अपने ठिगने गोलमटोल शरीर को विविध शस्त्रो और आभरणों से सजाये किसी अभिनयकर्ता से कम नहीं प्रतीत होत थे। ये बडे विनोदी पुरुष थे और संगीत की इन्हे सनक थी। इनके सगीत की बडी प्रशसा करने पर इनसे सब कुछ लिया जा सकता था।

ब्रह्मण्य मठ के आचार्य महापण्डित भारद्वाज अपनी लम्बी चुटिया फटकारे, ताम्बे के समान चमकदार शरीर पर स्वच्छ जनेऊ धारण किये, महाज्ञानी दार्शनिक गोपाल से उलझ रहे थे। दार्शनिक गोपाल हंस हंस कर अपनी तर्क भी करते जाते थे। उनके इस आचरण पर कुछ मुग्धा झेंप रही थी और कुछ प्रौढा मुस्करा रही थी।

परन्तु एक व्यक्ति इन सबसे अलग अलग मानो सब को अपने तुच्छ समझता हुआ, सबको बारीकी से निरीक्षण करता हुआ कुछ मुस्कराता, कुछ गुनगुनाता घूम रहा था। इसके वस्त्र बहुमूल्य पर अस्तव्यस्त थे। उसकी आयु का कुछ पता नहीं लगता था कि कितनी है। शरीर ऐसा सुगठित दीख रहा था कि कदाचित वह एक मजबूत साड को भी गिरादे। कुछ लोग उससे बात किया चाहते थे, पर वह किसी को मुंह नहीं लगाता था। लोग उसकी ओर संकेत करके बहुत भांति की बातें करते थे। कुछ चकित कुछ चमत्कृत नेत्रों से और कुछ संदिग्ध भाव से उसकी ओर ताक रहे थे। वास्तव में यह वैशाली का प्रसिद्ध कीमियागर वैज्ञानिक सिद्ध गोडपाद था, जिसकी बाबत प्रसिद्ध था कि उसके पास पारसमणि है और वह पर्वत को भी स्वर्ण कर सकता है। तथा उसकी आयु सैकडो वर्ष की है।

तरुण मण्डल में युवराज स्वर्णसेन, उनके मित्र संधिविग्राहिक जयराज और महायुद्धवीर युवक सूर्यमल्ल का एक गुट्ट था जो हंस हंस कर तरुणीजनों की व्याख्या खास कर रोहिणी की रूप ज्योति की अम्बपाली से तुलना में व्यस्त था। नगरपाल सौभद्र और उपनायक अजित ये दो तरुण घुसपुस अलग कुछ बातें कर रहे थे।

महिलाओं में उल्काचेल के लौल्लिक की पत्नी रम्भा सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। वह बसन्त की दोपहरी की भांति खिली हुई सुन्दरी थी। उसके हास्य भरे होठ, कटाक्ष भरे नेत्र और मदभरी चाल मन को मोहे बिना छोडती न थी। वह बडी मुहफट, हाजिरजवाब और चपला थी। एक प्रकार से जितनी लिच्छवि तरुणियां यहां उपस्थित थीं वह उन सबकी नेत्री हो कर गांधारी बहू रोहिणी को घेरे बैठी थी। उसके कारण क्षण क्षण में तरुण मण्डली से एक हंसी का ठहाका उठता था और गोष्ठी के लोग उधर देखने को विवश हो जाते थे। इसमें संदेह नहीं कि रोहिणी एक दिव्याङ्गना थी और रूपच्छटा उसकी अद्वितीय थी, परन्तु एक और असाधारण बाला यहां इस तरुणी

मण्डल मे थी जो लाज नवाई चुपचाप बैठी थी और कभी कभी सिर्फ मुस्करा देती थी। उसकी लुनाई रोहिणी से बिल्कुल ही भिन्न थी। उसकी आखे गहरी काली और ऐसी कटीली थी कि उनके सामने आकर बिना घायल हुए बचने का कोई उपाय ही नहीं था। उसके केश अत्यन्त घने, काले और खूब चमकीले थे। गात्र का रग नवीन केले के पत्ते के समान और चेहरा ताजे सेव के समान रंगीन था। उसका उत्सुक यौवन, कोकिल कण्ठ, मस्तानी चाल, यह सब ऐसी थी जिनकी उपमा नही थी। पर इन सबसे अपूर्व सुषमा की खान उसकी व्रीडा थी। वह ओस से भरे हुए एक बडे ताजे गुलाब के फूल की भाति थी जो अपने ही भार से नीचे झुक गया हो। इस भुवन मोहिनी कुमारी बाला का नाम मधु था और यह महाबलाधिकृत सुमन की एकलौती पुत्री थी।

इतने सम्मान्य अतिथिगण उद्यान मे आ चुके थे और एक प्रहर रात्री भी जा चुकी थी। भोज का समय लगभग हो चुका था परन्तु एक असाधारण अतिथि नही आया था जिसकी प्रतीक्षा छोटे बडे सभी को थी—वह थी देवी अम्बपाली। लोग कह रहे थे आज यहा रूप का त्रिवेणी सगम होगा।

सिंह को सन्मुख देखते ही नौबलाधिकृत चन्द्रभद्र दोनो हाथ फैला कर आगे बढे। उन्होने कहा—"स्वागत सिंह, वैशाली में तुम्हारा स्वागत है और गान्धारी सुषमा का भी। आज आयुष्मान, तुझे देख कर बहुत पुरानी बात याद आ गई। उस बात को आज बीस वर्ष बीत गए। पुत्र, तुम्हारे पिता अर्जुन तब महाबलाधिकृत थे और मै उनका उपनायक था। उन्होने किस प्रकार कमल द्वार पर सारी मगध सेना के हथियार रखवाये थे और एक नीच मगध बन्दी ने जिस पर तुम्हारे पिता ने कृपा कर उसे जीवन दान दिया था, धोखे से रात को मार डाला था। उस दिन हर्ष विषाद के झूले मे वैशाली झूली थी, पुत्र! वही मगध आज फिर अपनी लोलुप राज्य लिप्सा से हमारे गण को विषदृष्टि से

देख रहे हैं। "सिंह ने हाथ उठाकर वृद्ध सेनापति का अभिवादन करके कहा—'भन्ते सेनापति, मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मागधों से पिता के प्राणों का मूल्य लूंगा, अपने रक्त की प्रत्येक बूंद देकर भी एक सच्चे लिच्छवि तरुण की भांति।"

"साधु सिंह, साधु, तो अब मुझे वृद्ध होने का खेद नहीं, परन्तु "

"परन्तु क्या भन्ते ?"

"आयुष्मान्, तेरा यह वेश तो बिल्कुल ही पराया है ?

"भन्ते सेनापति, आचार्य बहुलाश्व ने जब मुझे तक्षशिला से विदा किया था तब दो बहुमूल्य वस्तु मुझे दी थीं—एक अपनी एकलौती पुत्री रोहिणी और दूसरी यह बात कि पुत्र विश्व के मानवों में परायेपन का भाव मत रखना।"

इस पर रम्भा ने हंसकर नटखटी से कहा—"तो सिंह कुमार इन दोनों बहुमूल्य वस्तुओं में से एक रोहिणी को तो मैं पसन्द करती हूं।"

"और दूसरी को मैं।"

"आयुष्मान तुम रम्भा से सुलझो मैं, तब तक और अतिथियों को देखूं।"

वह हंसते हुए आगे बढ़ गए।

सेनापति चन्द्रभद्र ने श्रोत्रीय आश्वलायन को दूर से देखा तो हर्ष से चिल्लाते हुए उनके पास दौड़े और कहा—"स्वागत मित्र आश्वलायन, खूब आए। कभी कभी तो मिला करो। कहो कैसे रहे मित्र!"

"परन्तु सेनापति गृह सूत्रों के रचने से समय मिले तब तो। मैं चाहता हूं कि गृहस्थों की व्यवस्था स्थापित हो जाय और उनमें षोडस संस्कारों का प्रचलन हो जाय।"

"यह तो बहुत अच्छा है, परन्तु क्या रात दिन सूत्र ही रचते रहते हो, कभी अवकाश ही नहीं पाते।"

"पाता क्यों नहीं सेनापति, पर अवकाश के समय ब्राह्मणी जो भुजंगिनी सी लिपटती है। और क्या कहूं सेनापति, ज्यों ज्यों वह बूढ़ी

होती है उसका चाव शृंगार बढ़ता ही जाता है। देखोगे तो . . . ।"

"समझ गया, समझ गया। परन्तु आज कैसे ब्राह्मणी से अवकाश मिल गया मित्र ?"

"अरे उस पापिष्ठा अम्बपाली को देखने का कौतूहल खींच लाया। उसके आवास में तो हीरे मोती बखेरने वाले ही जा सकते हैं, मेरे जैसे दरिद्र ब्राह्मण नहीं।"

"अच्छा, यह बात है ? मित्र आश्वलायन, किन्तु क्या ब्राह्मणी से यह बात कह आये हो ?"

"अरे नहीं, नहीं, । कहता तो क्या आता ? जानते हो सेनापति, डायन इतनी ईर्ष्या करती है, इतना सन्देह करती है कि क्या कहूं ? तनिक किसी दासी ने हंस कर देखा कि बिना उसे बेचे चैन नहीं लेगी। उस दिन एक चम्पकवर्णा तरुणी दासी को चालीस निष्क पर बेच डाला। वह कभी कभी इस बूढ़े ब्राह्मण की चरणसेवा कर दिया करती थी। सेनापति, कृत्या है, कृत्या।"

"तो मित्र आश्वलायन, उस पापिष्ठा अम्बपाली को देखने के लिये इतनी जोखिम क्यों उठा रहे हो ?"

"यों ही सेनापति, विश्व में पाप पुण्य दोनों ही को स्पर्श करना चाहिये।"

"तो मित्र खूब मजे से स्पर्श आलिंगन करो, यहां ब्राह्मणी की बाधा नहीं है।"

ब्राह्मण खूब जोर से हंस पड़ा। इससे उसके कुत्सित गन्दे दांत बाहर दीख पड़े। उन्होंने कहा—"आपका कल्याण हो सेनापति, पर क्या वह पापिष्ठा आवेगी तो?"

"अवश्य आयेगी मित्र, आयुष्मान सिंह और उससे अधिक उसकी गान्धारी पत्नी को देखने के लिये देवी अम्बपाली बहुत उत्सुक है।"

"यह किसलिये सेनापति ?"

"उसने सुना है कि सिंह और उसके तरुण मित्रों ने उसकी उपेक्षा की है। देखते नहीं, वह गान्धारी कन्या देव कन्या सी, ऐसी अप्रतिम रूप ज्योति लेकर वैशाली में आई है जिससे अम्बपाली को ईर्ष्या हो सकती है।"

"ऐसा है, तब तो सेनापति, उस गांधारी कन्या को भी भलीभांति देखना होगा।"

"सब कुछ देखो मित्र, आज यहां रूप की हाट लग रही है।"

"यह देखो, वे नायक सूरसेन और महा पंडित भारद्वाज इधर ही को आ रहे हैं। खूब आये सूरसेन, आओ मैं मित्र आश्वलायन श्रोत्रीय से तुम्हारा परिचय . . ।"

"हुआ, परन्तु सेनापति, अम्बपाली अभी तक क्यों नहीं आई—कह सकते हैं?"

"नहीं, नायक।"

"परन्तु वह आयेगी तो?"

"अवश्य आयेंगी, नायक सूरसेन, पर तुम उसके लिये इतने उत्सुक क्यों हो?"

सूरसेन ने ही ही हंसते हुये कहा—"देखूंगा—एक बार देखूंगा। सुना है उसने कौशल प्रसेनजित को निराश कर दिया है।"

महापंडित भारद्वाज ने हाथ उठा कर नाटकीय ढंग से कहा—"अरे वह वैशाली की यक्षिणी है। मैं उसे मन्त्रबल से बद्ध करूंगा।"

गणित और ज्योतिष के उद्भट ज्ञाता त्रिकालदर्शी सूर्यभट्ट ने अपने बड़े डीलडौल को पीछे से हिला कर कहा—"मैं कहता हूं महा पंडित जन्मजन्मांतर से उस यक्षिणी से आवेशित है।"

सबने लौट कर देखा सूर्यभट्ट और महादार्शनिक गोपाल पीछे गंभीर मुद्रा से खड़े हैं। सूर्यभट्ट की बात सुनकर दार्शनिक और तार्किक गोपाल बोले—"हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है।" इस पर सब हंस पड़े।

इन महार्घ पुरुषो के सामने ही एक स्फटिक शिला पर युवराज स्वणसेन, सूर्यमल्ल, सधि विग्रहिक जयराज, और आगार कोष्ठक सौभद्र बैठे थे।

युवराज ने कहा—"क्यो सौभद्र, क्या कारण है कि तुम कल रात मेरी पानगोष्ठि मे नही आये और यहा अभी से उपस्थित हो ?"

"इसका कारण तो स्पष्ट है, वहाँ देवी अम्बपाली के आने की कोई सभावना नहीं थी और यहाँ अवश्य उनका दर्शन लाभ होगा।"

"यह बात है ? तो तुम कब से देवी अम्बपाली की कृपा के भिखारी भी बन गए ?"

"कौन मैं ? मै तो जन्म जन्म मे देवी की कृपा का भिखारी रहा हूं।"

उन्होने सामने खडे सूर्यभट्ट की ओर देखकर मुस्करा कर कहा—'परन्तु युवराज, हम उचित नही कह रहे है। हमे ज्ञातिपुत्र सिंह और उनकी पत्नी का अभिनन्दन करना चाहिये।"

"चाहिये तो, परन्तु अब समय कहा है? वह देवी अम्बपाली का आगमन हो रहा है।"

सबने चकित होकर कहने वाले की ओर घूम कर देखा। आचार्य गौडपाद भावहीन रीति से मुस्करा रहे है। तरुणो ने उनकी उपस्थिति से अप्रतिम होकर कहा—

"नही नहीं, अभी भी समय है। पान अभी आरम्भ नहीं हुआ। चलो हम लोग सिंह के पास चल।" तीनो तरुण तेजी से उधर चल दिये जहा तरुण मडल से घिरे सिंह उनके विविध प्रश्नो के उत्तर मे उनके कौतूहल को दूर कर उनका मनोरजन कर रहे थे।

देवी अम्बपाली अपनी दो दासियो के साथ आई थी। उन्होने अपना प्रिय श्वेत कोशेय का उत्तरीय और लाल अन्तर वासक पहिना था। वे उदयन कौशाम्बीपति के दिये हुए गुलाबी रग के दुर्लभ मुक्ताओ की माला धारण किये थी। उनकी दृष्टि मे गर्व, चाल मे मस्ती, और उठान में

सुषमा थी। अम्बपाली को देखते ही लोगों में विविध कौतूहल फैल गया। क्षण भर को उनकी बातचीत रुक गई और वे आश्चर्य चकित हो उस रूप ज्वाला की अप्रतिम देहयष्टि को देखने लगे।

पान प्रारम्भ हो गया। दास दासी दौड़ २ कर महमानों को मैरेय, माध्वीक और दाक्षा देने लगे।

अम्बपाली हसती हुई उनके बीच राजहंसिनी की भांति घूमने और कहने लगी—'मित्रो! अभिनन्दन करती हू और अभिलाषा करती हू, खूब पियो।"

वह मन्द गति से घूमती हुई वहां पहुची जहां तरुण तरुणियो से घिरे हुये सिंह अपने सगियो के साथ हंस २ कर विविध वार्तालाप कर रहे थे। उसने रोहिणी के निकट पहुच कर कहा—"गान्धार कन्या का वज्जी भूमि पर स्वागत। सिंह ज्ञातिपुत्र तुम्हारा भी और तुम्हारे सब साथियो का भी।" फिर उसने हसकर रोहिणी से कहा—

"वैशाली कैसी लगी बहिन?"

"शुभे, क्या कहू? अभी बारह घडी भी इस भूमि पर आए नही हुई। इसी बीच मे इतनी आत्मीयता देख रही हू। देखिये, रम्भा भाभी को, इनके स्पर्श मात्र से ही मार्ग के तीन मास की थकान मिट गई।"

"स्वस्ति रम्भा बहिन, तुम्हारी प्रशसा पर ईर्ष्या करती हू।"

"देवी अम्बपाली की ईर्ष्या मेरे अभिमान का विषय है।"

"अम्बपाली ने मुस्कुरा कर सिंह से कहा—मित्र सिंह, तुम्हे मै तक्षशिला से ऐसी अनुपम निधि ले आने पर बधाई देती हूं।" फिर रोहिणी की ओर देख कर कहा—"भद्रे रोहिणी, वज्जी भूमि क्या तुम्हे गान्धार सी ही दीखती है? कुछ नयापन तो नही दीखता?

"ओह, एक बात मै वज्जीभूमि में सहन नही कर सकती हू?"

"वह क्या बहिन?"

'ये दास!"

उसने एक कोने में विनयावनत खड़ी अम्बपाली की दोनों दासियों की ओर संकेत करके कहा—"कैसे आप मनुष्यों को भेड़ बकरियों की भांति खरीदते बेचते हैं? और कैसे उनपर अबाध शासन करते हैं? वह शरच्चन्द्र की कौमुदी में निर्मल पुष्करिणी में खिली कुमुदिनी की भांति स्निग्ध शीतल सुषमा बखेरने वाली अम्बपाली की यवनी दासी मदलेखा के निकट आई, उसकी लज्जा से झुकी हुई ठोढ़ी उठाई और कहा—'कैसे इतना सहमी हो बहिन, जब हम सब बातें करते हैं, हंसते हैं, विनोद करते हैं, तुम मूक बधिर सी चुपचाप खड़ी कैसे रह सकती हो? निर्मम, पाषाण प्रतिमा सी। यही विनय तुम्हें सिखाया गया है? ओह! तुम हमारे हास्य में हंसती नहीं और हमारे विलास से प्रभावित भी नहीं होती?" रोहिणी ने आंखों में आंसू भर कर मदलेखा को छाती से लगा लिया। फिर पूछा "तुम्हारा नाम क्या है, हला?" मदलेखा ने घुटनों तक धरती में झुककर रोहिणी का अभिवादन किया और कहा—"देवी, दासी का नाम मदलेखा है।"

"दासी नहीं, हला। अच्छा देवी अम्बपाली, जब तक हम यहां हैं कुछ क्षणों के लिये मदलेखा और उसकी संगिनी को—क्या नाम है उसका?"

"हज्जे-चन्द्रभामा"

"सुन्दर, मदलेखा और चन्द्रभामा को स्वच्छन्द इस पानगोष्ठी में भाग लेने और आमोद प्रमोद करने की स्वाधीनता देदी जाय।"

"जिसमें गान्धार कुमारी का प्रसाद हो।" अम्बपाली ने हंसते हुए कहा। फिर उसने स्वर्णसेन की ओर संकेत करके कहा—

"युवराज क्यों नहीं तुम वज्जी में दासों को अदास कर देते हो?" रोहिणी ने कहा—"क्या युवराज ऐसा करने की क्षमता रखते हैं?"

"नहीं भद्रे, मुझ में यह क्षमता नहीं है। इन दासों की संख्या अधिक है। फिर वज्जी भूमि में अलिच्छवियों के दास ही अधिक हैं।"

"वज्जी में अलिच्छवी?"

"हा भद्र, वे लिच्छवियो से कुछ ही कम है। वे सब कर्मकर ही नही है, आर्य है। उनमे ब्राह्मण है, वैश्य है। उन्हे वज्जी शासन में अधिकार नही है, पर उनमे बहुत से भारी २ धनकुवेर है। उनके पास बहुत धरती है, लाखो करोडो का व्यापार है, जो देश देशान्तरो में फैला हुआ है। उनके ऊपर किसी प्रकार का राजभार नही, न वे युद्ध करते है। वे स्वतन्त्र और समृद्ध जीवन बिताते है। उन्हे नागरिकता के सम्पूर्ण अधिकार वज्जीभूमि मे प्राप्त है। उनका बिना दासो के काम चल ही नही सकता। फिर यवन, काम्बोज, कौशल और मगध के राज्यों से बिकने का निरन्तर दास वज्जी भूमि मे आते रहते है।"

"परन्तु युवराज, वे कर्मकर जनो से वेतन शुल्क देकर अपना काम करा सकते है।"

"असभव है शुभे, इन अलिच्छवियो की गुत्थिया हमारे सामने बहुत टेढी है। ये आचार्य आश्वलायन यहा विराजमान है। इन्ही से पूछियें, ये श्रोत्रिय ब्राह्मण है और अलिच्छवियो के मुखिया है।' आर्य आश्वलायन अपनी मिचमिची आखो से इन सुन्दरियो की रूप सुधा पी रहे थे, अब उन्होने उनकी कमल जैसी आखे अपनी ओर उठती देखकर कहा--"शान्त पापं, शान्त पाप, भद्रे, दास दास है और आर्य आर्य है। मै श्रोत्रीय ब्राह्मण हू, नित्य षोडषोपचार सहित षड्कर्म करता हू। षडङ्ग वेदो का ज्ञाता हू, दर्शनो पर मैने व्याख्या की है, और गृह सूत्रो का निर्माण किया है। सो ये अधम क्रीतदास क्या मेरे समान हो सकते है? आर्यो के समान हो सकते है?"

उन्होने अपने नेत्रो को तनिक और विस्तार से फैला कर और अपने गन्दे गलित दातों को निपोर कर मैरेय के घडे में से सुरा चषक भरते हुए तरुण कालेदास की ओर रोषपूर्ण ढग से देखा।

देवी अम्बपाली खिलखिला कर हस पडी। उन्होने अपनी सुन्दरी दासी मदलेखा की ओर सकेत करके कहा—"और आर्य उस नवनीत कोमलाङ्गी यवनी के सम्बन्ध में क्या राय रखते है?"

आर्य आश्वलायन का रोष तुरन्त ठण्डा होगया, उन्होने नेत्रों म अनुराग और होठो में हास्य भर कर कहा "उसकी बात जुदा है, देवी अम्बपाली, पर फिर भी दास दास है और आर्य आर्य।"

"किन्तु आर्य, यह तो अत्यन्त निष्ठुरता है, अन्याय है। कैसे आप यह कर पाते है, और कैसे इसे वे सहन करते है? इस विनय, सस्कृति, शोभा और सौष्ठव की मूर्ति मदलेखा को "अजे" कह कर पुकारन में आपको कष्ट नही होता?" रोहिणी ने कहा।

"किन्तु, भद्रे, हम उन दासो के साथ अत्यन्त कृपा करते है, फिर बज्जी के नियम भी उनके लिये उदार है, बज्जी के दास बाहर बेचे नही जाते।"

"किन्तु आर्य, समाज मे सब मनुष्य समान है।"

'नही भद्रे, मै समाज का नियन्ता हू, समाज मे सब समान नही हो सकते। इसी बज्जी मे ये लिच्छवि है जिनके अष्टकुल पृथक २ है। ये किसी अलिच्छवि माता पिता की सतान को लिच्छवि नही मानते। अभिषेक पुष्करिणी मे वही लिच्छवि स्नान कर पाता है, जिसके माता पिता दोनो ही लिच्छवि हो और उसका गौर वर्ण हो, इसके लिये इन लिच्छवियों के नियम बहुत कडे है। फिर हम श्रोत्रीय ब्राह्मण है, शुद्ध आर्य गृहपति वैश्य है, जो सोलह सस्कार करते है और पञ्च महायज्ञ करते है। अधगोरे कर्मकर है और काले दास भी है, जो मगध, चम्पा, ताम्रपर्णी से लेकर तुर्क और काकेशस एव यवन तक से बज्जी भूमि में बिकने आते है। भद्रे, इन सब मे समानता कैसे हो सकती है, सब की भाषा भिन्न, रग भिन्न, सस्कृति भिन्न और रक्त भिन्न है।'

"किन्तु आर्य, हमारे गान्धार मे ऐसा नही है, वहां सब का एक ही रंग, एक ही भाषा, एक ही रक्त है। वहां हमारा सम्पूर्ण एक राष्ट्र है। ओह, कैसा अच्छा होता आर्य, यदि यहा भी ऐसा ही होता"।

"ऐसा हो नही सकता बहिन" अम्बपाली ने हंसकर कहा। "अब तुम

गान्धार के स्वतन्त्र वातावरण का सुख स्वप्न भूल जाओ। वज्जी संघ को आत्मसात करो, जहां युवराज स्वर्णसेन जैसे लिच्छवि तरुण और आर्य आश्वलायन जैसे श्रोत्रीय ब्राह्मण रहते हैं, जिन्हें बड़े बने रहना ही होगा। इन्हें दास चाहिए, दासी चाहिए और भोग चाहिए। किन्तु क्या बातों में ही रहेगी शुभे गान्धारपुत्री? अब थोड़ा पान करो। हज्जे मदलेखा, गान्धारी देवी को मद्य दे।"

"नहीं, नहीं, सोम्ये, तुम यहां आकर मेरे निकट बैठो मदलेखा।"

"तो ऐसा ही हो, भद्रे। मदलेखा, गान्धारी देवी जैसा कहें वैसा ही कर।"

"जेदु भट्टिनी, दासी ।"

"दासी नहीं, हला, यहां बैठो, हाँ अब ठीक है। युवराज स्वर्णसेन, आपको कुछ आपत्ति तो नहीं?"

"नहीं भद्रे, आपकी उदारता प्रशंसनीय है, परन्तु मुझे भय है इस से आप उनका कुछ भी भला न कर सकेंगी।"

"कैसे दुःख की बात है प्रिय, गान्धार से आते हुए मैंने जब प्राची के समृद्ध नगरों की पण्य वीथियों में पड़े हुए स्वर्ण रत्न और ठसाठस साधन सामग्री देखी, तो मुझे बड़ा आह्लाद हुआ। मैं स्वीकार करती हूं कि हम गान्धार गण इतना ठाटबाट नहीं रखते, पर जब दासों, चाण्डालों और कर्मकरों के टूटे फूटे झोपड़े और उनके घृणास्पद उच्छिष्ठ आहार तथा उनपर पशुओं की भांति आर्य नागरिकों का शासन देखा तो मेरा हृदय दुःख से भर गया। दासता और दारिद्र्य का यह दायित्व किस पर है?" गान्धारी ने सिंह से कहा।

सिंह ने हँस कर पत्नी से कहा—"कदाचित, उस बूढ़े राजा पर, जिसे तुमने कल्माषदम्ब में देखा था, जिसके झुर्री भरे मुंह पर अशोभनीय डाढ़ी थी और पिलपिले सिर पर एक भारी मुकुट था जिसमें सेरों सोना हीरा मोती जड़ा हुआ था।"

"उस पर क्यों प्रिय?"

"क्योंकि वह अधिकार को बहुत महत्व देता है, वह अपने राज्य का सब से धनी, सब से बड़ा, और सब से स्वच्छन्द व्यक्ति है। उसके पास बिना ही कोई काम किए दुनिया भर की दौलत चली आती है, राज्य भर में फैले हुए दास, कर्मकर और प्रजावर्गीय जन उसी की सम्पत्ति है। वह दासों का तो अधिपति है ही प्रजा के सर्वस्व का भी स्वामी है। वह उनकी युवती पुत्रियों को अपनी विलास कामना के लिये अपने अन्तःपुर में जितनी चाहे भर सकता है, उनके तरुण पुत्रों को अपने अकारण युद्धों में मरवा सकता है, वह प्रजा की पसीने की कमाई को बड़े २ महल बनवाने, और उन्हें भांति २ के सुख स्वप्नों से भरपूर करने में खर्च कर सकता है, उसकी आज्ञा सर्वोपरि है।"

"छि छि कैसे लोग यह सहन करते हैं, प्रिय ?"

"यह तो अभ्यास की बात है। तुमने देखा नहीं, पश्चिम गान्धार कैसे पर्शुपुरी के शासानुशास का शासन मान रहा है, कैसे उसने कालिंग-सेना जैसी नारी को प्रसेनजित के अन्तःपुर में भेज दिया ? फिर वह सावधान और भयभीत भी तो रहता है, वह अनेकों विधिविधानों से अपने को सुरक्षित रखता है।"

अम्बपाली ने हंस कर कहा—"—कदाचित् गांधार पुत्री पर यह विदित नहीं है कि उनके जल को, ताम्बूल को, आहार को, जब तक कोई चख न ले—वे नहीं खाते पीते।"

"यह किस लिए ?"

"अपने प्राण नाश का जो उन्हें भय रहता है, सम्पूर्ण प्रजा का भार उसी पर लदा रहता है, उसके बहुत गुप्त और प्रकट शत्रु होते हैं।"

"ओह, तो उन पर केवल उनके शरीर पर लदे हीरे मोतियों ही का बोझ नहीं है, जीवन का भी बोझ है। फिर ये भाग्यहीन उस बोझ को लादे क्यों फिरते हैं ? अपने जीवन में ये रज्जले इतने भयभीत और भारवाही होने पर भी अन्य देशों को विजित करने की लिप्सा

नही छोड सकते ?"

"यही तो प्रिय, राजसत्ता और गणतन्त्र मे मूलभेद है। गणतन्त्र तो एक जनतन्त्र तक सीमित है। उसका शासन अधिकार के सिद्धान्त पर नही, कर्त्तव्य के सिद्धान्त पर है। वह शासन करने के लिये नहीं, जन मे सुव्यवस्था और सामूहिक सामञ्जस बनाये रखने के लिये है। परन्तु ये रज्जुले तो अधिकार के लिये हैं। उनकी नीति ही यह है कि उन्हे शासन करने को ऐसे अनेक राष्ट्र दरकार है जो एक दूसरे के विरुद्ध समय २ पर उसकी सहायता करते रहे। फिर इन राजाओ की यह भी नीति है कि राष्ट्रो मे फूट डालते रहे। आर्यों ही के राज्यो को ले लो। देखा नही तुमने प्रिय, हस्तिनापुर, काम्पिल्य, कान्यकुब्ज कौशल और प्रतिष्ठान जहा २ आर्यो के रज्जुले है, वहा राष्ट्र टूटा फूटा है। वहा ब्राह्मण है, क्षत्रिय है, वैश्य है और कर्मकर है, ये सब अपने को दूसरे से भिन्न समझते है। ये सभी बातें राजाओ की स्वेच्छाचारिता मे बड़ी सहायक है। परन्तु गण शासन की बडी बाधा है। यहा वैशाली ही को लो। लिच्छवि सब एक है पर अलिच्छवि आर्य और कर्मकर राजशासन मे अधिकार न रखते हुए भी इसी भिन्नता के कारण हमारी बहुत बडी बाधायें है।"

रम्भा ने इन बातो से ऊब कर कहा—"किन्तु स्नुषा गान्धारी, इस गहरी राजनीति से अपने हाथ कुछ न आएगा। कुछ खाओ भी।"

पान भोजन प्रारम्भ हुआ। मैरेय, शूकर मार्दव, मृग, गवय, ओदन और मधुगोलक आदि भोजन सामग्री परसी जाने लगी। देवी अम्बपाली धर्मध्वज मण्डली से चुहल कर रही थी किन्तु उसकी सुन्दर दासियों को गान्धारी रोहिणी ने नही छोडा था—वे उनके पास बैठी महिला मण्डली के साथ खा पी रही थीं। भोजन की समाप्ति पर सब नर नारियो ने अपनी अपनी रुचि के अनुसार नृत्य किया और अर्द्ध रात्रि व्यतीत होने पर यह समारोह समाप्त हुआ।

———

*

: १६ :

मल्लदम्पति

वसन्त की मस्ती वातावरण मे भर रही थी। शाल वृक्षो पर लदे सफेद फूलो की सुगन्ध वन को सुरभित कर रही थी। एक तरुण और एक तरुणी अश्व पर सवार उस सुरभित वायु का आनन्द लेते, धीरे २ बाते करते चले जा रहे थे। तरुणी का घुटने तक लटकने वाला अन्तर्वासक हवा मे फडफडा रहा था। और उसके कुञ्चित काली नागिन से उन्मुक्त केश नागिन की भाति हवा मे लहरा रहे थे। तरुण ने अपने घोडे की रास खीचते हुए और अपने सुन्दर दातो की छटा दिखाते हुए कहा—"वाह, क्या बढ़िया आखेट है। वह देखो, पुष्करिणी के तीर पर वह सुअर अपनी थूथन कीचड मे गडा २ कर क्या मजे मे मोथे की जड़ खा रहा है।"

'तो मै अपना बाण सीधा करू प्रिय ?"

"ठहरो प्रिये, वह देखो, एक और मोटा बाराह इधर ही को आ रहा है, हृदय पर बाण-सधान करना।"

तरुणी ने फुर्ती से बाण धनुष पर चढा कर अश्व को घुमाया।

तरुण ने भी बाण को धनुष पर चढा लिया। फिर उसने तरुणी के बराबर अश्व लाकर कहा—"सावधान रहना, यदि लक्ष्य च्युत हुआ तो पशु सीधा अश्व पर आवेगा। हा, अब बाण छोडो।"

तरुणी ने कान तक खीच कर बाण छोड दिया। बाण सन्न से जाकर बाराह की पसलियो मे अटक गया। पशु ने वेदना से चीत्कार किया और क्रुद्ध हो घुर्र २ शब्द करता हुआ सीधा तरुणी के अश्व पर टूटा।

तरुण ने इसी बीच जानकर एक बाण चलाया, वह उसकी आख

फोड़ता हुआ गर्दन के पार निकल गया, पशु भूमि पर गिरकर छटपटाने लगा।

तरुणा ही-ही करके हसने लगी। तरुण घोड़े से उतर पड़ा। वह पशु को खीचकर एक वृक्ष के नीचे ले गया। तरुणी ने भी घोड़े से उतर दोनो घोड़ो को बागडोर से बाध दिया। फिर तरुण ने पशु की खाल निकाली, मास खण्ड किय, तरुणी सूखी लकड़िया बीन लाई, और फिर उन्होने मास खण्ड भून २ कर खाना प्रारम्भ किया।

तरुणी ने सुराचषक तरुण के मुंह से लगाते हुए कहा—"प्रिय, कितना स्वाद है इसमे, कहो तो ?"

"निस्सन्देह, विशेषत इस लिये कि इसमे हमारी स्वतन्त्रता भी समावेशित है।"

"यही तो, परन्तु प्रिय, कुसीनारा छोड़ते मेरी छाती फटती है। क्या कुसीनारा को बधुलमल्ल की आवश्यकता नही है ?"

"नही है प्रिय मल्लिके, तभी तो जब मैंने स्नातक होकर तक्षशिला को छोड़ा था तो गुरुपद ने कहा था—यह आयुष्मान् जा रहा है, समस्त हस्तलाघव और राजकौशल सीखकर, मल्लो के गौरव की वृद्धि करने। और मेरा हस्त-लाघव क्या कुसीनारा ने चार साल में देखा नही ? गणपति ने इन चार वर्षो मे जो गुरुतर राजकाज मुझे सौंपा, मैंने उसे सम्यक् पूर्ण किया, परन्तु गण-सभा का मुझ पर सन्देह बना ही रहा प्रिये, मल्लो का सन्निपात जब जब हुआ, गणसदस्यो ने ईर्षावश बाधा दी, और मुझे उपसेनापति का पद भी मल्लो ने नही दिया। सदैव काली छन्द अलाकाओ ही का बाहुल्य रहा सन्निपात मे।

मल्लिका ने सुराचषक भरा और कुरकुरा मांस खण्ड भूनकर उसे पति को देते हुए कहा—"प्रिय, जाने दो, अमर्ष करने से क्या होगा। परन्तु कुसीनारा अपनी जन्मभूमि है।"

"जन्मभूमि ? अपनी मा है, उसी से मेरा शरीर बना है। परन्तु कुसीनारा में तो मै अब नही रहूगा प्रिये, मेरी तो यहा आवश्यकता

ही नही है। कितने ही सम्भ्रान्त मल्ल मुझ से डाह करते हैं, क्योंकि उन्होने मुझे सर्वप्रिय होते देखा है।"

"परन्तु इससे तो उन्हे प्रसन्न होना चाहिये था, उन पर तुम्हारे सभी अलौकिक गुण प्रकट है, क्या और भी किसी मल्ल ने तक्षशिला में इतना सम्मान पाया है ?"

"नही, बन्धुल ने प्याला खाली करके एक ओर रख दिया, और उदास दृष्टि से वह मल्लिका की ओर देख कर बोला--मैंने इच्छा की थी कि मल्लो को मगध की लोलुप दृष्टि से अभय करूगा, परन्तु अब नहीं।"

"तो फिर प्रिय, रज्जुले की श्रावस्ती ही क्यों ? लिच्छवियों की वैशाली क्यो नही? महाली लिच्छवी जो तुम्हारा परम मित्र है, तक्षशिला मे वह तुम्हारा सहपाठी भी रहा है। वह उस दिन आया था तो तुम्हारे गुणो का बखान करते थकता न था। सुना है वह वैशाली के नगर-द्वार रक्षको का अध्यक्ष है।"

"जानता हू प्रिये, परन्तु महाली तो सदैव ही बन्धुल की कृपा का भिखारी रहा है। आज बन्धुल अपनी लाज खोकर उसके पास नही जायगा। फिर लिच्छवियो का गण आज आम्रपाली के स्वैण युवको का गण है, वहाँ सुरा सुन्दरी ही प्रधान है, उसका सगठन भी नष्ट हो रहा है, उसका विनाश होगा प्रिये।"

"ऐसा न कहो प्रिय, यहा रज्जुलो के बीच जो हमारे दो चार छोटे २ गण है, उनमें वैशाली के लिच्छवियो ही का गण समृद्ध है।"

"परन्तु स्थाई नही प्रिये, इसमे तो श्रावस्ती ही ठीक है, कोशल के राजा प्रसेनजित के बहुत लेख आ चुके है। वह हमारा आदर करेगा। हम दस वर्ष तक्षशिला मे साथ २ पढे है। वह मेरे गुणों और शक्ति को जानता है और उसे मेरी आवश्यकता है।"

"किन्तु प्रिय, तुम्ही ने तो कहा--मल्लों ने तुम्हारे गुणो ही से

ईर्षा भी है, तुम वहा भी क्या ईर्षा से बचे रहोगे। गुणी और सर्वप्रिय होना जैसा अभ्युदय का कारण है, वैसा ही ईर्षा का भी। फिर, वह पराया जनपद, वह भी रज्जुलो का, जहा हम गणतंत्र के स्वतन्त्र जनो की थोडी भी अवस्था नही है।"

"तुम्हारा कहना यथार्थ है। ईर्षा होगी तो फिर यह खड्ग तो है। पर अभी श्रावस्ती का चलना श्रेयस्कर है। कोशलपति पाच महा राज्यो का अधिपति है। वह मूर्ख आलसी और कामुक है। शत्रुओ से घिरा है। उसे एक विश्वस्त और वीर सेनापति की आवश्यकता है। आशा है वह हमारा समादर करेगा।"

"ऐसा ही सही प्रिय, बहुत विलम्ब हुआ, बहुत सुस्ता लिए, अब चलें।"

दोनो ने अपने अपने अश्व सम्हाले और आगे बढे। सूर्य ढलने लगा। दोनो यात्रियो की पीठ पर उसकी पीली धूप पड रही थी। मल्लिका ने कहा—"रात्रि कहा व्यतीत होगी प्रिय?"

"ब्राह्मणो के मल्लिग्राम मे, वहा मेरे मित्र साकृत्य ब्राह्मण है। जो मल्ल जनपद मे ख्यातिप्राप्त योद्धा है। वे हमारा सत्कार करेगे। वह सामने अचिरावती की श्वेत धार दीख रही है प्रिये, उसी के तट पर उन सघन वृक्षो के झुरमुट के पीछे मल्लिग्राम है। घोडे को बढ़ाओ, हम एक मुहूर्त मे वहा पहुच जाते है।"

दोनो ने अपने २ अश्व फेंके। असील जानवर अपने २ अधिरोहियों का सकेत पा हवा मे तैरने लगे। सान्ध्य समीर और कामल हाकर उनकी पीठ पर थपकिया दे रहा था।

ग्राम सामने आ गया। अचिरावती की श्वेत धारा रजत सिकता-कणो मे मन्द प्रवाह से बह रही थी। अश्वारोहियो ने अपने अपने घोडों की लगाम ढीली की। अश्व तृप्त हो कर शीतल जल पीने लगे।

एक तरुणी मशक पीठ पर लिए नदी तीर पर आई। उसके घुंघराल केश हवा में लहरा रहे थे। कन्धो पर होकर एक श्वेत ऊनी

कम्बल वक्ष को ढाप रहा था। कमर में लाल दुकूल था। यात्रियो को देख कर तरुणी ने कहा—"कहाँ से आ रहे है प्रिय अतिथियो!"

"कुशीनारासे।"

"जहा बन्धुलमल्ल रहते है।"

"मै बन्धुलमल्ल हू।"

"तुम? तो ये श्रीमती मल्लिका है, स्वागत बहिन, मै साकृत्य गौतम की पुत्री हू।"

'तू लोमडी गोपा है?" बन्धुल हंसते हुए घाडे से उतर पडे।

"मै जल भर लू तब चले, पिता घर पर ही है, देख कर प्रसन्न होंगे।"

'तू अश्व को थाम, मै जल भरता हू।"

"ऐसा ही सही।" गोपा ने मशक बन्धल को देदी। बन्धुल ने मशक भर कर कन्धे पर रखी। गोपा घाडे की रास थामे पैदल चली। मल्लिका अश्व पर सवार रही।'

"आज किधर भूल पडे बन्धल?"

"भूल नहीं पडा, इच्छा से आया हू।"

"बहुत दिनबाद!"

"सचमुच, तब तू बहुत छोटी-सी थी।"

'पर मै तुम्हे याद करती थी बन्धु। देवी मल्लिका, अब कितने दिन मेरे पास रहेगी?"

"आज रात भर गोपा, तुझे सोने न दूगी, खूब गप्पें होगी। क्यो?"

"मित्र गौतम करते क्या है?'

"वही सूत्र रचते है। हसी आती है बन्धु, सूत्र मे मात्रा कम कर पाते है तो खूब हंसते है।"

"और अहल्या रोकती नही?"

"मां की वे परवा कहा करते है? मै ही उन्हे समय पर स्नान

आह्निक कराती हूं। वह सामने घर आ गया। पिता जी द्वार पर खड़े हैं। पिता जी, देखो तो मैं किसे ले आई हूं।"

बन्धुल को देख कर गौतम साकृत्य बाहर आकर बोले—"अरे मित्र बन्धुल, स्वस्ति, स्वस्ति।"

"स्वस्ति मित्र गौतम, कहो न्याय दर्शन पूरा हुआ या नहीं?"

"अभी नहीं मित्र, इस धूर्त बोधायन को—मैं कहता हूं मसल डालूंगा। मैंने धर्म-सूत्र रचे हैं बन्धुल!"

"सच, तो मित्र गौतम साकृत्य, बोद्धा, दार्शनिक और धर्माचार्य हैं?"

"ये दुष्ट द्रविड कुछ करने दें तब न? अनार्य संस्कृति को आर्य संस्कृति में घुसेड़ रहे हैं। उधर यह ज्ञातिपुत्र महावीर, परन्तु अरे, मल्लिका देवी का स्वागत करना तो मैं भूल ही गया।"

"घर में स्वागत कैसा मित्र, फिर, गोपा ने नदी-तीर पर ही वह शिष्टाचार पूरा कर दिया।"

"बहुत याद करती है गोपा तुम्हें बन्धुल। तुम्हारे उस आखेट की उसे याद है, जब उस गवय को एक ही बाण से तुमने मारा था। किन्तु हां, बेटी गोपा, जैमिनि कहां गया?"

"समिधा लाने गया था, वह आ रहा है।"

"जैमिनि, ये हमारे मित्र मल्ल बन्धुल आए हैं, मल्लिका भी है, एक वत्सतरी को लाकर काट तो मेरे द्वार पर वत्स, इन सम्मान्य अतिथियों के सम्मान में। क्यों मित्र, कोमल वत्सतरी का मांस, ओदन और मधु, कैसा रहेगा।"

"बहुत बढ़िया, मित्र गौतम!"

"तो बेटी गोपा, देवी मल्लिका को भीतर लेजा और बन्धुल के लिये अर्घपाद्य ला। क्यों मित्र, यहीं देवद्रुम की छाया में बैठा जाय?"

"यही अच्छा है। बैठो मित्र गौतम, बोधायन की क्या बात कह रहे थे?"

"कह रहा था, किन्तु ठहरो। गोपा, थोड़ा शूकर मार्दव आग पर भून ला और पुरानी मैरेय भर ला, बन्धुल थका हुआ है।"

"आग तैयार है, मैं अभी भून लाती हू। सोमक के हाथ मैरेय भेज रही हू।"

"बैठ मित्र, हा बौधायन नास्तिक कहता है—स्त्री के साथ अथवा यज्ञोपवीत बिना किये बालको के साथ भोजन करने मे दोष नही है, बासी खाना भी बुरा नही है, और मामा फूफू की कन्या से विवाह भी विहित है। वह भारत के तीन खण्ड करता है और गंगा यमुना के मध्य देश को सर्वोत्तम कहता है। वह भारत के आरट्ट, दक्षिण के कारस्कर, उत्पल के पुण्ड्र, तथा बग, कलिंग के सौवीरो को प्रायश्चित विधान कहता है।"

"परन्तु मित्र गौतम, ऐसा दीखता है कि तुम्हारा न्यायदर्शन अब धरा रह जायगा।"

"ऐसा क्यो मित्र!"

"तुमने क्या शाक्यपुत्र गौतम का नाम नही सुना?"

"सुना क्यो नही, वह क्या आजकल काशी मे है?"

"नही, राजगृह गया है, परन्तु उसका धर्म आग की भाति फैल रहा है। उसके आगे तेरा धर्मसूत्र और न्यायदर्शन कुछ न कर पायेगा।"

"देखा जायगा मित्र, ले मैरेय पी। ला गोपा, गर्म २ भुने कुरकुरे मास-खण्ड दे। कह कैसे है मित्र!"

"बड़े स्वादिष्ट, मुझे नमक के साथ भुने कुरकुरे मास मे बहुत स्वाद आता है।"

"तो यथेच्छ खा मित्र!"

"खूब खा रहा हू। परन्तु मित्र गौतम, तुम जो ब्राह्मणो को अन्य जातियो से उत्कर्ष देते हो यह ठीक नही है।"

"वाह, ठीक क्यो नही है? देखते नही, इन रज्जुलो ने ब्रह्मवाद को लेकर परिषद् प्रारम्भ की है और उसमे वे गुरुपद धारण किये बैठे

है। वे ब्राह्मणों को हीन बनाना चाहते हैं। देखा नहीं, उस अश्वपति कैकय ने मेरे साथ कैसा नीच व्यवहार किया था। मेरे पुत्र ही के सामने मेरा अपमान किया और मुझे समित्पाणि होकर उसके आगे जाना पड़ा। उसने गर्व से कहा—बैठ गौतम, ब्राह्मणों में सबसे प्रथम मैं तुझे यह ब्रह्म विद्या बताता हूं, आज से प्रथम किसी ब्राह्मण को यह विद्या नहीं आती थी।"

"फिर वह गुह्य विद्या तो तुम सीख आये मित्र!"

"खाक सीख आया। अरे कुछ विद्या भी हो, छल है छल। कोरा पाखण्ड। यज्ञ के ब्रह्मा को बना दिया ब्रह्म! पहिले ब्रह्मा को लूट के माल में काफी हिस्सा देना पड़ता था, उनके आधीन रहना पड़ता था, उनके द्वारा यज्ञ अनुष्ठान कराकर महाराज और सम्राट् की उपाधि ली जाती थी। पर अब तो वे ब्रह्म को जान गये, ब्रह्मज्ञानी हो गये। अरे मित्र बन्धुल, इस ब्रह्म के ढकोसले को मैं अच्छी तरह समझ गया हूं।"

"तो मुझे भी तो समझा मित्र गौतम!"

"सीधी बात है मित्र, यज्ञों में देवताओं के नाम पर गन्ध-शाली का भात, वत्सतरी का मांस और कौशेय, दासदासी, हिरण्य सुवर्ण, बढ़वा रथ दिया जाता था और समझा जाता था—यह देवता की कृपा से है, पर तुम जानते हो मित्र, ये भाग्यहीन देवता भी पूरे ढकोसले ही थे। इनमें से किसी एक को भी आज तक किसी ने देखा नहीं। अब लोग यह सदेह न करेंगे कि ये देवता सचमुच हैं भी या नहीं। बस, इन सबों ने बैठे ठाले ब्रह्म की कल्पना कर ली। उसे देखने की कोई इच्छा ही नहीं कर सकता। वह आकाश की भांति देखन सुनने का विषय ही नहीं।"

गौतम खूब ठठाकर हंसने लगे। बन्धुल ने भी हंसकर कहा—"तो इसी में आरुणि जैसे ब्राह्मण भी भटक गए।"

"यही तो मजा है, और उस याज्ञवल्क्य को देखो, इन विदेहों के

पीछे कैसे गुड का चीऊचा बनकर चिपटा है पट्ठा, उनके ब्रह्म की ऐसी गम्भीर व्याख्या करता है कि मित्र, देखकर हंसी आती है।"

"तो तुम हंसा करो गौतम। क्योंकि तुम मूर्ख हो मित्र, ऐसा न करे तो वह सहस्त्र स्वर्ण कार्षापण और सहस्त्र गौ कहाँ से पावे! तू भी यदि उनकी हां मे हां मिलावे तो कदाचित् कौशल्या कौशेय पहने।"

"उसकी मुझे आवश्यकता नहीं मित्र, यह रज्जुओं के कौशल है, राजभोग को भोगने के लिये यह आवश्यक है कि जो सन्देह करे उनकी बुद्धि को कुण्ठित कर दिया जाय, कुछ को उत्तम आहार खाने को, उत्तम प्रासाद रहने को और सुन्दरी दासियां भोगने को दे दी जायं। वे उन्हीं का गीत गावेंगे।"

"सच कहते हो मित्र गौतम!"

"अरे मैंने, वह नियम बनाये है मित्र, कि तू भी क्या कहेगा। यदि शूद्र किसी द्विज को गाली दे या मारे तो उसका वही अंग काट डाला जाय, उसने वेद-पाठ सुना हो तो कान मे टीन या शीशा पिघला कर भर दिया जाय। वेद पढ़ा हो तो उसकी जीभ काट काटकर टुकड़े कर दिये जाय।"

"अरे वाह मित्र गौतम, अनर्थ किया तूने। बेचारे शूद्रो और

"तो और उपाय ही क्या है भाई, देखते नहीं, ब्राह्मणो का कैसा ह्रास हो रहा है।"

"अच्छा फिर, देखूं कब तक तेरा सूत्र सम्पूर्ण होगा। अभी तो विश्राम करना चाहिये।"

"तो विश्राम कर मित्र, शैया तैयार है।

———

साकेत

कौशल-नरेश प्रसेनजित साकेत में ठहरे थे, वे सेट्ठि मृगार के पुत्र पुण्ड्रवर्धन के व्याह मे सदलबल साकेत आये थे। राजधानी श्रावस्ती यहा से छै योजन पर थी। सरयू तट पर बसा यह नगर उस समय प्राची से उत्तरापथ के सार्थ पथ पर बसा होने के कारण स्थल-व्यापार और नौ व्यापार दोनो ही का मुख्य केन्द्र था। उन दिनों सरयू आज के समान ऐसी क्षीणकाय न थी उसका विस्तार डेढ मील मे था। और उसमे बडे २ पोत चलते थे। उस समय साकेत भारत के छै प्रमुख नगरो मे एक था।

प्रसेनजित का यहा एक दुर्ग और हर्म्य था, उसी मे महाराज प्रसेनजित अवस्थित थे। आम बौरा रहे थे और उनकी सुगन्ध से मत्त भौरो के गुजन वातावरण मे गूज रहे थे। वृक्षो ने नवीन कोमल और मृदुल परिधान ग्रहण किया था, शीत कम हो गया था। सान्ध्यक्षण मनोरम था, अस्तगत सूर्य की लाल २ किरणे नव कुसुमित वृक्षो पर लोहित प्रभा बखेर रही थी। साकेत वासी तरुण तरुणिया स्वच्छन्द सान्ध्य समीरण का आनन्द लेने सरयू-तट पर इकट्ठे थे। बहुत रजत-सिकता पर नंगे पैर चल कर विनोद कर रहे थे। बहुत नंगेबदन तैराकी प्रति-योगिता की होड लगा रहे थे। तरुणियो मे अनेक कोमल नवीन केले के मनोहर वर्णवाली आर्य ललनाए थी। बहुत चम्पकवर्णी रूप-यौवन भार से लदी विश तरुणिया थीं। कितनी ही कर्पूर-सम उज्जवलवर्णा यवनिया थी, जिनका सुगौर, चिक्कण, सुडौल गात्र मर्मर प्रस्तर-निर्मित मूर्ति-सा प्रतीत होता था, उनकी नीलवर्ण आखे और पिङ्गलकेश उनके व्यक्तित्व को प्रकट कर रहे थे। बहुत-सी स्वर्ग-केशी, स्वर्णवर्णा ब्राह्मण-

कुमारिया थी। कितनी घन-केशपाश वाली घनश्याम कोमल गात्रवाली गोधूमवर्णी वैश्य-तरुणिया थी, जिनका तारुण्य अतिमादक था। नाना कुलों के तरुण भी अपने २ वस्त्र उतार कर सरयू-तट पर कुछ आकटि और कुछ आकण्ठ जल मे जल-क्रीडा कर रहे थे। उनके व्यायामपुष्ट सुडौल शरीर, उन्नत नासिका, विशाल वक्ष और प्रशस्त मस्तक उनके कुलीन होने के साक्षी थे। कोई प्रणयकलह मे, कोई सामोद क्रीडा में, काई हस्त-लाघव और व्यायाम मे लीन था। तरुण तरुणिया यहा स्वच्छन्द विहार कर रहे थे। बहुत युगल जोडे नाव पर चढकर उस पार जा जल मे कूद पडते, बहुत जोडे होड बदकर जल म डुबकी लगाते। उनके मृणाल-सम सुनहरी भुजाएं और स्वर्ण, गात, नील, घनश्याम केशराशि जल के अमल भीतरी अस्तर से मोडक दीख रही थी। सकडों छोटी छोटी नौकाए जल मे तैर रही थी और युवक युवती थक कर कभी २ उनका आश्रय लेकर सुस्ता लेते थे। बहुत नौकाओ पर मैरेय, माध्वीक, भुन हुए मास और विविध फल बिक रहे थे। तैरते हुए युवक खरीद २ कर आकण्ठ जल मग्न ही खा पी रहे थे।

ऐसे ही समय बन्धुल मल्ल और मल्लिका अपने थके हुए अश्वो को लिये सरयू-तीर पर आ पहुचे। मल्लिका ने प्रफुल्ल होकर कहा—'साकेत मे जीवन है! प्रिय, रज्जुलो के अधिकार मे भी जनपद इतना प्रसन्न हो सकता है यह मैंने सोचा भी नही था।'

"आओ प्रिये, हम भी स्नान करके शरीर की थकान मिटालें। हवा बडी सुन्दर चल रही है।'

"ऐसा ही हो प्रिय!" मल्लिका ने कहा। बन्धुल घोडे से कूद पडा और हाथ का सहारा देकर उसने मल्लिका को उतारा। एक दास को संकेत से निकट बुलाकर कहा—

"अश्वो को मल दल कर ठीक कर दे मित्र, ये चार निष्क ले, मैरेय के लिये।

दासने हसकर रजत-खण्ड हाथ मे लिये, और अश्वो की रास सम्हाली।

दोनो यात्रियो ने वस्त्र उतारे और वे अनायास ही जल-राशि म घुस गये। उनके हस्त-लाघव और कुशल तैराकी से सभी आश्चर्य करने लगे। उन्होंने तैरने वालो को ललकारा--"बढो मित्रो, जो कोई उस तट पर पहिले पहुंचेगा उसे मित्रो सहित भरपेट मैरेय पीने को मिलेगा।" बहुत तरुण-तरुणिया हसकर उनके पीछे हाथ मारने लगे। किनारे के लोग हर्षोत्फुल्ल होकर चिल्लाने लगे। सबसे आगे वधुल दम्पति थे, सबसे पहले उन्होने तट स्पर्श किया। मल्लिका हाफती हुई हसने लगी। लोगो ने हर्ष-ध्वनि की। एक सम्पन्न युवक ने अपनी नौका पास लाकर कहा--"स्वागत मित्र, मेरी यह नौका सेवा मे उपस्थित है, इस पर चढ़कर मेरी प्रतिष्ठा वृद्धि करे।"

बन्धुल ने हाथ के सहारे से मल्लिका को नौका पर चढ़ाते हुए कहा—

'हम लोग अभी २ साकेत आ रहे है।"

"कहा से मित्र!"

"कुशीनाश से।"

"अच्छा, बन्धुल मल्ल की कुसीनारा से।"

"मित्र, मै ही बन्धुल मल्ल हू।"

"तेरी जय हो मित्र!" फिर उसने हाथ उठाकर पुकार कर कहा--"कुशीनाश के मल्ल बन्धुल मित्र का साकेत मे स्वागत है।"

बहुत लोग नौका के पास उमड आये। बहुतो ने दम्पति पर पुष्पो की वर्षा की। नौका के स्वामी ने हसकर कहा—"मै हिरण्य नाभ कौशल्य हू मित्र, साकेत का क्षत्रप, बन्धुल के शौर्य से मै परिचित हूं।"

"हिरण्य नाभ कौशल्य की गरिमा से मै भी अविदित नही हूं क्षत्रप, तक्षशिला में गुरुवर से मैने आपका नाम सुना था।"

"और मैने भी मित्र, महाराजाधिराज से तेरी गुण-गरिमा सुनी है। अब इधर किधर?

"महाराज के दर्शन हेतु ।"

"साधु, महाराज आजकल यहीं हैं, कल दर्शन हो जावेंगे। परन्तु आज मेरे अतिथि रहो मित्र ।"

"मल्लिका, ये महाक्षत्रप महाराज हिरण्य नाभ कौशल्य है, गुरुपद ने कहा था ये अवन्ति गुरुकुल के सर्वश्रेष्ठ स्नातक हैं, और ज्ञानगरिमा में काशी के सम्पूर्ण राजाओं से बढकर हैं ।"

"मैं अपने पति का अभिनन्दन करती हू, ऐसे गौरवशाली मित्र के प्राप्त होने पर ।"

"और मल्लिका, हम अपने मित्र के अतिथि होने जा रहे हैं ।"

"प्रिय, यह असाधारण सौभाग्य हैं, परन्तु महाक्षत्रप, महाराज को क्या इन की स्मृति है ? इनका कहना है--महाराज दस वर्ष साथ पढ़े हैं, तक्षशिला मे ।"

"महाराज भी यही कहते हैं देवी, वे कहते हैं—बन्धुल-सा एक मित्र कहीं मिले तो जीवन का सूनापन ही दूर हो जाय ।"

"ऐसा कहते है ? तब तो महाक्षत्रप, महाराज को मित्र का बहुत ध्यान है ।"

"किन्तु मल्लिका देवी, तुम्हारे मति क्या ऐसे वैसे है । मैंने अवन्तिका में गुरुपद से सुना था कि राजनीति और रण-नीति मे बन्धुल का कोई प्रतिस्पर्धी नही है ।"

"और जल मे तैरने मे महाक्षत्रप ।"

"आज देखा हमने प्रतिस्पर्धी, देवी मल्लिका को ।"

"महाक्षत्रप हंस दिये । मल्लिका भी हंस दी । बन्धुल ने कहा—"यही हमारे अश्व हैं ।'

"वे पहुंच जायगे मित्र, नौका हमें क्रीडोद्यान के नीचे पहुचा देगी ।"

"इसके बाद क्षत्रप ने एक दास को अश्व ले आने के लिये भेज

दिया। उन्होने मल्लिका को सम्बोन करके कहा—"वह मेरे उद्यान का घाट दीख रहा है देवी मल्लिका!"

"देख रही हू महाक्षत्रप, अभी हमें आये कुछ क्षण ही बीते है, पर ऐसा दीख रहा है, घर ही में हू।"

"घर हो में तो हो देवी मल्लिका, हम आ गये मित्र, उतरो। तुम और क्षण भर ठहरो तब तक मै आवश्यक व्यवस्था कर दूं।"

——— ———

: २१ :

कोशलेश प्रसेनजित

महाराज प्रसेनजित हिमश्वेत कोमल गद्दे पर बैठे थे। दो यवनी दासिया पीछे खडी चंवर ढल रही थी। उनका शरीर अत्यन्त गौरवर्ण था, आयु पैंसठ से भी अधिक हो गई थी, उनके खिचडी बाल बीच में चीर कर द्विफाल-बद्ध किये गये थे। बडी बडी मूछे यत्न से सवारी गई थीं और वे कान तक फैल रही थी। वे कोमल फूलदार कौशेय पहिने थे और कण्ठ भुजा और मणिबन्ध पर बहुमूल्य रत्नाभरण पहिने थे। इस समय उनका मन प्रसन्न नही था, वे कुछ उद्विग्न से बैठे थे। कचुकी ने राजपुत्र विदूडभ के आने की सूचना दी।

महाराज ने सकेत से आने को कहा।

विदूडभ ने बिना ही प्रणाम किये, आते ही पूछा--"महाराज ने मुझे स्मरण किया था ?"

"किया था।"

"किस लिये ?"

"परामर्श के लिये।"

"इसके लिये महाराज के सचिव और आचार्य माण्डव्य क्या यथेष्ट नहीं है ?"

"किन्तु मै तुम्हें कुछ परामर्श दिया चाहता हू विदूडभ !"

"मुझे ? महाराज के परामर्श की मुझे आवश्यकता नही है।" राजपुत्र ने घृणा व्यक्त करते हुए कहा।

महाराज प्रसेनजित गम्भीर बने रहे। उन्होने कहा—"किन्तु रोगी की इच्छा से औषध नही दी जाती राजपुत्र !"

"तो मै रोगी और आप वैद्य है महाराज ?"

"ऐसा ही है। यौवन, अधिकार और अविवेक ने तुम्हे धृष्ट कर दिया है विदूडभ !"

"परन्तु महाराज को उचित है कि वे धृष्टता का अवसर न दे।"

"तुम कोशलपति से बात कर रहे हो विदूडभ।"

"आप कौशल के भावी अधिपति से बात कर रहे है महाराज !"

क्षण भर स्तब्ध रहकर महाराज ने मृदु कण्ठ से कहा--"पुन विचार करके देखो। तुम्हें क्या ऐसा अविवेकी होना चाहिए ? मै कहता हू--तुमने मेरी आज्ञा बिना शाक्यो पर सैन्य क्यो भेजी है ?"

"मै कपिलवस्तु को नि.शाक्य करूगा, यह मेरा प्रण है।"

"किस लिये ? सुनू तो।"

"आप के पाप के लिए महाराज !"

"मेरा पाप, धृष्ट लडके ! तू सावधाना से बोल !"

"मुझे सावधान करने की कोई आवश्यकता नही है महाराज, मै आपके पाप के कलंक को शाक्यो के गर्म रक्त से धोऊगा।"

"मेरा पाप कह तो।"

"मै कहता हू सुनिये, परन्तु आपके पापो का अन्त नही है, एक ही कहता हूं कि आपने मुझे दासी मे क्यो उत्पन्न किया ? क्या मुझे जीवन नही प्राप्त हुआ, क्या मै समाज मे पद-प्रतिष्ठा के योग्य नही ?"

"किसने तेरा मान भंग किया ?"

"आपने शाक्यों के यहा मुझे किस लिये भेजा था ?"

"शाक्य अपने करद है। पच्छिम मे वत्सराज उदयन कोशल पर सेना तैयार कर रहा है। पूर्व में मगध सम्राट् बिम्बसार। वैशाली के लिच्छवि अलग खार खाये बठे है। ऐसी अवस्था में शाक्यों का प्रेम और साहाय्य प्राप्त करना था, इसीलिये और किसी को न भेजकर कपिलवस्तु तुझे ही भेजा था, तू मेरा प्रिय पुत्र है और शाक्यों का दौहित्र।"

विदूडभ ने अवज्ञा की हंसी हंसकर कहा—"शाक्यों का दौहित्र या दासीपुत्र ? आप जानते हैं वहां क्या हुआ ?"

"क्या हुआ ?"

"सुनेंगे आप ? घमण्डी और नीच शाक्यों ने सथागार में विमन होकर मेरा स्वागत किया अथवा उन्हें स्वागत करना पड़ा। पर पीछे संथागार को और आसनों को उन्होंने दूध से धोया।'।

प्रसेनजित का मुंह क्रोध से लाल हो गया। उन्होंने चिल्ला कर कहा—"क्षुद्र शाक्यों ने यह किया ?"

"मुझे मालूम भी न होता, मेरा एक सामन्त अपना भाला वहां भूल आया था, वह उसे लेने गया तब जो दास दासी दूध से सथागार को धो रहे थे उन में एक दासी मुझे गालियां दे रही थी, कह रही थी-दासी पुत्र की धृष्टता तो देखो, रज्जुले का वेश धारण कर के आया है। सथागार को अधम ने अपवित्र कर दिया।"

'शाक्यों के वंश का मैं नाश करूंगा।"

"आप क्यों ? आपका उन्होंने क्या बिगाड़ा है ? आप को शाक्यों की राजकुमारी से ब्याह का शौक चर्राया था, क्योंकि आप राजमद से अन्धे थे। पर आप जैसे बूढ़े, अन्धे और रोगी को शाक्य अपनी पुत्री देना नहीं चाहते थे, खासकर इसलिये कि आपके रनवास में कुलीन कोई स्त्री ही नहीं है। आपने माली की लड़की को पट्टराजमहिषी पद पर अभिषिक्त किया है। शाक्य अपनी ऊंची नाक रखते थे, पर आपकी सेना से डरते भी थे। उन्होंने दासी की लड़की से आपका ब्याह कर दिया।"

"यह शाक्यों का भयानक छल था, किन्तु ।"

"किन्तु पाप तो नहीं, जैसा कि आपने किया। उसी दासी में इन्द्रिय-वासना के वशीभूत हो आपने मुझे पैदा किया, आपको साहस नहीं कि मुझे आप अपना पुत्र और युवराज घोषित करें। आप आर्यों की यह पुरानी नीचता है। सभी धूर्त कामुक आर्य अपनी काम-वासना

पूर्ति के लिये इतर जातियो की स्त्रियो के रेवडो को घर मे भर रखते है। लालच लोभ देकर कुमारियो को खरीद लेना, छलबल से उन्हे वश कर लेना, रोती कलपती कन्याओ को बलात् हरण करना, मूछिता मदबेहोशो का कौमार्य भग करना, यह सब इन धूर्त आर्यों ने विवाहो मे सम्मलित कर लिया। फिर बिना ही विवाह के दासी रखने में भी बाधा नही। आप क्षत्रिय लोग लड कर, जीतकर, खरीदकर खिराज के रूप मे देश भर की सुन्दरी कुमारियो को एकत्रित करते है। और ये कायर पाजी ब्राह्मण पुरोहित आपके लिये यज्ञ पाखण्ड करके दान और दक्षिणा मे इन स्त्रियो से उत्पन्न राजकुमारियों और दासियों को बटोरते है। ऐसे धूर्त है आप आर्य लोग। उस दिन विदेहराज ने परिषद बुलाई थी। एक बूढे ब्राह्मण को हजार गायों के सीगो मे मुहर बाध कर और सौ दासियां स्वर्ण आभरण पहना कर दान कर दी। वह नीच ब्राह्मण गायो को बेच कर स्वर्ण घर ले गया। पर दासियो को सग ले गया वे सब तरुणी और सुन्दरी थी। फिर क्या उन स्त्रियो के सन्तान न होगी? उन्हे आप आर्यों ने मजे मे वर्णसकर घोषित कर दिया। उनकी जात और श्रेणी अलग कर दी। ऐसा ही वर्णसंकर मै भी हू। दासी पुत्र हू। मेरे पैर रखने से शाक्यो का संथागार अपवित्र होता है और मेरे जन्म लेने से कोशल राजवश कलकित होता है। महाराज, मै यह सह नही सकता, मै शाक्यवश का नाश करूगा। और इसी तलवार के बल पर कोशल के सिहासन पर आसीन होऊगा। अब आप आर्यों के दिन गये। पाखण्डी ब्राह्मणो की भी समाप्ति आई। आज आर्यावर्त में नाम के आर्य राजे रह गये है। सभी राज्य हम लोगो ने, जिन्हे आप घृणा से वर्ण संकर कहते है, अधिकृत कर लिये है। मै कोशल, कासी, शाक्य और मगध राज्य को भी आक्रान्त करूं तो ही असल दासीपुत्र विदूडभ।"

"प्रसेनजित के हाथ की तलवार नीची हो गई। उनकी गर्दनभी झुक गई। उन्होंने धीमे स्वर मे कहा—"किन्तु विदुडभ राजपुत्र, यह

तो परम्परा है, कुछ मेरे बस की बात नहीं। तुम्हें सभी तो राजोचित भोग प्राप्त है।"

"अवश्य है महाराज, केवल सामाजिक सम्मान नहीं प्राप्त है। आप का औरस पुत्र होने पर भी कौशल की गद्दी का अधिकार नहीं प्राप्त है। वही मैं छलबल और कौशल से प्राप्त करूंगा।"

प्रसेनजित क्रोध से तन कर गद्दी पर बैठ गये। उन्होंने कहा—"विदूडभ, यह राजद्रोह है।"

"मैं राजद्रोही हूं महाराज!"

"इसका दण्ड प्राणदण्ड है, जानते हो राजधर्म कठोर है।"

"आत्म सम्मान उससे भी कठोर है महाराज।"

"पर वह वैयक्तिक है।"

"हम सब दासीपुत्र वर्णसंकर बन्धु, जो आप कुलीन किन्तु कदाचारी आर्यों से घृणा करते हैं उसे सार्वजनिक बनायेंगे। हम आर्यों के समस्त अधिकार, समस्त राज्य, समस्त सत्ताएं छीन लेंगे।"

"मैं तुम्हें बन्दी करने की आज्ञा देता हूं, कोई है?"

राजा ने दस्तक दी। दो यवनी प्रहरिकाएं खड्ग लिये आ उपस्थित हुईं।

विदूडभ ने खड्ग ऊंचा करके कहा—"और मैं अभी आपका सिर धड़ से जुदा करता हूं।"

विदूडभ की भावभंगी और खड्ग उठाने से वृद्ध प्रसेनजित आतंकित हो अपना खड्ग उठा खड़े हो गये। अकस्मात् विदूडभ का खड्ग झन्न से उसके हाथ से छूट कर दूर जा गिरा।

प्रसेनजित ने आश्चर्यचकित हो आगन्तुक की ओर देखकर कहा—"यह किसका उपकार मुझ पर हुआ?"

"कुशीनारा के मल्ल बन्धुल का।" महाक्षत्रप कौशल्य हिरण्यनाभ ने पीछे से आगे बढ़ कर कहा।

प्रसेनजित ने दोनो हाथ फैला कर कहा—"क्या मेरा मित्र बन्धुल-मल्ल आया है ?"

"महाराज की जय हो, मुझे हर्ष है महाराज, मैं ठीक समय पर आ पहुचा।" बन्धुल ने आगे बढ़ कर कहा।

"निश्चय ! नही तो यह दासीपुत्र मेरा हनन ही कर चुका था। क्षत्रप हिरण्यनाभ, इसे बन्दी कर लो।"

बन्धुल ने कहा—"महाराज प्रसन्न हो, इस बार राजपुत्र क्षमा कर दिया जाय। मैं समझता हू वे अपने अविवेक को समझ लेंगे।"

राजा ने कहा—'कोशल म तेरा स्वागत है मित्र बन्धुल. विदूडभ के विषय मे तेरा ही वचन रहे।"

"कृतार्थ हुआ महाराज, तो राजपुत्र अब तुम स्वतन्त्र हो मित्र।" विदूडभ चुपचाप चला गया।

बन्धुल ने कहा—"महाराज को याद होगा, तक्षशिला मे आपने इच्छा की थी कि यदि आप राजा हुए तो मुझे सेनापति बनना होगा।"

"याद क्यों नही है मित्र, मैंने तो तुझे बहुत लेख लिखे, तेरी कोशल को भी जरूरत है और मुझे भी। कौशाम्बीपति उदयन की धृष्टता तूने नही सुनी, गान्धारराज कलिङ्गदत्त ने अपनी अनिन्द्य सुन्दरी पुत्री कलिङ्गसेना मुझे दी है, तो उदयन उसी बहाने श्रावस्ती पर चढने की तैयारी कर रहा है। इधर मगध सम्राट् बिम्बसार पुराने सम्बन्ध की परवाह न करके कोशल को हडपने के लिए कोशल पर अभियान कर रहे है। अन्य शत्रु भी कम नही है। बन्धुल मित्र, कोशल को तेरी कितनी आवश्यकता है और मुझे भी, वह तो तूने देखही ली।"

"तो मै आ गया हूं महाराज, पर मेरी कुछ शर्तें है।"

"कह मित्र, मै स्वीकार करूगा।"

"मै मल्ल वंश में हू।"

"समझ गया, तुझे कभी मल्लो पर अभियान न करना होगा।

मैं राज्य-विस्तार नहीं चाहता। जो है वही रखना चाहता हूं। मित्र कहो और भी कुछ तेरा प्रिय कर सकता हूं।"

"बस महाराज।"

"तो कौशल्य हिरण्यनाभ, मित्र बन्धुल का सब प्रबन्ध कर दो। जब तक हम साकेत में हैं। बन्धुल सुख से रहे।"

"ऐसा ही होगा महाराज!"

"और श्रावस्ती जाकर तुझे मैं सेनापति के पद पर अभिषिक्त करूंगा। तेरा कल्याण हो। जा, अब विश्राम कर।"

: २२ :

माण्डव्य-उपरिचर

महाराज प्रसेनजित दीर्घिका के शुभ्र मर्मर सोपान पर बैठे थे। स्वच्छ जल मे रग-बिरगी मछलिया क्रीडा कर रही थी। प्रभात का सुखद समीर नए पत्तों से लदे वृक्षो को मन्द मन्द हिला रहा था। बडा ही मनोहर वसन्त का प्रभात था वह। महाराज की आखे उनीदी और शरीर अलस हो रहा था। वे चुपचाप बैठ जल की तरगो को देख रहे थे।

एक वेत्रवती ने निवेदन किया--"आचार्य माण्डव्य उपरिचर आये है।"

"यही ले आ उन्हे।"

माण्डव्य आचार्य की आयु का कोई पता नही लगता था, उनका चेहरा भावहीन, नेत्र अतिरक्त भ्रमित से, भौंहे बहुत बडी बडी, कान नीचे तक लटकते हुए, शरीर रोमश और रग अतिकाला था। उनकी कमर पर लालरग का कौशेय था। ऊपर की पीठ और वक्ष बिल्कुल खुला था। मस्तक पर रक्त चन्दन का लेप और पैरो मे मृगचर्म का उपानत था। उनकी दन्तावलि सुदृढ थी। नेत्रो की कोर से कभी २ चमक निकलती थी। चेहरा श्मश्रु से भरा था। उनका शरीर लौह-निर्मित मालूम होता था। कण्ठ मे स्वच्छ जनेऊ था। हाथ मे एक मोटा दण्ड था। चलने का ढग मतवालो जैसा था।"

उन्होने कर्कश वाणी से हाथ उठा कर महाराज को आशीर्वाद दिया।

"आचार्य, मै बडी देर से आपकी प्रतीक्षा कर रहा हू।"

"किस लिये महाराज, रात तो सुखद नीद लाती है न ?"

"आचार्य, रात की बात क्या कहते हो, जीवन अब घिस-सा गया है। सोचता हू, कुछ परलोक चिन्तन करू।"

"महाराज की बातें, लोक परलोक, सुख-दु ख, पाप-पुण्य, आचार-दुराचार, देव-देवता, ये सब तो बाल-कल्पनाए है राजन्, क्या तुम भी उस मूर्ख प्रवाहण की मुक्ति, पुनर्जन्म और आत्मा के मायाजाल में फसे हो।"

'परन्तु जीवन तो मिथ्या नहीं है आचार्य।"

"जीवन सत्य है। तो फिर नकद छोड कर उधार के पीछे क्यों दौडते हो?"

"अरे आचार्य! नकद सामने रहते जो टुकुर टुकुर ताकना पडता है सो?"

आचार्य हंस कर वही शिलाखण्ड पर बैठ गये। उन्होने कहा--"क्या यहा तक महाराज!"

"सत्य ही आचार्य, नग्न रूप और यौवन भी मेरे गलित काम को नही जगाता। पुराण द्राक्षा की सुवास अब नेत्रो मे रक्त आभा नहीं प्रगट कर सकती, कभी उसके रग मे जगत रगीला दीखता था।"

"तब महाराज सिद्ध योगी हो गये प्रतीत होते है।"

"योगी को फिर देश-विदेश से लाई सुन्दरियो का क्या लाभ है?"

"बाट दीजिए महाराज, तरुणो को उनकी आवश्यकता है। एक यज्ञ रच कर सुपात्र ऋत्विज ब्राह्मणों को उन्हे दान कर दीजिए।"

"किन्तु ये स्वार्थी लोलुप ब्राह्मण इधर सुन्दरी दासियो को ले जाते हैं, उधर उनके रत्नाभरण उतार कर पाच पाच निष्क में बूढो को बेच देते है।"

"इससे बूढों का प्रत्युपकार भी तो होता है महाराज, उन्हे तरुणियो की अत्यधिक आवश्यकता है।"

"फिर इस बूढ़े की ओर आचार्य क्यों नही ध्यान देते? क्या आप को विदित नहीं कि गान्धार कन्या कलिङ्गसेना अन्त.पुर मे आ रही है।

आपकी अमोघ रसायन-विद्या फिर किस काम आयेगी ?"

"क्यो ? क्या तक्षशिला के उस तरुण मागध वैद्य का वाजीकरण व्यर्थ गया ?"

"जीवक कौमार भृत्य की बात कहते है आचार्य ?"

"यही तो उस का नाम है।"

"बिलकुल व्यर्थ। आचार्य, सुना था वह तक्षशिला से चिकित्सा में पारङ्गत होकर आया है। मैंने बडी आशा की थी।"

"परन्तु अब बिल्कुल आशा नही रही, महाराज।"

"आचार्यपाद जब तक है तब तक तो आशा है। मुनि बृहस्पति के फिर आप शिष्य कैसे ?"

"तब यह लो महाराज, रसायन देता हू।"

यह कह कर एक छोटा सा बिल्वफल आचार्य ने महाराज के हाथ पर रख कर कहा—"इसमे एक ही मात्रा रसायन है। यह देह सिद्धि तथा लोह सिद्धि दोनो ही कार्य करेगी। इससे चाहे तो सामने के सम्पूर्ण पर्वत को स्वर्ण का बनालें महाराज, चाहे अपने इस गलित वृद्ध शरीर को वज्र के समान दृढ़ बनालें और स्वच्छन्द नव विकसित अनिन्द्य गान्धार पुत्री के सौन्दर्य का आनन्द लूटें।"

"आचार्य का बडा अनुग्रह है। स्वर्ण राशि की मेरे कोष में कमी नहीं। यह देह उपलब्ध सुख साधनो के भोगने में समर्थ हो, यही चाहता हू।"

"तो राजन्, चिरकाल तक उन सुख साधनो को भोग करो। मै आशीर्वाद देता हूं।"

आचार्य हँसते हुए चले गये। महाराज उत्साहित हो धीरे २ दो युवतियो के कन्धो पर हाथ रख महल में लौटे। धूप तेज़ हो गई थी।

: २३ :

जीवक कौमारभृत्य

"तुम्ही वह वैद्य हो ?"

"वैद्य तो मै हू । परन्तु 'वह' हूं या नहीं, नही कह सकता ।'

"कहा के ?"

"राजगृह का हू । पर शिक्षा तक्षशिला मे पाई है ।"

"आचार्य आत्रेय के शिष्य तुम्ही हो ?"

"मै ही हू ।"

"तब ठीक ।" राजकुमार विदूडभ ने थोडा नम्र होकर कहा, "बैठ जाओ मित्र ।"

युवक वैद्य चुपचाप बैठ गया । उसकी आयु कोई २६ वर्ष की थी । उसका रग गौर, नेत्र काले, उज्ज्वल, माथा चौडा, बाल सघन काले और चिबुक मोटी थी । वह एक महार्घ दुशाला कमर मे बाधे था । उस पर सुनहरा कमरबंद बधा था, एक मूल्यवान उत्तरीय उसके कन्धे पर बेपरवाही से पडा था । पैरो मे सुनहरी काम के जूते थे ।

विदूडभ ने कुछ देर घूर २ कर तरुण वैद्य को देखा । फिर कहा— "तुम्हारी जन्मभूमि क्या राजगृह ही है ?"

"जी हा, जहा तक मुझे स्मरण है ।"

"राजगृह बडा मनोहर नगर है मित्र, परन्तु राजगृह से तुम का बहुत दिनो से बाहर हो ?"

"प्राय: सोलह वर्ष से ।"

"तो तुम तक्षशिला मे भगवान् आत्रेय के प्रधान शिष्य रहे ?'

"मै उनका एक नगण्य शिष्य हू । वास्तव मे मै 'कौमार भृत्य' हूं ।"

'मैने तुम्हारी प्रशसा सुनी है मित्र, तुम तरुण अवश्य हो पर तारुण्य गुणो का विरोधी तो नही होता ।"

"क्या मैं युवराज की कोई सेवा कर सकता हू ?"

"मैं वैद्यो के अधिकार से परे हू मित्र, देखते हो मेरा शरीर हर तरह दृढ और निरोग है। फिर भी मैं तुम्हारी मित्रता चाहता हू।"

"मेरी सेवाए उपस्थित है।"

"क्या तुम्हे मित्र, पिता के स्वर्ण रत्न का बहुत मोह है।"

"स्वर्ण रत्न का मुझे कभी भी मोह नही हुआ।"

"यह अच्छा है, और एक सच्चे मित्र का ?"

"उसकी मुझे बडी आवश्यकता है युवराज।"

"तो तुम मुझे आज से अपना मित्र स्वीकार करोगे, अन्तरङ्ग मित्र ?"

"परन्तु मैं दरिद्र वैद्य हू, जिस पर राज नियमो से अपरिचित हू।"

"तुम एक उत्तम युवक हो और मनुष्य के सब गुणो से परिपूर्ण हो।" युवराज ने अपनी बहुमूल्य मुक्ता माल उतार कर वैद्य के कण्ठ में डाल कर कहा —"यह स्नेह उपहार स्वीकार करो मित्र।"

वैद्य ने धीरे से माला हाथ में लेकर कहा, 'यह उत्कोच है राजपुत्र आपकी ऐसी ही इच्छा है तो कोई साधारण सा उपहार दे दीजियेगा।"

"नही २ मित्र, अस्वीकार न करो। यह अति साधारण है।"

"तब जैसी राजपुत्र की इच्छा।"

"तो मित्र, कहो क्या पिता जी को तुम कुछ लाभ पहुचा सके ?"

"तनिक भी नही राजपुत्र, मैंने उनसे प्रथम ही कह दिया कि उनकी यौवन ग्रन्थिया और चुल्लक ग्रन्थिया निष्क्रिय हो गई है। हृदय पर बहुत मेद चढ गया है। यदि वे कोई वाजीकरण सेवन करेंगे तो उनके जीवन नाश का भय हो जायगा।"

"फिर भी उन्होने वाजीकरण भक्षण किया ?"

"तीन तीन बार राजपुत्र।"

"और तीनो बार निष्फल।"

"यह तो होना ही था । औषध केवल शारीर यन्त्र ही को तो क्रियाशील करती है, और इंद्रिय व्यापार उसी से चलता है । इस प्राकृत नियम का क्या किया जाय ?"

"वास्तव मे आचार्य माण्डव्य ने पिता जी को कामुक और अन्धा बना रखा है । परन्तु क्या आचार्य के इस रसायन मे कुछ तत्त्व है ?"

"मैंने उसका अध्ययन नही किया राजपुत्र, परन्तु रसायन तत्त्व सत्य है । आचार्य माण्डव्य मुनि बृहस्पति के शिष्य है जिनका चार्वाक मत आजकल खूब प्रचार पर है । उनका तो यह सिद्धान्त ही है कि शरीर को कष्ट मत दो । भाग्य नहीं पुरुषार्थ ही मुख्य है । अपने पर निर्भर रहो । परमेश्वर कुछ नही है, परलोक नहीं है, वेद धोखे की टट्टी है, बुद्धि ही सब कुछ है । आत्मा पचतत्त्व मे बना है । प्रत्यक्ष ही सत्य प्रमाण है । वह गौतम के न्याय का भी विरोध करते है और ब्राह्मणो के यज्ञों का भी । शूद्र और सकर सभी ने उनके मत को पसद किया है । इससे ब्राह्मणो का प्रभुत्व तो नष्ट हुआ है पर अनाचार बहुत बढ़ा है । इन वचक आर्यों को भी तो इससे बहुत सहारा मिला है । अब वे खुल्लमखुल्ला दासियो और रखेलियो को भेड बकरियो के रेवड की भाति अन्त पुर मे भर रहे है । और उनकी सन्तानो को कुत्तो और जानवरो की भाति समाज और सगठन मे च्युत कर सकर बना देते है ।"

"सत्य है, परन्तु सबसे बुरा प्रभाव तो वैश्यो पर पडा है । बचारे वैश्य प्रतिलोम विवाह कर नही सकते । वे केवल अपनी और शूद्रों की ही स्त्रियो को घरो मे डाल सकते है । उनका काम कृषि, पशुपालन एव वाणिज्य है जिसमे शूद्र और अतिशूद्र कर्मकर ही उनके सम्पर्क मे रहते है । अब उन्ही मे उनका रक्त मिलजाने से वे आर्यों से अति हीन, कुरूप और कुत्सित होते जा रहे है ।"

"परन्तु इसका उपाय ही क्या है, जब तक आर्यों का समूल उच्छेद न हो ।"

"वह होने का भी समय आगया है, राजपुत्र । सर्वजित् निर्ग्रन्थ

महावीर और शाक्य पुत्र गौतम ने आर्यों के धर्म का आमूल नाश प्रारम्भ कर दिया है। उन्होंने नया धर्म चक्र प्रवर्तन किया है जहां वेद नहीं है, वेद का कर्ता ईश्वर नहीं है, बड़ी २ दक्षिणा लेकर राजाओं के पापों का समर्थन करने वाले ऋषि नहीं हैं। ब्रह्म और आत्मा का पाखण्ड नहीं है। उन्होंने जीवन का सत्य देखा है, वे इसी का लोक में प्रचार कर रहे हैं। उधर अनार्य अश्वग्रीव और हिरण्यकशिपु ने वेद पढ़ना, सुनना, और यज्ञ करना अपराध घोषित कर दिया है। उसका दण्ड प्राण दण्ड नियत है।"

"जितनी जल्दी आर्यों का नाश हो—उतना ही अच्छा है वैद्यराज।"

"बेचारे शूद्रों को भारी विपत्ति का सामना करना पड़ रहा है।"

'वह क्यों ?"

'उन्हें उच्च वर्ण की स्त्री लेने का अधिकार नहीं। उनकी युवती और सुन्दरी कन्याओं को ये आर्य युवा होने से प्रथम ही या तो खरीद लेते हैं या हरण कर लेते हैं। और वह द्रविडों दस्युओं तथा असुरों से स्त्रियां जैसे तैसे जुटा पाते हैं। आर्यों के घरों में जहां स्त्रियों की फौज भरी रहती है, वहां इन बेचारों के अनेक तरुण कुमार ही रह जाते हैं। इन्हें आजीवन स्त्री नहीं मिलती। एक २ स्त्री के लिये वे खून खराबों तक करते हैं।"

"किन्तु मित्र, क्या आर्यों का नाश होने पर कोई महा अनिष्ट आ खड़ा होगा ?"

"कुछ भी नहीं मित्र, यह आर्यत्व का घमण्ड ही थोथा है। रक्त की शुद्धता का तो पाखण्ड ही पाखण्ड है। दस्यु, द्रविड और शूद्र पर्यन्त रक्त उनकी नाड़ियों में है। फिर जिन्हें वह अनार्य या मलेच्छ कहते हैं, उनमें उन्हीं का तो रक्त है। वास्तव में विश्व के मनुष्यों की एक ही सार्वभौम जाति होनी चाहिये।"

"किन्तु मित्र, शताब्दियों से रूढ़िबद्ध ये आर्य, सिर्फ वर्णों ही में बद्ध नहीं। इस ब्राह्मणत्व और राजत्व में बड़ी भारी भोग लिप्सा भी है।"

"ऐसा तो है ही राजपुत्र, इसी से तथागत ने इस वर्ण व्यवस्था की जड पर प्रथम कुठाराघात किया है। उन्होंने लोहे के खड्ग से नहीं—ज्ञान के और सत्य के खड्ग से ब्राह्मणों और क्षात्रों के सम्पूर्ण माया जाल को छिन्नभिन्न कर दिया है। आप देखते नहीं है कि जिन देश के बाहर से आये हुए यवन, शक, गुर्जर, और आभीरों को ये ब्राह्मण म्लेच्छ कह कर घृणा करते थे। उन्हें ही तथागत ने अपने संघशासन में ले लिया है और उन्हें मनुष्यता के अधिकार दिये है। तुम देखोगे कि बहुत शीघ्र भारत से जाति भेद और ऊच नीच के भेद मिट जायेंगे। तथागत को जाति वर्ण भेद उठाते देख ब्राह्मणों ने अब वर्ण बहिष्कृत लोगों को ऊचे २ वर्ण देने शुरू कर दिये है, पर इस फन्दे से क्या ?"

विदूडभ कुछ देर सोचते रहे। तरुण वैद्य ने कहा—'तुम विचार करोगे तो देखोगे कि किस भाँति इन लालची ब्राह्मणों ने अपने को राजाओं के हाथ बेच रखा है। एक दिन था मित्र, मैं भी इस वर्ण-व्यवस्था के माया जाल में था। जब मैं उज्जयिनी में वेद, व्याकरण निरुक्त और काव्य पढ रहा था। अपने सहपाठी नागरों और यौवेयों को जुझार और बिष कह ब्राह्मण बटुक चिढ़ाया करते थे पर जब मैंने भरुकच्छ में जाकर अपनी समृद्ध यवनों और उनके वैभव को देखा। लाट, सौराष्ट्र और उज्जयिनी के शक, आभीर, महाक्षत्रपों के वैभव और शौर्य को देखा, पक्व नारंगी के समान गालों वाले मश्रुहीन मुख और गोल २ आखों वाले निर्बुद्ध किन्तु दुर्धर्ष योद्धा हूणों को देखा तो मुझे इन आर्यों के आधाररूप ब्राह्मणों और उनके हथियार वेदों तथा क्षत्रियों और उनके हथियार पुनर्जन्म और ब्रह्म की कलई खुल गई। जो शताब्दियों तक मूर्ख जनता को शांत और निरुपाय अनुगत बनाने का एकमात्र उपाय था।"

"इसी कोशल में देखो मित्र, एक ओर ये सेट्ठियों की और महाराजों की गगन चुम्बी अट्टालिकाये है जो स्वर्ण रत्न और सुखद साज से भरी पूरी है। दूसरी ओर वे निरीह कर्मकर, शिल्पी और कृषक है

जो अति दीन हीन है। क्या इन असख्य प्रतिभाशाली, परिश्रमी जनों की भयानक दरिद्रता का कारण ये इन्द्र भवन तुल्य प्रासाद नहीं है? कौशल मे भी देखा गयो है और मगध साम्राज्य मे भी देखा है। नगरो मे, निगमो में, गावो मे भी चतुर शिल्पी भाँति २ की वस्तु तैयार करते, तन्तुवाय स्वर्णकार, ताम्रकार, लोहकार, रथकार, स्थपत्य इन सभी के हस्त कौशल से ये प्रासाद बनते है। परन्तु उनके हाथ से बनाये ये सम्पूर्ण अलौकिक पदार्थ तैयार होते ही उनक हाथ से निकल कर इन्ही राजाओ, उनके सामन्तो, सेट्ठियो एवं ब्राह्मणो के हाथ मे पहुच जाते है। उनके लिए वे सुपन की माया है। वे सब तैयार वस्तुऐ गावों से निगमो मे, निगमो से नगरों में, वहा से पण्यागारो म और वहा से सौधों और प्रासादो में सचित हो जाती है। उनका बहुत सा भाग पारस्य या मिश्र को चला जाता है, बहुत सा ताम्रलिप्त सुवर्ण, द्वीप पहुंच जाता है और उससे लाभ किनको? इन राजाओ को जो भारी कर लेते है, या उन सेट्ठियो को जो इन गरीबो की असहाय अवस्था से पूरा लाभ उठाते है। या इन ब्राह्मणो को जिन्हे सर्व श्रेष्ठ वस्तु दान करना ये मूर्ख राजा अपना सबसे बडा पुण्य समझते है।"

युवराज की आखें चमकने लगी। उसने कहा—"तुम एक रहस्य पर पहुंच गए हो मित्र, तुम्हारी मित्रता पाकर मै कृतार्थ हुआ हू। मित्र, एकबार मै तथागत गौतम को देखना चाहता हू। यद्यपि मै भी शाक्य रक्त से हूं पर शाक्यो का मै परम शत्रु हूं।"

"तथागत को शत्रु मित्र समान है राजपुत्र, देखोगे तो जानोगे। कलन्दक निवाप के उस बूढे काले भिक्षु को जानते है आप?"

"क्या महास्थविर धर्मबन्धु की ओर संकेत है मित्र, जिन्होंने कासी से आकर यहा साकेत मे सघ स्थापना की है?"

"हाँ, वे चण्डाल कुल के है। वे साकेत के सभी भिक्षुओ के प्रधान है। समृद्ध श्रोत्रिय ब्राह्मण स्वर्णाक्षी पुत्र भारद्वाज और सुमन्त उनके सामने उकड़ बैठ कर प्रणाम करते हैं। उन दोनों ने उ ही से प्रवज्या

और उपसम्पदा ली है ।"

"यह मैंने सुना है मित्र, पर वे बड़े भारी विद्वान् भी तो है ।"

"पर ब्राह्मणों की चलती तो विद्वान् हो सकते थे ? आज वे देवपद प्राप्त दिव्य पुरुष है । तथागत अपने संघ को समुद्र कहते है । जहा सभी नदी अपना नाम रूप छोड कर समुद्र हो जाती है ।"

"परन्तु कलन्दकनिवाय को छोड इसी साकेत मे तो ऊंच नीच के भेद-भाव है ।" विदूडभ ने उदास हो कर कहा--"सो तो है ही, और जब तक मोटे बछडों का मास खाने वाले और सुन्दरी दासियो को दक्षिणा में लेने वाले ब्राह्मण रहेगे और रहेगे उन्हे अभयदान देने वाले ये राजा लोग, तब तक ऐसा ही रहेगा मित्र । ये तो स्वर्ण, दासी और मास के लिए कोई भी ऐसा काम, जिससे इनके आश्रयदाता राजा और सामन्त प्रसन्न हो, खुशी से करने को तयार है । देखा नही, कात्यायन, वरुचि शौनक और वशिष्ठ ने अपनी २ स्मृतिया बनाई है, और उनमे दिल खोल कर अपने और अपने मालिको के अधिकरो का डका पीटा है ।"

"तो मित्र, मै तुझे पाकर बहुत सुखी हुआ ।"

"परन्तु राजपुत्र, कदाचित् मेरा कोसल मे रहना नही होगा ।"

"यह क्यो मित्र ?"

"मेरे वाजीकरण की विफलता से महाराज बहुत असन्तुष्ट हुए है, मैंने उनसे राजगृह जाने की अनुमति ले ली है । मै शीघ्र राजगृह जाना चाहता हू ।"

"नही, नही, अभी नही मित्र, जब मै कहू तब जाना । अभी कोशल मे रहने का मै तुम्हे निमन्त्रण देता हू ।"

"तो फिर राजपुत्र की जैसी इच्छा ।"

— — —

: २४ :

नियुक्त

हर्षदेव विक्षिप्तावस्था मे देश विदेश की खाक छानता हुआ वीतीभय नगरी में जा पहुचा। उन दिनो इस नगर मे उद्रायण नाम के राजा का राज्य था। हर्षदेव की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। उसके वस्त्र गन्दे और फट कर चिथडे हो गये थे। सिर और डाढ़ी के बाल बढ कर परस्पर उलझ गये थे। उस की दशा एक पागल भिखारी के समान थी। वैशालो को विध्वस करके अम्बपाली को हस्तगत करने की तीव्र प्रतिहिंसा उसके मन और नेत्रो मे व्याप्त थी, परन्तु इस महत्कर्य को करने योग्य उसमे न तो चरित्र बल ही था न योग्यता। वह योंही अस्तव्यस्त भटक रहा था।

भूख और थकान से जर्जर हर्षदेव ने नगर के बाहर एक चैत्य में आकर विश्राम किया। सघन वृक्षो की शीतल छाया मे लेटते ही उसे गहरी नीद आ गई। उसी समय एक वृद्धा स्त्री ने उसे देखा। वह एक ऐसे ही अनाथ पुरुष की खोज मे थी। हर्षदेव को अनाथ जान कर वह बहुत प्रसन्न हुई, जब उसने देखा कि वह स्वस्थ-सुन्दर और तरुण है तो वह और भी सतुष्ट हुई। और सतोष की दृष्टि से उसे देखती वही बैठ गई। तथा उसके जागने की प्रतीक्षा करने लगी।

थोडी देर बाद हर्षदेव ने जाग कर वृद्धा को अपने सम्मुख बैठे देखा और कहा—"मात, क्या मै तेरा कुछ प्रिय कर सकता हूं?"

"कृतपुण्य हो कर, जात।"

"कृतपुण्य कौन है?"

"वह मेरा इकलौता बेटा था।"

"वह कहां है?"

"वह अपने तीन जहाज भरकर ताम्रपर्णी की ओर सार्थवाही जनों के साथ गया था। अब सार्थवाही जनो ने लौट कर बताया है कि मार्ग में उसके जहाज तूफान मे फप कर डूब गये। उन्ही के साथ मेरा वह प्रिय पुत्र भी डूब गया। जान, वह इस नगर के प्रसिद्ध सेट्ठि धनावह का एकलौता बेटा था और मै भाग्य हीना उस की माता हूं।"

"दु:ख है माता, पर यदि मेरे पुत्र बनने मे तेरा कुछ उपकार होना हो तो मै तेरा पुत्र हू।"

"उपकार बहुत हो सकता है पुत्त, मै पुत्रहीना स्त्री हू,। यदि राज्य सेवको को यह खबर लग जाय तो वे मेरा सब धन राजकोष मे उठा ले जायगे। इसी लिये पुत्त, तू मेरा पुत्र बन कर मुझे कृतार्थ कर।"

"किन्तु माता, मै कृत सकल्प हू।"

'कोई हानि नही, तू मेरा मनोरथ पूर्ण करके अपना सकल्प पूरा कर लेना।"

"तेरा मनोरथ क्या है, मम्ता।"

"मेरे पुत्र की चार वधूटिया है। चारो ही कलोना, सुन्दरी, और तरुणी है। मै तुझे नियुक्त करती हू, तू उन चारो मे धर्म पूर्वक एक एक क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न करने तक मेरा पुत्र बन कर मेरे घर रह। मै तुझे शुल्क दूंगी।"

हर्षदेव ने कुछ विचार कर कहा—"तो ऐसा ही हो माता, मै तेरा प्रिय करूंगा। पर तु शुल्क इच्छानुसार लूगा।"

"मेरा पति धनावह सेट्ठि सहस्त्रभार स्वर्ण का अधिपति था। और उसके सात सार्थवाह देश विदेश म चलते थे। सो तू शुल्क की चिन्ता न कर। मै तुझे यथेच्छ शुल्क दूगी।"

"तो माता, मै तेरा पुत्र कृतपुण्य हू।"

वृद्धा उसे घर ले आई। वीथिका मे घुसते ही उसने जोर जोर से रोना चिल्लाना आरम्भ किया, 'अरे लोगो, मेरा भाग्य देखो, मेरा मरा पुत्र जी उठा है। अरे, मेरा पुत्र आया है मेरा पुत्र कृतपुण्य, अहो

मेरे घर का उजाला यह मेरा कृतपुण्य है।"

बुढिया का रोना चिल्लाना सुन कर गली मुहल्ले के बहुत जन स्त्री पुरुष एकत्र हो गये। वे उन दोनो को घेर कर चलने लगे। वृद्धा कृतपुण्य का हाथ थाम अपने घर के द्वार पर आकर और जार जोर से रोने चिल्लाने लगी। "हाय, हाय, यह मेरे पुत्र की दुरवस्था देखो रे लोगों, सेठ्ठि धनावह के इकलौते पुत्र ने कितना दुःख पाया है।"

बहुत लोगों ने बहुत भांति सान्त्वना दी। बहुत कौतुक और आश्चर्य से हर्षदेव के उस जघन्य रूप को देखते रहे। वृद्धा ने सेवको को एक के बाद दूसरी आज्ञा देना प्रारम्भ किया। नाहपित को बुलाओ, मेरा पुत्र क्षौर करे। जलगर्म करो, उसे सुवासित करो, अवमर्दक और पीठमर्द को बुलाओ, पुत्र का अग सस्कार करो।

देखते ही देखते दास दासियो और सगे सम्बन्धियो की दौड धूप से हर्षदेव क्षौर करा, स्नान उबटन करा, बहुमूल्य कौशेय धारण कर उपाधान के सहारे नगर पौर जनो मे घिरा सुवासित पान के बीडे कचरने और अपने भूत भविष्य पर विचार करने लगा। घर में विविध पकवान पकने की सुगन्ध फैल गई। वृद्धा ने चारो बहुओ को उबटन लगा, नख-शिख से शृङ्गार कर पाटम्बर धारण करने का आदेश दिया।

वधुओ में जो ज्येष्ठा थी, उसने एक बार अच्छी तरह झाक कर पति को देखा। देख कर उसका मुख सूख गया। उसका नाम प्रभावती था। उसने सौतो को बुलाकर भयपूर्ण स्वर मे कहा--

"अब्भुमे, अब्भुमे, यह कौन है रे? यह तो सेठ का पुत्र नही है।"

सबने गवाक्ष मे से झाक कर देखा। सबने कहा—"अब्भुमे नही है, यह हमारा पति नही, यह कोई धूर्त वञ्चक है।"

"तो चलो, माता से कहदे।"

चारो जनी सास के पास पहुची।

वृद्धाने उन्हे देख कर कहा-- 'अरे यह क्या! तुम लोगो ने अभी

तक शृङ्गार नही किया ? साध्य वेला तो होगई ? मेरा पुत्र.....।"

"किन्तु माता, यह तुम्हारा पुत्र नही है, कोई धूर्त वञ्चक है" ज्येष्ठा ने वृद्धा की बात काट कर कहा। वृद्धा ने भृकुटी मे बल डाल कर कहा –

"मेरे पुत्र को तुम क्या मुझ से अधिक जानती हो ? यही मेरा पुत्र कृतपुण्य है।"

"यह नही है माता, चारो बधूटियो ने दृढ़ वाणी से कहा।"

"परन्तु जब मै कहती हू तब तुम्हे भी यही कहना चाहिए।"

"परन्तु हमने उसे भली भाति देख लिया है।"

"चुप, मैने इसे 'नियुक्त' किया है।"

वधुओ का मुह सूख गया– और उनकी वाणी कण्ठ में अटक गई। वे भयभीत हो कर सास का मुह देखने लगी।

वृद्धा ने कहा––'देखो, तुम समझदार और बुद्धिमती हो, मूर्खता करके बने बनाए खेल को मत बिगाड देना। तुमने देख ही लिया है, वह सुन्दर स्वस्थ और कुलीन है। तुम और मै पुत्र हीना स्त्रिया है, ऐसी अवस्था में देश के कानून के आधार पर राजपुरुषो को ज्यो ही इस बात का पता लग जायगा कि हम पुत्रहीना स्त्रिया है, तो राजपुरुष हमारी सारी सम्पत्ति को हरण करके राजकोश मे मिला देगे। तब हमे अपना सब स्वर्ण रत्न घर बार खो कर पथ की भिखारिणी होकर रहना होगा। परन्तु इस नियुक्त पुरुष के द्वारा तुम चारों एक एक क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न कर लोगी तो वेही हमारी इस अतुल सम्पदा के भोक्ता होगे। और तुम कुल वधू बन कर रहोगी। सब भोगों को भोगोगी। यह कोई अधर्म की बात नहीं है। प्राचीन आर्यों के धर्म की रीति है। शान्तनु के धर्मात्मा पुत्र भीष्म ने इसी धर्म को अपनाकर कुरुवश की रक्षा की थी। ऐसे अनेक उदाहरण है। इससे–मै तुम्हारे सुख कल्याण के लिये जैसा कहती हू तुम उसी प्रकार आचरण करो। इसी में तुम्हारा कल्याण होगा।

बुढिया की बातें अन्ततः बधूटियों के मन में घर कर गईं और उन्होंने उसके आदेश के अनुसार इस नियुक्त पुरुष को पति भाव से स्वीकार कर लिया। इस प्रकार हर्षदेव अपने सकल्प को भूल, धन, सम्पदा, ऐश्वर्य, और सुन्दरी युवती स्त्रियों के सुख में डूब गया। कृतपुण्य होकर वह सेठि पुत्र का सम्पूर्ण अभिनय करने लगा। किसी को भी उस पर सन्देह नहीं हुआ, जिन्होंने सन्देह किया, उन्हें बुढ़िया ने साम दाम, दण्ड भेद से वश में कर लिया।

: २५ :

नियुक्त की शुल्क

इस प्रकार उस नगर मे रहते हुए हर्षदेव को तीन वर्ष बीत गये। इन तीन वर्षों मे उसने सेट्ठिपुत्र की चारो वधूटियो में तीन पुत्र और दो पुत्रिया उत्पन्न की। अपने घर को शिशुओ से आल्हादित और प्रसादित देख कर वृद्धा बहुत प्रसन्न रहने लगी। बालक बडे ही स्वस्थ और सुन्दर थे। वे बुद्धिमान भी थे जैसा कि संकर रक्त की सन्तान होती ही है। पहले हर्षदेव अपने को मात्र नियुक्त समझ कर इन सबसे उदासीन रहता था, बीच २ मे वह देवी अम्बपाली का भी ध्यान करता था, परन्तु ज्यो ज्यो दिन बीतते गए उसने सोचा क्यो न मै अब सब बातो को भूल कर कृतपुण्य रह कर ही जीवन व्यतीत करूं। चारो बहुऐ भी अब उससे प्रेम करने लगी थी। खास कर तृतीया की उस पर अधिक आसक्ति थी। वह सब बधूटियों मे चतुरा, प्रगल्भा, बुद्धिमती और सुन्दरी भी थी। उसका पिता चम्पा का एक धनी सेट्ठि सार्थवाह था।

परन्तु बुढिया की योजना विशुद्ध वैधानिक थी। अब वह सोचने लगी थी, मेरा काम हो चुका। जो करना था कर लिया। मेरे पुत्र के पुत्र हो गए, मेरा वश चल गया। मेरी सम्पत्ति और मेरे कुल की रक्षा हो गई। अब यह नियुक्त मोघ पुरुष जाय। वह इस सम्बन्ध मे हर्षदेव से बात चीत करने का अवसर ढूढ़ने लगी। उसके मन से उसका आदर भाव बहुत कम हो गया। उसका घर मे स्वामी की भाति रहना, उसका पुत्र बधुओं के प्रति पति भाव से व्यवहार करना, स्वच्छन्दता से भीतर बाहर आना जाना, मनमाना द्रव्य खर्च करना, सब उसे अखरने लगा। वह उसे घर से निकाल बाहर करने की युक्ति

सोचने लगी ।

एक दिन उसे अवसर भी मिल गया। कपिशाकाम्पिल्य के कुछ सार्थवाह नगर में आए थे। उनके साथ कुछ उत्तम आजानीय अश्व थे। उनसे हर्षदेव ने अपने लिए एक अश्व सहस्र स्वर्ण में खरीद लिया। अन्ततः वह सामन्त पुत्र था। अश्व पर चढ़ कर चलने और शस्त्र धारण करने का वह अभ्यस्त था। सेट्ठि पुत्र के अलस अभिनय से कभी २ ऊब कर वह अश्व पर शस्त्र लेकर मृगया करने और भुना हुआ शूकर शूल्य खाने को छटपटा उठता था। कृतपुण्य का सेट्ठिपरिवार श्रावक था। अतः यहां उसे मांस नहीं मिल रहा था।

सो अश्व खरीद कर और नए अश्व पर सवार होकर वह प्रसन्न होता हुआ घर पहुंचा और उपास्था को पुकार कर कहा कि वह सार्थवाहक को सहस्र स्वर्ण दे दे। जो उसके साथ २ ही आया था। बुढिया को अवसर मिल गया। वह क्रुद्ध होकर बाहर आई, उसने कहा—"कैसा सहस्र स्वर्ण ?"

"मैंने अश्व खरीदा है मात ।"

"परन्तु किस लिए ?"

"मैं कभी २ वन विहार को जाया करूंगा ?"

'तो तू निरन्तर वन विहार कर, मेरी तरफ से तुझे छुट्टी है।",

"इसका क्या मतलब है ?"

• "अरे मोघ पुरुष, तू मतलब पूछता है ? क्या तू नहीं जानता कि तू नियुक्त है, जा तेरी नियुक्ति समाप्त हुई। मेरा कार्य पूरा हुआ। तूने कहा था कि तू कृतसंकल्प है, जा अपना संकल्प पूर्ण कर।"

"तो क्या मैं अब तेरा कृतपुण्य पुत्र नहीं ?"

"नहीं रे मोघ पुरुष, नहीं !"

"तो मैं राजद्वार में अभियोग उपस्थित करता हूं कि तू मुझ पुत्र का वंचित करती है। मैं कृतपुण्य हूं। यह सभी जानते हैं।"

"तो तू अभियोग उपस्थित कर, मैं कहूंगी इस वंचक ने मेरा पुत्र

बनकर मुझे ठगा है, मेरा कुल कलंकित किया है, तुझे सूली मिलेगी। अरे मोघपुरुष, तू कब मेरा पुत्र कृतपुण्य था ?"

मध्यमा ने आकर कहा—"मात, यह विवाद ठीक नहीं है। इसमें कुल कलंकित होगा। तथा तेरे पौत्र अवैधानिक प्रमाणित होंगे। और सम्पत्ति उन्हें नहीं मिलेगी।"

"तो तू क्या कहती है कि मैं इस धूर्त को जीवन-भर सिर पर लादे फिरूं ? और यह मेरे पुत्र और पति की सम्पत्ति और मेरी वधुओं का आजीवन भोक्ता बना रहे ?"

"तो उसे शुल्क देकर विदा कर दो।"

"कैसी शुल्क ?"

हर्षदेव ने क्रुद्ध होकर कहा—

"क्या तूने शुल्क देने का वचन नहीं दिया था ?"

'पर तू ने खाया पीया भी तो है, अरे भिक्षुक मोघपुरुष, स्मरण कर उस दिन को, जब तू चीथड़े पहने जंगल में भटक रहा था। तीन वर्षों में कितना खाया है रे पेटू, तनिक हिसाब तो लगा ?"

"अरी दुष्टा, तू जब मेरा पेट नापती है, नहीं जानती मैं सामन्त हूं। अभी खड्ग से तेरा शिरच्छेद करूंगा, हर्षदेव क्रुद्ध होकर खड्ग निकालने लगा।"

बुढ़िया डर गई। वह जोर २ से रोने लगी। मध्यमा ने कहा—"मातः, अभी सब वीथिवासी आ जावेंगे, भेद खुल जायगा, तेरा कुल दूषित होगा।"

"तो यह मोघ पुरुष अभी मेरे घर से चला जाय।"

हर्षदेव ने कहा—"अभी जाता हूं, परन्तु तुझ कुट्टनी की प्रतिष्ठा लिए नहीं, अपनी प्रतिष्ठा के लिए। इसके बाद उसने सार्थवाहक से कहा—हन्त मित्र, मैं तुम्हारा अश्व इस समय नहीं खरीद सकता। अश्व ले जाओ। और तुम्हें जो कष्ट हुआ उसके लिये यह मुद्रिका ले लो।"

इसके बाद हर्षदेव सब बहुमूल्य वस्त्रालकार उतार उतार कर फेंकने लगा। केवल एक प्रावार अग से लपेटकर चलने के लिये उठ खड़ा हुआ।

चारो वधूटिया आखों में आंसू भरे खडी देखती रही। मध्यमा ने आगे बढ़कर कहा "भद्र यो नही, यह कुल मर्यादा के विपरीत है। एक मुहूर्त भर ठहरो, मै पाथेय तैयार करती हू। पाथेय साथ लेकर जाना।"

बुढिया ने बाधा नही दी। और हर्षदेव ने भी मौन स्वीकृति दी। मध्यमा ने बहुत सा घी चीनी डालकर दो बडे २ मधुगोलक बनाये। उनमें से एक में मुट्ठा भर रत्न मणि भर दिये। पाथेय हर्षदेव के हाथ में देकर हौले से कहा—"भद्र, चम्पा जाना, वहा पिता के यहा रहकर मेरी प्रतीक्षा करना।"

इतना कह वह हर्म्य में चली गई और हर्षदेव डाल से टूटे पत्ते की भाति फिर निराश्रय हो पथ पर आगे बढ़ा।

———

: २६ :

चम्पारण्य में

दोपहर ढल गया था, पर्वत की सुदूर उपत्यकाओं में गहरी काली रेखाएं दीख पड़ने लगी थी। किन्तु पर्वत शृंग के वृक्ष सुनहरी धूप में चमक रहे थे। सामने एक सघन घाटी थी उसी की ओर सात अश्वारोही बड़े सतर्क भाव से अग्रसर हो रहे थे। उनके अश्व थक गये थे, और पथरीली ऊबड़ खाबड़ धरती पर रह रह कर ठोकरें खाते जाते थे आगे के दो अश्वो पर कुण्डनी और सोम थे, उनके पीछे पाच भट सावधानी से इधर उधर ताकते अपने अपने अश्वो को सम्हालते हुए चल रहे थे।

बहुत देर तक सन्नाटा रहा। घाटी के मुहाने पर पहुच कर सोमप्रभ ने कहा--"तनिक अश्वको बढाए चलो, कुण्डनी। हम जो कुछ बताया गया है यदि वह सत्य है तो इस घाटी के उस पार ही हमे एक हरा-भरा मैदान मिलेगा, और उसके बाद चम्पा नगरी की प्राचीर दीख जायगी।'

'परन्तु सोम, यही घाटी तो सब से अधिक विकट है, तुम क्या भूल गए, यही कही उस असुर राजा की गढी है, जिसके सम्बन्ध में बहुत सी अद्भुत बाते प्रसिद्ध है। उसके फन्दे मे फस कर कोई यात्री जीवित नही आता। सुना है देवता को वह नित्य नरबलि देता है, और उसकी आयु सैकडो वर्ष की है। पिता ने कहा था कि वे उसे देख चुके है--"वह अलौकिक आसुरी विद्याओ का ज्ञाता है, और उसके शरीर में दश हाथियो का बल है।"

"परन्तु क्या हम उसकी आखों में धूल नही झोंक सकते ? जिस प्रकार से आज चार दिन से हम निर्विघ्न चले आ रहे हैं उसी प्रकार

इस घाटी को भी पार कर लेंगे। भय मत करो कुण्डनी, परन्तु सूर्य अस्त होने मे अब विलम्ब नही है, हमे सूर्यास्त से प्रथम ही यह अशुभ घाटी पार कर लेनी चाहिए।"

"खूब सावधानी की आवश्यकता है सोम, जैसे बने इस अशुभघाटी को हम जल्द पार कर जाय, न जाने मेरा मन कैसा हो रहा है।"

'पार तो करेंगे ही कुण्डनी, क्या तुम्हे सोम के बाहु बल पर विश्वास नही है ?"

"नही, नही, सोम, मै तुम्हे सावधान किए देती हू। यदि दुर्भाग्य से हमे उस असुर का सामना करना ही पडा तो शरीर बल पर भरोसा न करना, उससे बुद्धि कौशल ही से निस्तार पाना होगा।"

सोमने हस कर कहा—"तो कुण्डनी, तुम मेरी पथ प्रदर्शिका रही।"

कुण्डनी हसी नहीं, उसने एक मार्मिक दृष्टि साथी पर डाली, और कहा—'यही सही।"

सोम ने अश्व को बढा कर कुण्डनी के बराबर किया फिर कहा—"कुण्डनी, आचार्य पाद ने कहा था-कि तुम मेरी भगिनी हो, क्या वह सच है ?"

'तुम क्या समझते हो, पिता झूठ बोलेंगे ?"

"क्यो नही, यदि उचित और आवश्यक हुआ तो ?"

"और तुम ?"

"मै भी, झूठ से मूर्ख ही भय खाते है, जो उसका उपयोग नहीं जानते, जैसे शस्त्र से अनाड़ी डरते है ?"

"तो तुम्हारी राय में झूंठ भी एक शस्त्र है ?"

"बडा प्रभावशाली।"

इसबार कुण्डनी हंसी, उसने कहा—"तुम्हारा तर्क तो काटने के योग्य नही है, परन्तु पिता ने सत्य कहा था।"

"नहीं, नही कुण्डनी" आर्या मातङ्गी ने कहा था—"तुम्हारी एक भगिनी है—पर वह कुण्डनी नही है।"

"सोम, शत्रु को छोड कर मै प्रत्येक पुरुष की भगिनी हू।"

"इसका क्या अर्थ है, ? यह तो गूढ बात है।"

'मेरे पिता जैसे गूढ पुरुष है, वैसे ही उनकी पुत्री भी। तुम उसको समझने की चेष्टा न करो।"

"किन्तु मै कुण्डनी .. . ।"

सोम की बात मुह ही मे रही, एक तीर सन सनता हुआ कुण्डनी के कान के पास से निकल गया।

कुण्डनी ने चीत्कार करके कहा--"सावधान, शत्रु निकट है।"

परन्तु इससे प्रथम ही सोम ने अपना भारी बर्छा सामने की झाडी को लक्ष्य करके फेंका। झाडी हिली और एक क्रन्दन सुनाई दिया। सोम खड्ग खीच झाडी के पास पहुचा। कुण्डनी और पाचों भटों ने भी खड्ग खीच लिये—सबने झाडी को घेर लिया।

उन्होंने देखा, बर्छा एक पुरुष की पसलियो मे पार होकर उसके फेफडे मे अटक रहा है। जो ग्राहत हुआ है उसका रग काजल सा काला है, खोपडी छोटी और चपटी है, कद नाटा है, नगा शरीर है, केवल कमर में एक चर्म बधा है, उस पर स्वर्ण की एक करधनी है जिस पर कोई खास चिन्ह है। उसके घाव और मुख से खून बह रहा था, और वह जल्दी जल्दी सास ले रहा था। उसके साथ ही वैसा ही एक दूसरा युवक था। उसने भीत मुद्रा से पृथ्वी पर लेट कर सोम को प्रणिपात किया। फिर दोनो हाथ उठाकर प्राणभिक्षा मांगने लगा।"

सोम ने उसे सकेत से अभय दिया। फिर सकेत ही से कहा—"क्या वह असुर है ?"

असुर ने स्वीकार किया। इस पर सोम ने आसुरी भाषा मे कहा—"वह अपने साथी को देखे—मर गया या जीवित है।"

युवक अपनी ही भाषा बोलते सुनकर आश्वस्त हुआ। फिर उसने साथी को झाडी से निकाल कर चित्त लिटा दिया। सोम ने देखा—जीवित है, पर बच नही सकता। उसने एक सैनिक को उसके मुह में लग

डालने को कहा—सैनिक ने जल डाला। पर इसी समय एक हिचकी लेकर उसका प्राण निकल गया।"

सोम ने अब दूसरे तरुण को अच्छी तरह देखा, उसकी करधनी ठोस सोने की थी। तथा उसकी आखो में खास प्रकार की चमक थी। सोम प्रभ ने उससे पूछा—"क्या वह असुरराज शम्बर का आदमी है?"

शम्बर के नाम पर वह झुका उसने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया।

सोम ने पूछा -'क्या तुम अपने प्राणो के मूल्य पर हमे चम्पा का मार्ग प्रदर्शन कर सकते हो?"

युवक ने स्वीकृति दी। परन्तु अत्यन्त भयभीत होकर घाटी की ओर हाथ उठाकर दो तीन बार 'शम्बर' नाम को जोर २ से उच्चारण किया।

सोम ने कहा -"क्या उधर जाने में खतरा है?"

"हां"

"चम्पा जाने का क्या कोई दूसरा मार्ग नही है?"

"है, किन्तु बहुत लम्बा है।"

"कितना समय लगेगा?"

"एक सप्ताह।"

"और इस घाटी के मार्ग से?"

"एक दिन।"

सोम ने कुण्डनी से कहा -'लाचारी है! हमें खतरा उठाना ही पड़ेगा। हम एक सप्ताह तक रुक नहीं सकते।' उस ने तरुण से कहा—

"हमे घाटी का मार्ग दिखाओ।"

तरुण असुर ने अत्यन्त भयमुद्रा दिखाकर उगली गर्दन पर फेरी।

सोम ने अपना खड्ग ऊचा करके कहा -"चिन्ता मत करो।"

असुर ने कहा—'खड्ग से आप बच नहीं सकगे।'

परन्तु सोम ने उधर ध्यान नही दिया। वे अश्व पर सवार हुए। कुण्डनी को भी सवार कराया और आगे २ युवक को करके घाटी की

ओर अग्रसर हुए। एक बार उन्होंने तरुण असुर की छाती पर बर्छा रखकर कहा—'यदि दगा की तो मारे जाओगे।'

तरुण ने नेत्रों में करुण मुद्रा भरकर प्रणिपात किया फिर स्वर्ण करधनी का चिन्ह छूकर प्राणान्त सेवा का वचन दिया।

आगे २ तरुण, पीछे अश्व पर सोम और कुण्डनी और उनके पीछे पांचों सैनिक द्रुत गति से आगे बढ़ने लगे। पर ज्यों ज्यों घाटी के नीचे उतरते गये, उनका भय, आतंक बढ़ता ही गया। उन्हें एक अशुभ भावना का आभास होने लगा। सोम ने धीरे से कहा—"कुण्डनी, क्या हम खतरे के मुंह में जा रहे हैं?"

"मालूम तो ऐसा ही होता है।"

'तब क्या लौट चलें?"

"अब सम्भव नहीं है।"

"क्या तुम भयभीत हो?"

'व्यर्थ है।"

और बातें नहीं हुईं। कुछ देर चुप चाप सब चलते रहे। घाटी में अंधकार बढ़ता गया। तरुण ने एक झरना दिखाकर कहा—"अब आज इससे आगे जाना ठीक नहीं है।"

सोम ने भी यही ठीक समझा। सब घोड़ों से उतर पड़े। घोड़े रास के सहारे बांध दिये गये। वे हरी हरी घास चरने लगे। सोम ने तरुण असुर से कहा—"यहां आखेट है?"

"वह कुछ मुस्कराता हुआ सिर हिलाता कहीं चला गया और थोड़ी में बहुत सी जड़ और कुछ जंगली फल उठा लाया। सबने वही खाया। और बारी २ से एक २ सैनिक को पहरे पर तैनात कर दोनों सो गये। थकान के कारण उन्हें तुरन्त ही गहरी नींद आ गई।

———— —

: २७ :

शम्बर असुर की नगरी में

अकस्मात् जैसे हृदय में धक्का खाकर सोमप्रभ की आखें खुल गईं। उसने देखा उसके हाथ पाव कसकर बधे है। और वही असुर तरुण स्वप्निलता कुण्डनी के हाथ पाव बाध रहा है। और वह बेसुध है। पाचों सैनिको की भी वही दशा है वे सब के सब बेसुध पडे है। उसने इधर उधर देखा, सामने कोई दस गज के अन्तर पर एक विशेष प्रकार की आग जल रही थी। जिसमे से नीली और बैगनी रग की लौ निकल रही थी। उसमे से विचित्र सी गध निकलकर हवा मे फैल रही थी। उस हवा मे श्वास लेने से सोमप्रभ को ऐसा मालूम हुआ कि जैसे उसके शरीर से जीवन शक्ति का लोप हो गया हो। उसने यह भी देखा कि उसके सम्पूर्ण शस्त्र उसके अग पर ही है, पर वह उनका कोई उपयोग नही कर सकता। उसने जोर से चिल्लाकर कुण्डनी को पुकारना चाहा, पर उसके मुह से एक शब्द भी नही निकला। इस बीच में तरुण असुर कुण्डनी को बाध चुका था। अकस्मात् उसके हृदय मे एक ऐसी तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई कि वह चुपचाप उठकर एक ओर को चल दिया। एक बार पीछे फिर कर यह देखकर उसे बडा आश्चर्य हुआ कि कुण्डनी चुपचाप स्वप्निल व्यक्ति की भाति पीछे चली आ रही है। यही दशा उसके अश्वो और भटो की भी थी। उन्हे वही तरुण लिये आ रहा था। उसने अब भी बोलने, कुण्डनी से बातचीत करने और कहा जा रहा है यह विचारने की चेष्टा की पर सब बेकार। वह मन्त्र प्रेरित सा आगे बढा चला जा रहा था और उसके पीछे कुण्डनी और उसके अश्व और भट चले आ रहे थे। उन्हे ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों कोई रस्सी बाधकर इन्हे खींचे लिये जा रहा है।

पीछे वही तरुण था। वह रुक २ कर कुछ शब्द कहता जाता था। कभी २ वन के बीच उपत्यका को प्रतिध्वनित करती एक रोमाञ्चकारी ध्वनि आती थी और उसी ध्वनि के उत्तर में वह तरुण असुर कोई अस्पष्ट शब्द उच्च स्वर से मानो चीख कर किन्तु बेबसी की हालत मे उच्चारण कर रहा था।

पूर्व में सफेदी फैलने लगी और तारे धुधले हो गये। ये यात्री चलते ही गये। अब किसी अदृश्य प्रेरणा से प्रेरित हो उन्होने एक गहन गुफा मे प्रवेश किया। गुफा में बिल्कुल अन्धकार था। पर तरुण असुर ने क्षण भर ही मे वैसा ही नीला और बैंगनी रग का प्रकाश उत्पन्न कर दिया। उसी के क्षीण प्रकाश मे उन्होने देखा, गुफा खूब लम्बी चौड़ी और बडी है। वे उसमें भीतर ही भीतर चलते चले गये। बहुत देर चलने के बाद जब गुफा का दूसरा छोर आया तो सोमप्रभ को ऐसा मालूम हुआ कि अकस्मात् गहरी नीद से जाग पडा हो। उसने देखा दिन भली भाति निकल आया है। सूर्य की मनोरम स्वर्ण किरण चारो ओर फैल रही है और उनकी आखो के सामन एक खूब समथर हराभरा चौड़ा मैदान है। जो चारो ओर पहाडियों से घिरा हुआ है। इस मैदान मे एक स्वच्छ सुन्दर और कलापूर्ण अच्छा खासा गाव बसा हुआ है। घर सब गारे पत्थर के है। उन पर गोल बाध कर छप्पर छाया गया है। बासो को गाढ़कर अहाते बनाये गये है। सडके खूब चौडी और साफ है। पशु पुष्ट और उनके गवाट कलापूर्ण ढग से बने है। असुर तरुणिया सुर्मे के रग की चमकती देह पर लाल मूगा तथा हिमधवल मोतियो की माला धारण किये चर्म के लहगे पहने और कमर मे स्वर्ण की करधनी तथा हाथो मे स्वर्ण के मोटे २ कडे पहने कौतुहल से इन विवाह बंदियो का आगमन देख रही थी। असुर बालक उन्हे क्रीड़ा और मनोरजन की सामग्री समझ रहे थे। रूपसी कुण्डनी सम्पूर्ण असुर बालाओ और युवती जनो की स्पर्धा की वस्तु हो रही थी। वह लाल शाल कमर मे बाधे तथा उत्तरी वासक को वक्ष में

लपटें सर्पिणी के समान लहराते सघन केशों को आदी के समान उज्ज्वल मस्तक पर धारण किये साक्षात वन देवी सी प्रतीत हो रही थी। सोमप्रभ के निकट आकर उसने उसके कान में कहा—"सोम, जिस असुरपुरी की चर्चा लोग कहानियों में कहते थे, वह आज हम परम सौभाग्य से अपनी आंखों से देख रहे हैं, यह तो बड़ी मनोरम, शान्त और स्वच्छ छोटी सी नगरी है। सोम, क्या तुम्हें यह देखकर आश्चर्य नहीं होता ?"

"मुझे तो यह देखकर आश्चर्य होता है कि कुण्डनी इस असुरपुरी में कैसी निर्भय और विनोदी भाव से प्रवेश कर रही है।"

"भय क्या है सोम ?"

"यह तो अभी पता लग जायगा, जब शम्बर आज रात को हमें देवता पर बलि चढ़ायेगा।"

"क्या उसकी ऐसी सामर्थ्य है सोम ?"

"उसकी सामर्थ्य क्या अभी तुमने देखी ही नहीं। नगर में घुसने के पूर्व तक हम लोग कैसे मूढ बने से माया से वशीभूत इस असुरपुरी में खिंचे चले आए।"

"सच ही तो, यहां हम आ कैसे गये ? यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।"

"उसी आसुरी माया के बल पर, शायद सूर्योदय होने पर वह माया नष्ट हो गई।"

"ऊंह, पर अब तो मैं पूर्ण सावधान हूं और जब तक सावधान हूं, मैं शत्रु से भय नहीं खाती।"

"ऐसी वीराङ्गना को सगिनी पाकर मैं कृतार्थ हुआ कुण्डनी। अफसोस यही है कि जीवन सगिनी कदाचित् न बना सकूं।"

कुण्डनी ने विषाद पूर्ण हंसी हंसकर कहा—यदि आज ही रात को असुर हमें देवता पर बलि चढ़ा दे तब तो तुम्हारी साध पूरी हो जायगी। तुम मुझे जीवन सगिनी ही समझ लेना, परन्तु सोम, क्या तुम

बहुत भयभीत हो ?"

"क्या भय की कोई बात नहीं है कुण्डनी ?"

"हम शत्रुपुरी में हैं और विवश हैं यही तो ? इसी से साहस खो बैठे ? तक्षशिला में तुमने इतना ही पुरुषार्थ संचय किया था सोम ?"

सोम एक टक कुण्डनी के तेज पूर्ण मुख को ताकने लगा। उसने उसके मदभरे उनींदे नेत्रों में प्यासी चितवन फेंककर कहा—"यह कौनसी सामर्थ्य तुम्हारे भीतर से बोल रही है कुण्डनी ?"

"यदि मेरे हाथ पैर बन्धन मुक्त हों और मेरा खड्ग मेरे पास हो तो मुझे इन असुरों की परवा नहीं।"

"ओह फिर वही शारीर बल की बात कह रहे हो सोम, याद रखो यहां बुद्धि बल से विजय पाना होगा। मस्तिष्क को ठण्डा रखो और निर्भय आगे बढ़ो। देखें तो उस असुर का राजवैभव।"

इतने ही में बहुत से वाद्य एक साथ बजने लगे। तुरही, भेरी, मीरज, मृदङ्ग और ढोल। दोनों ने आंख उठाकर देखा, सामने लाल पत्थर का एक प्रशस्त दुर्ग है। उसके गोखों से असुर योद्धा सिर निकाल २ कर बन्दियों को देख रहे हैं। गढ़ के फाटक बहुत मोटी लकड़ी के हैं। उन्हें रस्सियों से खींचकर खोला जा रहा है। उसी के ऊपरी खण्ड में ये सब वाद्य बज रहे थे। फाटक पर बहुत से असुर तरुण नंगे शरीर कमर में खाल लपेटे, स्वर्ण करधनी पहिने, विशाल भाले हाथ में लिये खड़े थे। उनके कज्जलगिरि जैसे शरीर लोहे के समान चमक रहे थे।

कुण्डनी ने धीरे से सोमप्रभ से कहा—"तुमने आसुरी भाषा कहां सीखी सोम ?"

"मैंने गान्धार में अभ्यास किया था। देवासुर संग्राम में भी बहुत अवसर मिला। वहां असुर बन्दियों से मैं आसुरी भाषा ही में बोलता था।"

"तो सोम, उच्च स्वर से इन असुरों ही के समान असुर राज

शम्बर का जयजयकार करो।"

सोम ने यही किया। जयजयकार का असुरो पर अच्छा प्रभाव पडा। उन्होने भी हाथ उठाकर जयजयकार मे योग दिया।

दुर्ग मे प्रविष्ट होकर वे पत्थर की बनी सडक पर कुछ देर चलकर एक बडे दालान मे पहुचे। यह दालान आधा पहाड में गुफा की भाति खोद कर और आधा पक्की ईंटो से चुनकर बनाया गया था। उसके बीचो बीच पत्थर का एक ऊंचा सिंहासन रखा था। उस पर एक बाघाम्बर बिछा था, जिसमे बाघ का विकराल मुख खुला दीख रहा था। जिसमे से उसकी बडी २ डाढे चमक रही थी। उसी पर शम्बर पद्मासन से बैठा था। उसका शरीर बहुत विशाल था। रग अत्यन्त काला, अवस्था का पता नही चलता था। परन्तु अग अत्यन्त दृढ था। कण्ठ मे मुक्ता और मूंगा की कई छोटी बडी मालाये पडी थी। भुज बन्द मे स्वर्ण-मण्डित सूअर के दात मण्ढे थे। सिर खुला था। उसके बाल कुछ कुछ लाल, घुघराले और खूब घने थे, उनपर स्वर्णपट्ट में जडे किसी पशु के दो पैने सीग मढे हुए थे। मुह भारी और रुआबदार था। उस पर खिचडी गलमुच्छा था। मस्तक पर रक्त चन्दन का लेप था। सम्पूर्ण वक्ष स्वर्ण की ढाल जैसे किसी आभूषण से छिपा था। उसके सिंहासन के दोनो ओर दो विशाल बर्छे गढे थे। सिंहासन के पीछे चार तरुणी असुर कुमारिकाऐ खडी मोरछल और चवर ढाल रही थी। एक मद्यपात्र लिये निकट खडी थी। दो के हाथ मे गन्धदीप था जिनमे से सुगन्धित धुआ उठ रहा था। सिंहासन के सामने वेदी थी जिसमे वैसी ही बेगनी और नीली आच जल रही थी। सिंहासन के पीछे पत्थर की दीवार पर किसी अति भयानक विकराल जन्तु की तस्वीर खुदी हुई थी। शम्बर के हाथो मे भी मोटे मोटे स्वर्ण के कडे थे तथा हाथ में एक मोटा स्वर्ण दण्ड था, जो ठोस मालूम होता था। उसकी आखें गहरी काली और चितवन बडी तेज और मर्म भेदिनी थी। दो बूढे असुर जिनकी वेशभूषा लगभग राजा ही के समान थी, सिंहासन के

नीचे बाघ चर्म पर बैठे थे।

सोम ने एक बार भलीभांति असुर राज के दर्बार को देखा और धीरे से कुण्डनी के कान में कहा—"इस असुर के पास तो स्वर्ण का बड़ा भण्डार दीख पड़ता है।"

"चुप, उच्च स्वर से असुर का अभिनन्दन करो।"

कुण्डनी का संकेत पाकर सोम ने आसुरी भाषा मे कहा—"जिस असुरराज शम्बर की अमोघशक्ति और महान् वैभव की कहानियां मनुष्य देव गन्धर्व घर घर कहते नहीं अघाते हैं, उसका मैं सोमप्रभ अभिनन्दन करता हूं।"

यह सुनकर असुर राज ने मुस्कुरा कर वृद्ध मन्त्रियों से कुछ कहा—फिर सोम की ओर देखकर कहा—गन्धर्व हैं या मनुष्य ?"

"मनुष्य।"

"कहां का ?"

"मगध का।"

"मगध के सेनिय बिम्बसार को मैं जानता हूं, परन्तु वह मेरा मित्र नहीं है। तू मेरे राज्य की सीमा में क्यों घुसा ? जानता है, यह अक्षम्य अपराध है और उसका दण्ड मृत्यु है।"

"महा सामर्थ्यवान शम्बर का यह नियम शत्रु के लिए है, मित्र के लिये नहीं। प्रतापी मगध सम्राट् विम्बसार असुर राज मे मैत्री स्थापन चाहते हैं।"

"असुर ने फिर झुककर मन्त्रियों से परामर्श किया। फिर उसने कहा—"मगध बिम्बसार दनुकुल का था। अब वह मनुकुल में चला गया है, तथा मनुष्य धर्म पालन कर रहा है। इसीसे वह मेरा मित्र नहीं है। मनुकुल सदैव देव कुल का मित्र होता है। दनुकुल का नहीं।"

"परन्तु मागध विम्बसार दनुकुल भूषण सामर्थ्यवान् शम्बर की मित्रता चाहता है। उसका मैत्री संदेश ही मैं लाया हूं।"

शम्बर ने मन्त्रियों से फिर परामर्श किया और कहा—"इसका

प्रमाण क्या है ?"

"यही, कि मैं विजयिनी मागध सैन्य साथ न लाकर एकाकी ही यहां चला आया हूं। मुझे विश्वास था कि महान् शम्बर मित्रवत् हमारा स्वागत करेगा।"

इस पर शम्बर ने बड़ी देर तक मन्त्रियों से विचार परामर्श किया और फिर कुण्डनी की ओर संकेत करके कहा—"वह कौन सुन्दरी है ?"

"वह भी मागधी है।"

"तब सैनिय विम्बसार ऐसी सौ सुन्दरी मुझे दे तो मैं विम्बसार का मित्र हूं।"

सोमप्रभ का मुंह क्रोध से लाल हो गया। कुण्डनी ने उस पर लक्ष्य करके कहा—"बेवकूफी मत करना सोम, वह क्या कह रहा है ?"

"वह तुम्हारी जैसी सौ सुन्दरी मित्रता के शुल्क में मांग रहा है।"

"उससे कहो, मागधी तरुणी विद्युतप्रभ होती है। असुर उन्हें भोग नहीं सकते। उन्हें छूते ही असुर की मृत्यु हो जायगी।"

शम्बर ने कहा—"वह सुन्दरी बाला क्या कह रही है ?"

"वह कहती है, मागध सम्राट् सामर्थ्यवान् शम्बर की यह शर्त पूर्ण कर सकते हैं, परन्तु बाधा यह है कि मागधी तरुणियां विद्युतप्रभ होती हैं। उन्हें भोगने की सामर्थ्य असुरों में नहीं है। उन्हें छूते ही असुर की मृत्यु हो जायगी।"

"मैंने अपने यौवन में लोक भ्रमण किया है। गान्धार, पर्शपुरी, स्वर्णद्वीप और गन्धर्वलोक देखा है। देव कन्याओं तथा गन्धर्व तरुणियों का हरण किया है। ऐसा हरण हमारा कुलधर्म है। इन सभी देव गन्धर्व बालाओं को भोगने में हम असुर समर्थ हैं तब मागधी बाला को क्यों नहीं ?"

सोमप्रभ को इधर उधर करते देख कुण्डनी ने कहा—"अब वह क्या कहता है ?"

असुर का अभिप्राय जान कुण्डनी ने कहा--"उससे कहो, मागधी बाला को देवी वर है। वह असुरो के लिये अगम्य और अस्पर्श है।"

यही बात राम ने कह दी। तब असुर ने कहा--"अच्छा फिर, यहो एक मागधी तरुणी है ही इस पर असुरो की परीक्षा कर ली जायगी।"

सोमप्रभ लाल २ आखे करके शम्बर की ओर देखने लगा। कुण्डनी ने कहा--"अब उसने क्या कहा सोम ?"

'वह पाजी कहता है, इस तरुणी पर असुरो की परीक्षा कर ली जायगी।"

कुण्डनी ने तनिक हसकर कहा--"क्रुद्ध मत हो। उससे कहो, वह नाग पत्नी है। यदि असुर इस परीक्षा मे प्राण सकट का खतरा उठाना चाहे तो ऐसा ही हो।"

शम्बर ने क्रुद्ध होकर कहा--"वह बाला हसकर क्या कह रही है रे मनुष्य ?"

सोम ने कहा--"वह कह रही है कि यदि असुर प्राण सकट का खतरा उठाकर यह परीक्षण किया चाहते हो तो ऐसा ही हो। परन्तु वह नाग पत्नी है और स्वय नागराज वासुकी उसकी रक्षा करते है।"

असुर राज ने मन्त्रियो से सलाह करके कहा--"इसकी जल्दी नही है मनुष्य। इस पर फिर विचार कर लिया जायगा। अभी तू असुरपुरी मे हमारा अतिथि रह।"

फिर उसने मन्त्रियो को सबोधित करके कहा--"आज इन मनुष्यों के लिए नृत्य पानोत्सव हो। सब पोरों को खबर हो। ढोल पीटे जाय।"

फिर उसने सोम की ओर घूमकर कहा--"तुझे अभय. किन्तु यदि मागध बिम्बसार मित्रता की शर्त पूरी नही करेगा तो प्रथम इस मागधी सुन्दरी को और फिर तुझे देवता के सामने बलि दूगा। अभी तू जाकर आहार विश्राम कर।

उसने बाण के समान पैनी दृष्टि से सोम को देखा और उंगली उठाई, फिर असुर तरुणों से कहा—'इन मनुष्यों के शस्त्र हरण करके बन्धन खोल दो।"

असुर राज यह कह कर आसन से उठ कर भीतर चला गया। बन्दीगण भी अपने आश्रय स्थल पर लौटे।

: २८ :

कुण्डनी का आभियान

इस असुरपुरी मे जितनी स्वतन्त्रता सोम को प्राप्त थी, उस सबका सम्पूर्ण उपभाग करके सूर्यास्त के समय अत्यन्त थकित और निराश भाव से सोमप्रभ ने उस गुफाद्वार मे जब पैर रखा, जहा उसके ठहरने की व्यवस्था थी, तो वहा का दृश्य देख वह एक बारगी ही चीत्कार कर उठा। कुण्डनी गुफा के मध्य म एक शिलाखण्ड पर बिछे बाघाम्बर पर बैठी थी। उसके हाथ मे उसका पूर्व परिचित बही विषधर नाग था। नाग उसके कण्ठ मे लिपट रहा था और उसका हाथ भर चौडा फन कुण्डनी के हाथ मे था। कुण्डनी की आखो से आज जैसे मद की ज्वाला निकल रही थी। वे जैसे अगम सागर पर तरिणी की भाति तैर रही थी। सर्प की हरी मरकत मणि जैसी आखे उन आंखो से युद्ध कर रही थी। इसी अभूतपूर्व और अतर्कित नेत्र युद्ध को देख कर ही सोम चात्कार कर उठा था। परन्तु उसके चीत्कार करते ही कुण्डनी ने चुटकी ढीली कर सर्प को अपने मृदुल आठो पर दंश दिया। सामने झपट कर सर्प को उसके हाथ से छीन कर दूर फेक दिया और हाफते-हाफते कहा--"यह तुम ने क्या किया कुण्डनी ?"

"तुम बडे मूर्ख हो सोम। अगर नाग मर गया तो ? यह तक्षक जात का महा विषधर नाग है। पिता इसे कम्बोज के वन से लाये थे। पृथ्वा पर ऐसा विषधर और नही है। तुमने उसे आघात पहुंचा दिया हो तो ?"

वह लहराती हुई उठी, नाग को बडे प्यार से उठा कर हृदय से लगाया। नाग इस समय सिकुड कर निर्जीव हो रहा था। उसका तेज दर्प जाता रहा था।

सोम ने कहा—"कुण्डनी, तुम्हारा अभि प्राय मैं समझ नहीं सका। आचार्य ने मुझे तुम्हारा रक्षक बनाया है।"

"तो रक्षक ही रहो सोम। अभिप्राय जानने की चेष्टा न करो।" कुण्डनी ने भ्रूकुंचित करके कहा।

"तो तुम यह क्या कर रही थी, कहो?"

"जो उचित था वही।"

"क्या आत्मघात?"

"दश से क्या मेरा घात होता है। उस दिन देखा नहीं था।"

"तुम कौन हो कुण्डनी?" सोम ने घोर संदेह में भर कर कहा।

"पिता ने कहा तो था तुम्हारी भगिनी। अब और अधिक न पूछो।"

"अवश्य पूछूंगा कुण्डनी, हम घोर संकट में हैं। मैंने तमाम दिन इधर-उधर घूमने और भाग निकलने की युक्ति सोचने में लगाया है। पर सब व्यर्थ प्रतीत होता है। कहने को शम्बर असुर ने हमें स्वतन्त्रता दी है, पर हम पूरे बन्दी हैं कुण्डनी।"

"तो बन्दी तो हैं ही। तुम दिन भर भटकते क्यों फिरे? तुम्हें विश्राम करना चाहिए था। गुफा में काफी ठण्ड थी, खूब नींद ले सकते थे।"

"इस विपत्ति में नींद किसे आ सकती थी कुण्डनी?"

"पर विपत्ति की सम्भावना तो रात्रि ही को थी न, भोज के बाद!"

"और तब तक हमें पैर फैला कर सोना चाहिए था।"

"निश्चय। जिससे अब तुम स्वस्थ, ताजा और फुर्तीले हो जाते और भय का बुद्धिपूर्वक सामना करते।"

"तुम अद्भुत हो कुण्डनी, कदाचित् तुम्हें असुर का भय नहीं है।"

"असुर से भय करने ही को क्या कुण्डनी बनी हूं?"

"तुम क्या करना चाहती हो कुण्डनी, मुझे कहो।"

"इसमे कहना क्या है, शम्बर या तो हमारे मंत्री सदेश को स्वीकार करे, नहीं तो आज सब असुरो सहित मरे।"

"उसे कौन मारेगा ?"

"क्यो ? कुण्डनी।"

"सोम अवज्ञा की हसी हसा। पर तुरन्त ही गम्भीर होकर बोला—मै तुम्हारे रहस्य जानना नही चाहता। परन्तु तुम्हारी योजना क्या है कुछ मुझे भी तो बताओ ताकि सहायता कर सकू।"

'सोम तुम युवक हो और योद्धा हो। तथा च गुरुतर राजकार्य मे नियुक्त हो। मै तुम्हारी अपेक्षा अल्पवयस्का एवं स्त्री हू। फिर भी सोम, इस समय तुम मुझ पर निर्भर रहो। शान्त, प्रत्युत्पन्नमति और तत्पर। तुमने जिसे अपघात समझा है वह शत्रुनाश की तैयारी है सोम।"

"परन्तु किस प्रकार ?"

"यह समय पर देखना, अभी मुझे बहुत काम है। तुम थोडा सो लो, फिर हमे विकट साहस प्रदर्शन करना होगा। मै जानती हू असुर अर्धरात्रि से प्रथम भोजन नहीं करते।"

"तो तुम मुझे बिल्कुल निष्क्रिय रहने को कहती हो ?"

"कहा तो मैने भाई, शान्त रहो, तत्पर रहो, और प्रत्युत्पन्नमति रहो। फिर निष्क्रिय कैसे ?"

"पर मेरे शस्त्र ?"

"वे छिन गये है, तो क्या हुआ ? बुद्धि तो है।"

"कदाचित है।" सोम खिन्न होकर एक भैसे की खाल पर चुपचाप पड रहा। थोडी ही देर मे उसे नीद आगई। बहुत देर बाद जब कुण्डनी ने उसे जगाया तो उसने देखा, कई असुर योद्धा गुफा के द्वार पर खडे है। अनेको के हाथ मे मशाल है और बहुतो के हाथ में विविध वाद्य है। एक असुर जो प्रौढ था, वक्ष पर स्वर्ण की एक ढाल बाधे, लम्बा भाला लिये सब से आगे था।

मशाल के प्रकाश में आज सोम कुण्डनी का वह त्रिभुवन मोहन रूप देखकर अवाक् रह गया। उसकी सघन श्याम केश राशि मनोहर ढंग से चांदी से उज्ज्वल मस्तक पर सुशोभित थी। उसने मांग में मोती गूंथे थे। लम्बी चोटी नागिन के समान चरण चुम्बन कर रही थी। बिल्व स्तनों को रक्त कौशेय से बांध कर उस पर उसने नील मणि की कचुकी पहनी थी। कमर मे लाल दुकूल और उस पर बड़े २ पन्नो की कसी पेटी उसकी क्षीण कटि ही को नही, पीन नितम्ब और सुन्दर उरोजो के सौन्दर्य की अधिक वृद्धि कर रही थी। उसने पैरो मे नुपूर पहन थे जिनकी झंकार उसके प्रत्येक पाद विक्षेप करने से हृदय को हिलाती थी।

सोम ने कहा—"कुण्डनी, क्या आज असुरो को मोहने साक्षात् मोहनी अवतरित हुई है?"

'हुई तो है, इससे तुम्हे क्या, असुरो का भाग्य। तो अब झट पट तैयार हो जाओ।" कुण्डनी ने मुस्करा कर कहा।

'सोम ने झटपट वस्त्र बदले। कुण्डनी ने सामने पड़े एक बाघ चर्म को दिखाकर कहा, इसे वक्ष मे लपेट लो, काफी रक्षा करेगा।"

"किन्तु कुण्डनी, हम शस्त्रहीन शत्रु के निकट जा रहे हैं।"

"मैंने जिन तीन शस्त्रो की बात कही थी उन्हे यत्न से रखना सोम, फिर कोई भय नही है।"

"अर्थात् शान्त, तत्पर और प्रत्युत्पन्नमति रहना।"

"बस यही।"

"तो कुण्डनी तुम आज की महिम की सेना नायिका हो।"

"ऐसा ही हो सोम, अब चले।"

कुण्डनी बाहर आई। उसने अधिकार पूर्ण स्वर में साफ मागधी भाषा में असुर सरदार को आज्ञादी—"सैनिको से कह, बाजा और मशाल लेकर आगे २ चले।"

कुण्डनी के सकेत से कुण्डनी की आज्ञा सोम ने असुर सर्दार को

सुनाओ।

उस रूप के तेज से तप्त होकर असुर सरदार ने विनयावनत हो कुण्डनी की आज्ञा का पालन किया। कुन्डनी ने फिर सोम के द्वारा उनसे कहलाया--'तुम सब हमारे पीछे २ आओ।'

और वह छम से घूंघरू बजाती विद्युत प्रभा की साक्षात् मूर्ति सी उस मार्ग को प्रकाशित करती असुर पुरी के राज मार्ग पर आगे बढ़ी। पीछे सैकड़ों असुर तरुण तरुणियां उत्सुक होकर साथ हो लिये। सोम ने धीरे से कहा--'मायाविनी कुण्डनी, इस समय तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे तुम्ही इस असुर निकेतन की स्वामिनी हो।"

"और सम्पूर्ण असुरों के प्राणों की भी।" उसने कुटिल मुस्कान से हास्य किया।

: २६ :

असुर भोज

दुर्ग के बीचो बीच जो मैदान था उसी मे भोज की बडी भारी तैय्यारिया हुई थी। बीचो बीच एक बडे भारी अग्निकुण्ड मे महा चिता के समान आग जल रही थी। और उस पर एक समूचा भैसा भूना जा रहा था। बहुत से असुर बालक, बालिका, तरुणिया, वृद्धाऐं और वृद्ध असुर शोर करते आग के इधर उधर घूम रहे थे। असुर सैनिक हाथ में भाले लिये सफ बाध कर खडे थे। बहुत सा तरुण-तरुणिया विविध वाद्य लिये नृत्य गान की तय्यारी कर के दल बद्ध आ रहे थे। ज्योही कुण्डनी ने सोमश्रम का हाथ पकड कर रगमच मे प्रवेश किया, चारो ओर कोलाहल मच गया। मच पर बीचो बीच एक ऊचे शिलाखण्ड पर व्याघ्र चर्म बिछा था। यह सम्भवत शम्बर के लिये था। परन्तु कुण्डनी असम साहस करके सोम का हाथ पकड उसी शिलाखण्ड पर जा बैठी। असुर सुन्दरिया और मन्त्रागण घबरा गये। शम्बर क्या यह सहन कर सकेगा ? असुर अपने राजा का बल और क्रोध जानते थे, पर कुण्डनी उसकी दुर्बलता जान गई थी।

उसने सोम से कहा—"असुरो से कहो सोम, सुरा भाण्ड यहा ले आवें।"

सोम के कहने पर कई असुर तरुण सुरा भाण्ड वही ले आए। इसी बीच जोर से बाजे बजने लगे। असुरो ने भयभीत होकर देखा, शम्बर खूब ठाठ का शृगार किये चला आ रहा है। उसने स्वर्ण का मुकुट धारण किया था। उसका सम्पूर्ण वक्ष नाभि प्रदेश तक स्वर्ण से ढका था। कमर मे नया चर्म पहना था। और भुजदण्डो पर भी स्वर्ण वलय पहिने थे। कण्ठ मे बडे २ मोती और मूगो की लडे पडी थीं।

मुकुट के दोनो ओर स्वर्ण मण्डित दो पशुओं के तीक्ष्ण सींग लगे हुए थ ।

सोम ने कहा—"कुण्डनी, उस असुर राजा का सिंहासन छोड दे।"

कुण्डनी ने उसकी बात पर ध्यान न दे, सोम से एक वाक्य आसुरी भाषा मे झटपट सीखकर, ज्योंहा शम्बर सीढी चढ रंगभूमि मे प्रविष्ट हुआ, उसने शिलाखण्ड पर खडी हो चिल्ला कर कहा—'महा सामर्थ्यवान् शम्बर के स्वास्थ और दीर्घायु के नाम पर" और उसने प्याले भर भर कर असुरो को देने प्रारम्भ किये। तरुण और वृद्ध असुर उस अनिन्द्य सुन्दरी मानुषी बाला के हाथ से मद्य पी पीकर उच्च स्वर से चिल्लाने लगे। 'महा सामर्थ्यवान् शम्बर के स्वास्थ और दीर्घ जीवन के नाम पर।'

क्षण भर खडा रह कर असुर राज ने. यह दृश्य देखा और फिर वह मुस्करा कर अपना स्वर्ण दण्ड ऊचा उठाये आगे बढ़ा। उसने दोनों हाथ फैलाकर कहा—"मुझे भी दे मानुषी, एक भाण्डमद्य। मुझे भी अपने हाथो से दे।"

कुण्डनी खट से शिलाखण्ड से कूद पडी। उसके हाथ मे मद्यभरा पात्र था। उसने नृत्य करके नेत्रो की लीला विस्तार करते और भांति भांति की भाव भगी दिखाते हुए शम्बर के चारो ओर घूम २ कर नृत्य करना प्रारम्भ किया। उसका वह मदभरा यौवन, वह उज्ज्वल मोहक रूप, उसकी वह गजब की भावभगी, इन सब को देख शम्बर काम विमोहित हो गया। उसने कहा—"दे मानुषी, मुझे भी एक भाण्ड दे।"

पर कुण्डनी ने और भी विलास प्रकट किया। वह मद्य भाण्ड को शम्बर के ओठो तक ले गई और फिर बिजली की तरह तडप कर वह भाण्ड बूढे असुर सचिव के मुह से लगा दिया। बूढा असुर चपचप करके सब मद्य पी गया और ही ही करके हंसने लगा। कुण्डनी का सकेत पाकर सोमने दूसरा भाण्ड कुण्डनी के हाथ मे दिया। शम्बर उसके लिए विह्वल हो जीभ चटकारता हुआ आगे बढ़ा। पर कुण्डनी

ने फिर वही कौशल किया और भाण्ड एक तरुण असुर के ओठो से लगा दिया। सब असुर कुण्डनी को घेर कर नाचने लगे। शम्बर अत्यन्त विमोहित हो उसके चारो ओर नाचने और बारम्बार मद्य मागने लगा। कुण्डनी ने इस बार एक पूरा घडा मद्य का हाथ मे उठा लिया। उसे कभी सिर और कभी कन्धे तथा कभी वक्ष पर लगा कर उसने ऐसा अद्भुत नृत्य कौशल दिखाया कि सम्पूर्ण असुर मण्डल उन्मत्त हो गया। फिर उसने सोम के कान मे कहा—"इन मूर्खों से चिल्लाकर कहो—खूब मद्य पियो मित्रो, स्वय ढालकर, सामर्थ्यवान् शम्बर के नाम पर।"

सोम के यह कहते ही 'सामर्थ्यवान शम्बर के नाम पर' यही शब्द उच्चारण करके सारे असुरदल ने सुरा भाण्डो मे मुह लगा दिया। कोई चषक मे ढालकर और कोई भाण्ड ही मे मुंह लगाकर गटागट मद्य पीने लगे। कुण्डनी ने हंसते २ सुराभाण्ड शम्बर के मुंह से लगा दिया। उसे दोनो हाथो से पकड कर शम्बर भी गटागट पूरा घडा मद्य कण्ठ से उतार गया।

कुण्डनी ने सतोष की दृष्टि से सोम का ओर देखकर कहा—"अब ठीक हुआ। पिलाओ इन मूर्खों को, आज ये सब मरेंगे सोम।"

"तुम अद्भुत हो कुण्डनी" सोम ने कहा। और वह असुरो को मद्य पीने को उत्साहित करने लगा।

मद्य असुरों के मस्तिष्क मे जाकर अपना प्रभाव दिखाने लगा। वह खूब हंसने और आपस मे हसी दिल्लगी करने लगे। स्त्रियो और बालको ने भी खूब मद्य पा। बहुत से तो वहीं लोट गये, पर सोमप्रभ उन्हे और भी मद्य पीने को उत्साहित कर रहे थे। बुद्धिहीन मूर्ख अन्धाधुन्ध पी रहे थ। शम्बर का हाल बहुत बुरा था। वह सीधा खडा नहीं रह सकता था, पर कुण्डनी उसे नचा रही थी। वह हसता था, नाचता था और आसुरी भाषा में न जाने क्या २ अण्ड बण्ड बक रहा था। सिर्फ बीच में मानुषी मानुषी शब्द ही वह समझ पाता थी।

अवसर पाकर उसने सोम से कहा--'क्या कह रहा है यह असुर।"

"प्रणय निवेदन कर रहा है कुण्डनी, तुझे अपनी असुर राजमहिषी बनाया चाहता है।"

कुण्डनी ने हसकर कहा--"कुछ २ समझ रही हू सोम। यह असुर राजा मेरे सुपुर्द रहा। उन सब असुरो को तुम आकण्ठ पिलादो। एक भी सावधान रहने न पावे। भाण्डो मे एक भी बूंद मद्य न रहे।"

"उन असुरो से निश्चिन्त रह कुण्डनी वे तेरे हास्य ही से अधमरे हो गये है।"

"मरे वे सब।" कुण्डनी ने हंसकर कहा।

शम्बर ने कुण्डनी की कमर मे हाथ डालकर कहा—"मानुषी, मेरे और निकट आ।"

कुण्डनी ने कहा—"अभागे असुर, तू मृत्यु को आलिगन करने जा रहा है।"

शम्बर ने सोम से कहा—'वह क्या कहती है रे मानुष।"

सोम ने कहा--"वह कहती है, आज आनन्दोत्सव मे सब योद्धाओं को महा शक्तिशाली शम्बर के नाम पर छक कर मद्य पीने की आज्ञा होनी चाहिये।"

"पिये वे सब।" शम्बर ने हसते २ कहा और कुण्डनी ने और एक घडा शम्बर के मुह मे लगा दिया। उसे पीने पर शम्बर के पाव डगमगाने लगे।

कुछ असुरो ने आकर कहा—'भोज, भोज, अब भोज होगा।"

शम्बर ने यथा संभव सयत होकर हिचकिया लेते हुए कहा—"मेरी इस मानुषी–हिक्–सुन्दरी के सम्मान मे सब कोई खूब खाओ, पियो, हिक्–अनुमति देता हू, हिक्–खूब खाओ पियो। मुझे सहारा दे,—मानषी हिक्–और मागध मानव तू भी स्वच्छन्द खा पी–हिक्।" वह कुण्डनी पर झुक गया।

सोम से असुर का अभिप्राय समझ कर कुण्डनी ने असुर को उसी

शिला खण्ड पर बैठाया। उसकी एक बगल मे आप बैठे और दूसरी बगल मे सोम को बैठने का सकेत किया। समूचा भैसा जो आग पर भूना जा रहा था खण्ड २ किया गया। सबसे प्रथम उसका सिर एक बडे थाल मे लेकर पचास साठ असुर तरुणियो ने शम्बर के चारो ओर घूम घूम कर नृत्य करना और चिल्ला चिल्ला कर गाना आरम्भ कर दिया। भैसे के सिर का वह थाल एक दूसरी के हाथो मे हस्तान्तरित होता—जिस के हाथ मे वह थाल जाता, वही तरुणी गीत की नई कडी गाती फिर उस सब दुहरा कर चारो ओर घूम घूम कर नृत्य करती। अन्तत एक सुसज्जिता तरुण असुर सुन्दरी ने घुटनो के बल बैठकर वह थाल शम्बर के अर्पण कर दिया।

शम्बर ने छुरा उठाया, भैसे की जीभ काटली और उसे स्वर्ण के एक पात्र मे रख खडे होकर उसे कुण्डनी को पेश करके कुछ कहा। कुण्डनी ने सोम से पूछा—'क्या कह रहा है यह?"

'तेरा सर्वाधिक सम्मान कर रहा है। जीभ का निवेदन सम्मान का चिन्ह है।"

"तो उसे मेरी ओर से धन्यवाद दे दो सोम।"

सोम ने आसुरी भाषा में पुकार कर कहा,—महान् शम्बर को मागध सुन्दरी अपना हार्दिक धन्यवाद निवेदन करती है। पियो मित्रो, इस मागध सुन्दरी के नाम पर एक एक पात्र।"

"मागध सुन्दरी, मागध सुन्दरी, कह कर शम्बर एक बडा मद्यपात्र लेकर नाचने लगा। अन्य असुर भी पात्र भर कर नाचने लगे।

असुरो की हालत अब बहुत खराब हो रही थी। उनके नाक तक शराब ठुस गई थी और उनमे से किसी के भी पैर सीधे न पडते थे। अब उन्होने भैसे का मास हबर हबर करके खाना प्रारम्भ किया। कुण्डनी ने कहा, 'भाण्डो मे अभी सुरा बहुत है सोम, यह सब इन नीच असुरो की उदरदरी मे उडेल दो।" सोम ने फिर ढाल कर

असुरो को देना प्रारम्भ किया और कुण्डनी शम्बर को पिलाने लगी।

शम्बर ने हकला कर कहा—'मानुषी, अब-तू-नाच।"

उसका अभि प्राय समझकर कुण्डनी ने सकेत से सोम से कहा कि अब समय ह अपना मतलब साधो।

सोम ने कहा—"महान् शम्बर ने मागध बिम्बसार की मैत्री ्व कार करली है। क्या इसके निये पब कोई एक २ पात्र न पीवें?"

"क्यो नही। कि तु, सेनिय बिम्बसार क्या ऐसी सौ तरुणी देगा?"

"अवश्य, परन्तु असुर उन्हे भोग छू नही सकगे। वे सब विद्युतप्रभ हैं।"

इसी समय कुण्डनी ने मोहक भाव भगी से नृत्य आरम्भ कर दिया। वह प्रत्येक असुर के निकट जाकर लीला विलास करने लगी। मदिरा से सन्तप्त असुरो के मस्तिष्क उसका रूप यौवन, लीला विलास, और भाव भगी देख कर बेकाबू हो गए। सब कोई कुण्डनी का पकडने को लपकने लगे। किसी मे सयत भाव नही रह गया।

३०

मृत्यु चुम्बन

यह सब देख कुण्डनी के सकेत को पाकर सोमप्रभ ने पुकार कहा-"सब कोई सुने। यह मागध सुन्दरी है जिसे असुर नही भोग सकते है। जो कोई इसका चुम्बन आलिगन करेगा वही तत्काल मृत्यु को प्राप्त होगा।"

असुरो मे अब सोचने विचारने की सामर्थ्य नही रही थी। 'चुम्बन करो, 'चुम्बन करो, सब चिल्लाने लगे।

शम्बर ने हाथ का मद्यपात्र फेक कर हकलाते हुए कहा—"सब कोई-इस मानुषी-का चुम्बन-करो।"

सोम ने क्रुद्ध होकर कुण्डनी की ओर देखा। फिर उसका अभि प्राय जान सोम ने कहा—"जो कोई चुम्बन करेगा, वही मृत्यु को प्राप्त होगा। महान् शम्बर इसको न भूल जाय।"

"शम्बर सब जानता है, इसने बहुत देव, दैत्य, गन्धर्व और मानुषियो का हरण किया है, कही भी तो ऐसा नही हुआ। दे, सौ ऐसी तरुणिया, दे रे मानुष, यदि मेरी मैत्री चाहता है।" शम्बर ने मद से लाल लाल हुई आखो से सोम को घूर कर कहा।"

कुण्डनी नृत्य कर रही थी। जब बहुत से असुर तरुण हसते हुए उसका चम्बन करने को आगे बढ़े, तो कुण्डनी ने एक छोटी सी थैली वस्त्र से निकाल कर उसमे से महानाग को निकाला और कण्ठ मे पहन लिया। यह देख सभी तरुण असुर भयभीत होकर पीछे हट गये। कुण्डनी ने उस नाग का फण पकड कर उसके नेत्रो से नेत्र मिला नृत्य जारी रखा। कभी वह शम्बर के पास जाकर ऐसा भाव दिखाती, मानो चुम्बन दान की प्रार्थना कर रही हो। कभी सोम के

निकट जा अपना अभि प्राय समझाती। कभी असुरो के निकट जा लीला विलास से उन्हे उन्मत्त करती।

शम्बर ने कहा—"वह उस सर्प से क्या कर रही है मनुष्य ?"

सोम ने कुण्डनी से सकेत पाकर कहा--"मैंने कहा था कि यह मागधी नाग पत्नी है, अब सर्व प्रथम नाग चुम्बन करेगा, पीछे जिसे मृत्यु की कामना हो, वह चुम्बन करे।"

"तो, नाग चुम्बन होने दे।"

"तो महान् शम्बर इस मानुषी के नागपति के नाम पर एक एक पात्र मद्य पीने की आज्ञा द।"

शम्बर ने उच्च स्वर से सबको आज्ञा दी। एक बार फिर असुरो ने मद्य के बडे बडे पात्र मुह मे लगा लिये।

इसी समय कुण्डनी ने नाग से दश लिया। उस दश को देख कर सभी आश्चर्य चकित हो गये। कुडनी ने नाग को थैली मे रख अपने वस्त्रो मे छिपा लिया। उसके मस्तक पर स्वेद विन्दु छलक आये और वह विष के वेग मे लहराने लगी। उस समय उसके नृत्य ने अलौकिक छटा प्रदर्शित की। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह हवा मे तैरती हो। उसके नेत्र और अधरोष्ठ मानो मद निमन्त्रण सा देने लगे।

शम्बर ने असयत होकर चिल्ला कर कहा--"चुम्बन करो इस मागध मानुषी का।"

सोम ने चिल्ला कर कहा, "जो कोई चुम्बन करेगा उसी की मृत्यु होगी। महान् शम्बर इसके जिम्मेदार है।"

"चुम्बन करो, चुम्बन करो, शम्बर ने पुकार कर कहा। उसमें अब सोचने विचारने की कुछ भी शक्ति न थी। एक तरुण ने हठात् कुण्डनी को अपने आलिङ्गन मे कस कर अधरो पर चुम्बन लिया। वह तुरन्त बिजली से मारे हुए प्राणी की भाति निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। सोम यह चमत्कार देख भय से पीला पड़ गया। कुण्डनी ने उधर भूपात नही किया। उसने दूसरे तरुण की ओर मुस्कुराकर

देखा। उसने भी आगे बढ कर कुण्डनी को कस कर बाहुपाश मे बाध कर चुम्बन लिया और उसकी भी यही दशा हुई। अब तो उन्मत्त की भाँति असुरगण कुण्डनी का चुम्बन ले लेकर और निष्प्राण हो २ कर भूमि पर गिरने लगे। एक अलौकिक अतर्कित मोह के वशीभूत होकर असुर एक के बाद एक होती हुई मृत्यु की परवाह न कर उस असाधारण उन्मादिनी के आलिङ्गन पाश मे आ आकर और उसका अधर चूम २ कर मरकर ढेर होने लगे। शम्बर बारम्बार मद्य पी रहा था। असुरो के इस प्रकार आश्चर्य जनक रीति से मरने पर उसका विश्वास नही होता था। प्रत्येक असुर के चुम्बन के बाद निष्प्राण होकर गिरने पर कुण्डनी ऐसे मोहक हास्य से शम्बर की ओर देखती, कि वह समझ ही नही पाया कि वास्तव मे उसके तरुण मृत्यु को प्राप्त हो रहे है या विमोहित मूर्छित हो रहे है। सोमप्रभ बराबर मद्य के पात्र पर पात्र शम्बर कण्ठ से उतार रहा था। अब कुण्डनी ने एक २ तरुण के निकट जा कर चुम्बन निवेदन करना प्रारम्भ किया। कुछ असुर भयभीत हो गए थे, पर उस मोहिनी मूर्ति के चुम्बन निवेदन को अस्वीकार करने की सामर्थ्य मूर्ख, मद्य विमोहित असुरो मे न थी। वे चुम्बन ले ले कर प्राण गंवाते गये। देखते २ मृतक असुर तरुणो के ढेर लग गए। कुण्डनी अब वृद्ध मन्त्रियो की ओर झुकी, परन्तु वे भयभीत हो कर झिझक कर पीछे हट गए। कुण्डनी ने उन्हे हठात् अपने आलिगनीपाश मे बाध कर उनके होठो पर चुम्बन अंकित कर दिया और वे निष्प्राण हो कर जहा के तहा ढेर हो गय। सोमने घबरा कर उसके निकट आ कर कहा—"सो कुण्डनी, तुम विषकन्या हो ?"

कुण्डनी ने नृत्य करते हुए कहा—'सावधान रहो, सकट काल निकट है, देखो उसके तेवर।"

शम्बर अब सावधान हुआ और क्रुद्ध नेत्रों से कुण्डनी को ताकने लगा। कुण्डनी ने यह देख मुस्कुराकर बकिम कटाक्ष पात कर एक परिपूर्ण मद्यपात्र उसके होठो से लगा दिया। परन्तु उसने कुण्डनी को

एक ओर धकेल कर मद्यपात्र फेंक दिया। फिर उसने गुर्राकर कहा—"क्या तूने मेरे तरुणो का हनन किया?"

सोम ने शम्बर की बात उसे समझा दी। कुण्डनी ने संकेत से कहाकि वह शम्बर के पार्श्व मे ही रहे और उसके सिंहासन के बगल मे जो वर्च्छे और शूल लगे है, आवश्यकता पडने पर उनसे काम ले। पर इसमे वह जल्दी न करे, सयम और धैर्य से अन्तिम क्षण तक कुण्डनी का कौशल देखे।

सोम ने शम्बर को क्रुद्ध होते देख कहा,—"महाशक्तिशाली शम्बर को कह दिया गया था कि यह तरुणी नाग पत्नी है और मागधी मानुषी असुरो के भोग की नही। असुर अपने ही दोष से मरे है और महान् शम्बर ने उन्हे चुम्बन की आज्ञा दी थी।"

"परन्तु यह मानषी अति भीषण है।" उसने सिंहासन से खडे होने की चेष्टा की परन्तु लडखडा कर गिर गया। सोम ने कहा,—"मागध मानुष इससे भी अधिक भीषण है, यदि उन्हे शत्रु बना दिया जाय। क्या महान् शम्बर को मागध बिम्बसार की मित्रता स्वीकार है?"

शम्बर ने बडबडाते हुए कहा—"मागध मानुषी अति भीषण होती है।" उसने कुण्डनी की ओर प्यासी चितवन से देखा। कुण्डनी ने एक बडा पात्र मद्य का लाकर उसके ओठो से लगा दिया। शम्बर उसे पीकर ओठ चाटता हुआ फिर सिंहासन से उठने लगा। इस बीच मे बचे हुए असुर तरुण कुण्डनी से भयभीत हो दूर भागने लगे थे। बहुत से विवश बदमस्त पडे थे। मृत असुरो के ढेर जहा तहा पडे थे। उनके कज्जल समान निश्चल शरीर उस अग्नि के प्रकाश मे भयानक दीख रहे थे। शम्बर के मन मे भय समा गया। पर वह कुण्डनी की ओर वैसी ही प्यासी चितवन से देखने लगा। हठात् कुण्डनी ने फिर आकर एक मद्यभाण्ड उसके ओठो से लगा दिया। उसे भी गटागट पीकर शम्बर ने खींच कर कुण्डनी को हृदय से लगा, उन्मत्त भाव से हकला कर कहा—'दे, मृत्यु चुम्बन—मानुषा, तेरे—स्वर्ण अधरो—को

एक बार चूमकर–मरने में भी सुख है।"

पर कुण्डनी न यत्न से अपने को शम्बर के बाहुपाश मे निकाल कर फुर्ती से एक लीला विलास किया और फिर दूसरा मद्यपात्र उसके ओठो से लगाया। फिर उसने सोम से सकत किया। मद्य पीकर शम्बर शिला खण्ड पर बदहवास पड गया। वह कुण्डनी को बरबस खीचकर अस्तव्यस्त आसुरी भाषा में कहने लगा, द द दे मानुषी, एक चुम्बन दे। और–मागध–बिम्बसार के लिये–मेरी मैत्री–ले। दे चुम्बन दे।"

कुण्डनी ने गूढ मार्मिक दृष्टि से सोम की ओर देखा। वह सोच रही थी कि असुर को मारा जाय या नही। परन्तु सोम ने लपक कर कुण्डनी को असुर शम्बर के बाहुपाश से खींचकर दूर कर दिया और हाफते २ कहा– "नही २ असुर को मारा नही जायगा। बहुत हुआ।" फिर उसने शम्बर के कान के पास मुह ले जाकर कहा, –"महान् शम्बर चिरञ्जीव रहे। वह मागध बिम्बसार का मित्र है। उसे मृत्यु चुम्बन नही लेना चाहिये।"

शम्बर ने कछ ओठ हिलाए और आखे खोलने की चेष्टा की, परन्तु वह तुरन्त ही काष्ट के कुन्द की भाति निश्चेष्ट होकर गिर गया। उस समय बहुत कम असुर वहा थे। जो थ वे भयभीत होकर भाग रहे थे। कण्डनी को एक ओर ले जाकर सोम ने कहा—"उसे छोड़ दो कुण्डनी।"

कुण्डनी अपनी विषज्वाला मे लहरा रही थी। उसने कहा—"मूर्खता मत करो सोम, मरे वह असर।"

"ऐसा नही हो सकता।" उसने इधर उधर देखा। इसी समय अन्धकार से वह तरुण असुर नेत्रो मे भय भरे बाहर आया जिससे सर्व प्रथम परिचय हुआ था और जिसके प्राण सोम ने बचाये थे। उसने पृथ्वी पर प्राणिपात करके कहा—"भागो, वह शक्ति उठालो। मैं चम्पा का मार्ग जानता हू।"

सोम ने शक्ति हाथ में ले ली। कुण्डनी ने वेगी से विषाक्त कटार

निकाल कर हाथ में लेली। उसने कहा—"इसकी एक खरोंच ही काफी है। इसके मृत पुरुष को घाव से छूने ही से औरों की मृत्यु हो जायगी। यह हलाहल मे बुझी है।"

तीनो लपक कर एक ओर अन्धकार में खो गये। जो असुर दूसरी ओर शोर कर रहे थ, वे मालूम होता है उन्मत्त और हतज्ञान हो रहे थे। सोम ने देखा, नगर द्वार पर चार तरुण असुर पहरा दे रहे हैं।

कुण्डनी ने हंसकर उनसे कहा—"अरे मूर्खो, तुमने मेरा चुम्बन नही लिया!" एक को उसने आलिंगनपाश मे बाध चुम्बन दिया। अधर छूते ही वह मृत होकर गिरा। दूसरे ने हुकृति कर कुण्डनी पर आक्रमण किया। उसकी पीठ में सोम ने शक्ति पार करदी। शेष दो मे से एक ने कुण्डनी की कटार छूकर, दूसरे ने सोम की शक्ति खाकर प्राण त्यागे। सोम ने अपने अश्व पर सवार हो तारो की छाह मे उसी समय असुर पुरी को त्यागा। असुर तरुण भी उनके साथ ही भाग गया।

: ३१ :

चम्पा में

मगध सेनापति भण्डभद्रिक ने पट मण्डप मे प्रवेश करके कहा– "मित्रो, अब वैशाखी के केवल पाच ही दिन बाकी रह गये है। इन्ही पाच दिनो म मागधी सेना का और चम्पा के प्राचीन राज्य के भाग्य का निपटारा होना है। यदि हम वैशाखी के दिन चम्पा के दुर्ग मे प्रवेश कर पाते है तो मगध साम्राज्य का विस्तार सदूर पूर्व के सम्पूर्ण द्वीप समूह पर हो जायगा परन्तु यदि हम ऐसा नही कर पाते है तो निश्चय मागधी सेना का यही क्षय होगा और हम मे से एक भी चम्पा महारण्य को पार कर जीवित मगध नही लौट सकेगा।"

मण्डप मे बहुत सेना नायक, उपनायक, सेनापति भद्रिक की प्रतीक्षा कर रहे थे। सेनापति के उपरोक्त वाक्य सुनकर एक ने कहा–"परन्तु भन्ते सेनापति, हम बहुत ही विपन्नावस्था मे है। आर्य उपवार ने हमे सहायता नही भेजी। मागध के इस पराजय का उत्तरदायित्व हमपर नहीं, आर्य वर्षकार पर है।"

"नही भणे, ऐसा नही। जय पराजय का दायित्व तो हमी पर है। हमे अपने बल बूते पर जो करना योग्य है करना चाहिये।"

"हमने तीन मास से दुर्ग को घेर रखा है। यह कोई साधारण बात नहीं भन्ते सेनापति।"

"चाहे भी जो हो, परन्तु यदि वैशाखी के दिन हम दुर्ग मे प्रविष्ट न हो सके तो साम्राज्य की ऐसी क्षति होगी, जिसका प्रतिकार शताब्दियों तक न हो सकेगा। यो कहना चाहिये कि सुदूर पूर्व की सारी आशाएँ सदा के लिये लोप हो जायेगी। अब, क्या रसद की कुछ आशा है?"

'खेद है कि नहीं।"

'तब तो हम जो कुछ कर सकते थे कर चुके।"

"फिर भी भन्ते सेनापति, हमें कुछ समय निर्वाह लेना चाहिये। सम्भव है, राजगृह से सहायता मिल जाय।"

"परन्तु हमारे सभी सैनिक घायल हैं। एक भी अश्व युद्ध के काम का नहीं। हम भूख प्यास और घावों से जर्जरित हैं। यदि हम युद्ध जारी रखते हैं तो इसका अर्थ आत्मघात करना होगा। क्या इससे उत्तम यह नहीं होगा कि हम चम्पा नरेश महाराज दधिवाहन की सन्धि की स्वीकार करलें। वे यह है, मैं समझता हूं, निश्चित पराजय की अपेक्षा यह अच्छा है।"

किसी ने उच्च स्वर से कहा "क्या यह आर्य भद्रिक की वाणी मैं सुन रहा हूं, जिनके शौर्य की यशोगाथा पर्शुपुरी के शासानुशास गाते नहीं अघाते हैं।" भद्रिक ने सिर ऊंचा करके कहा, "कौन है यह आयुष्मान्?"

एक कोने से सोमप्रभ उठकर सेनापति के सम्मुख आया। वह साधारण किसान के वस्त्र पहिने था। सेनापति ने उसे सिर से पैर तक घूर कर कहा—"कौन हो तुम आयुष्मान्? ऐसे कठिन समय में ऐसे तेजस्वी वचन कहने वाले?"

"भन्ते सेनापति, मेरा नाम सोमप्रभ है। मैं राजगृह से सहायता लेकर आया हूं। यह आर्य वर्षकार का पत्र है।"

युवक के वचन सुनकर सभी उत्सुकता से उसकी ओर देखने लगे। सेनापति ने पत्र लेकर मुहर तोड़ी और शीघ्रता से उसे पढ़ा। फिर थोड़ा चिन्तित होकर कहा—'परन्तु सहायता कहां है सोम्य, आर्य वर्षकार का आदेश है कि वैशाखी के दिन चम्पा में प्रवेश करना होगा।"

"वह प्रच्छिन्न है, भन्ते सेनापति।"

"परन्तु हमारा कार्यक्रम?"

"क्या मैं निवेदन करूं, आर्य ?"

"अवश्य, आर्य वर्षकार ने तुम्हारे विषय में मुझे कुछ आदेश दिये हैं।"

"तब ठीक है। वैशाखी के दिन सूर्योदय होने पर चम्पावासी जो दृश्य देखेंगे, वह चम्पा दुर्ग पर फहराता हुआ मागधा झण्डा होगा।"

"परन्तु यह तो असाध्य साधन है आयुष्मान् यह कैसे होगा ?"

"यह मुझ पर छोड दीजिये, भन्ते सेनापति।" सेनापति ने अब अचानक कुछ स्मरण करके कहा—"परन्तु तुम शिविर में कैसे चले आये साम्य ?"

"किसी भांति आज का सकेत शब्द जान गया था भन्ते।"

"यह तो साधारण बात नहीं है आयुष्मान्।"

"भन्ते, सोमप्रभ साधारण तरुण नहीं है।"

"सो तो देखूंगा, पर तुम करना क्या चाहते हो ?"

"अभी हमारे पास चार दिन हैं। इस बीच में बहुत काम हो जायगा।"

"पर चार दिन हम खायेंगे क्या ?"

"आज रात को रसद मिल जायगी।"

"परन्तु प्रतिरोध कैसे पूरा होगा? हमारे पास तो युद्ध के योग्य "

"एक सौ सशस्त्र योद्धा आज रात को आपके पास पहुंच जावेंगे।"

"केवल एक सौ ?"

"आपको करना ही क्या है भन्ते, केवल प्रतिरोध हो न ?"

"परन्तु शत्रु के बाण जो हमें बींध डालते हैं। हमारे पास रक्षा का कोई साधन नहीं है।"

"यह तो बहुत सरल है, भन्ते ! उधर बहुत सी टूटी नौकाएं पड़ी हैं, उनमें रेत भरकर उनका आड़ में बन्द में प्रतिरोध किया

जा सकता है। मैंने सिन्धु नद के युद्ध में गन्धारों का यह कौशल देखा है।"

'तुम क्या गान्धार हो वत्स ?"

'नहीं मागध हूं। मैंने तक्षशिला में आचार्यपाद बहुलाश्व से शिक्षा पाई है।"

"अरे अयुष्मान् ! तुम वयस्य बहुलाश्व के अन्तेवासी हो। साधु, साधु, तुम्हारी युक्ति बहुत अच्छी है।"

"तब, कुछ गधों को आज रात के अंधेरे में यहां खींच लाया जाय और उनमें रेत भर दिया जाय।"

"यह हो जायगा, परन्तु तुम्हारे सौ सैनिक ?"

'रात को तीसरे पहर तक पहुंच जायेंगे।'

"ठीक है, तब तक तुम ?"

"मैं एक चक्कर नगर का लगाकर उसका मान चित्र तैयार करता हूं।"

'तुम्हें कुछ चाहिये अयुष्मान्।"

"कुछ नहीं भन्ते। परन्तु अब मैं चला।" सोमप्रभ सेनापति का अभिनन्दन करके चल दिया। मागध योद्धाओं की सूखी आशा लता पल्लवित हो उठी। घायल योद्धा भी वीर दर्प से हुंकार भरने लगे।

: ३२ :

शत्रुपुरी में मित्र

सोम बहुत सी गली कूचों का चक्कर लगाते, वीथी और राजपथ को पार करते एक तंग गली में छोटे से मकान पर पहुंचे। वहां उन्होंने द्वार पर आघात किया। एक अधेड़ वय के बलिष्ठ पुरुष ने द्वार खोला। सोम भीतर गये। वह पुरुष भी द्वार बन्द कर भीतर गया।

भीतर आंगन में एक भारी भट्ठी जल रही थी। वहां बहुत से शस्त्रास्त्र बन रहे थे। अनेक कारीगर अपने २ काम में जुटे थे। जिसने द्वार खोला था, वह कोई चालीस वर्ष की आयु का पुरुष था। उसका शरीर बलिष्ट और देह दृढ़पेशियों का था। चेहरे पर घनी डाढ़ी मूंछ थी। उसने कहा—

"कहो मित्र, सेनापति का क्या विचार रहा ?"

वे सब निराशा में डूब रहे थे। पर अब वे उत्साहित हैं। किन्तु मित्र अश्वजित्, अब सब कुछ तुम्हारी ही सहायता पर निर्भर है। कहो, क्या करना होगा ?"

"बहुत मीधी बात है, दक्षिण बुर्ज पर वैसाखी के दिन तीन पहर रात गये मेरे भाई का पहरा है।"

"अच्छा फिर ?"

"अब यह आपका काम है कि आप चुने हुए भटों को लेकर ठीक समय पर बुर्ज पर चढ़ जाय।"

"ठीक है परन्तु तुम कितने आदमी चाहते हो ?"

"बीस से अधिक नहीं। परन्तु मित्र, दक्षिण बुर्ज नदी के मुहाने पर है। और चट्टान अत्यन्त ढालू है। उधर से बुर्ज पर चढ़ना मृत्यु से खेलना है।"

"हम मृत्यु से तो खेल ही रहे हैं मित्र, यही ठीक रहा। हम ठीक समय पर पहुंच जावेंगे।"

"इसके बाद की योजना वही बन जायगी।"

"ठीक है, और कुछ ?"

"अजी, बहुत कुछ मित्र, हमारे पास यथेष्ट शस्त्र तैयार है। मैंने मागध नागरिकों को बहुत शस्त्र बांट दिये है। वैशाली के प्रात: ज्यों ही दुर्ग द्वार पर आक्रमण होगा। नगर में विद्रोह हो जायगा।"

"अच्छी बात है, परन्तु मुझे अभी आवश्यकता है।"

"किस चीज की ?"

"सौ सशस्त्र सैनिक, जिनके पास पांच दिन के लिए भोजन भी हो।"

"वे मिल जायेंगे।"

"थोडी रसद और, सेनापति भूखो मर रहे है।"

"रसद और सैनिक आज रात को पहुंच जायेंगे।"

"परन्तु किस प्रकार मित्र ?"

"उसी दक्षिण बुर्ज के नीचे से। उधर पहरा नही है और एक मछुआ मेरा मित्र है। मेरे आदमी शिविर मे तीन पहर रात गये तक पहुंच जायेंगे। कोई कानो कान न जान पायेगा।"

"वाह मित्र, यह व्यवस्था बहुत अच्छी रहेगी। परन्तु तुम्हारे उस मछुआ मित्र की मुझे भी आवश्यकता होगी।"

"कब ?"

"उसी वैसाखी की रात को।"

"ओह, समझ गया। सैनिको को पहुंचाकर वह अपनी डोंगी सहित वही कहीं कछार में चार दिन छिपा रहेगा। फिर समय पर आप उससे काम ले सकते है।"

"धन्यवाद मित्र, तो अब मै आर्य को यह सुसम्वाद दे दूं ?"

"और मेरा अभिवादन भी मित्र।"

सोमप्रभ ने लुहार का आलिंगन किया और वहां से चल दिये।

*

: ३३ :

पशुंपुरी का रत्नविक्रेता

चम्पा के पान्थागार मे पशुंपुरी के एक विख्यात रत्न विक्रेता कई दिन से ठहरे थे। उनके ठाठ बाट और वैभव को देखकर सभी चम्पा निवासी चमत्कृत थे। पान्थागार के सर्वोत्तम भवन मे उन्होने डेरा किया था। और राज्य की ओर से उनकी रक्षा के लिये बहुत से सैनिक नियुक्त कर दिये गये थे। रत्न विक्रेता के पास सेवको की एक अच्छी खासी सेना थी। रत्न विक्रेता को अभी तक किसी ने नही देखा था। लोग उनके सम्बन्ध मे भांति भांति की बाते करते और भांति भांति के अनुमान लगा रहे थे। इसका कारण यह था कि उनके सेवको मे से अदना से आला तक सभी शाह खर्च थे। वे कार्षापण का सौदा खरीदते और स्वर्ण दम्म देकर फिरती लेना भूल जाते। ऐसा प्रतीत होता था कि स्वर्ण को वे मिट्टी समझते थे। परन्तु सबसे अधिक चर्चा की वस्तु रत्न विक्रेता की पुत्री थी, जो प्रति दिन प्रात और सध्याकाल मे अश्व पर सवार हो दासियो और शरीर रक्षकों के साथ नित्य नियमित रीति से वायु सेवन को जाती तथा मार्ग में स्वर्ण रत्न दरिद्र नागरिको को हंसती हुई लुटाती थी। उसके अद्भुत अनोखे रूप, असाधारण अश्व-संचालन और अविरल दान से इन चार पाच ही दिनो में पशुंपुरी के रत्न विक्रेता के वैभव और उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में भांति २ की झूठी सच्ची चर्चा नगर मे फैल गई थी। अभी दो दिन पूर्व उनसे मिलने नगर के महा सेठि धनिय आये थे और रत्न विक्रेता तथा उसकी पुत्री को उन्होंने कल निमन्त्रण दिया था। आज स्वयं चम्पा के अधीश्वर परम माहेश्वर महाभट्टारक श्री दधिवाहनदेव पान्थागार में पधार रहे थे। जिससे पान्थागार के द्वार मण्डप और लताओं से सजाये

गये थे। भीतर बाहर बहुत सी दीपावलिया सजाई जा रही थीं। सैकड़ों मनुष्य काम में जुटे थे। राजमार्ग पर अश्वारोही सैनिक प्रबन्ध कर रहे थे।

रात्रि का प्रथम प्रहर बीतने पर चम्पाधिपति ने पान्थागार में राजकुमारी चन्द्रभद्रा के साथ प्रवेश किया। पर्शुपुरी के उस रत्न विक्रेता ने द्वार पर आकर महाराज और राजकुमारी का स्वागत किया, और सादर एक उच्चासन पर बैठा कर अपनी पुत्री से महाराज का अर्घपाद्य से सत्कार कराया। रत्न विक्रेता के विनय और उससे अधिक उसकी पुत्री के रूप लावण्य को देख कर महाराज दधिवाहन मुग्ध हो गये। कुमारी चन्द्रभद्रा ने हाथ पकड कर हसते हुए रत्न विक्रेता की पुत्री को अपने निकट बैठा लिया। महाराज ने कहा—"चम्पा में आप का स्वागत है सेट्ठि, हमें आपको देखकर प्रसन्नता हुई है। मैंने सुना है, आप बहुत से अमूल्य रत्न लाये है राजकुमारी उन्हे देखा चाहती है।"

रत्न विक्रेता ने अत्यधिक झुककर महाराज का अभिनन्दन किया। और एक दास को रत्नमंजूषा लाने का सकेत किया। दास कौशेय-मण्डित पट्ट पर मजूषा रख गया। उसमें से तेजस्वी बडे बडे मुक्ताओं की एक माला लेकर रत्न विक्रेता ने कहा—"देव चम्पाधिपति प्रसन्न हो, यह मुक्ता मोल बेचने योग्य नही है। पृथ्वी पर इनका मूल्य कोई चुका नही सकता है। यदि देव की अनुमति हो तो मै यह मुक्ताहार राजकुमारी को अर्पण करने की प्रतिष्ठा प्राप्त करूं।"

उन बडे बडे उज्ज्वल असाधारण मोतियो को महाराज दधिवाहन आंखें फाड फाड कर देखते रह गये। रत्न विक्रेता ने आगे बढ कर वह अमूल्य मुक्ता माल राजकुमारी के कण्ठ में डालदी।

राजकुमारी ने आनन्द से विह्वल होकर दोनों हाथो में वह माला थाम ली।

इसके बाद रत्न विक्रेता ने कहा—"अब यदि अनुमति पाऊं तो

बिक्री योग्य कुछ रत्न सेवा में लाऊ। कदाचित् कोई राजकुमारी को पसन्द आ जाय।"

उसने संकेत किया और दास ने दो बडी बडी रत्नमंजूषा कोशेय पट्ट पर रख दी। उनमें एक से एक बढ़ कर रत्नाभरण भरे पड़े थे। राजकुमारी ने कुछ आभरणो को छाट लिया। किन्तु महाराज दधिवाहन उन सब असाधारण रत्नो से अधिक रत्न विक्रेता की कन्यारत्न की ओर आकर्षित हो रहे थ। जो रह २ कर वकिम कटाक्ष से उन्हे पागल बना रही थी।

चम्पाधिपति ने बहुत से रत्नाभरण खरीदे। अन्तत. उन्होने उठते हुए कहा—"हम आपसे बहुत प्रसन्न है। इस समय मगध सैन्य ने चम्पा को घेर रखा है, इससे आपको और आपकी सुकुमारी कन्या को असुविधा हुई होगी।"

"मेरी पुत्री का देव को इतना ध्यान है, इसके लिये अनुगृहीत हूं। यह बिना माता की पुत्री है। महाराज, राजकुमारी ने इसे सखी की भाति अपना कर जो प्रतिष्ठित किया है उससे इसे अत्यन्त आनन्द हुआ है।"

"राजकुमारी चाहती है, आप जब तक यहा है, आपकी पुत्री राज महालय में उसी के सान्निध्य मे रहे। आपको इसमे कुछ आपत्ति है?" महाराज ने छिपी दृष्टि से रत्न विक्रेता की पुत्री को देखकर कहा, जो मन्द मुस्कान से राजा के वचन का स्वागत कर रही थी।

रत्न विक्रेता ने कहा—"यह तो उसका परम सौभाग्य है। राजकुमारी उसे अपने साथ ले जा सकती है। यहा परदेश में देव, यह अकेलापन बहुत अनुभव करती है।"

राजकुमारी ने हस कर रत्न विक्रेता की कन्या का हाथ पकड़ कर कहा—"चलो सखी, हम लोग बहुत आनन्द से रहेगे।"

उसने विनय से मस्तक झुकाया। प्रधान दास ने उत्तरी वासक उसके कन्धों पर डालते हुए अवसर पाकर धीरे से उसके कान में

कहा—"बैसाखी की रात को चार दण्ड रात्रि व्यतीत होने पर।"

और वह विनय से झुकता हुआ पीछे हट गया। कुण्डनी ने रत्न विक्रेता के चरणों में प्रणाम किया। दोनों ने नेत्र विनिमय किया।

महाराज राजकुमारी और रत्न विक्रेता की कन्या को लेकर चले गये। उनके जाने पर रत्न विक्रेता ने द्वार बन्द करने का आदेश दिया। फिर एकान्त पाकर अपने नकली केश और परिच्छद उतार फेंका। दास भी निकट आ खड़ा हुआ।

"सब ठीक हुआ तो सोम ?"

"हां, आर्य।"

"सेनापति भद्रिक को सहायता मिल जायगी न ?"

"सब ठीक हो गया है, आर्य।"

"आयुष्मान् अश्वजित अपना कार्य कर रहा है ?"

"जी हां, वह लुहार बना हुआ है। चम्पा के सम्पूर्ण मागध नागरिकों को उसने सशस्त्र कर दिया है।"

"बहुत अच्छा हुआ, वे कितने हैं ?"

"बारह सौ से भी अधिक है।"

"ठीक है। सेट्ठि धनिय ने चम्पा के बहुत से सार्थवाहों की हुण्डियां मेरे आदेश से खरीद ली है। बैसाखी के दिन प्रभात ही वे भुगतान मांगेंगे। मैं जानता हूं राजकोष में स्वर्ण नहीं है। महाराज दधिवाहन पेरे रत्नों के मूल्य में जो स्वर्ण देंगे, वह चम्पा के स्वर्णवणिकों से लेकर। बस वे खाली हो जायेंगे। और वे नगर सेट्ठि की हुण्डियां नहीं भुगता सकेंगे।"

"इसी बीच मागध नागरिक नगर विद्रोह कर डालेंगे और यह हुण्डियावन ही उसका कारण हो जायगा। किन्तु कुण्डनी ?"

"वह अपना मार्ग खोज लेगी। बैसाखी की रात्रि के चौथे दण्ड के प्रारम्भ होते ही दधिवाहन मर जायगा।"

"तो ठीक उसी समय चम्पा दुर्ग के पश्चिमी बुर्ज पर मागध

तुरही बजेगी, और उस समय तक तमाम प्रहरी वश में किये जा चुके होंगे। इसके बाद दो ही घडी में उन्मुक्त द्वार से मगध सेनापति प्रविष्ट हो दुर्ग अधिकृत कर लेंगे।"

"उत्तम योजना है। अब मैं इसी क्षण प्रस्थान करूंगा। तुम मेरे रोगी होने का प्रचार करना तथा बैसाखी पर्व तक सब कुछ इसी भांति रखना। परन्तु किसी से भेंट करने में असमर्थ बता देना।"

"जैसी आज्ञा, किन्तु

"ठहरो, तुम सोम, वैसाखी के दिन चार दण्ड रात्रि रहते ही श्रावस्ती की ओर प्रस्थान करना। चम्पा दुर्ग पर मागधी पताका देखने के लिये प्रभात तक रुकना नहीं। वहां सम्राट् विपन्नावस्था में हैं।" इतना कह कर मगध महामात्य ने आसन त्याग कर ताली बजाई।

एक दास ने निकट आकर अभिवादन किया।

आमात्य ने कहा—'कितनी रात्रि गई अभय ?"

"रात्रि का द्वितीय दण्ड प्रारम्भ है आर्य।"

"और मेरा अश्व ?"

'वह तैय्यार है।"

"कहां ?"

"निकट ही, उसी उपत्यका के प्रान्त में।"

"ठीक है।"

आमात्य आगे बढ़े। सोम ने कहा—"क्या मेरा अनुज आर्य का पथ प्रदर्शन करे ?"

"नहीं, मेरी अपनी व्यवस्था है।"

वे एकाका ही अन्धकार में डूब गये।

— ———

: ३४ :

असम साहस

"तो आयुष्मान सोम, हमारी योजनाऐं असफल हुई ?"

"यह क्यो, भन्ते सेनापति ?"

"कल ही बैसाखी पर्व है, हम कुछ भी तो नही कर सके।"

"भन्ते, हमें अभी काम करने के लिये पूरे पांच प्रहर का समय है।"

"इन पाच प्रहरो में हम क्या कर लेंगे ? दुर्ग पर आक्रमण के योग्य हमारे पास सेना कहा है ?"

"भन्ते आर्य, इन चार दिनो मे जो कुछ हम कर पाये है वह सब परिस्थितियो को देखते क्या सन्तोषप्रद नही है।"

"अवश्य है, परन्तु इससे लाभ ? मेरी समझ में हमारा सर्वनाश और चार दिन के लिये टल गया। अभी भी तुम आत्मसमर्पण के पक्ष में नहीं ?"

"नहीं भन्ते सेनापति।"

"तो कल सूर्योदय के साथ हमारा सर्वनाश हो जावेगा।"

"नहीं भन्ते सेनापति, कल सूर्योदय से पूर्व हम दुर्ग अधिकृत कर लेंगे।"

"क्या तुम्हें किसी दैवी सहायता की आशा है ?"

"नहीं; भन्ते सेनापति, मै अपने पुरुषार्थ पर निर्भर हूं।"

"तो तुम्हें अभी भी आशा है ?"

"आशा नही; भन्ते सेनापति, मुझे विश्वास है।"

"परन्तु आयुष्मान् तुम करना क्या चाहते हो ?"

"वह कल सूर्योदय होने पर आप देख लीजिये।"

"सौम्य सोम, तुम कोई असम साहस तो नहीं कर रहे ? मैं तुम्हें किसी घातक योजना की अनुमति नहीं दूंगा।"

"हमारा कार्य अतिशय गुरुतर है सेनापति, और मेरी योजना भी वैसी ही गम्भीर है। परन्तु आप तनिक भी चिन्ता न कीजिये। आप केवल परिणाम को देखिये। कल सूर्योदय से पूर्व ही दुर्ग पर मागधी झंडा फहराता देखेंगे आप।"

"लेकिन कैसे आयुष्मान् ?"

"भन्ते सेनापति, कृपा कर अभी आप मुझसे कुछ न पूछें। हां, आज की रात का संकेत शब्द क्या है, कृपया यह बता दीजिये।"

"असम-साहस, ही सही।"

"बहुत ठीक, अब आप विश्राम कीजिये। अभी एक दण्ड रात गई है। मुझे बहुत समय है। मैं तनिक अपने आदमियों को ठीक ठाक करलूं।"

'तुम्हारा कल्याण हो आयुष्मान्, और कुछ ?"

"कृपया याद रखिये कि रात्रि के चौथे दण्ड में ज्योंही चम्पा दुर्ग के दक्षिण द्वार पर मागध तुरही बजे। आप ससैन्य दुर्ग में प्रविष्ट होकर दुर्ग को अधिकृत करलें। दुर्ग द्वार आपको उन्मुक्त मिलेगा।"

सोम ने अवनत होकर सेनापति भाद्रिक को अभिवादन किया और तेजी से पट मण्डप से बाहर हो गये। सेनापति आश्चर्य चकित खड़े उसे देखते रह गये।

बाहर आते ही रात्रि के अन्धकार में एक वृक्ष की आड़ से निकल कर अश्वजित् उसके निकट आया। उसने आते ही सोम के कान के पास मुंह ले जाकर कहा—"सब ठीक है मित्र।"

"वह मांझी ?"

"अपनी नाव सहित वहां चन्दन के कछार में छिपा हुआ है।"

"उस पर विश्वास तो किया जा सकता है ?"

"पूरा मित्र।"

"मित्र, स्मरण रखना, मगध का भाग्य इस समय उसी माँझी के हाथ मे है।"

"वह पूरा विश्वास के योग्य है मित्र।"

"तब चलो उसके पास।"

दोनो व्यक्ति धीरे धीरे निश्शब्द पत्थर के छोटे बडे ढोको को पार करते हुए उसी सघन अन्धकार में चन्दन नदी के उस कछार पर पहुचे, जहा वह मछुआ अपनी नाव एक वृक्ष से बाधे चुपचाप बैठा था। नदी के हिलोरो से नाव उथल पुथल हो रही थी।

अश्वजित् ने सकेत किया। सकेत पाते ही माँझी कूद कर उनके निकट आ गया। निकट आकर उसने दोनो को अभिवादन किया।

सोम ने आगे बढ कर उस अन्धकार में उसे सिर से पैर तक देखा और पूछा—"तुम्हारा क्या नाम है मित्र ?"

"भन्ते आर्य, मै सोमक माझी हू।"

"तो मित्र सोमक, तुम्हे मालूम है कि आज की रात तुम्हें एक जोखिमपूर्ण काम करना होगा, जिस में तनिक भी असफल हुए तो बहुत भारी हानि होगी।"

"हमें दक्षिण बुर्ज तक जाना होगा, वहा नाव को टिकाऐ रखना होगा ?"

"जानते हो, यह जान जोखिम का कार्य है।"

"भन्ते आर्य, हम लोग तो तुच्छ मछलियो के लिये नित्य जान जोखिम ही में रहते है, परन्तु आप तनिक भी आशंका न करें।"

"आश्वस्त हुआ मित्र, तो कब उपयुक्त समय होगा ?"

"चार दण्ड रात्रि व्यतीत होने पर भन्ते, तब चन्दन में ज्वार आवेगा।"

"नही मित्र, तीन दण्ड रात्रि व्यतीत होने पर।"

"इसमें तनिक भय है सेनापति, किन्तु कोई हानि नहीं। ऐसा ही होगा।"

'यह तुम्हारा पारिश्रमिक है मित्र।"

सोम ने स्वर्ण से भरी एक भारी छोटी सी थैली उसके हाथों में थमा दी फिर धीरे से कहा—"हां, तुम्हारी नाव में बीस आदमी बैठ सकते हैं?"

"बहुत आराम से भन्ते सेनापति।"

"तब ठीक है, सावधानी से यहीं प्रतीक्षा करना मित्र?"

"आप निश्चिन्त रहिये भन्ते आर्य।"

सोम ने वहां से हटकर विश्वजित् से कुछ परामर्श किया और विश्वजित् तेजी से किन्तु निःशब्द एक ओर को चला गया। फिर सोम भी लम्बे लम्बे डग बढ़ाते हुए एक ओर को तेजी से चले।

: ३५ :

शंब असुर का साहस

चम्पा दुर्ग के दक्षिण बुर्ज के निकट चन्दन के तट से थोड़ा हट कर एक शून्य चैत्य था। बहुत विशाल था, परन्तु इस समय वहां एकाध विहार को छोड़ कर सब खण्डहर था। उधर लोगों का आवागमन नहीं था। वहीं एक अपेक्षाकृत साफ सुथरे अलिन्द में बीस भट एकत्र थे। वे सब शंब को लेकर आनन्द कर रहे थे। जो तरुण असुर सोम ने उस असुर पुरी से प्राण दान देकर पकडा था उसका नाम उन्होंने रखा था शंब। अपने इस नये नाम से वह बहुत प्रसन्न था। मागध तरुण उसे अच्छी२ मद्य पिलाते, तथा अनेक प्रकार के मांस और मिष्टान्न खिलाते थे, इससे वह उनसे बहुत हिल मिल गया था। उसने जो असुर पुरी में कुण्डनी को नृत्य करते और मृत्यु चुम्बन करते देखा था, इस समय वह उसी की नकल कर रहा था। वह बारम्बार अपनी स्वर्ण करधनी छूकर, हाथ मटका कर, कभी २ भाण्ड में से मद्य डालकर भटों को पिलाने का अभिनय करता और कभी कुण्डनी ही की भांति चुम्बन निवेदन करता। सब लोग उसे घेर कर उसके नृत्य का आनन्द ले रहे थे, और वह बारम्बार शंब-शंब अपना नवीन नाम उच्चारण करता हुआ आसुरी भाषा का कोई बढ़िया सा प्रणय गीत गाता हुआ सब भटो को चुम्बन निवेदन कर रहा था, और मागध भट उसके मोटे २ काले होठों के स्पर्श से बचने के लिये पास आने पर उसे ढकेल कर हंस रहे थे। वाद्य के अभाव में एक भट पत्थर के सहारे लेटा अपना पेट ही बजा रहा था, और सब लोग ही ही करके हंस रहे थे।

क्षण भर सोम यह सब देखता रहा। एक क्षीण हास्य रेखा उसके होठों पर फैल गई। फिर उसने पुकारा—"शंब, क्या आज तूने फिर

बहुत मद्य पी है ?"

शंब ने एक बार झुक कर स्वामी को प्रणाम किया, फिर भीत भाव से उनकी ओर देखा। परन्तु सोम की मुद्रा देख वह हंस पड़ा। उसके काले काजल से मुख में धवल दन्त पंक्ति बड़ी शोभायमान दीखने लगी।

उसने कहा—"नहीं, स्वामी, नहीं।"

सोम ने उस पर से दृष्टि हटा कर बीसों भटों पर मार्मिक दृष्टि डाली, और दृढ स्थिर स्वर में कहा—"मित्रो, आज हमें मृत्यु से खेलना होगा, कौन २ तैयार है ?"

"प्रत्येक, भन्ते सेनापति ?"

"परन्तु मित्रो, हमारे आज के कार्य का प्रभाव मगध के भाग्य परिवर्तन का कारण होगा।"

"हम प्राणों का उत्सर्ग करेंगे भन्ते।"

"आश्वस्त हुआ मित्रो !"

"अभी एक दण्ड रात्रि व्यतीत हुई है, हम तीन दण्ड रात्रि रहते प्रयाण करेंगे, अभी हमारे पास चार घटिक समय है। आप तब तक एक २ नींद सो लें।"

सब लोग चुपचाप सो गये। अब सोम ने शंब की ओर देख कर कहा—"शंब तुझे एक कठिन काम करना होगा।"

शंब ने प्रसन्न मुद्रा से स्वर्ण करधनी पर हाथ रखा।

सोम ने एक पतली लम्बी रस्सी को लेकर शंब को पीछे आने का संकेत किया और वह दक्षिण बुर्ज की ओर चला। बुर्ज के निकट आकर कहा—"शंब, जल में कितनी देर ठहर सकता है ?" शंब ने संकेत से बताया—वह काफी देर जल में ठहर सकता है। सोम ने वस्त्र उतार डाले और शंब के साथ जल में प्रवेश किया। इस समय चन्दन में ज्वार आ रहा था, बड़ी २ लहरें उठ कर चट्टानों से टकरा रही थीं। दोनों ने दृढ़तापूर्वक रस्सी पकड़ रखी थी, वे ठीक बुर्ज

के नीचे किसी चट्टान पर स्थिर होना चाहते थे–पर पानी की लहरें उन्हें दूर फेंक देती थीं। अन्तत ये वहां पहुचने मे सफल हुए। सोम एक चट्टान को दृढता से पकड कर दातो मे रस्सी दबा कर बोला–"शब, रस्सा का दूसरा छोर लेकर पानी मे गोता मार, देख तो कितना जल है ?"

शब ने कमर मे रस्सी बाध पैर ऊपर कर गोता लगाया, रस्सी पानी मे घुसती ही चली गई। सोम की भुजाओ पर पूरा जोर पड़ रहा था, चट्टान छूटी पड रही थी, दांत भी रस्सी के बोझ को नहीं सम्हाल सक रहे थे, एक २ क्षण कष्ट और असहय भार बढ़ रहा था, इसी समय रस्सी ढीली हुई और कुछ क्षण बाद ही शब ने सिर निकाला। सोम ने रस्सी को नाप कर जल का अनुमान किया। उसने सोचा दो दण्ड काल मे जल और चार हाथ बढ जायगा। उसने पाच हाथ ऊपर चट्टान मे खूब मजबूती से वह रस्सी लपेट दी–और उसका दूसरा छोर शब के हाथ मे देकर कहा—"शब, खूब सावधानी से रहना, ज्यो ही नाव यहा पहुचे रस्सी फेंक देना। ऐसा न हो–नाव को लहरे दूर फेंक दे। और ऊपर बर्ज का भी ध्यान रखना, यहा से एक रस्सी नीचे लटकाई जायेगी। इसे भी तू थामे रहना। कर सकेगा न ?"

शब बोला नही, हस कर स्वीकृति प्रकट की। और जम कर चट्टान पर बैठ गया।

सोम ने गहरे जल में गोता लगाया और वहीं लोप हो गये। अकेला असुर उस भयानक काली रात में अपनी कठिनाइयो के बीच बैठा रहा।

: ३६ :

गुप्त पत्र

सेनापति भद्रिक बडी देर तक शून्य अर्ध रात्रि मे अकेले चिन्तित भाव से पट द्वार पर इधर उधर टहलते रहे। उस समय उनके मस्तिष्क मे कुछ परस्पर विरोधी ऐसे विचार चक्कर खा रहे थे कि जिस का उन्हें निराकरण नही मिल रहा था। उन्हो ने बहुत देर तक कुछ सोचकर दीपक ठीक किया और आसन पर आ भोजपत्र निकाल लेखनी हाथ में ली। इसी समय किसी के पदशब्द से चौंक कर उन्होने पीछे मुड कर देखा। सोम को देख कर उन्होने आश्वस्त हो कर कहा—

"तुम सोम इस असमय मे ?

"आर्य एक चर है, राजगृह से पत्र लाया ह।"

"पत्र क्या सम्राट् का है ?"

"नही आर्य, सेन पति उदायि का पत्र है।"

"तो तुम पत्र ले आओ, और चर की व्यवस्था कर दो।"

इतना कहकर सेनापति लिखने में लीन हो गये। सोम पत्र हाथ मे लेकर चपचाप मण्डप मे खडे हो गये।

लेख समाप्त होने पर सेनापति ने कहा"—भद्र, मुहर तोड कर पत्र निकालो।"

सोम ने ऐसा ही किया।

सेनापति ने स्निग्ध कोमल स्वर से कहा—'पत्र पढ़ो भद्र।' पत्र पर दृष्टि डाल कर सोम ने कहा—'आर्य, पढ़ नही सकता, वह सांकेतिक भाषा मे है।"

"अच्छा, तो कोई गुप्तपत्र है, वह संकेत तालिका ले लो भद्र, और तब सावधानी से पढ़ो।"

सोम ने पढ़ा—

"... . मे आशा करता हू कि मै शीघ्र ही आपको महाराज कह कर सम्बोधित करूगा।" सोम ने झिझक कर सेनापति की ओर देखा। सेनापति ने मुस्कराकर कहा—

'पढ़ो भद्र, यह राजविद्रोह नहीं है राजनीति है। मगध सम्राट् ही अकेले महाराज नही है, और भी है। फिर अब, जब सोमभद्र, तुमने आशा ही आशा हमे दी है तो फिर चम्पा के सिंहासन पर दधिवाहन के स्थान पर भद्रिक कुछ अनुपयुक्त भी नही है। कासियों का गण मगध साम्राज्य में मिल ही चुका है, और अङ्ग बङ्ग कलिङ्ग के महाराज मेरे अधीन है। मल्ल लडखडा रहे है। मेरे आधीन अभी भी पचास सहस्र सेना सुरक्षित है, जो इच्छानुसार उपयोग मे लाई जा सकती है, फिर कलिङ्ग महाराज ने बीस सहस्र सैन्य और सौ जलतरी देने का वचन दिया है।

'परन्तु भन्ते सेनापति "

'भद्र, पहिले पत्र पढ लो।'

सोम ने फिर पढना प्रारम्भ किया—

'आपका ध्यान मै तीन बातो की ओर आकर्षित किया चाहता हू। प्रथम यह कि सम्राट् ने श्रावस्ती पर चढाई कर दी है। श्रावस्ती के महाराज प्रसेनजित कौशाम्बीपति उदयन से उलझ रहे है। सम्राट् इसी अभिसन्धि से लाभ उठाना चाहते है। उधर अवन्तिराज चण्ड महासेन ने भी उन्हे उकसाया है, परन्तु मुझे विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ है, कि सम्राट् के कौशल पर अभियान करने का छिद्र पाकर चण्डमहासेन मगध की ओर आ रहा है। आर्यवर्षकार इस ओर सावधान अवश्य है। परन्तु आपके चम्पा मे फस जाने तथा सम्राट् के अवध पर अभियान करने से मगध की रक्षा चिन्तनीय हो गई है। तिस पर महामात्य कही गुप्त यात्रा पर गए हैं, तथा नगर मेरे आधीन है, इससे इस समय चण्डमहासेन का मगध पर अभियान हमे बहुत भारी पड़ सकना है यद्यपि चाणाक्ष आर्यवर्षकार एक युक्ति कर गए है।"

इतना पत्र सुन चुकने पर सेनापति आसन से उठकर टहलने और बड़बड़ाने लगे। वे कह रहे थे--"सम्राट् की मति मारी गई है अथवा यह वर्षकार की अभिसन्धि है। वे क्या बन्धुल मल्ल के शौर्य को नहीं जानते? अस्तु पढ़ो, पत्र सोम!"

"देवी अम्बपाली को सम्राट् ने उपहार भेजा था, वह उसने लौटा दिया। सम्राट् इस पर बहुत उद्विग्न हुए हैं। आर्यवर्षकार उन्हें इस कार्य के लिये उकसा रहे हैं। वे चाहते हैं जल्द से जल्द किसी बहाने वैशाली पर आक्रमण हो जाय। असल बात यह है कि वे अम्बपाली से किसी प्रकार सम्राट् की घनिष्टता बढ़ाकर काश्यप की विषकन्या का अम्बपाली के आवास में प्रवेश कराना चाहते हैं। परन्तु सम्राट् ने स्पष्ट रूप से मगध छोड़ते समय आदेश दिया था कि उसका प्रयोग चम्पाधिपति पर किया जाय। आश्चर्य नहीं कि वह इस पत्र से प्रथम ही चम्पा पहुंच चुकी हो।"

सोम के माथे से पसीना चूने लगा। सेनापति क्रुद्ध भाव से धम्म से आसन पर आ बैठे। बैठकर उन्होंने कहा--"समझा वह कुटिल ब्राह्मण इसी लिए सेना नहीं भेज रहा था। अच्छा और क्या लिखा है?"

सोम ने पढ़ा—"मथुरा का अवन्ति वर्धन सुना है मगध पर आक्रमण की तैयारी कर रहा है। इसी से सम्राट् ने मुझे उसका अवरोध करने को सीमा प्रान्त पर जाने का आदेश दिया था। परन्तु आर्य वर्षकार ने वह आदेश रद्द कर दिया और राजधानी का कार्य भार सौंप कर स्वयं अन्तर्ध्यान हो गये हैं।"

'ठहरो सोम, सोचने दो--यह कुटिल गया कहां?"

सोम चुपचाप खड़ा रहा। सेनापति ने एकाएक उद्विग्न होकर कहा—

"सोम, यह क्या सम्भव नहीं है कि वर्षकार चम्पा ही में आया हो?"

"यदि ऐसा है तो आर्य, हमे बहुत सहायता मिलेगी।"

"परन्तु श्रेय ?" सेनापति भद्रिक की भृकुटि टेढी हुई। मगध के ख्यातनामा वीर सेनानायक की यह कुटिल राजवासना देखकर सोम विचार में पड गया।

सेनापति ने बडी देर चुप रहकर दीर्घनि श्वास लेकर कहा—"सोम भद्र, चाहे भी जो हो, श्रावस्ती मे सम्राट् को अवश्य मुह की खानी पडेगी। हा, वैशाली का गणतन्त्र मगध साम्राज्य की गहरी बाधा है। क्यो न फिर अम्बपाली ही हमारी सम्पूर्ण कूटनीति और विग्रह का केन्द्र रहे। होने दो सम्राट् की उस पर आसक्ति। हमारे लिये लाभ ही लाभ है। तो भद्र सोम, मै तुझे दो गुरुतर सदेश देता हूं। कदाचित् अब हम लोग न मिल सके। यदि तुम्हारी योजना सफल हो तब भी, और न हो तब भी, जितना सम्भव हो द्रुतगति से चम्पा से प्रस्थान करना और सेनापति उदायि से मिलकर मेरा मौखिक सदेश कहना कि—जल्दी न करे, सर्वथा नष्ट कर देने की अपेक्षा अपनी कल्पनाओं को कुछ काल के लिये स्थगित कर देना अधिक अच्छा है।"

इतना कह कर सेनापति चुपचाप एक टक युवक के मुख की भावभंगी को देखते रहे। युवक लोह स्तम्भ के समान स्थिर खडा रहा उसने कहा—"भन्ते सेनापति का सन्देश अक्षरश: आर्य उदायि की सेवा मे पहुंच जायगा।"

"तब दूसरी बात भी सुनो सोम्य" सेनापति ने और भी निकट मुह करके और भी धीरे से कहा—

"मेरे महान् प्रतिद्वन्दी इस ब्राह्मण वर्षकार को अपना विश्वास पात्र बनाना। केवल वैशाली का पतन ही ऐसा है, जिस पर मै, सम्राट् और यह कुटिल ब्राह्मण तीनो का त्रिकूट सहमत है, यद्यपि तीनों की भावनाए प्रथक् प्रथक् है। सम्राट् अम्बपाली को प्राप्त किया चाहते है, और यह ब्राह्मण उत्तर भारत से सम्पूर्ण गण राज्यो को उन्मूलन किया चाहता है। किन्तु मेरा उद्देश्य कुछ और ही है।" कुछ देर ठहर

कर सेनापति ने कहा—"भद्र सोम, उदयि से कहना—'ऐसा करें, जिससे यह कुटिल ब्राह्मण स्वयं वैशाली जाय और सूनी राजधानी पर अकेले सम्राट् ही रह जाय।"

सेनापति की आखो से एक चमक निकलने लगी। उनका स्वर उद्विग्न हो गया। पर उन्होने शान्त ही रह कर कहा—"सोमभद्र, थोडी बात और शेष है -

"मेरी पचास सहस्र रक्षित सैन्य है उसका मै तुम्हे अधिनायक नियत करता हू। आवश्यकता होने पर उसका उपयोग मगध के लिये करना।"

युवक ने मौन भाव से सेनापति का आदेश ग्रहण किया। सेनापति ने कहा—"तो भद्र सोम, अब दो दण्ड रात्रि व्यतीत हो रही है। तुमने जिस कठिन असाध्य साधन का संकल्प किया है उसकी बेला निकट है। अपना अद्भुत काम करो। मै अनिमेष भाव से उसके फलाफल का निरीक्षण करूंगा।"

सोम अभिवादन करके जाने लगे तो सेनापति ने झपक कर उन्हे खींच कर छाती से लगा लिया और कहा—"ऐसे नहीं सोमभद्र, आज के अभियान का सेनानायक मै नहीं, तुम हो। अभिलाषा करता हू। कि सफल हो।"

सोम एक बार सेना नायक को मौन भाव से फिर अभिवादन करके चुप चाप चल कर अन्धकार में लीन होगया।

: ३७ :

आक्रमण

चन्दन नद में ज्वार आ रहा था। अपने बीस आरोहियों को लेकर एक नौका जल के प्रबल थपेड़ों पर नाचती हुई आकर निश्शब्द दक्षिण बुर्ज के नीचे रुक गई। साहसी माझी ने यत्न करके पत्थर की चट्टानों से टकराती लहरों से नौका को बचाकर ठीक बुर्ज के नीचे उसी चट्टान के निकट लगा दिया। सोम सबसे प्रथम चुपचाप नीचे उतरा। उस के पीछे अश्वजित् था। अश्वजित् ने बुर्ज के तल मे जाकर देखा, एक मजबूत रस्सी लटक रही है और शब उसकी यत्न से रक्षा कर रहा है। सोम का सकेत पाकर बीस योद्धा अपने २ खड्ग कोश से खींच और दातो मे दबा कर रस्सी की राह बुर्ज पर चढने लगे। तीन सौ हाथ ऊंची सीधी ढालू चट्टान पर स्थित उस बुर्ज पर चढ़ना कोई हसी खेल न था। परन्तु वीरो की यह टोली भी कोई साधारण टोली न थी। सबसे प्रथम शब, फिर अश्वजित् और उसके बाद एक के बाद दूसरा, कुल बीस योद्धा और सबके अन्त में सोम बुर्ज पर पहुच गये। प्रत्येक आदमी बुर्ज पर पेट के बल लेट गया। अश्वजित् का भाई पहरे पर नियुक्त था। उसने धीरे से सोम के निकट आकर कहा—'पहरा बदलने का समय हो गया है, सबसे पहिले नये प्रहरियो को काबू में करना होगा। वे चार है और आधे ही दण्ड मे वे आने वाले है। सोम ने अपने योद्धाओ को आवश्यक आदेश दिये। प्रत्येक व्यक्ति चुपचाप प्राचीर पर लेटा हुआ था और प्रत्येक के हाथ में नग्न खड्ग था।

चारो नये प्रहरी बेसुध चले आये और अनायास ही काबू कर लिये गये। एक शब्द भी नहीं हुआ।

सोम ने कहा—"अब ?"

"अब हमें सिंह द्वार के रक्षकों पर अधिकार करना होगा। कुल १६ है। परन्तु निकट ही २०० सशस्त्र योद्धा सन्नद्ध है। खटका होते ही वे आ जायेंगे।"

"देखा जायगा, समय क्या है ?"

अश्वजित् ने आकाश की ओर देखकर कहा—"तीन दण्ड रात्रि जा चुकी है।

"तो अभी हमें एक दण्ड समय है।"

इसके बाद अश्वजित् के भाई बाहुक की ओर देख कर उसने कहा—"मित्र, तुम्हें अभी और भी हमारी सहायता करनी होगी।"

"मैं मगध का सेवक हूं।"

"तो मित्र, यह मद्यभाण्ड लो और झूमते हुए सिंहद्वार तक चले जाओ। जितना सम्भव हो प्रहरियों को मद्य पिलाओ और तुम उन्मत्त का अभिनय करके वहीं पडे रहो, जब तक कि हम लोग न पहुंच जाय। ठीक चार दण्ड रात बीतने पर सेनापति दुर्गद्वार पर बाहर से आक्रमण करेंगे।

अश्वजित् के भाई ने हसकर कहा—"और तब तक यह सुवासित मद्य उनके पेट मे अपना काम कर चुकी होगी तथा सेनापति को द्वार उन्मुक्त मिलेगा। मैं अब चला। आप का कल्याण हो।"

सोम आवश्यक व्यवस्था मे जुट गये और उनके आदेश को ले ले कर उनके साहसी भट दांतों मे खड्ग दबाये सिंह द्वार के चारो ओर को पेट के बल खसकने लगे। सब कुछ निश्शब्द हो रहा था।

बाहुक ने सिंह पौर पर लडखडाते हुए पहुच कर कहा—"तुम्हारा कल्याण हो सामंत, किन्तु इसमें किसी का हिस्सा नहीं है।" उसने मद्य पात्र मुह मे लगा कर मद्य पी।

एक प्रहरी ने हस कर कहा—"अरे बाहुक, तुम हो, आज तो रंग है, कहा से लौट रहे हो ?"

"रंग महल से मित्र। बहार है, वहा वह पशुपुरी की अप्सरा आई है।"

कई प्रहरी जुट गये। "कौन आई है सामन्त ?"

"चुप रहो गुप्त बात है, पर्शुपुरी की रम्भा, महाराज आज पान नृत्य में व्यस्त हैं। प्रहरियों को भी प्रसाद मिला है यह, देखो।"

"वाह, वाह, तो सामन्त, एक चषक हमें भी दो।"

"वहां जाओ और ले आओ, इस में किसी का हिस्सा नहीं है।" उसने फिर पात्र मुंह में लगाया और एक ओर को लुढ़क गया।

एक प्रहरी ने मद्य पात्र छीनकर कहा—"वाह मित्र, हमें क्यों नहीं ? अरे वाह, अभी बहुत है। पिओ मित्रो, तेरी जय रहे सामंत।"

सब प्रहरियों ने मद्य ढालना प्रारम्भ की। बाहुक ने एक प्रेम संगीत गाना प्रारम्भ कर दिया। पीलू के स्वर उस टूटती रात में मद्य के घूंटों के साथ ही प्रहरियों के हृदयों को आन्दोलित करने लगे।

एक ने कहा—"सामंत, वह पर्शुपुरी की अप्सरा देखी भी है,,

"देखी नहीं तो क्या, अरे ! वह ऐसा नृत्य करती है और देव को मद्य ढाल कर देती है—देखोगे ?"

"वाह सामंत, क्या बहार है, नाचो तो तनिक, उसी भांति मद्य ढाल कर दो तो।"

बाहुक दोनों हाथ ऊंचे करके नृत्य करने लगा और नृत्य करते २ उसने मद्य ढाल २ कर प्रहरियों को पिलाना प्रारम्भ कर दिया। प्रहरी उन्मत्त हो—कई तो बाहुक के साथ नाचने लगे और कई उसके स्वर के साथ स्वर मिला कर गाने लगे। मद्य पात्र रिक्त हो गया।

सब मद्य प्रहरियों के उदर में पहुंच गया। तब बाहुक मद्य पात्र को पेट पर रख कर लेट गया और पात्र को ढोल की भांति पीट पीट कर बजाने और कोई विरह गीत गाने लगा। प्रहरी हंसते २ लोट पोट हो गये और उस विशिष्ठ मद्य के प्रभाव से फिर गहरी नींद में अचेत हो गये। बाहुक ने सावधान होकर प्रथम आकाश के नक्षत्र को, फिर चारों ओर अन्धकार से परिपूर्ण दिशाओं को देखा। अब चार दण्ड रात्रि व्यतीत हो रही थी।

: ३८ :

मृत्यु पाश

महाराजा दधिवाहन कुण्डनी के उज्ज्वल उन्मादक रूप पर मोहित हो गये। कुण्डनी के यौवन, मत्त नयन और उद्वेगजनित ओष्ट, स्वर्ण देहयष्ठि इन सबने महाराज दधिवाहन को कामान्ध कर दिया। वे उस पर मोहित हो कर ही उसे अपनी कन्या चन्द्रभद्रा की सखी बना कर रंग महल में लाये थे। पर जब उन्होंने जाना कि वह कुमारी है और चम्पापुरी का वह रत्नविक्रेता कोई ऐसा वैसा व्यक्ति नहीं, सम्राटों के समकक्ष सम्पत्तिशाली है, तो महाराज को रत्नविक्रेता की कन्या से विवाह करने की अभिलाषा जाग्रत हो गई।

आज वैशाखी पर्व का दिन था। इस दिन महाराज की आज्ञा से कुमारी चन्द्रभद्रा ने अपनी सखी कुण्डनी के आतिथ्य में नृत्य पान गोष्ठी का आयोजन किया था। जिसमें महाराज दधिवाहन ने भी भाग लिया था। अर्द्ध रात्रि व्यतीत होने तक पान नृत्य गोष्ठी होती रही। कुमारी अस्वस्थ्य होने के कारण जल्दी ही शयनागार में चली गई। कुण्डनी महाराज दधिवाहन का मनोरञ्जन करती रही। वह चषक पर चषक सुवासित मद्य महाराज को देती जा रही थी।

अवसर पाते ही महाराज ने दासियों और अनुचरों को वहां से चले जाने का संकेत किया। एकान्त होने पर महाराज ने कहा—"सुभगे कुण्डनी, तुम्हारा अनुग्रह अनमोल है।"

"देव, इतना शिष्टाचार एक साधारण रत्न-विक्रेता की कन्या के प्रति प्रकट करके उसे लज्जित कर रहे हैं।"

"नहीं, नहीं, कुण्डनी तुम्हारे पिता के पास अलौकिक रत्न हैं, पर तुम सा एक नहीं।"

"किन्तु देव, आपके महत्व में एक से एक बढ़कर रत्न है।"

"नहीं प्रिये कुण्डनी, मुझे कहने दो। मैं तुम्हारा अधिक अनुग्रह चाहता हू।"

"देव की क्या आज्ञा है ?"

'कुण्डनी प्रिये, मैं जानता हू—तुम अभी अदत्ता हो। क्या तुम चम्पा की अधीश्वरी बनना पसन्द करोगी ?"

कुण्डनी ने हंसकर कहा—"तो देव, मुझे पट्ट राजमहिषी का कोपभाजन बनाया चाहते हैं। लीजिये, एक पात्र।"

"परन्तु अनुग्रहसहित"

'कैसा अनुग्रह देव ?"

"इसे उच्छिष्ट कर दो प्रिये, अपने मृदुल अधरो का एक अणु रस इस मे मिला दो। प्रिये कुण्डनी, एक अणु रस।"

"यह चम्पाधिपति की मर्यादा के विपरीत है देव, चषक लीजिये। अभी मैं आप को कालनृत्य का अभिनय दिखाऊंगी।"

"तो यही सही प्रिय कुण्डनी, तुम्हारा नृत्य भी दिव्य है।"

कुण्डनी ने चषक महाराज के मुह से लगाकर नृत्य की तैयारी की। धीरे २ उसके चरणो की गति बढने लगी। महाराज दधिवाहन स्वय मृदङ्ग बजाने लगे। कुण्डनी ने प्रत्येक सम पर महाराज के निकट चुम्बन निवेदन करना प्रारम्भ कर दिया। और हर बार उस दुष्प्राप्य चुम्बन को प्राप्त न कर सकने पर चम्पाधिपति अधीर हो गये। नृत्य की गति बढती गई और मृदग का गम्भीर रव उस टूटती रात मे एक उन्मत्त वातावरण उत्पन्न करने लगा। उस एकान्त रात मे अनावृत सुन्दरी कुण्डनी की मनोरम देह नृत्य की अनुपम शोभा विस्तार कर रही थी और काम वेग से महाराज दधिवाहन की रक्त की गति असंयत हो गई थी। कुण्डनी ने अपनी चोली से एक छोटी सी थैली निकाली और उसमे से महानाग ने अपना फन निकालकर कुण्डनी के मुह के साथ नृत्य करना प्रारम्भ

किया। महाराज दधिवाहन एक बार भीत हुए, परन्तु मद्य के प्रभाव से वे मदमत होकर भी मृदग बजाते रहे। उनका सारा शरीर पसीने से लतपत हो गया था। परन्तु कुण्डनी की चरणगति अब दुर्धर्ष हो रही थी। इस समय उसने अपने अधरो पर दंश लिया।

नागराज कुण्डनी के अधर चुम्बन कर शान्त भाव से उसी बहु-मूल्य थैली में बैठ गये। विष की ज्वाला से कुण्डनी लहराने लगी। नृत्य से थकित और दंश से विवश उसकी पुष्पाभरण भूषिता सुरभित देहयष्टि धीरे २ महाराज दधिवाहन के निकट, और निकट, और निकट आकर नृत्य की नूतनतम कला का विस्तार करने लगी। विलास और शृगार का उद्दाम भाव उसके नेत्रो में आ व्यापा।

महाराज दधिवाहन ने मृदग फेंककर कुण्डनी को आलिगन पाश में कस लिया, और कुण्डनी फूलो के एक ढेर की भाति महाराज दधिवाहन के ऊपर झुक गई। महाराज दधिवाहन ने ज्यो ही कुण्डनी का अधरोष्ट चुम्बन किया, त्यो ही वह तत्काल मृत होकर पृथ्वी पर गिर गये। कुण्डनी हाफते २ एक ओर खडी होकर उनके निष्प्राण शरीर को देखने लगी।

: ३६ :

पलायन

इसी समय एक अग्निबाण वहा आकर गिरा, उसमे से अति तीव्र लाल रग का अग्नि-स्फुलिङ्ग निकल रहा था। उससे क्षणभर ही में उस सुसज्जित कक्ष में आग लग गई। बहुमूल्य कौशेय, उपाधान, पट्ट-वासक, और मणि जटित साज सज्जाऐं जलने लगी। देखते देखते एक, दो, तीन, फिर अनेक अग्निबाण रङ्गमहल के विविध स्थलों पर गिर-गिर कर आग लगाने लगे। महल धाय धाय जलने लगा। अत.पुर मे भीषण कोलाहल उठ खडा हुआ। मारकाट, शस्त्रो की झनकार, स्त्रियो की चीत्कार, और योद्धाओ की हुकार से दिशाऐ भर गई। बहुत से सैनिक इधर उधर दौडने लगे।

कुंडनी ने महाराज दधिवाहन के पार्श्व में पडा खड्ग उठा लिया, और एक कौशेय से कस कर अङ्ग लपेट लिया। इसी समय रक्त से भरा खड्ग हाथ में लिये आकर सोम ने कहा–"कुण्डनी, शीघ्रता करो, एक क्षण विलम्ब करने से भी राजनन्दिनी की रक्षा नही हो सकेगी। तुम उन्हे लेकर गुप्त द्वार से अश्वशाला के पार्श्व भाग मे आओ, वहा अश्व सहित रथ है, तुम सीधे श्रावस्ती का मार्ग पकडना। मेरी प्रतीक्षा में रुकना नही, अपना कार्य पूर्ण कर मै कही भी मार्ग में मिल जाऊगा।"

कुण्डनी ने एक क्षण भी विलम्ब नहीं किया, वह राजनन्दिनी के शयन कक्ष की ओर दौड चली। चारो ओर धुआ और अन्धकार भरा हुआ था, राजकुमारी अकस्मात् नींद से जाग कर इस आकस्मिक विपत्ति से त्रस्त हो शयन कक्ष के द्वार पर अपने शयन काल के असम्पूर्ण परिधान मे ही विमूढ़ बनी खडी थी। कोई दासी, चेटी,

कंचुकी या प्रहरी वहां न था, कुण्डनी को देख कर कुमारी दौड कर उससे लिपट गई। उसने कातरकण्ठ से कहा—"क्या हुआ है हला ? यह सब क्या हो रहा है ?"

"दुर्भाग्य है राजनन्दिनी, दुर्ग पर शत्रुओं का अधिकार हो गया, और वे अन्तःपुर में घुस आए हैं, महाराज दधिवाहन मारे गए, प्राण लेकर भागो राजकुमारी।"

राजकुमारी को काठ मार गया। उसके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला। वह जडवत् आंखें फाड फाड कर कुण्डनी की ओर देखती रही।

कुण्डनी लपकती हुई भीतर गई, एक उत्तरवासक उठा लाई और उसे कुमारी के शरीर पर लपेटती हुई बोली—"साहस करो हला, अभी गुप्त द्वार तक कदाचित् शत्रु नहीं पहुंचे हैं। आओ हम भाग निकलें। अब एक क्षण का भी विलम्ब घातक होगा।"

एक प्रकार से वह उसे घसीटती हुई सी गुप्तद्वार के बाहर ले आई। बाहर आकर उसने देखा—अन्तःपुर से बडी बडी आग की लपटें उठ रही हैं। चारों ओर योद्धा हाथ में मशालें लिये दौड रहे हैं। घायलों का आर्तनाद और मारकाट का घमासान बढ़ रहा था। राजकुमारी ने अश्रुपूरित नेत्रों से देख कर कुछ कहना चाहा, पर शब्द उसके होठों से नहीं निकले, होठ केवल कांप कर रह गये। उसका अंग भी बेंत की भांति कांप रहा था। कुण्डनी ने उसे अपने और निकट करके, ढांरस दी। इसी समय शंब ने ओट से निकल कर अश्व उपस्थित किये।

कुण्डनी का प्रिय अश्व धूम्रकेतु और दो ऊंची रास के अश्व तैयार थे। कुमारी को कुण्डनी ने सहायता देकर धूम्रकेतु पर सवार कराया और स्वयं सवार होकर राज मार्ग पर आ गई। उसने कहा—"जम कर बैठना कुमारी, हमें द्रुतगति से भागना होगा।"

राजकुमारी ने शोकपूरित स्वर में कहा—"किन्तु हम जायेंगे कहां ?"

"जहा आपके मित्र हो।"

"क्या तुम्हारे पिता हमारी रक्षा नही कर सकेंगे ?"

"कौन जाने वे निरापद भी है या नही।"

"किन्तु मैने तुम्हे उनसे अपनी सुरक्षा में लिया था।"

"यह समय इन बातों पर विचार करने का नही है।"

"किन्तु तुम क्यो मेरे लिये विपत्ति में पडोगी सखी ?" कुमारी की आखो से झर झर आसू बह चले।

कुण्डनी ने कहा—"मै प्राण देकर भी इस विपत्ति में तुम्हारी रक्षा करूगी राजकुमारी।"

"परन्तु हम निरीह अबला ?"

"क्यो, यह सेवक और मेरा वह दास।"

'वह कहा है ?'

"मार्ग मे मिल जायगा ? मुझे आशा है, हमारी सहायता को उसने यह सेवक भेजा है।"

"इस पर विश्वास किया जा सकता है सखी ?"

कुमारी के प्रश्न पर कुण्डनी की आंखे भी गीली हो गईं। उसने कहा—"यह खड्ग लो कुमारी।"

"और तुम ?"

"मेरे पास दूसरा अस्त्र है। शब, तुम सावधानी से हमारे पीछे चलो। तो कुमारी, क्यो न हम श्रावस्ती चलें।"

"वही चलो सखी, वहाँ भगवान् महावीर है। वे मेरे गुरु है।"

"तब तो बहुत अच्छा है।" और उसने अश्व को संकेत किया। असील जानवर हवा में तैरने लगे। उनका धूम्रकेतु समुद्र पार के द्वीप से उपानय में आया हरे तोते के रग का अद्भुत अश्व था। उस जाति के अश्व बहुत दुर्लभ थे। उसकी गति विद्युत के समान, और देह की दृढता वज्र के समान थी। तीनो यात्री तेजी से बढ़ते चले गये।

दिन का प्रकाश फैल गया, देखते ही देखते सूर्योदय हो गया। उसकी सुनहरी किरणें दोनों अश्वारोहियों के थकित चेहरों पर पड़ कर उपहास सा करने लगी। शब ने इधर उधर देखा। उसने देखा सामने एक पर्वत के शृङ्ग पर सोम वस्त्रखण्ड हिला हिला कर संकेत कर रहे थे। शब ने देखकर हर्ष से चीत्कार कर उधर ही अश्व फेंका। दोनों बालाओं ने भी उसका अनुगमन किया। चलते २ कुण्डनी ने कहा—"वहां मीठा पानी, बनफल या आखेट अवश्य मिलेगा।' परन्तु राजनन्दिनी बोलने की चेष्टा करके भी बोल न सकी।

———

: ४० :

चम्पा का पतन

दुर्ग के दक्षिण बुर्ज पर मागध तुरही बजते ही दुर्ग के सिंह द्वार पर आघात हुआ। प्रहरी मद्य से अचेत थे। एक दो कुछ सचेत थे उन्होंने कहा—"कौन है ?"

बाहुक ने कहा—"पिशाच होगा। एक चषक मद्य मागने आया है। वह मैं नहीं दूंगा। तुम पिओ मित्र।" उसने भाण्ड प्रहरी के मुंह से लगा दिया। परन्तु भाण्ड में एक बूंद भी मद्य न था। प्रहरी को भी पूरा होश न था। उसने भाण्ड में हाथ डाल कर कहा—"तुम गधे हो सामन्त, मद्य यहां कहां है ?"

"क्या मैं गधा हूं ? ठहर पाजी, बाहुक ने उसकी गर्दन में बाहु डाल कर गला दबोच लिया। प्रहरी दम घुटने से छटपटाने लगा। इसी समय पेट के बल रेंगते आकर एक आदमी ने खड्ग उसके कलेजे में पार कर दिया। उसी क्षण तीन चार आदमी इधर उधर से निकल आए और उन्होंने प्रहरी के वस्त्रों से चाभी निकाल कर द्वार खोल दिया। जो एक दो प्रहरी अभी भी होश में थे, उन्होंने कुछ बोलने की चेष्टा की पर वे तुरन्त मार डाले गए। फाटक खुल गया और सेनापति धड़धड़ाते हुए दुर्ग में घुस गए। उन्होंने दौड़ कर दक्षिण बुर्ज पर मागध झण्डा फहरा दिया। क्षणभर ही में मार काट मच गई। परन्तु ज्यों ही महाराज दधिवाहन का मृत शरीर लाकर चौगान में डाला गया, चम्पा के सैनिकों के छक्के छूट गये। इसी समय पूर्व में सफेदी दिखाई दी और उसी के साथ ही चम्पा में विद्रोह के लक्षण दीख पड़ने लगे। सूर्योदय होते ही विद्रोहाग्नि फूट पड़ी। सैकड़ों नागरिक जलती मसालें और खड्ग लेकर नगर में आग लगाने और लोगों को

मारने काटने लगे। हाट, वीथी और जनपद सभी बन्द हो गये। चम्पा जय हो गया। एक पहर दिन व्यतीत होते २ दुर्ग और नगर सर्वत्र मगध सेनापति चण्डभद्रिक का अधिकार हो गया। उन्होंने एक ढंढोरा पिटवा कर प्रजा को अभय किया, तथा नई व्यवस्था कायम की। अब उन्हें सोम का स्मरण हुआ। उन्होंने सोमप्रभ को बहुत ढूंढा परन्तु सोमप्रभ का उन्हें पता नहीं लगा। कुमारी चन्द्रभद्रा का भी कोई पता नहीं लगा। राजकुल की अन्य स्त्रियों का समुचित प्रबन्ध कर दिया गया। महाराज दधिवाहन का मर्यादा के अनुकूल अग्नि संस्कार किया गया।

———

: ४१ :

वादरायण-व्यास

वैशाला के ठीक ईशान कोण पर लगभग वैशाली और राजगृह के अर्ध मार्ग मे—पाटलीपुत्र से थोडा पूर्व की ओर हट कर गगा के उपकूल पर एक बहुत प्राचीन मठ था। वह मठ वादरायण मठ के नाम से प्रसिद्ध था। उस मठ की बडी भारी प्रतिष्ठा थी। देशदेशान्तरो के सम्राटो और सामन्तो से समय समय पर अर्पित ग्राम, सुवर्ण और गौ तथा भू सम्पत्ति से मठ बहुत सम्पन्न था। राजा और रक दोनो जनों का वहा नित्य आवागमन बना रहता था।

मठ की ख्याति और उसकी प्रतिष्ठा जो दिगदिगन्त में फैल रही थी, उसका कारण भगवान वादरायण व्यास थे, जो इस मठ के गुरुपद थे। उनके चरणो मे बैठ कर देशदेशान्तरो के वटुक विविध विद्याओ का अध्ययन करते और ज्ञान सम्पदा से आपूर्यमाण होकर अपने देशो को लौटते थे।

भगवान वादरायण कब से मठ के अधीश्वर है, यह कोई नही जानता। न कोई यही कह सकता है कि उनकी आयु कितनी है। वे आज जैसे है वैसे ही लोग न जाने कब से उन्हे देखते आ रहे है।

भगवान् वादरायण धवल कौशेय धारण करते है। उनके सिर और डाढ़ी के बाल अति शुभ्र चादी के समान है जो उनके गौरवर्ण—तेजस्वी मुखमण्डल पर अत्यन्त शोभायमान प्रतीत होते है। उनकी सम्पूर्ण दन्तपक्ति बहुमूल्य मुक्तापक्ति के सामान शोभनीय है। उनका अनवरत मृदुमन्द हास्य शरद कौमुदी से भी शीतल और तृप्तिकारक है। वे बहुत कम शयन करते है, अपरान्ह में केवल एकबार हविष्यान्न आहार करते है। आज तक किसी ने उन्हे क्रुद्ध होते नही देखा। उनका पण्डित्य

अगाध है, और उनकी विचार धारा असन्दिग्ध ह । उनकी दार्शनिक सत्ता लोकोत्तर है । वे महासिद्ध त्रिकालदर्शी महापुरुष विख्यात है ।

उनका कद लम्बा, देह दुर्बल किन्तु बलिष्ठ है । नासिका उन्नत, ललाट प्रशस्त, नेत्र मासल, स्निग्ध और महातेजवान है । जिनमे भूत-दया, दिव्य ज्ञान, एव समदर्शीपन की स्निग्ध धारा निरन्तर बहती रहती है ।

कोई उन्हे भगवान् बादरायण कहते है कोई केवल भगवान् कहते हैं, किन्तु बहुत जनपद उन्हे कोई सम्बोधन ही नही करते । वे उन्हे देख कर ससंभ्रम पीछे हट जाते है, अथवा पृथ्वी मे गिर कर प्रणतिपात करते है ।

वे दोपहर रात रहते शैया त्याग देते है और गर्भगृह मे जाकर समाधिस्थ विराजते है, फिर ऊषा के उदय होने पर मठ के अन्तराल मे आकर प्रहर दिन चढे तक वटुको को ज्ञान दान देते है । इसके बाद व्याघ्र चर्म पर बैठ कर सर्व साधारण को दर्शन देते तथा उनसे वार्तालाप करते है । मध्यान्ह होने पर वे आवश्यकीय मठ प्रबन्ध सम्बन्धी व्यवस्थाओ की आज्ञाये प्रचारित कराते और फिर अन्तरायण मे जा विराजते है । उस काल वे शास्त्र लेखन अथवा अदृष्ट गणना करते है । अथवा किसी महत्वपूर्ण विषय पर विचार गवेषणा करते है ।

भगवान बादरायण के इस नित्यविधान में कभी किसी ने व्यति-क्रम नहीं देखा । न कभी वे रोगी, पीडित, थकित या क्लान्त देखे गए । ऐसे ही भगवत बादरायण व्यास थे, जिनकी ख्याति उन दिनो दिग्दिगन्त मे फैली थी ।

भादो का सन्ध्या काल था । आकाश पर काली घटायें छा रही थी । गंगा का विस्तार सागर के जैसा हो रहा था, उस पार दूर तक जल ही जल दीख पडता था । लतागुल्म सब जल मग्न हो गये थे । वृक्ष आधे जल में डूबे दूर से लतागुल्म जैसे प्रतीत होते थे । अभी दिन का थोड़ा प्रकाश शेष था ।

वटुकगण सान्ध्य अग्निहोत्र कर चुके थे। भगवान बादरायण मठ के पश्चिम ओर के प्रान्त भाग मे एक ऊचे शिलाखण्ड पर खडे भागीरथी गगा का यह विस्तार देख रहे थे। उन्ही के निकट एक ब्रह्मचारी युवा विनम्र भाव से खडा था। ब्रह्मचारी की आयु तीस-बत्तीस वर्ष की थी। उसकी छोटी सी काली डाढी ने उसके तेजवान् मुख की दीप्ति को और भी बढा दिया था। उसका बलिष्ठ अङ्ग कह रहा था कि वह ब्रह्मचारी असाधारण शक्ति सम्पन्न है।

भगवान बादरायण बोले—'सौम्य मधु, गगा का विस्तार तो बढता ही जाता है, उस ओर के जो ग्राम डूब गए थे, वहा उपयुक्त सहायता भेज दी गई है न ?"

ब्रह्मचारी ने विनयावनत होकर कहा—"भगवन् के आदेश के अनुसार दो सौ नावे कल ही भेज दी गई थी। वे अपना कार्य कर रही है। औषध और अन्न वितरण भी हो रहा है और पीडित क्षेत्रो के स्त्री बच्चो एव वृद्धो को सर्वप्रथम उठा २ कर रक्षा क्षेत्रों में पहुचाया भी जा रहा है।"

"किन्तु क्या यह पर्याप्त है मधु ?"

"पर्याप्त तो नही है भगवन्, परन्तु अभी और अधिक व्यवस्था नही हो सकी। हमारी बहुत सी नौकाएं बह भी तो गई है ? फिर माझियो की कठिनाई है, प्रात काल और सौ नावे जा रही है।"

"यह अच्छा है, परन्तु चिकित्सा और खाद्य सामग्री क्या प्रचुर मात्रा मे है ?"

"जी हा भगवन्, परन्तु चिकित्सको की कमी है, फिर भी रक्षण क्षेत्र मे सर्वोत्तम चिकित्सा व्यवस्था है।"

"व्यवस्था तो विपद् क्षेत्रो में भी होनी चाहिए मधु, ये सभी ग्रामवासी अति निरीह है, और इस बार तो उनका घरबार, धान्य सभी बह गया, क्यो न ?"

भगवान् बादरायण की वाणी करुणा से आर्द्र हो गई।

ब्रह्मचारी ने कहा—

"सत्य है, परन्तु भगवन्, वैशाली और राजगृह से चिकित्सक मंगाए गये है, उनके आने पर सब व्यवस्था ठीक हो जायगी। और बाढ का जल घटते ही मठ की ओर से उनके घर द्वार निर्माण करने एवं बीज देने की यथावत व्यवस्था हो जायगी।"

"ऐसा ही होना चाहिए। परन्तु क्या गणपति को तुमने सहायता के लिए नही लिखा? ये ग्राम तो वज्जीगण ही के है?"

"जी हा भगवन्, लिख दिया है। आशा है उपयुक्त सहायता शीघ्र मिल जायगी।"

भगवान् बादरायण हर हर करती गंगा की अपरिसीम धारा को देखते रहे, फिर कुछ देर बाद स्निग्ध स्वर मे कहा—"ठीक है मधु, साध्य कृत्य का समय हो गया। चलो अब भीतर चले। परन्तु मधु, आज एक सम्भ्रान्त अतिथि आने वाले है, वे गगा की राह आवेगे या राजमार्ग से, यह नही कहा जा सकता। दोनो ही मार्ग अगम्य है, परन्तु वे आवेगे अवश्य, तुम उनकी प्रतीक्षा करना, और उनके विश्राम आदि की यत्न से सम्यक् व्यवस्था कर देना। तथा ऊषाकाल मे उन्हे मेरे पास गर्भगृह मे ले आना।"

वटुक ने मस्तक नवा कर आदेश ग्रहण किया। फिर आगे २ भगवान् बादरायण व्यास और उनके पीछे वह ब्रह्मचारी दोनो मठ की ओर चल दिये।

———

: ४२ :

सम्मान्य अतिथि

सान्ध्य कृत्य समाप्त हुआ। भगवान् वादरायण गर्भगृह मे चले गये। ब्रह्मचारी उन्हे गर्भगृह के द्वार तक पहुचाकर पदवन्दन करके प्राङ्गण म लौट आया। अन्य वटुक भी अपने २ स्थानो को लौट गए। पार्श्वदगण इधर उधर दौड धूप करके अपना २ काम करने लगे। अनावश्यक दीप बुझा दिये गये। अपना कार्य समाप्त करके पार्श्वदगण भी विश्राम के लिये चले गए। केवल वही तरुण ब्रह्मचारी प्राङ्गण में रह गया। पार्श्वदो को उसने कुछ आवश्यक आदेश दिये। गुरुपद के आदेशो की पूर्ति भी उसने यथासाध्य की। फिर वह एक मर्मर स्तम्भ पर पीठ का सहारा ले एक व्याघ्र चर्म पर चुपचाप बैठ कर कुछ चिन्तन करने लगा।

आकाश मे बादल घिर रहे थे। उनके बीच कभी २ चतुर्थी का क्षीणकाय चन्द्र दीख पडता था, जिससे रात्रि का अन्धकार थोडा प्रतिभासित हो उठता था। एकाध तारे भी कभी २ दृष्टिगोचर हो आते थे। ब्रह्मचारी कभी आखें बद किये और कभी खोलकर देख लेता था। उसका ध्यान गुरुपद की आज्ञा पर था। कौन वह सम्मान्य अतिथि आज रात को आने वाले है, जिसके लिए गुरुपद ने इतने यत्न से आदेश दिया है। उसी की अभ्यर्थना के लिये उन्होने हठपूर्वक रात्रि जागरण करने का निश्चय कर लिया।

दो दण्ड रात्रि व्यतीत होने पर उस नीरव रात्रि मे उन्हे प्रतीत हुआ—जैसे सुदूर पर्वत उपत्यका से कुछ अस्फुट शब्द रुक २ कर आ रहा है। थोड़ी ही देर मे वह सावधान होकर सुनने लगा। वह समझ गया कि अश्व पद्ध्वनि है। अश्व एक नही अधिक है। कुछ ही

देर मे मठ के पीछे के प्रान्त द्वार पर प्राचीर के निकट कुछ आहट प्रतीत हुई। वह समझ गया कुछ अश्वारोही उधर आये है। वह झटपट अपने उत्तरवासक को कमर मे लपेटकर मठ के प्रान्त द्वार पर गया। अन्धेरे मे पहिले कुछ नही दीखा। फिर देखा कोई दस हाथ के अन्तर पर एक मनुष्य की छाया है, पार्श्व मे दो अश्व है।

उसने दोनों हाथ ऊचे करके कहा—"भन्ते अतिथि, आपका मठ में स्वागत है, मै भगवान् वादरायण के आदेश से आपके स्वागतार्थ प्रतीक्षा कर रहा था।"

ब्रह्मचारी का वचन सुन कर छाया मूर्ति अन्धकार से आगे बढी। मन्दिर के क्षीण आलोक मे ब्रह्मचारी ने देखा—वह एक वृद्ध भट है। उसके शस्त्र तारों के क्षीण प्रकाश मे चमक रहे थे। वृद्ध ने मस्तक झुकाकर ब्रह्मचारी को अभिवादन करके कहा—

"हमे क्षमा करे भन्ते मार्ग मे बहुत वर्षा होने से हमे अति विलम्ब होगया और असमय मे आपको कष्ट देना पडा।"

"कोई हानि नहीं, भगवन् ने मुझे प्रथम ही आदेश दे दिया था।"

परन्तु इतना कह कर भी ब्रह्मचारी कुछ असमजस म पड गया। वह सोचने लगा यह साधारण वृद्ध भट ही क्या वह सम्मान्य व्यक्ति है? जिसने उसे 'भन्ते' कह कर और अभिवादन करके अपनी लघुता प्रकट की है! वह ध्यान से आगन्तुक को देखने लगा। आगन्तुक ने कहा—

"भगवन् वादरायण, त्रिकालदर्शी है।" और तब पीछे खडी दूसरी छाया मूर्ति की ओर देखा।

ब्रह्मचारी ने उसे अभी नही देखा था। वह छाया मूर्ति भी आगे बढ़ी। ब्रह्मचारी उसे उस धूमिल प्रकाश मे देखकर स्तम्भित हो गया। वह स्वप्न मे भी नहीं सोच सका था कि जिस सम्मान्य अतिथि की वह प्रतीक्षा कर रहा था, वह कोई महिला है। उसने एक ही दृष्टि से देखा महिला असाधारण सुन्दरी और गौरवशालिनी है। उसने आगे बढ़कर युवा ब्रह्मचारी से मधुर शब्दो मे कहा—"भणे ब्रह्मचारी,

हम लोग बहुत थक गये हैं, वस्त्र भी सब भीग गये हैं, अश्वो को भी दाना पानी नही मिला। कष्ट करके अभी हमारे विश्राम की व्यवस्था कर दीजिए, प्रभात म हम भगवन् वादरायण की पादवन्दना करेंगे। असुविधा के लिये क्षमा कीजिए।"

तरुण ब्रह्मचारी को जब गुरुपद ने आग्रहपूर्वक एक सम्भ्रान्त अतिथि के आने का संकेत किया था, तब वह अवश्य ही कोई महा-महिम अतिथि होगा, युवक यह बात समझकर विनय से बोला—"देवी, इधर से पधारें।"

आगे २ ब्रह्मचारी और उनके पीछे अतिथि पेचीले मार्गों से घूमते हुए मठ के भीतरी प्राङ्गण मे आए। वृद्ध भट ने सकोच से कहा—

"किन्तु अश्व ?"

"उनकी व्यवस्था हो जायगी, आप चिन्ता न करें।"

फिर कोई नही बोला। ब्रह्मचारी ने एक सुसज्जित कक्ष में लेजाकर अतिथियो को ला खडा किया। कक्ष मे विश्राम और सुख के सब राजसी साधनो को देख कर अतिथि स्तम्भित रह गये। महिला ने मृदु मन्द हास्य से कहा—

"भगवान वादरायण का ऐसा वैभव है ?"

ब्रह्मचारी ने संकुचित होकर कहा—'समुचित व्यवस्था नही कर सका, गुरुपद ने सन्ध्या समय ही आदेश दिया था। आपको कोई आवश्यकता हो तो कहिए।"

"नही, नही, कुछ नहीं, हमे केवल विश्राम ही की आवश्यकता है।"

"तो देवी सुख से विश्राम करें, थोडा गर्म दूध और हविष्यान्न मैं अभी भिजवाता हू।"

"साधु ब्रह्मचारी, किन्तु भगवान् वादरायण को हमारे आगमन की सूचना होनी आवश्यक है।"

"उसकी आवश्यकता नही, भगवान का आदेश है, कल ऊषाकाल

में गुरुपद के आपको दर्शन होंगे । मै स्वय आपको गर्भ गृह मे ले जाऊगा ।"

"जैसी भगवान वादरायण की इच्छा, तो अब हम विश्राम करेंगे ।"

ब्रह्मचारी विनय से मस्तक झुका कर मठ के बाहरी प्राङ्गण की ओर धीरे धीरे अग्रसर हुआ । मठ के बाहरी प्राङ्गण में सन्नाटा था । वह प्राङ्गण को पार करता हुआ विश्राम के लिये अपनी कुटिया का ओर मठ के उत्तर प्रान्त से जा रहा था । मठ के उत्तर द्वार की पीठिका के निकट एक एकान्त स्थान पर उसकी कुटिया थी । वहा जाने के लिये उसे विस्तृत सम्पूर्ण प्राङ्गण, अन्तर्भूमि और बाहरी विस्तृत भू भाग पार करना पडा । अभी केवल दो स्थूल दीप बाहरी दीवाधारो मे जल रहे थे, उन्ही के प्रकाश मे उसने देखा, उत्तरद्वार के सम्मुख वडा पौर के निकट एक मनुष्य मूर्ति दीपस्तम्भ के नीचे खडी है । प्रथम उसे भ्रम हुआ, फिर निश्चय होने पर उसने उसके तनिक निकट जाकर पुकारा—"कौन है ?"

उत्तर सक्षिप्त मिला—

"अतिथि ।"

ब्रह्मचारी ने बिल्कुल निकट जाकर देखा । अतिथि असाधारण है । वह एक दीर्घकाय बलिष्ठ एव गौर वर्ण पुरुष है, उसकी मुखाकृति अति गम्भीर, आकर्षक और प्रभावशाली है । उसकी बडी २ आखो से शक्ति का स्रोत बह रहा है । उसके वस्त्र बहुमूल्य है । उष्णीष की मणि उस अन्धकार मे भी शुक्र नक्षत्र की भाति चमक रही है । कमर मे एक विशाल खड्ग है, और हाथ मे एक भारी बर्छा । खड्ग पर मणि माणिक्य जडे है । जो उस अन्धकार मे भी चमक रहे है । वह थकित भाव से अपने बर्छे पर सहारा लिए खडा है ।

देख कर ब्रह्मचारी दो कदम पीछे हट गया । फिर ससम्भ्रम आग बढ़ कर उसने कहा—"भन्ते, मै आपकी क्या सेवा कर सकता हू ?"

"मुझे रात्रि व्यतीत करने को थोडा स्थान चाहिए, और यदि थोडा गर्म दूध मिल जाय तो अत्युत्तम है।"

ब्रह्मचारी कुछ असमजस में पड कर बोला "किन्तु इस समय उपयुक्त "

"नही, नही, आयुष्मन्, शिष्ठाचार की आवश्यकता नही, भगवत बादरायण के पुनीत स्थान मे सब उपयुक्त है।"

"तब आप आइये मेरी कुटीर मे।"

और बात चीत नही हुई। कुटी मे आकर ब्रह्मचारी ने दीप जलाया। इस बार उसने फिर अतिथि की ओर देखा, अपनी क्षुद्र एव दरिद्र कुटिया मे इस अतिथि को लाने के कारण वह सकुचित हो गया।

कटिया छोटी ही थी। उसमे बीच मे एक काष्ट फलक पर कृष्णाजिन बिछा था। एक भद्र पीठ पर जल का पात्र, थाडी पुस्तके और एक दो आवश्यक वस्तु ही वहा थी। हा, प्रकृण्डच पर दो उत्तम धनुष, एक विशाल बर्छा तथा कई उत्कृष्ट खड्ग लटक रहे थे। अतिथि ने क्षणभर मे ही दृष्टि घुमा कर सारी कुटिया और वहा की सामग्री को देख डाला। फिर हस कर कहा—"अच्छा, तो यह तुम्हारी ही कुटी है, आयुष्मान ?"

"जी हा, भन्ते"

"और ये पुस्तके, कृष्णाजिन ?"

"सब मेरे ही उपयोग की है।"

"बहुत ठीक, परन्तु ये शस्त्रास्त्र ?" उन्होने हठात एक धनुष को दीवार से खीच कर क्षण भर ही मे उसकी प्रत्यञ्चा चढादी।

तरुण ने अतिथि के असाधारण सामर्थ्य और हस्तलाघव से चमत्कृत हो कर कहा—"कभी २ गुरुपद मुझे अभ्यास कराते है।"

"साधु आयुष्मन्, इसकी कभी आवश्यकता पड सकती है।" उन्होने रहस्यपूर्ण हास्य होठो मे लाकर धनुष को दीवार पर टाग दिया। "तो

मे इस कृष्णाजिन पर विश्राम करूगा, किन्तु तुम ?"

"मेरे लिए बहुत व्यवस्था है भन्ते, यह पात्र मे दूध है और सूखा हुआ कौशेय प्रावार और कौजव खूटी पर है।"

"ठीक है आयुष्मन्, किन्तु तुम्हारा नाम क्या है ?"

"माधव, भन्ते, किन्तु गुरुपद मझे मधु कहते है।"

"तो मै भी यही कहूगा। मधु आयुष्मन्, अब मै भी विश्राम करूंगा।"

"क्या भगवतपाद में निवेदन करना होगा।"

"नही, नहीं, प्रभात मे देखा जायगा।"

बटुक क्षणभर कुछ सोच कर चला गया। वह सोच रहा था, यह अधिकारपूर्ण स्वर से बात करने वाला तेजस्वी अतिथि कौन है ? और वह असाधारण महिला ? आज दो दो महार्घ अतिथि मठ मे आए है, परन्तु गुरुपद ने तो एक ही का सकेत किया था। वह सकत किस के प्रति था ?

बहुत देर तक बटुक विचार करता रहा। फिर वह अलिन्द के एक स्तम्भ का ढासना लगा कर सो गया।

: ४३ :

गर्भ गृह में

गर्भगृह में माधव ब्रह्मचारी के साथ हठात् अम्बपाली को आते देख भगवान् बादरायण व्यास ने आश्चर्यमुद्रा से कहा--

"अरे, देवी अम्बपाली ?"

माधव ब्रह्मचारी ने ज्यों ही वह अतिश्रुत नाम सुना, वह अकचका कर अम्बपाली की ओर ताकता रह गया।

अम्बपाली ने पृथ्वी पर गिर कर प्रणतिपात किया। भगवान् बादरायण ने स्वस्ति कहकर कहा—"तुम्हारा कल्याण हो, जनपद कल्याणी अम्बपाली, कहो, तुम्हारा यह अकस्मात् आगमन क्यों ?"

'अविनय क्षमा हो, मैं प्रथम से बिना ही आदेश पाए चली आई, किन्तु सर्वदर्शी भगवत्पाद ने इस अकिञ्चन के विश्राम आतिथ्य की जो असाधारण व्यवस्था की, उससे मैं अति कृतार्थ हुई।"

"किन्तु-किन्तु ! भगवान् बादरायण ने तरुण वटुक की ओर प्रश्न सूचक दृष्टि से देखा।

ब्रह्मचारी ने अटकते हुए कहा--"भगवत्पाद का आदेश यथा-शक्ति पालन किया गया।"

"क्या रात्रि में और कोई अतिथि नहीं आए ?"

माधव ने सावधान मुद्रा से कहा—"एक राजवर्गी सामन्त भी है। इसी समय एक छाया ने गर्भगृह मे प्रवेश किया। उसे देखकर भगवान् बादरायण कुछ असयत हुए। उन्होंने दोनो हाथ उठा कर कहा—

"मगध सम्राट् की जय हो।"

तब तक मगध सम्राट् का मस्तक भगवान बादरायण के चरणों में झुक गया।

सम्राट का नाम सुनते ही माधव स्तम्भित हो गया। वह अपनी अविनय पर विचार करने लगा। भगवत पाद के सकेत से उसने आसन की व्यवस्था की।

स्वस्थ होकर बैठने के बाद सम्राट् ने हंस कर कहा—"भगवत्पाद का आशीर्वाद विलम्ब से मिला। प्रसेनजित ने मुझे करारी हार दी है, अभियान के समय मै भगवत्पाद के दर्शन नही कर सका। बार्षभि विदूडभ ने मुझे डुबोया। उसी ने लिखा था कि श्रावस्ती पर अभियान का यही समय है, बूढे कामुक महाराज प्रसेनजित अब कुछ न कर सकेगे, वे कौशाम्बीपति उदयन से उलझे हुऐ है और सेनापति कारायण से मिलकर मै सम्पूर्ण सेना मे विद्रोह कर दूगा।"

"और सम्राट् उसी के बल पर श्रावस्ती पर चढ़ दौडे।" भगवान बादरायण ने मन्दस्मित करके कहा। सम्राट् ने लज्जा से सिर झुका लिया। भगवान बादरायण फिर बोले –

"बन्धुलमल्ल और उसके बारह परिजनो के विक्रम का विचार नहीं किया ?"

"आर्य वर्षकार ने आपत्ति की थी, वे पूरी शक्ति चम्पा विजय मे लगा कर तब इधर ध्यान देने के पक्ष में थे।"

कुछ देर चुप रह कर भगवान बादरायण ने कहा--

"आप आऐ कब ?"

"मध्य रात्रि के बाद। मै अश्व पर निकला था, पर राह मे वह मर गया। तब नौका पर चला, एक स्थल पर नौका उलट गई। तब मै तैर कर मध्य रात्रि मे यहा पहुचा। आयुष्मान् मधु का मैने रात आतिथ्य ग्रहण किया और उसी की कुटिया में रात व्यतीत की।"

भगवान बादरायण ने प्रश्नसूचक दृष्टि से माधव की ओर देखा। मधु ने लज्जित होकर कहा–"अविनय क्षमा हो, मै सम्राट् को पहचान न सका। गुरुपद का आदेश कदाचित·· " वह अम्बपाली की ओर देखकर चुप हो गया।

अम्बपाली की ओर अभी तक सम्राट् की दृष्टि नहीं गई थी। अब उन्होंने भी इधर देखा। घृत दीप के मन्द पीत प्रकाश में अम्बपाली उन्हें एक सजीव चम्पक पुष्प गुच्छ सी दीख पड़ी।

इसी समय भगवान् वादरायण खिलखिला कर हंस पड़े। दोनों ने चकित होकर उनकी ओर देखा। उन्होंने कहा—

"खूब हुआ, सम्राट के लिये जो व्यवस्था की गई थी, उसका देवी अम्बपाली ने उपयोग किया। फलतः सम्राट् को माधव की कुटिया के काष्ठ फलक पर रात्रि व्यतीत करनी पड़ी।"

अम्बपाली ने आगे बढ़ और करबद्ध हो सम्राट् का अभिवादन किया। फिर मधुर कण्ठ से कहा—"सम्राट् की जय हो, मुझ से अनजानते ही यह अपराध हो गया।"

सम्राट् ने हसकर कहा—"आप्यायित हुआ। यह जानकर कि जनपद कल्याणी देवी अम्बपाली ने मेरे लिए नियोजित कक्ष में शयन सुख उठाया, हर्षित हुआ।"

"अनुगृहीत हुई।"

"भला, एक अनुग्रह तो स्वीकार किया देवी अम्बपाली ने। अब मुझे प्रसेनजित से पराजय का क्षोभ नहीं है।" सम्राट् ने हसकर दोनों हाथ फैलाए।

भगवान् वादरायण ने हसकर कहा—

"लाभ है, लाभ है, सुश्री अम्बपाली, तो मैं आज रात्रि में तुम से वार्तालाप करूंगा।"

"जैसी आज्ञा भगवन्!" उसने प्रथम भगवान वादरायण को और फिर मगध सम्राट को सिर झुका कर अभिवादन किया और कक्ष से चली गई।

एकान्त होने पर भगवान् वादरायण ने कहा—

"तो आपकी महत्वाकांक्षा ने वर्षकार की बात पर विचार नहीं करने दिया।"

"इसी से तो भगवन्, करारी हार खाई, परन्तु ।"

"वैशाली पे ऐसा अवसर न आने पावेगा, क्यों ?"

"भगवत्पाद जब हृद्गत भाव से अवज्ञात हैं तो मैं आशीर्वाद की आशा करता हूं।"

"सम्राट् को उसकी क्या आवश्यकता है, विजय के लिए उनकी सेना और कूटनीति यथेष्ट है।"

"किन्तु यह तो भगवत्पाद का कोप वाक्य है, भगवन प्रसन्न हों।"

भगवान् बादरायण ने मन्द हास करके कहा—

"नहीं, नहीं, सम्राट् कोप नहीं। परन्तु सम्राटों और विरक्तों का दृष्टि कोण सदा ही पृथक् रहता है।"

"परन्तु भगवन्, जहां जनपद हित और व्यवस्था का प्रश्न है वहां सम्राट् और विरक्त एक ही मत पर रहेंगे।"

"फिर भी सम्राट्, विरक्त सदैव कर्तव्य पर विचार करेगा, और सम्राट् अधिकारों पर। ये ही अधिकार युद्ध, रक्तपात और अशांति की जड़ हैं। यद्यपि ये सदैव जनपदहित और व्यवस्था के लिए किए जाते हैं।"

"अविनय क्षमा हो भगवन्, इस युद्ध रक्तपात और अशांति में भी एक लोकोत्तर कल्याण भावना है। भगवान् भलीभांति जानते हैं कि छोटे २ स्वतन्त्र राज्य छोटे २ स्वार्थों के कारण परस्पर लड़ते रहते हैं, साम्राज्य ही उन्हें शांत और समृद्ध बनाता है, साम्राज्य में राष्ट्र का बल है, साम्राज्य जनपद की सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था है।"

भगवत्पाद हंस दिए। उन्होंने कहा—"इसीसे सम्राट् छोटे से वैशाली के गणतन्त्र को मगध साम्राज्य में मिलाना चाहते हैं।"

सम्राट् ने कुछ लज्जित हो कर कहा—"भगवन्, स्वाधीनता सर्वत्र ही अच्छी वस्तु नहीं है, यह दासता की ध्वनि है और इसके मूल में आपाद अशांति अव्यवस्था और उत्क्रान्ति है।"

भगवत ने किंचित हास्य कर कहा—"तो कौशाम्बीपति उदयन ने

आवस्ती अभियान में आपको सहायता नहीं दी ?"

"यही तो हुआ भगवन्, विदूडभ ने यही तो कहा था, कि कौशाम्बीपति सर्वसैन्य सीमाप्रांत पर सन्नद्ध है, ज्यों ही मगध सैन्य का आक्रमण होगा वे उस ओर से घुस पड़ेंगे।"

"यह अभिसन्धि कदाचित् बन्धुलमल्ल ने नहीं पूरी होने दी ?"

"नहीं भगवन्, आर्य भागरायण ने उदयन को आक्रमण न करके हमारे युद्ध का परिणाम देखने की सम्मति दी। धूर्त भागरायण मृत मांस खाना चाहता था।"

भगवत वादरायण जोर से हंस दिए। सम्राट् भी हंसे।

"मैं भगवतपाद के हास्य का कारण समझ गया। कदाचित् कौशाम्बीपति भागरायण की सम्मति अमान्य करते, परन्तु गान्धार-नन्दिनी कलिङ्गसेना का अनुरोध न टाल सके। देवी कलिङ्गसेना ही के लिये उदयन ने कोशल पर आक्रमण किया था, परन्तु कलिङ्गसेना ने ही जब यह संदेश भेजा कि मैंने कौशलेश को आत्म समर्पण कर दिया है, कौशाम्बीपति को मेरे लिये अभियान धर्मसम्मत नहीं है। तब कौशाम्बीपति निरुपाय हो युद्ध विरत हो गये।"

भगवान् वादरायण ने कहा—"तो सम्राट्, अब नित्यक्रम से निवृत्त हो विश्राम करें, अभी और बातें फिर होंगी।" वे उठ खड़े हुए। सम्राट् भी उठे। भगवत् ने कहा—'मधु, सम्राट के लिए ।'

सम्राट् ने बाधा देकर कहा—"नहीं, नहीं, भगवन्, मधु की कुटिया मुझे बहुत प्रिय है और मधु उससे भी अधिक।"

"कदाचित् इसलिए कि वह साधु कम और सैनिक अधिक है।"

"भगवन् मुझे मधु जैसे सैनिकों की बड़ी आवश्यकता है।"

"तो सम्राट् जैसे प्रसन्न हों।"

तीनों गर्भगृह से बाहर निकले।

: ४४ :

भारी सौदा

अम्बपाली ने अपने कक्ष में सम्राट् को आमन्त्रित किया। सम्राट् के आने पर उनका अर्घपाद्य से सत्कार करके अम्बपाली ने उन्हें उच्च पीठ पर बिठा कर कहा—"तो क्या मैं आशा करूं कि सम्राट् ने मेरा अपराध क्षमा कर दिया ?"

"कौन सा अपराध, पहले अभियोग उपस्थित होना चाहिये।"

अम्बपाली ने मन्दस्मित करके कहा—

"गुरुतर अपराध सम्राट्, मैंने सम्राट् के लिए व्यवस्थित कक्ष और अभ्यर्थना का अपहरण जो किया।"

"यह अपराध तो बहुत ही प्रिय और सुखद है देवी अम्बपाली, मैं चाहता हूं मेरे जीवन के पल २ में देवी यह अपराध करें।"

"देव, क्या ऐसी ही भावुकता से न्याय विचार करते हैं ?"

"यदि अभियुक्त कोमल कवि कल्पना की सजीव प्रतिमूर्ति हो तो फिर सम्राट् क्या और अधिक क्या, उसे भावुक बनना ही पड़ेगा।"

"देव, यह तो मगध सम्राट् की वाणी नहीं है।"

"सत्य है देवी अम्बपाली, यह एक आतुर प्रणयी का आत्म-निवेदन है।"

"सम्राट् की जय हो, वे राजमहिषी के प्रति अन्याय कर रहे हैं।"

"देवी अम्बपाली प्रसन्न हों, वे सम्राट् के साथ अत्याचार कर रही हैं।"

"किस प्रकार देव,"

"वहां खड़ी रह कर। यहां पास आकर बैठो, एक तथ्य सुनो प्रिये।"

अम्बपाली ने एक पीठ पर बैठ कर हसते हुए कहा—

"देव की क्या आज्ञा होती है।"

"सुनो प्रिये, सम्राट् पर करुणा करो, इसे प्रसेनजित से ही पराजित नही होना पड़ा।"

"क्षमा, पाप, क्या देव कोई दूसरी दुर्भाग्य कथा सुनाना चाहते है ?"

"कथा नही तथ्य प्रिये, इस भाग्यहीन बिम्बसार को प्रणय क्षेत्र मे तो जीवन के प्रारम्भ ही में हार खानी पडी है।"

"देव यह क्या कह रहे है ?"

"वही जो केवल देवी अम्बपाली से ही कह सकता था। प्यार की वह निधि तो प्रिये अम्बपाली, अभी तक वहीं उस पुराण हृदय में धरी है, किसी की धरोहर की भाति, और मै आजीवन उसके धनी को ही खोजता रहा हू।"

"हाय, हाय, और देव उसे अभी तक पाने मे समर्थ नही हुए ?"

"आज हुआ प्रिये, सम्हाल लो वह सब अपनी क्षमा पूंजी और इस शुष्क, निस्सग बिम्बसार के जलते हुए सूने जीवन में प्यार की एक बूद टपका दो। देवी अम्बपाली प्रिये, मै आज से नही, कब से तुम्हारी बाट जोह रहा हू। तुमने सदैव मेरी भेट अस्वीकार करके लौटा दी, मुझे दर्शन देना भी नही स्वीकार किया। किन्तु आज प्रिये, मैंने अनायास ही तुम्हें पा लिया। ओह, प्रसेनजित का ही यह प्रसाद मुझे मिला। आज हार कर ही मै भाग्यशाली बना प्रिये अम्बपाली।"

सम्राट् उठ खडे हुये और दोनो हाथ पसार कर अम्बपाली की ओर बढ़े।

अम्बपाली खडी हो गई। उसका हास्य उड गया। उसने सूखे कण्ठ से कहा—"संयत हो, मै देव से ही सुविचार की अभिलाषा रखती हूं।"

"मैं अन्ततः सुविचार करूंगा प्रिये।"

"तो देव, मेरा निवेदन है कि सम्राट् की यह प्रणय याचना निष्फल है।"

'आह प्रिये, तुमने तो एक बारगी ही आशा कुसुम दलित कर दिया।"

"सुनिये महराज, आप सम्राट् है और मै वेश्या, हम दोनो ही ने प्रणय के अधिकार खो दिए है।"

"किन्तु प्रिये हम मानव तो है, मानव के अधिकार ?"

"वे भी हमने खो दिए।"

"तो जाने दो। कृमि, कीट, पतग, पशु जितने प्राणी है, क्या उनकी भांति भी हम प्रेम का आनन्द नही ले सकते ? दो निरीह पक्षियो की भाति भी नही ?"

"नहीं, देव नही, जैसे वेश्या होना मेरे लिए अभिशाप है, वैसे ही सम्राट् होना आपके लिए। प्रेम के राज्य मे प्रवेश करना हम दोनो ही को निषिद्ध है, हम लोग प्रेम के पुनीत प्रसाद पाने के अधिकारी ही नही रहे।"

"तब आओ प्रिये, हम इस अभिशाप को त्याग दे। मै इस दूषित-अभिशापित सम्राट् पद को त्याग दू और तुम · तुम ।"

"इस गर्हित वेश्या जीवन को ? सम्राट् यही कहा चाहते है ? परन्तु यह सम्भव नही है देव, जैसे मै अपनी इच्छा से वेश्या नहीं बनी हू, उसी प्रकार आप भी अपनी इच्छा से सम्राट् नहीं बने है। हम समाज के बन्धनों और कर्तव्यो के भार से ओतप्रोत है, बच कर निकलने का कोई मार्ग ही नही है।"

"कोई मार्ग ही नही है ? ओह बडी भयानक बात है यह, प्रिये अम्बपाली, सखी, तो फिर क्या कोई आशा नही ?"

सम्राट् ने वेदनापूर्ण दृष्टि से अम्बपाली को देखा। वे धम से आसन पर बैठ गये।

अम्बपाली ने खोखले स्वर से नीची दृष्टि करके कहा—

"आशा क्यो नही सम्राट्, बहुत आशा है।"

"ओह तो प्रिये, फिर झटपट मेरे सौभाग्य का विस्तार करो।" वे फिर उठ कर और दोनो हाथ फैला कर अम्बपाली की ओर चले।"

अम्बपाली ने पत्थर की मूर्ति की भांति स्थिर बैठ कर कहा—"देव आसन पर विराजमान हो। मै निवेदन करती हूं, हमारी आशा यही है देव, कि मै वेश्या हूं और आप सम्राट् है।"

"यह कैसी बात प्रिये, यही तो हमारा परम दुर्भाग्य है?"

"और यही सौभाग्य भी देव,"

"सौभाग्य कैसे?"

"दुर्भाग्य निवेदन कर चुकी कि हम प्रणय के अधिकारी नहीं हो सकते।"

"वह तो सुन चुका।"

"परन्तु हम सौदा कर सकते है।"

"सौदा?"

"जी हां सम्राट्, मै वेश्या हू अपना शरीर बेच सकती हू, और आप सम्राट है, उसे मुहमांगे दाम पर खरीद सकते है।"

सम्राट् ने उन्मत्त की भांति अपना खड्ग कोश से खींच कर उसे अम्बपाली के पैरो के पास पृथ्वी पर रख कर कहा—"यह मै अपना सम्पूर्ण साम्राज्य तुम्हारे चरणो में अर्पित करता हूं प्रिये।"

अम्बपाली ने एक सूखी हसी हसी। उसने उठकर आदरपूर्वक खड्ग दोनो हाथो में उठा लिया, फिर उसे आखो और मस्तक से लगा कर कहा—"सम्राट् की जय हो, यह अधम लाछित नारी मगध साम्राज्ञ को लेकर क्या करेगी?" उसने एक ठण्डी सास लेकर खड्ग सम्राट् की कमर मे बाँध दिया।

सम्राट् ने कातर वाणी से कहा—

"अब और तो कुछ मेरे पास बचा नहीं प्रिये, यह अधम शरीर है। पर इसे क्या कह कर तुम्हारा भेंट करूं? यौवन और रूप सभी कुछ

तो पुराना पड़ गया ? '

"सम्राट् का पुण्य शरीर दैवी वरदान ह देव, इसी में सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को एक करन की सामर्थ्य केन्द्रित है।"

"तब ?"

"देव, मेरी एक अभिलाषा है।"

"कहो प्रिये, कहो।"

"आपके औरस से मेरे गर्भ में जो सन्तान हो, वही मगध का भावी सम्राट् हो।"

सम्राट ने फिर खड्ग कोश से खीच कर ऊपर उठाया और उच्च स्वर से कहा—"मै शिशुनाग वशी मगधपति बिम्बसार अपने साम्राज्य की शपथ ले कर यह प्रतिज्ञा करता हू कि देवी अम्बपाली के गर्भ में मेरे औरस से जो पुत्र होगा वही मगध का भावी सम्राट् होगा।"

"हुआ महाराज।" अम्बपाली आख में आसू भर कर उठी और एक सौरभ मय पुष्पहार उसने सम्राट् के गले मे डाल दिया, और झुक कर सम्राट् के चरण छुऐ।

सम्राट ने हर्षित होकर उसे उठाया और अपने कण्ठ से बहुमूल्य मुक्तामाल निकालकर उसके गले में डाल दी, और कहा—"प्रसेनजित के लुटेरों से केवल यही बच पाई प्रिये।"

"सो वह यहा लुट गई" अम्बपाली ने हसकर स्निग्ध स्वर में कहा।

"न, न, खूब अच्छी तरह सुरक्षित ठोर पर पहुच गई। अब लुटने पिटने का भय ही नही रहा।" यह कह कर उन्होंने अम्बपाली का हाथ पकड लिया। उसे आहिस्ता से छुडा कर अम्बपाली ने कहा—"देव प्रसन्न हो, सम्राट् की एक मर्यादा है, और मगध के भावी सम्राट की माता की भी।'

"इतनी निष्ठुर न बनो प्रिये"

"सुनिऐ देव, सम्राट् को मगध के भावी सम्राट की माता के [illegible] का एक ढाटा दूर करना होगा नहीं तो आप के पुत्र को

लजाना पड़ेगा।"

"कहो अम्बपाली, अपना अभीप्राय कहो।" सम्राट् नेआसन पर बैठ कर जलद गम्भीर स्वर में कहा।

"दुहाई सम्राट् की, लिच्छवी गण तन्त्र ने मुझे बलपूर्वक अपने धिक्कृत कानून के अनुसार वेश्या बनाया है।"

सम्राट् का मुंह लाल हो आया"

अम्बपाली ने आखो मे आसू भर कर कहा--"देव, मेरा अपराध केवल यही था कि मैं असाधारण सुन्दरी थी। मेरा यह अभियोग है कि वैशालीगण को इसका दण्ड मिलना चाहिऐ।"

सम्राट् ने हाथ उठा कर कहा--'मे प्रतिज्ञा करता हू कि मै अष्टकुल के लिच्छविगणतन्त्र को समूल नाश करूगा।"

" और सप्तभूमि प्रासाद के कलुषित वातावरण मे ·· ·, अम्बपाली के होठ काप गऐ।

सम्राट् ने कहा--"नही, नही, प्रिये, देवी अम्बपाली को मै राजगृह के राजमहालय मे ले जाकर पट्टराजमहिषी के पद पर अभिषिक्त करूंगा। प्रतिज्ञा करता हू।"

"अनुगृहीत हुई देव, आज मेरा स्त्री जन्म सार्थक हुआ। अब मुझे एक निवेदन करना है।"

"कहो प्रिये, अब मै और तुम्हारा क्या प्रिय कर सकता हू।"

"देव, आपकी चिरकिङ्करी अम्बपाली इस समय तक भी विशुद्ध कुमारी है, और वह आपकी आमरण प्रतीक्षा करेगी।"

"मैं कृतार्थ हुआ प्रिये, आल्हादित हुआ।"

सम्राट् उठ खडे हुए। अम्बपाली ने उनके चरण छुए। सम्राट् ने उसके मस्तक पर हाथ रखा। और कक्ष से बाहर हो गए। अम्बपाली आख मे आसू भरे बैसी ही खडी रह गई। उसके होठ काप रहे थे।

: ४५ :

भविष्य कथन

भगवत बादरायण दीपाधार के निकट बैठे एक भूर्जपत्र पर कुछ लिख रहे थे। माधव ने भू प्रणतिपात करके देवी अम्बपाली के आगमन का सदेश दिया। दूसरे ही क्षण अम्बपाली ने साष्टाङ्ग दण्डवत किया।

भगवान् ने हसकर कहा—"अब कहो शुभे अम्बपाली, मै तुम्हारा क्या प्रिय कर सकता हूं ?"

अम्बपाली मौन रही। संकेत पाकर माधव चले गये। उनके जाने पर अम्बपाली ने कहा—"भगवन्, इस समय क्या किसी गुरुतर कार्य में है ?"

"नहीं, नहीं, मै तुम्हारी ही गणना कर रहा था।"

"इस भाग्यहीन के भाग्य में अब और क्या है ?"

"बहुत कुछ कल्याणी, तुम्हारा सौदा सफल है, तुम मगध के सम्राट् की माता होगी। किन्तु "

अम्बपाली ने विस्मित होकर कहा—

"भगवान् सर्वदर्शी है, पर 'किन्तु' क्या ?"

"किन्तु साम्राज्ञी नहीं।"

अम्बपाली के होठ कापे, पर वह बोली नही। भगवान् ने फिर कहा—"और एक बात है शुभे"

'वह क्या भगवन् ?"

"तुम वैशाली गणतन्त्र की जन हो, वैशाली का अनिष्ट न करना।"

अम्बपाली के भ्रू कुंचित हुए। यह देख भगवत् बादरायण हंस

दिये। उन्होने कहा—'गणतन्त्र पर तुम्हारा रोष स्वाभाविक है, उसी कानून के सम्बन्ध में न ?"

'भगवन् उसी धिक्कृत कानून के सम्बन्ध में ।"

"पर वह बात तो अब पुरानी हुई, फिर तुमने उसका मुंह मागा शुल्क भी पाया, अब भी तुम्हारा रोष नही गया ?"

"नहीं भगवन्, नही ।"

"फिर यह सौभाग्य ?"

"मागध साम्राज्ञी न होते हुए मगध साम्राज्य की राजमाता का वांच्छित हास्यास्पद पद ?" अम्बपाली ने घृणा से ओठ सिकोडे, और क्रोध से उसके नथुने फूल गये ।

भगवन् बादरायण विचलित नही हुये । वे मन्दस्मित करते अचल बैठे रहे । अम्बपाली एक टक उनकी भृकुटी में चिन्ताप्रवाह देखती रही । भगवान् ने मृदुमन्द स्वर मे कहा– 'केवल वही नही ।"

"क्या और भी कुछ ?"

"बहुत कुछ ।"

"वह क्या ?"

"भगवतपाद क्षण भर गहन चिन्ता में डूबे रहे फिर जलद गम्भीर वाणी मे बोले—'शुभे अम्बपाली, तुम विश्वविश्रुत साध्वी प्रसिद्ध होगी ।"

"भगवन, मैं अधम वेश्या ।"

"शुभे, जिसके चरण तल की अपेक्षा मागध साम्राज्य का चक्र भी लघु है, उसे यह आत्मप्रतारणा शोभा नही देती ।" फिर उन्होने भाव गम्भीर हो दोनो हाथ उठाकर कहा—"तुम्हारा कल्याण हो, परन्तु तुम वैशाली की जनपद कल्याणी हो, एक बार तुमने आत्मदान करके वैशाली को गृहयुद्ध से बचा लिया था, अब अपने सामयिक रोष मे जनपद का अनिष्ट न करना । व्यक्ति से समष्ठी की प्रतिष्ठा भी बडी है, स्वार्थ भी बडा है । व्यक्ति का स्वार्थ हेय है परन्तु समष्ठी का

स्वार्थ उपादेय हैं।" भगवतपाद यह कहकर कुछ देर मौन रहे। फिर बोले—"त्याग ससार मे महा श्रेष्ठ है, त्याग से अरिष्ट,अनिष्ट सब टल जाते है। तुम जब देखो कि तुम्हारे द्वारा वैशाली का, भरतखण्ड के इस एक मात्र गणतन्त्र का, अनिष्ट हो रहा है, तब कोई महान् त्याग करना, अनिष्ट टल जायगा। मेरा यह वचन भूलना नही शुभे, नही तो वह महासौभाग्य तुम्हे प्राप्त नही होगा।"

'मै याद रखू गी भगवन्।"

"तुम्हारा कल्याण हो भद्रे, अब तुम अपने आवास को जाओ।"

अम्बपाली बडी देर तक भगवान बादरायण व्यास के चरणो में चुपचाप पृथ्वी पर पडी रही। फिर आखो से आसू बहाती हुई उठकर चलदी।

---

*

: ४६ :

साम्राज्य

"अब ?"

"भगवत्पाद जो आदेश दें।"

"साम्राज्यो के विधाता विचारशील मनुष्य नही होते सम्राट्, वे लोहयन्त्र होते है, वे अपनी गति पर तब तक चले जायेगे जब तक वे टूटकर चूर २ नही हो जाते, उनके राह मे जो आयेगा उसी का विध्वस होगा।"

"किंतु भगवन्, जन्म का मूल उद्देश्य निर्माण है, विध्वस नही। फिर बाधाए यदि ध्वस्त न हो तब ?"

"निर्माण का अतिरेक भी एक अभिशाप है सम्राट्, यदि निर्माण ही के लिये ध्वस हो ?"

"नहीं भगवन्, आवश्यकता ही के लिये निर्माण होता है।"

"तो जनपद को सैन्यबल से आक्रान्त करने की क्या आवश्यकता है ? निरन्तर युद्ध कितनी घृणा, सदेह और बैर बखेरते है।"

"परन्तु व्यवस्था भी तो स्थापित करते है।"

"व्यवस्था जहा अधिकार पर आरूढ होती है वहा जनपद कल्याण नहीं होता। वह व्यवस्था जनपद कल्याण के लिये होती भी नही, अधिकारारूढ कुछ व्यक्तियो ही के लिये होती है, जिनकी आवश्यकताएं इतनी बढ जाती है कि वह जनपद का सम्पूर्ण प्राण, धन और श्रम अपहरण करके भी भूखी और प्यासी ही बनी रहती है।"

"किन्तु भगवन्, शक्ति का विराट् सगठन सदैव जनपद का रक्षण करता है।"

"कहा ? कुरुक्षेत्र मे आर्यो और संकरो की चरम शक्ति का

प्रदर्शन हुआ, परन्तु शक्ति सचय के द्वारा जनपद कल्याण करने में वासुदेव कृष्ण कृतकृत्य नही हुए। कुरुक्षेत्र मे केवल महाविनाश ही होकर रह गया।"

"इसमे दोष कहा था ?"

"आपाद दोष था, किस सदुद्देश्य से कुरुक्षेत्र मे १८ अक्षोहिणी सैन्य का सघर्ष किया गया ? जनपद कल्याण की किस भावना से पृथ्वी के करोडो तरुणो को बर्बर पशु की भाति उत्तेजित करके एक दूसरे के हाथ से निर्दयतापूर्वक वध करा डाला गया ? पाण्डवो को राज्य का भाग मिलने के लिये जनपद का इतना धन जन क्यो क्षय किया गया ? सम्राट्, आज आप भी वही प्रयोग कर देखिए। नई २ सेनाए भरती कीजिये, उनके द्वारा जनपद को लुटवाइए, उस लूट का कुछ स्वर्ण उन भाग्यहीन मूर्ख तरुण सैनिको को बाध दीजिये, जो निरर्थक नरहत्या को वीर कृत्य समझते है। कुछ उन पुरोहित ब्राह्मणो को, जो आपकी यशोगाथा गा गाकर यह प्रचार करे कि आपकी यह सामर्थ्य और अधिकार दैवी है और यज्ञ के देवता आप पर प्रसन्न है, वत्स, शेष सम्पदा आप जैसे चाहे भोगिए, लक्षावधि निरीह जनपद उसे सहन कर जायगा।"

भगवान् बादरायण कुछ देर दूर क्षितिज में टिमटिमाते तारे को देखते रहे, फिर उन्होने कहा—"सम्राट्, आर्यों ने अपने पाप का फल पा लिया। उन्हो ने जीवन मे भूल पर भूले की, भारत की उर्वरा भूमि में आकर भी उन्होने अपना विनाश किया। हिमालय के उस ओर से आने वाली कुरु पाचालो की शाखाओ से यदि उत्तर कुरु के भरतो का सघर्ष न हो कर दोनो की सयुक्त जाति बनती तो कैसा होता ? परन्तु उत्तर कुरु के देवगण अपनी विजय गर्व में मत्त रहे, वही खप गये। आर्यावर्त्त में उनका प्रसार ही न हो पाया। इधर ये पौरव दक्षिण में द्रविडों को आक्रान्त कर उनसे मिल गये। आर्यों की यह पहिली भूल थी। इसके बाद उन्होने राजन्यो की, पुरोहितो की, फिर विशों की

न्यारी २ शाखा चलाई । अनुलोम प्रतिलोम विवाह प्रचलित किए। ब्राह्मणों ने दक्षिणा मे, और क्षत्रियो ने विजयो में सुन्दरी दासियों के रेवड़ भर लिये। परिणाम वही हुआ जो होना था। अनगिनत वर्ण-संकर सन्तान उत्पन्न होने लगी। पहिले उन्होने उन्हें पिता के कुलगोत्र ही मे रखा और दायभाग मे भी भाग दिया। परन्तु बाद में उन्हे इन आर्यों ने अपने कुलगोत्र से च्युत कर दिया। दायभाग भी नही दिया। पहिले प्रतिलोम सतान ही सकर थी, अब अनुलोम प्रतिलोम प्रत्येक ही सतान संकर बना दी गईं और उन्हे अपना उपजीवी बनाकर उनकी पृथक् जातिया बना दी गई। यह आर्यों की दूसरी भूल थी। सभी सकर मेधावी, परिश्रमी, सहिष्णु एव उद्योगी थे। जैसा कि होता ही है। आर्य अधिकारमद पर मद्यप, आलसी, घमण्डी और अकर्मण्य होते गये। अब वे या तो थोथे यज्ञाडम्बरो की हास्यास्पद विडम्बना म फसे है या कोरे कल्पित ब्रह्मवाद में। इसीसे सम्राट्, आज आर्यो में प्रसेनजित जैसे सडे गले राजा रह गये। आज सम्पूर्ण भरतखण्ड में आर्य केवल प्रजावर्गीय रह गये है, राज्य सत्ता उन कर्मठ सकरो के हाथ मे आती जा रही है। एक दिन भाग्यहीन प्रसेन अति दयनीय दशा में प्राणों के भार का त्यागेगा।"

"किन्तु भगवन् मेरा स्वप्न क्या सत्य होगा ?"

"जम्बूद्वीप पर अखण्ड साम्राज्य स्थापन का ? इसके लिये तो पूर्ण मे आपका उद्योग चल ही रहा है। उधर पश्चिम मे पार्शव सम्राट् भी इसी आयोजन में है।"

"परन्तु भगवन्, आर्य कभी उसे न अपनावेगे।"

"क्यो नहीं, बहुत बार उसने इन्द्रपद ग्रहण किया है, सभी आर्यो ने तो उसका पूजन किया।"

"किन्तु वासुदेव कृष्ण ने जो उसका प्रबल विरोध किया था, वह क्या भगवान् को विदित नही ?"

"क्यो नही।"

"भगवन्, मैं शिशुनागवंशी बिम्बसार वासुदेव कृष्ण का अनुवंशी हू, आर्य नही, मैं पार्शव सम्राट् का विरोध करूगा।"

"सम्राट् की इस वासना को मैं जानता हू।"

"तो भगवत्पाद का अब मुझे क्या आदेश है।"

"सम्राट् तुरन्त राजगृह जाय।"

"किस लिये भगवन्?"

"राजगृह मे कुछ घटनाए होने वाली है।"

"अच्छी या बुरी?"

"यह सम्राट् को समय पर मालूम होगा, परन्तु उन्हे दोनो ही प्रकार की घटनाओ को देखने की आशा रखनी चाहिए।"

"यही भगवत्पाद का मुझे आदेश है?"

"राजगृह मे शीघ्र ही श्रमण गौतम पहुचेगे, वे सम्राट् को समुचित आदेश देगे।"

भगवन् बादरायण फिर नही बोले। एक बारगी ही वे समाधिस्थ हो गये। इसी समय मधु ने कहा--"सम्राट् के सैनिक आ पहुचे है, वे सम्राट् को अभिवादन निवेदन कर रहे है।"

सम्राट् ने भगवान बादरायण के चरणो मे साष्टाङ्ग प्रणाम किया और चल दिये।

: ४७ :

दास नहीं अभिभावक

पूरा दिन चारो अश्वारोहियो ने घोड़े की पीठ पर व्यतीत किया। वे नगर-जनपद वीथी सब को बचाते हुए गहन वन मे चलते ही गये। मार्ग मे दो एक हिंसक जन्तु मिले। साम्ब ने उनका आखेट किया। परन्तु सोम अत्यन्त खिन्न मुद्रा से सब के आगे २ जा रहे थे। उनमे बातचीत का भी दम नही था। उनके पीछे कुण्डनी राजकुमारी को दाहिने करके चली जा रही थी। राजकुमारी अत्यन्त म्लान, थकित और शोकाकुल थी। परन्तु जब २ उनसे विश्राम के लिये कहा गया, उन्होने कहा —

"नही चले ही चलो, मै और चल सकता हू।"

साम्ब सब के पीछे चारो ओर देखता, सावधानी से चल रहा था। एकाध बात कुण्डनी कर लेती थी। फिर सन्नाटा हो जाता था। कभी २ वायु लम्बे वृक्षो और पर्वत कन्दराओ मे टकराकर डरावने शब्द करती थी। कुमारी का चेहरा पत्थर की भाति भावहीन और सफेद हो गया था और उनके नेत्रो की ज्योति जैसे बुझ चुकी थी।

सोम ने अति विनय से एक दो बार कुमारी से विश्राम कर लेने और थोडा बहुत आहार करने को कहा था, पर कुमारी बहुत भयभीत थी, उन्होने हर बार भीत दृष्टि से कुण्डनी की ओर ताक कर कहा—'नही, हला, अभी चले चलो। धूमकेतु थका नही है, मै भी थकी नहीं हू।"

सोम कुमारी की व्यग्रता तथा वैकल्य को समझते थे। उसी से वह चुप हो रहे। वे चलते ही गए। मध्याह्न की प्रखर धूप थामी पड गई। अश्वारोही और अश्व एकदम थक गये। सोम ने एक ऊचे स्थान

पर चढकर चारो ओर दृष्टि फेंकी। कुछ दूर उन्हे बस्ती के चिन्ह प्रतीत हुए। उन्होने तनिक रुक कर साम्ब से कहा—"साम्ब, आखेट का ध्यान रख।" और फिर कुण्डनी के निकट आकर कहा—"वहा बस्ती मालूम होती है, आज रात वहीं व्यतीत करनी होगी।"

और उसने बिना ही उत्तर की प्रतीक्षा किये उधर ही प्रस्थान कर दिया। सूर्यास्त होने तक ये लोग नगर के उपकूल पर पहुच गये। नगर मे न जाकर उन्होंने नगर के प्रान्त भाग मे अवस्थित एक चैत्य में विश्राम करना ठीक समझा। चैत्य बहुत पुराना और भग्न था। उसके एक कक्ष की दीवार बिल्कुल टूट गई थी, फिर भी वहा विश्राम किया जा सकता था। निकट ही एक पुष्करिणी थी।

अश्वो ने जल पिया, और अश्वारोहियो ने भी। राजकुमारी के विश्राम की सब सम्पूर्ण व्यवस्था कर सोम ने चिन्तित भाव से कुण्डनी की ओर देखा। साम्ब ने एक सावर मारा था। उसकी ओर निराशा से ताक कर सोम ने कहा—"कुण्डनी, यह क्या राजनन्दिनी के आहार के लिये यथेष्ट होगा?"

"परन्तु किया क्या जाय? नगर में जाने मे कदाचित् थोडा दूध मिल सके, परन्तु आज आखेट ही पर रहे।"

साम्ब अपनी सफलता पर बहुत प्रसन्न था। सावर बहुत भारी था। उसने जल्दी २ राजकुमारी और कुण्डनी के विश्राम की व्यवस्था की और हरिण का मास भूनने लगा। सोम ने कहा—"तनिक इधर उधर मे देखलू यदि थोंडा दूध मिल जाय।"

उन्होने अपना बर्च्छा उठाया और चल दिये। निवृत्त होकर कुण्डनी ने कुमारी के मनोरञ्जन करने की चेष्टा की। वह उनके निकट आकर बाते करने लगी। कुण्डनी ने कहा—

"राजकुमारी प्रसन्न हो, भाग्य दोष से समय कुसमय जीवन में आता है, इतना खिन्न न हो राजकुमारी।"

"खिन्न नही हू हला, लज्जित हू, तुम्हारे और तुम्हारे इस सौम्य

दास के उपकार के लिये, कब कैसे बदला चुका सकूंगी।"

"हम सब तो राजकुमारी आपके सेवक हैं। आपको कभी सुखी देखकर हमें कितना आनन्द होगा।" कुण्डनी ने आर्द्र होकर कहा।

"किन्तु सखी, क्या सचमुच वह वीर तुम्हारा दास है?" राजकुमारी ने नीची दृष्टि से सोम की ओर देखकर कहा।

"मेरा ही नहीं आपका भी राजनन्दिनी।"

"नहीं, नहीं, उसका तेज, शौर्य, सत्साहस अराध्य है, वह तो किसी भी राजकुल का भूषण होने योग्य है। फिर उसका विनय और कार्य तत्परता कैसी है!"

'इसकी उसे शिक्षा मिली है हला।"

'क्या नाम कहा—सोम?"

"हां, सोम"

"और उस दास के दास का नाम शव?"

"जी हां, दास के दास का शव।" कुण्डनी हंस दी।

राजकुमारी होठों ही में मुस्कुराईं। उन्होंने कोमल भाव से कहा—

"सखी, इस विपन्नावस्था में ऐसे अकपट सहायक मित्रों से दासवत् व्यवहार करना ठीक नहीं है। वे हमारे आत्मीय ही हैं।"

"किन्तु राजनन्दिनी, दास दास है, सेवा उनका धर्म है। उनके प्रति उपकृत होना उन्हें सिर चढ़ाना है।"

"ऐसा नहीं हला, अन्ततः मनुष्य सब मनुष्य ही हैं, और वह तो एक श्रेष्ठ पुरुष है। मैं उन्हें दास नहीं समझ सकती।"

"तो आप उन्हें राजकुमार समझिये राजनन्दिनी, यह आपके हृदय की विशालता है।"

"नहीं, वे राजकुमार से भी मान्य पुरुष हैं हला।" राजकुमारी का मुंह लज्जा से लाल होगया और उनकी आंखों से आंसू झरने लगे।

इसी समय सोम कुछ आहार द्रव्य और थोडा दूध ले आये। शत्रु ने भी हरिण को भून मान लिया था। राजकुमारी क्षण भर को अपनी विपन्नावस्था भूल कर फुर्ती से आहार को स्वय परासने लगीं। उन्होंने पलाश पत्र पर आहार्य सजा कर अपनी बडी २ पलक सोम की ओर उठाई और कहा—"भद्र, भोजन करो।"

सोम ने विनयावनत होकर कहा—

"नही राजनन्दिनी, पहले आप और कुण्डनी आहार करले, पीछे हम लोग खावेंगे।"

'नही, नही, ऐसा नही।"

"दास का निवेदन है—

"दास नही भद्र, अभिभावक कहो।"

राजनन्दिनी का गला भर आया। उन्होंने फिर उन्ही भारी २ पलकों को उठा कर सोम की ओर गीली आखो से ताका। उस मूक अनुरोध से वशीभूत होकर सोम ने और आग्रह नही किया। उन्होने कहा—

"तो फिर, राजनन्दिनी की जैसी आज्ञा हो हम लोग साथ ही बैठ कर भोजन करें।"

राजकुमारी ने भी जल्दी २ कुण्डनी और अपने लिये आहार परोसा। शत्रु को भी दिया। पर शत्रु किसी तरह साथ खाने को राजी न हुआ, वे तीनो भोजन करने लगे।

: ४८ :

सोम की भाव-धारा

बाहर आकर सोम थकित भाव से एक सूने चैत्य के किनारे एक वट वृक्ष के सहारे आ बैठे। अपना विशाल खड्ग उन्होंने लापरवाही से एक ओर फेंक दिया। वह शून्य दृष्टि से आकाश को ताकते रहे। उस गलती हुई रात में, उस एकांत भीषण स्थान में बैठे हुए सोम बहुत सी बातें विचारते रहे। ओस से भीगे हुए गुलाब के पुष्प की भांति कुमारी का शोकपूर्ण मुख उनकी दृष्टि में घूम रहा था। एक प्रबल राज्य के राजा की राजनन्दिनी किस भांति उसी के उद्योग और यत्न के कारण इस अवस्था को पहुंचा। यही सब सोच २ कर उनका नवीन भावुक, तरुण और वीर हृदय आहत हो रहा था। रह २ कर उन्हें आचार्य काश्यप की बातें याद आ रही थीं। राजतन्त्र की इस कुत्सा पर उन्हें अभी कुछ सोचने का अवसर ही न आया था। असुरपुरी में तथा चम्पा में वह कुण्डनी का अद्भुत कौशल, साहस और सामर्थ्य देख चुके थे। वह जान गये थे कि आचार्य की बात झूठी नहीं, इस अकेली कुण्डनी ही में एक भारी सेना की सामर्थ्य निहित है। राज्यों की लिप्सा में किस प्रकार निरीह निर्दोष हृदय कुसुम इस प्रकार दलित होते हैं यह सोच सोच कर सोम का हृदय मर्माहत हो रहा था, परन्तु बात केवल भूत दया ही तक सीमित न थी। सोम का तारुण्य भी कुमारी को देख कर जागृत हुआ था। कुण्डनी के उत्तप्त साहचर्य से यत्किंचित उनका सुप्त यौवन जाग्रत हुआ था, परन्तु उसे विष कन्या जान तथा भगिनी भावना से वह वहीं ठिठक गया था। अब इस अमल धवल कुसुम कोमल सुकुमारी कुमारी के चम्पक पुष्प के समान नवल देह और लज्जा, संकोच, दुःख और शोक की परिपूर्ण मूर्ति पर उनका

सम्पूर्ण तारुण्य जैसे चल विचल हो गया । उन्होने प्रण किया–मेरे ही कारण कुमारी की यह दुर्दशा हुई है । मै ही इसका प्रतिरोध करूगा ।

बहुत देर तक सोम यही सब सोचते रहे । उन्हे यह भी भान न रहा कि कोई उनके निकट है । पर कुण्डनी छाया की भाति उनके साथ थी । बहुत देर बाद कुण्डनी ने कहा—

"क्या सोच रहे हो सोम ?"

सोम ने अकचका कर कुण्डनी की ओर देखा । फिर शांत सयत स्वर से कहा—"कुण्डनी, कुछ हमारे ऊपर भी चम्पा की कुमारी की विपन्नावस्था का दायित्व है ।"

"मूर्खता की बातें है, हम मगध राज्य तन्त्र के यन्त्र है । हमे भावुक नही होना चाहिये ।"

कुछ देर सोम चुपचाप आकाश को ताकते रहे फिर वह एक लम्बी सास लेकर बोले —

"तुम कदाचित ठीक कहती हो कुण्डनी, परन्तु मेरा तो अभी से सारा पुरुषार्थ गल गया और अब सम्भवत राजनीति में भाग लेने की मुझ मे शक्ति ही नही रह गई ।"

"यह तुम क्या कहते हो सोम, आर्य अमात्य को तुम से बड़ी २ आशाए है, अभी हम जिस गुरुतर कार्य मे नियुक्त है हमें उधर ध्यान देना चाहिए ।"

"अब तुम राजगृह लौट जाओ कुण्डनी, अब हमारे तुम्हारे मार्ग दो है ।"

"परन्तु उद्देश्य एक ही है ।"

"सम्भवत वह भी दो है, तुम राज सेवा करो ।"

"और तुम ?"

"मै राजकुमारी की सेवा करूंगा ।"

कुण्डनी हस दी । उसने निकट आकर स्नेह से सोम के सिर पर हाथ रखा और स्निग्ध स्वर में कहा—

"सोम, तुम्हे मालूम है, कुण्डनी तुम्हारी भगिनी है।"

"जानता हू।"

"तो तुम्हारा एकान्तहित कुण्डनी को छोड़ और दूसरा कौन करेगा।"

"तो तुम मेरा हित करो।"

"क्या करू, कहो?"

"राज सेवा त्याग दो।"

कुण्डनी ने हसकर कहा—"और तुम्हारे साथ रह कर राजकुमारी की सेवा करू?"

"इसमे हंसने की क्या बात है कुण्डनी, क्या ये सेवा नहीं है?"

"है।"

"फिर?"

"उनकी सेवा करदी गई।"

"अर्थात् उन्हें रानी से राह की भिखारिणी और अनाथ बना दिया गया।" सोम ने उत्तेजित होकर कहा।

"यह कार्य तो हमारा नही था, राजकार्य था प्रिय। हमने तो विपन्नावस्था में उनका मित्र के समान साथ दिया है।"

"तो कुण्डनी, अब उनका क्या होगा? सोचो तो?"

"कुछ हो ही जायगा, जल्दी क्या है, अभी तो हम श्रावस्ती जा ही रहे है।"

"नही, मैं राजकुमारी को वहा नही लेजाऊगा।"

"उन्हे कहा लेजाओगे?"

"पृथ्वी के उस छोर पर' जहा हम दोनो अकेले रहे।"

"कुण्डनी को कहा छोडोगे?" कुण्डनी हस दी फिर उसने सोम के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—

"यह ठीक नही है, प्रिय।"

"अब?"

"विचार करो, राजकुमारी क्या सहमत होगी ?"

'मैं कहदूंगा कि मैं दास नहीं हूं ।"

"और मागध हूं, उसका पितृहन्ता और राज्यविध्वंसक शत्रु ।"

"किन्तु, किन्तु "

"सोम उत्तेजित होकर पागल की भांति चीख उठे, उन्होंने कहा—

"मैं उन्हें चम्पा की गद्दी पर बैठाऊंगा । मैं मगध से विद्रोह करूंगा ।"

"यह तो बहुत अच्छी योजना है सोम, फिर तुम अनायास ही चम्पाधिपति बन जाओगे । किन्तु राजकुमारी क्या तुम्हें क्षमा कर देंगी ?"

"इतना करने पर भी नहीं ?"

"ओह, तो तुम उनका मूल्य उन्हीं को चुकाओगे, और फिर उन्हें अपनी दासी बना कर रखोगे ?"

"दासी बनाकर क्यों ?"

"और किस भांति ? जब तुम राजकुमारी की विचार भावना की परवाह बिना किये अपनी ही योजना पर चलते जाओगे, और समझोगे कि राजकुमारी तुम्हारी अनुगत हो गई ।"

"तो कुण्डनी, मैं राजकुमारी के लिए प्राण दूंगा ।"

"दो देदेना, बहुत अवसर आवेंगे । अभी तुम चुपचाप श्रावस्ती चलो । राजकुमारी को निरापद स्थान पर सुरक्षित पहुंचाना सब से प्रथम आवश्यक है । हम लोग छद्मवेशी हैं, पराये राज्य में राज सेवा के गुरुतर दायित्व से दबे हुए हैं, राजकुमारी को अपने साथ रखने की बात सोच ही नहीं सकते । फिर तुम एक तो अज्ञात कुलशील, दूसरे मागध, तीसरे असहाय, ऐसी अवस्था में तुम राजकुमारी को ले कैसे जा सकते हो, और कहां ? हां, यदि उनकी विपन्नावस्था से लाभ उठा कर यदि उन पर बलात्कार करना हो तो वह असहाय अनाथिनी कर भी क्या सकती है । परन्तु सोम, यह तुम्हारे लिये शोभनीय नहीं होगा ।"

सोम ने कुण्डनी के चरण छुए। उनके दो गर्म आसू कुण्डनी के पैरो पर टपक पडे। सोम ने कहा –"कुण्डनी, स्वार्थवश मै अधम विचारो के वशीभूत हो गया। तुम ठीक कहती हो, उन्हे निरापद स्थान पर पहुचाना ही हमारा प्रथम धर्म है।"

"तो अब तुम सोओ। बहुत रात गई। हमें एक पहर रात रहते ही यह स्थान त्यागना होगा। मै शंब को जगाती हू। वह प्रहरी का कार्य करेगा।"

सोम ने और हठ नही किया। वह वही वृक्ष की जड मे लम्बे होगए। कुण्डनी ने स्नेहपूर्वक उत्तरीय से उनके अङ्ग को ढाप दिया और फिर एक स्निग्ध दृष्टि उन पर फेंक कर मठ में चली गई।

: ४६ :

मार्ग बाधा

तीन दिन तक ये यात्री अपना राह निरन्तर चलते रहे, वे अब रात्रि भर चलते और दिन निकने पर जब धूप तेज होती तो किसी बन या पर्वत कन्दरा में आश्रय लेते, आखेट भून कर खा लेते। श्रावस्ती अब भी काफी दूर थी। चौथे दिन प्रहर रात्रि गये जब उन्होने यात्रा प्रारम्भ का तब आकाश में एकाध बोले बादलो का दौड धूप हो रही थी। षष्टी का क्षीण चन्द्र उदय हुआ था। राह पथरीली और ऊबड खाबड थी, इस लिए चारो यात्री धीरे २ जा रहे थे। इसी समय उन्हे अकस्मात् सामने दाहिने पार्श्व पर कुछ अश्वारोहियो की परछाही दृष्टि गोचर हुई।

सोम ने कहा—"सावधान हो जाओ कुण्डनी, नही कहा जा सकता कि ये मित्र है या शत्र, दस्यु भी हो सकते है।" और उन्होने खड्ग कोश से निकाल लिया तथा राजकुमारी को बीच में ले लिया। कुण्डनी और साम्ब ने धनुष पर बाण सीधे कर लिये। इसी समय एक बाण सनसनाता हुआ सोम के कान के पास से निकल गया। तत्काल कुण्डनी ने बाण सधान किया। उसे सकेत से रोक कर सोम फुर्ती से बाम पार्श्व मे घूम गये। वहा एक चट्टान की आड में उन्होने आश्रय लिया। कुण्डनी और राजकुमारी को वहा छिपा कर तथा साम्ब को उन की रक्षा का भार देकर वे अश्व को उस चट्टान के ऊपर ले गये। उन्होने देखा, शत्रु पचास से भी ऊपर है और उन्होने उन्हे देख लिया है। तथा वे उस चट्टान को घेरने का उपक्रम कर रहे है। सामने एक घाटा है और उसके उस पार प्रशस्त मार्ग है। घाटी बहुत तंग और लम्बी है। यह सब देख कर वे तुरन्त ही कुण्डनी के निकट आ गये। उन्होंने

कहा—'शत्रु पचास से भी अधिक है, और सम्भवतः उन्होंने हमें यहाँ आते देख लिया है।'

"क्या करना होगा?" कुण्डनी ने स्थिर स्वर से कहा।

सोम ने व्यग्र भाव से कहा—"कुण्डनी, चाहे भी जिस मूल्य पर हमें राजकुमारी की रक्षा करनी होगी। हम चार हैं और शत्रु बहुत अधिक है, यदि किसी तरह हम घाटी के उस पार पहुंच जाय तो फिर कुछ आशा हो सकती है। राजकुमारी को साहस करना होगा। पहिले तुम, पीछे राजकुमारी उसके बाद साम्ब और फिर मैं घाटी को पार करूंगा। हम सीनों में जो भी जीवित बचे, वह राजकुमारी को श्रावस्ती पहुंचा दे। मैं शत्रु का ध्यान इधर आकर्षित करता रहूंगा। तुम तीर की भांति पार जाकर चट्टान की आड़ में हो जाना। मैं उधर जाकर शत्रु पर तीर फेंकता हूं। तीर की ओर शत्रु का ध्यान जाते ही तुम घूम कर घाटी पार हो जाना। मेरे दूसरे तीर पर राजकुमारी और तीसरे पर साम्ब।"

इतना कह सोम धनुष पर बाण चढ़ा चट्टान की दूसरी ओर चले गये। और वहां से कान तक खींच कर एक बाण फेंका। बाण एक योद्धा की पसली में घुस गया, वह चीत्कार करके पृथ्वी पर गिर पड़ा। कुण्डनी ने एक मर्मभेदिनी दृष्टि राजकुमारी पर डाली। अश्व पर आसन जमाया और एड़ मारी। सैन्धव अश्व तीर की भांति छलांग मार कर घाटी के पार हो गया। उस पार जाकर कुण्डनी ने संकेत किया और चट्टान की आड़ में हो गई। सोम ने सन्तोष की सांस ली और कुमारी के निकट आकर अवरुद्ध कण्ठ से कहा—"अब आप राजनन्दिनी, साहस कीजिये, आपका धूम्रकेतु अश्वाधारण अश्व है। ज्यों ही मैं तीर फेंकूं, आप अश्व को छोड़ दीजिये।" उसने धूम्रकेतु की पीठ थपथपाई। राजनन्दिनी ने दांतों से होंठ काटे और उत्तरीय भली भांति सिर पर लपेटा। सोम ने बाण छोड़ा और राजकुमारी ने अश्व को वल्गु का एक झटका दिया। अश्व हवा में तैरता हुआ उस पार हो गया।

सोम का मुख आनन्द से खिल गया। अब उस ने शाम्ब की ओर मुड कर कहा—'शाम्ब, यदि मैं असफल होऊं तो तू प्राण रहते राजकुमारी की रक्षा करना।"

साम्ब ने स्वामी के चरण छुए। सोम ने फिर बाण फेंका साम्ब ने अश्व को संकेत किया। अश्व हवा में उछला और पार हो गया। अब साम की बारी थी। परन्तु अब शत्रु निकट आकर फैल गये थे।

साम ने अश्व को थपथपाया, और एड लगाई, अश्व उछला। इसी समय एक बाण आकर सोम की गर्दन में घुस गया। और सोम वायु से टूटे वृक्ष की भांति घाटी में गिर गये। साम्ब चीत्कार करके दौड पडा। राजकुमारी हाय कर उठी। कुण्डनी का मुंह फक हो गया। राजकुमारी घाटी की ओर लपकी, परन्तु कुण्डनी ने हाथ पकड कर उन्हें रोक कर कहा—"क्षण भर ठहरो बाला, साम्ब उनकी सहायता पर है।" उधर से बाणों का मेह बरस रहा था, उनमें से अनेक साम्ब के शरीर में घुस गये। उसके शरीर में रक्त की धार बह चली। पर उसने उसकी कोई चिन्ता नहीं की। वह मूर्छित सोम को कन्धे पर लाद कर इस पार ले आया।

"और अश्व, साम्ब ?" कुण्डनी ने उद्वेग से कहा— "दोनों अश्व मरगये" साम्ब ने हांफते हांफते कहा। बाण वहां तक आरहे थे और शत्रु घाटी पार करने की चेष्टा कर रहे थे। कुण्डनी ने कहा — "साम्ब, इन्हें राजकुमारी के घोडे पर रखो और तुम मेरे साथ आओ। एक क्षण का विलम्ब भी घातक होगा।"

इसी समय सोम की मूर्छा भग हुई। उसने राजकुमारी को सामने देखकर सूखे कण्ठ से कहा—'कुण्डनी तुम राजकुमारी को लेकर भागो। हम लोग—मैं और साम्ब तब तक शत्रु को रोकेंगे।" राजकुमारी ने आंखों में आंसू भर कहा—

"नहीं, आप मेरे अश्व पर आइये।"

"व्यर्थ है, हम सब मारे जावेंगे।"

इसी बीच साम्ब ने तीर मार कर दो शत्रुओं को धराशायी कर दिया। सोम ने साहस करके तीर खींच कर कण्ठ से निकाल लिया। खून का धार बह चली। राजकुमारी ने लपक कर अपना उत्तरीय सोम के कण्ठ से बांध दिया और कहा—"उठो भद्र, मेरे अश्व पर।"

"नहीं, राजकुमारी, तुम भागो, एक एक क्षण बहुमूल्य है।"

"मैं आपको छोड़ कर नहीं जाऊंगी।" और वह सोम के वक्ष पर गिर गई।

सोम के घाव से अब भी रक्त निकल रहा था। एक शत्रु घाटी के इस पार आ गया था, उसे साम्ब ने बाण से मार कर कहा—

"बहुत शत्रु इस पार आ रहे हैं।"

सोम ने कांपते हाथों से राजकुमारी को अलग करके कहा—"ईश्वर के लिए कुमारी, प्राण और प्रतिष्ठा लेकर भागो।"

"तो हम लोग साथ ही मरें।"

"नहीं राजनन्दिनी, इस प्रबल का अधम मोह न करो, 'प्राण लेकर भागो।"

"किन्तु मैं तुम्हें ····· "

"ओह, कुमारी, कुछ मत कहो, जीवन रहा तो फिर मिलेंगे।"

"पर मैं जीते जी तुम्हें छोड़ नहीं सकती।"

वह सोम के शरीर से लिपट गई।

सोम ने सूखे कण्ठ से कहा—"तुम्हें भ्रम हुआ है, कुमारी, मैं मागध हूं—तुम्हारा शत्रु।"

मार्ग में पड़े हुए मृत को अकस्मात् देख कर जैसे मनुष्य चीत्कार कर उठता है, उसी भांति चीत्कार करके कुमारी सोम को छोड़ कर दो कदम पीछे हट गई और भयभीत नेत्रों से सोम की ओर देखने लगी।

सोम ने कुण्डनी को संकेत किया और एक चट्टान का ढासना ले कर धनुष संभाला। कुमारी की ओर से उसने मुंह फेर लिया और

धनुष पर तीर चढाते हुए कहा—"साम्ब ! तुम दाहिने, मैं बाये ।"

परन्तु सोम बाण लक्ष्य पर न छोड सके। धनुष से बाण छूट कर निकट ही जा गिरा। उधर सोम एक बारगी ही बहुत सा रक्त निकल जाने से मूच्छित हो गये। उनकी आखे पथरा गई, और गर्दन नीचे को लुढक गई ।

साम्ब ने एकबार स्वामी को और फिर शत्रु को भयभीत दृष्टि से देखा। सामने कुण्डनी एक प्रकार से राजकुमारी को घसीटती हुई अश्व पर सवार करा अपने और कुमारी के अश्व को सम्हालती चट्टान की मोड पर पहुंच चुकी थी। राजकुमारी अश्व पर मृतक की भाति झुक गयी थी। अश्व घाटी के इस पार आ चुके थे । कुण्डनी ने एकबार साम्ब को ओर देखा, साम्ब ने द्रुतवेग से उसे भागने का सकेत करके सोम को कन्धे पर उठा लिया और वह तेजी से पर्वत कन्दरा की ओर दौड गया। एक सुरक्षित गुफा में सोम को लिटा, आप धनुषबाण लेकर गुफा के द्वार पर बैठ गया ।

परन्तु इतनी तत्परता, साहस एव शौर्य भी कुछ काम न आ सका। शत्रुओं ने शीघ्र ही राजकुमारी और कुण्डनी को चारों ओर से घेर लिया। भागने का प्रयास व्यर्थ समझ कर कुण्डनी अब मूर्छिता कुमारी की सुश्रूषा करने लगी।

दस्युओं में से एक ने आगे बढ़ कर दोनो के अश्व थाम लिये। चन्द्रमा के क्षीण प्रकाश में अश्वारोहियो को देख कर प्रसन्न मुद्रा से उसने कहा—

"वाह, दोनो ही स्त्रिया है ।"

दूसरे ने निकट आकर कहा—

"और परम सुंदरिया भी है। मालिक को अभी अभी सूचना देनी होगी। उसने राजकुमारी को देख कर कहा—"मालिक ऐसी ही एक दासी की खोज में थे।" एक पुरुष ने चकमक झाड कर प्रकाश किया और कुण्डनी से पूछा—

"कौन हो तुम ?"

"राही है, देखते नहीं।"

"देख रहे हैं, तुम्हारे वे साथी कहाँ हैं, जिन्होंने हमारे इतने आदमी मार डाले हैं?"

"वह तुम्हीं खोज लो।"

"अच्छी बात है, यह भी सम्भव है वे लोग उसी घाटी में मर खप गए हों। किन्तु तुम लोग जा कहाँ रही हो?"

"हम श्रावस्ती जा रहे हैं।"

"वह तो अभी साठ योजन है।"

"इससे तुम्हारा क्या प्रयोजन है, हमें अपने मार्ग जाने दो।"

"हमारा सार्थवाह भी श्रावस्ती ही जा रहा है, हमारे साथ ही चलो तुम।"

"क्या बल से?"

"नहीं विनय से।" वह पुरुष हँसकर पीछे हट गया। उसके साथी दोनों अश्वों को घेरकर चलने लगे। कुण्डनी ने विरोध नहीं किया। कुछ दूर चलने पर उन्होंने देखा, वन के एक प्रान्त भाग में कोई पचास साठ सशस्त्र पुरुष आग के चारों ओर बैठे हैं, एक ओर कुछ स्त्रियाँ भी एक बड़े शिला खण्ड की आड़ में बैठी हैं। कुछ सो रही हैं।"

इनके वहाँ पहुँचने पर कई मनुष्य इनके निकट आ गये। एक पुरुष ने मशाल ऊँचा करके कहा—"वाह, बहुत बढ़िया माल है, स्वामी को अभी सूचना दो।" इसी समय एक अधेड़ावस्था का खूब मोटा आदमी आगे आया, इसकी लम्बी डाढ़ी और गर्दन मोटी थी। वह एक कीमती शाल लापरवाही से कमर में लपेटे हुआ था, उसने हर्षित नेत्रों से दोनों स्त्रियों को देखा और हाथ मल कर सिर हिलाया।

"सो तुम दास विक्रेता हो?" कुण्डनी ने घृणा से होठ सिकोड़ कर कहा।

"तुम ठीक समझ गई हो, परन्तु चिन्ता न करो, मैं श्रावस्ती जा रहा हूँ। तुम्हें और तुम्हारी सखी को महाराज की भेंट करूँगा, वहाँ

तुम्हारी यह सखी पट्टराज्ञमहिषी का पद ग्रहण करेंगी और तुम भी। सभवतः तुम अति दूर से आ रही हो और तुम्हारी साथिन रुग्ण है। अभी विश्राम करो, प्रभात में परिचय प्राप्त करूंगा।" उसने दो दासों को सकेत किया और वे उनके अश्व थाम कर उधर ले गए जिधर अन्य स्त्रियां बैठी थी। पहिले उसने राजकुमारी को सहारा देकर उतारा, फिर वह कुण्डनी के निकट आया। वह असावधान था, कुण्डनी ने विद्युत वेग से उस पर हठात् कटार का वार किया और द्रुत वेग से अश्व छोड दिया। दास ने चिल्लाकर कहा—"पकडो, पकडो, दासी भागी जाती है।" अनेक पुरुष अश्व शस्त्र लेकर उसके पीछे दौडे पर कुण्डनी उनके हाथ न आई, कुछ देर मे सब लोग हताश हो लौट आए। राजकुमारी का एकमात्र अवलम्ब भी जाता रहा। वह वहीं मूछित होकर गिर गयी।

———

: ५० :

श्रावस्ती

श्रावस्ती उन दिनो जम्बूद्वीप का सबसे बडा नगर था। कोशल महाराज्य के अन्तर्गत साकेत और वाराणसी ये दो महानगर भी महा-समृद्धशाली थे, परन्तु श्रावस्ती की उनसे होड़ न थी। साकेत बहुत दिन से कोशल की राजधानी न रही थी, इस समय उसका महत्त्व केवल इसलिए था कि वह उत्तरापथ के प्रशस्त महा जनपथ पर थी। तथा उत्तर दक्षिण पूर्व और पश्चिम के सार्थवाह जल थल दोनो ही मार्ग से साकेत होकर हो जाते थे।

परन्तु श्रावस्ती मे समस्त जम्बूद्वीप की सम्पदाओं का अगम समागम था। यहा अनाथपिण्डक सुदत्त, और मृगार जैसे धन कुबेरो का निवास था। जिनके सार्थ जम्बूद्वीप ही मे नही, ताम्रलिप्त के मार्ग से बगाल की खाडी और भरुकच्छ तथा सूर्पारक से अरब सागर को पार कर सुदूर द्वीपो मे जाते और सम्पदा विस्तार करते थे। श्रावस्ती से प्रतिष्ठान पर्यन्त मार्ग माहिष्मती, उज्जैन, गोनंद, विदिशा, कौशाम्बी और साकेत होकर था। श्रावस्ती से राजगृह का मार्ग पहाड की तराई होकर था। मार्ग मे सेतव्य, कपिलवस्तु, कुशीनारा, पावा, हस्तिग्राम, भण्डग्राम, वैशाली पाटलीपुत्र और नालन्द पडते थे। पूर्व से पश्चिम का मार्ग बहुत करके नदियों द्वारा तै होता था। गगा मे महजाति और यमुना मे कौशाम्बी तक बडी २ नावे चलती थी। सार्थवाह विदेह होकर गान्धार तक, मगध होकर सौवीर तक, भरुकच्छ से बर्मा तक और दक्षिण होकर बैबिलोन तक तथा चम्पा से चीन तक जाते आते थे। रेगिस्तानो में लोग रात को चलते थे और पथप्रदर्शक नक्षत्रो के सहारे मार्ग का निर्णय करते थे।

सुवर्णभूमि से लेकर यवद्वीप तक, तथा दक्षिण में ताम्रपर्णी तक आना जाना था। श्रावस्ती महानगरी मे हाथी सवार, घुडसवार, रथी, धनुर्धारी, आदि नौ प्रकार की सेनाए रहती थी। कौशल राज्य की सैन्य में यवन, शक, तातार और हूण भी सम्मिलित थे। यवनो को ऊचे २ सेनापति के पद प्राप्त थे। उच्चवर्गीय सेट्ठियो. सामन्तों श्रमणो और श्रोत्रीय ब्राह्मणो के अतिरिक्त दास, रसोइए, नाई, उपमर्दक, हलवाई, माली, धोबी, जुलाहे, झोंपा बनाने वाले, कुम्हार, मुहर्रिर, मुत्सदी और कर्मकर भी थ।

कर्मकरो मे धातु, लकडी और पत्थर पर काम करने वाले, चपडा, हाथीदाँत के कारीगर, रगाई वाले, जोहरी, मछली मारने वाले, कसाई, चित्रकार आदि अनगिनत थे। रेशम, मलमल, चर्म, कारचोबी का काम, कम्बल, औषध, हस्तिदन्त, जवाहर, स्वर्णाभरण आदि के अनगिनत व्यापारी थे।

जातियो में ब्राह्मण महाशाल, क्षत्रिय सामन्तो का उच्च स्थान था। इनके बाद सेट्ठिजन थे, जो धन सम्पदा मे बहुत चढ बढ थे। देश देश का धन रत्न इनके पास खिचा चला आता था। उन दिनों देश मे दश प्रतिशत ये सामन्त-ब्राह्मण और सेट्ठिजन, नव्वे प्रतिशत सर्व साधारण की कमाई का उपयोग करते थे। इन ९० प्रतिशत मे २० प्रतिशत तो दास ही थे जिन का समाज मे कोई अधिकार ही न था। शेष ७० प्रतिशत जन साधारण के तरुण बलात् इन सावन्तो और राजाओ के निरर्थक युद्धो मे अपने प्राण देने को विवश किए जाते थे और उनकी युवती सुन्दरी कन्याये उनके अन्तपुरो की भीड में दासियो, उपपत्नियो आदि के रूप मे विवश रखली जाती थी। ब्राह्मण इन सामन्तो और राजाओ को परम परमेश्वर घोषित करते, इन्हे ईश्वरावतार प्रमाणित करते और इनके सब ऐश्वर्यो का पूर्व जन्म के सुकृत का फल बताते थे। इसके बदले मे वे इनसे बडा २ दक्षिणाएं फटकारते और स्वर्णभूषिता सुन्दरी दासिया दान मे पाते थे।

मगध सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार को परास्त करने और कौशाम्बी-पति उदयन को नियुक्ता गांधारनन्दिनी कलिङ्गसेना को प्राप्त करके बूढ़े घमण्डी कौशलेश प्रसेनजित बहुत प्रसन्न थे। इस विजय और हर्ष के उपलक्ष्य मे उन्होने राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया था, जिसके लिये बहुत भारी आयोजन किया जा रहा था। महाराज अभी भी राजधानी मे नही थे, साकेत मे विराज रहे थे। परन्तु श्रावस्ती में यज्ञ की तथा कलिङ्गसेना के विवाह की तैयारिया बड़ी धूमधाम से हो रही थी। देशदेशान्तरो के राजाओ, सामतो और माण्डलीकों ने विविध प्रकार की भेटे भेजी थी। व्यापारियो, अतिथियों, मुनि और ब्राह्मणों के गुट श्रावस्ती में चले आ रहे थे।

श्रावस्ती के राजमहालय में कलिङ्गसेना का बडे ठाठ का स्वागत हुआ। समस्त पुरी सजाई गई। उसका अद्भुत सौन्दर्य, नीलम मणि के समान उज्ज्वल नेत्र, चमकीले सोने के तार के से स्वर्ण केश और स्फटिक सी धवल गौर कांति एव सुगठित सुस्पष्ट देहयष्टि देखकर सम्पूर्ण रनवास आश्चर्यचकित रह गया। महाराज प्रसेनजित के रनवास मे जो देश विदेश की सैकडो एक से एक बढकर सुन्दरिया थी, कलिङ्गसेना के सामने सभी की आभा फीकी पडगई। उन सहस्राधिक रमणियो मे उसके रूप को कोई पा ही नहीं सकती थी। परन्तु कलिङ्गसेना जैसी रूप सम्पन्ना नारी थी वैसी ही मानवती और विदुषी भी थी। वह गन्धार के स्वतन्त्र और स्वस्थ वातावरण में पली थी। तक्षशिला के निकेतन मे उसने शिक्षा पाई थी। वह वेद, वेदाङ्ग, ज्योतिष और चौदह विद्याओं के सिवा, शस्त्र संचालन और अश्व सचालन में भी एक ही थी। उसने हठपूर्वक गन्धार से श्रावस्ती तक अश्व की पीठ पर यात्रा की थी। राजमहालय में उसे सम्पूर्ण सुख साधन सम्पन्न प्रथक् प्रासाद दिया गया था।

इस समय श्रावस्ती में काफी भीड भाड थी। परन्तु यह भीड़ कलिङ्गसेना को अच्छी नही लग रही थी। उसने अभी पति को नहीं

देखा था, पर उसने सुना था कि वे विगलित यौवन सत्तर वर्ष के बूढ़े, सनकी और स्त्रैण कापुरुष हैं। उसने इच्छापूर्वक ही कौशाम्बीपति उदयन को त्याग कर इस बूढ़े राजा से विवाह करने की स्वीकृति देदी थी, परन्तु उसका प्रियभाव उदयन की ही ओर था। प्रसेनजित के प्रति उसके मन में पूरी विरक्ति थी। महाराज के श्रावस्ती में लौटने पर उसका विवाह होगा यह उसे मालूम था, उसकी तयारियां भी वह देख रही थी और वह धैर्यपूर्वक बलि पशु की भांति उस दिन की प्रतीक्षा कर रही थी। उस तेजस्वी विदुषी स्त्री ने पिता के राजनैतिक स्वार्थ की रक्षा के लिये ही अपनी बलि दी थी। इसलिए वह चुपचाप सूनी दृष्टि से कौतूहल करती रनवास का तथा अपने विवाह अनुष्ठान की तैयारी का देख रही थी, जिसके लिये उसके मन में अवज्ञा के पूरे भाव भर गये थे।

कलिङ्गसेना अपने कक्ष में चुपचाप बैठी सूनी दृष्टि से सुदूर आकाश को ताक रही थी, इसी समय एक प्रौढ़ महिला ने वहां प्रवेश किया। कलिङ्गसेना ने उनकी ओर देखा, सूर्य के प्रखर तेज के समान उनका ज्वलंत रूप था। यद्यपि उनका यौवन कुछ ढल चुका था, परन्तु उनकी भृकुटी और दृष्टि में तेज और गर्व भरा हुआ था। आत्मनिर्भरता उनकी प्रत्येक चेष्टा से प्रकट हो रही थी। कलिङ्गसेना ने अभ्युत्थानपूर्वक उन्हें आसन देकर कहा—

"यह मुझे किन महाभागा के दर्शन की प्रतिष्ठा का लाभ हो रहा है?"

प्रौढ़ा ने हंस कर कहा—"कौशल के मन्त्रीगण जिन्हें महा महिम देव-देव महाराजाधिराज कोसलेश्वर कह कर सम्मानित करते हैं, उनकी मैं दासी हूं। इसमें प्रथम एक क्षीता दासी वासभ खत्तिय की महा नाम शाक्य के औरस से उत्पन्न दासा पुत्री थी।"

कलिङ्गसेना ने सम्भ्रम उठ कर कहा—"ओह, आप राजमहिषी सुभा देवी नन्दिनी हैं, मैं आप की अभिवन्दना करती हूं।"

"अच्छा, तो तुम मेरा नाम और पद भी जानती हो? यह तो बहुत अच्छा है।"

"मैंने गन्धार में आपके तेज, प्रताप और पाण्डित्य के विषय में बहुत कुछ सुना है।"

"अरे, इतना अधिक? किन्तु अपनी कहो, तुम तो तक्षशिला की स्नातिका हो। तुमने वेद ब्राह्मण, आरण्यक सब पढ़े हैं। और कौन २ सी दिव्य विद्याएं जानती हो बला, सब कहो।"

"मैं आपकी आकिञ्चन छोटी बहिन हूं देवी नन्दिनी, इस पराए घर में मुझे सहारा देना।" कलिङ्गसेना की नीलमणि की ज्योति वाली आंखें सजल हो गईं।

नन्दिनी ने उसे खींचकर हृदय से लगाया, और कहा —

"क्या बहुत सूना २ लगता है बहिन?"

"अब नहीं, देवी, आपको पाकर।"

नन्दिनी ने उसकी ठोडी ऊपर करके कहा—"हताश मत हो, प्रारम्भ में ऐसा ही सूना लगता है, परन्तु पराए को अपना करने ही में स्त्री का स्त्रीत्व कृतार्थ है। तुम्हें आदर्श को निर्माल्य अर्पण करना होगा।"

"यह तो मैं कदापि न कर सकूंगी।"

"तो राजमहिषी कैसे बनोगी?"

"उसकी मुझे तनिक भी अभिलाषा नहीं है।"

"तब घोडे पर चढकर इतने चाव से इतनी दूर आईं क्यों?"

नन्दिनी की व्यंग वाणी और होठों पर कुटिल हास्य देख कर कलिङ्गसेना भी हंस दी। हंसकर कहा—"केवल आप को देखने के लिये।"

"मुझे तो देख लिया, अब पतिदेव को भी तो देखना।"

"उसकी मुझे साध नहीं है।"

"नारी जन्म लेकर ऐसी बात?"

"नारी जन्म ही से क्या हुआ ?"

"हुआ क्यो नही ? नारी का जन्म पाया, तो पुरुष का आत्मार्पण भी करो ।"

"यह तो स्त्री पुरुष का नैसर्गिक आदान प्रतिदान है ।"

"वह गन्धार में होगा हला, यहा केवल स्त्री ही आत्मार्पण करती है, पुरुष नही । पुरुष स्त्री को केवल आश्रय देता है ।"

'आश्रय ? छी ! छी !, मै गान्धार कन्या हू देवी नन्दिनी, मुझे आश्रय नहीं, आत्मार्पण चाहिए ।"

"यह तो युद्ध घोषणा है हला ।',

"जो कुछ भी हो ।"

"अब समझी, तो कोशलपति से युद्ध करोगी ?"

"यह नही, मै पिता का भय और माता की अश्रुपूर्ण आखे नहीं देख सकी । कोशलपति ने सीमान पर सेनाये भेजी थी और साकेत का सार्थ मार्ग गान्धारो के लिए बन्द कर देने की धमकी दी थी । इस प्रकार गान्धारों के लिए सुदूरपूर्व के व्यापार का अवरोध होना गान्धारो ही के लिए नही, उत्तर कुरु और यवन-पर्शुरुगी के सम्पूर्ण प्रतीची देशो के विनिमय का घातक था । इसका निर्णय गान्धारो का खड्ग कर सकता था । परन्तु मैने अपने प्रिय जनो का रक्त नष्ट करने की अपेक्षा अपनी आत्मा का हनन करना ही ठीक समझा । हम गान्धार राजा और प्रजा सब परिजन है । यहा के रजपुतो के समान हम प्रजा को अपना दास नहीं समझते न बात २ पर उनका रक्त बहाना ही श्रेयस्कर समझते है । हम युद्ध करते है सखी, परन्तु तभी, जब वह अनिवार्य हो जाता है । एक गान्धार पुत्री के आत्मदान से यदि युद्ध से मुक्ति मिले तो यह अधिक युक्ति युक्त है । इसीसे, पिता से मैने सहमति प्रकट की और इस प्रकार मैने बहुत बडे सघष से गाधारो को बचा लिया ।"

'और कोशल की जीर्णशीर्ण प्रतिष्ठा को भी । सम्भवत: गान्धारों के युद्धवेग को कोशल न सभाल सकते । बड़े घरों के बड़े छिद्र

होते है सखी, कोशल के अधिपति जैसे जीर्णशीर्ण और जरा जर्जरित है वैसा ही उनका सैन्यबल भी है। एक धक्के ही मे वह ढह सकता था।"

"वह हम गान्धारो को विदित है हला, जहा सैनिको को वेतन देकर राजभक्ति मोल ली जाती है। जहा राजा अपने को स्वामी और प्रजा को अपना दास समझता है, वहां बहुत छिद्र होते ही है। परन्तु गान्धार विजय प्रिय नही है, व्यवस्था प्रिय है। उन्हे साम्राज्यो की स्थापना नही करनी, जीवन व्यवस्था करनी है। इसीसे हम सब छोटे बडे एक है, समान है। हम प्रजा पर शासन नही करते, मिल कर व्यवस्था करते है। वास्तव मे गांधारो मे राजा और प्रजा के बीच स्वामी सेवक भाव है ही नही। गन्धार मे हम स्वतन्त्र, सुखी और मानवता तथा नागरिकता के अधिकारो से युक्त है। परन्तु कोशल सैन्य ने सम्राट् बिम्बसार को कैसे पराजित कर दिया?"

'सम्राट् बिम्बसार अपनी ही मूर्खता से पराजित हुए। उन्होने आर्य वर्षकार की अनुरोध नही माना। उधर चम्पा में सेनापति चण्डभद्रिक फसे हुए थे। सम्राट् अपने ही बजबूते पर यह दुस्साहस कर बैठे। वास्तव में उन्हे विश्वास था कि महाराज उदयन तुम्हारे लिये कोशल से अवश्य युद्ध छेड देगे। वे इसी सुयोग से लाभ उठाया चाहते थे।'

"कोशाम्बीपति ने सीमान्त पर सैन्य भेजी थी, परन्तु मैनें ही उन्हें निवारण कर दिया।"

"सीमान्त पर उनकी सैन्य अभी भी पडी है। परन्तु आर्य योगन्धरायण ने किसी कारण से युद्ध छेडना ठीक नही समझा। न जाने वे अब भी किस की प्रतीक्षा कर रहे है, या इस विलम्ब में उनकी कोई गुप्त अभिसन्धि है। किन्तु यही सम्राट् बिम्बसार का दुर्भाग्य था। उधर बन्धुल और बन्धुल बन्धुओ ने हूण सैन्य को अच्छा व्यवस्थित कर दिया था। सम्राट् को इसकी स्वप्न में भी आशा नहीं थी। नहीं तो वे भद्रचण्डिक

की प्रतीक्षा करते। जो हो, अब विजयी वीर पति की प्राप्ति पर मै तुम्हे बधाई देती हू सखी ।"

"खेद है कि मै अकिञ्चन उसे स्वीकार नही कर सकती।"

नन्दनी ने हस कर कहा—"हला, कौशल की राज महिषियो में परिगणित होना परम सौभाग्य का विषय है।"

"परन्तु गान्धार कन्या का तो वह दुर्भाग्य ही है। मै गान्धार कन्या हू। हम लोग पति सहयोग के अभ्यासी है।"

"परन्तु यहाँ आर्यो में स्त्री प्रदत्ता है हला, उसका पति अनेक स्त्रियो का एक ही काल में पाणि ग्रहो हो सकता है।"

"परन्तु गान्धार में एक स्त्री के रहते दूसरी स्त्री नही आ सकती।"

"तो बहिन, उत्तर कुरुओं की पुरानी परिपाटी अभी वहा है ?"

"वहीं क्यो ? पर्शुपुरी के पार्श्वों और एथेन्स के यवनों मे भी ऐसा ही है। वहा स्त्री पुरुष की जीवन सगिनी है।"

"यहा कोशल, मगध और अग, बग, कलिङ्ग मे तो कही भी ऐसा न पाओगी। यहा स्त्री न नागरिक है न मनुष्य। वह पुरुष की क्रीत सम्पत्ति और उस के बिलास की सामग्री है। पुरुष का उसके शरीर और आत्मा पर असाध्य अधिकार है।"

"परन्तु मै देवी नन्दिनी यह कदापि न होने दूगी, मैने आत्मबलि अवश्य दी है, पर स्त्रियों के अधिकार नहीं त्यागे है। मै यह नही भूल सकती कि मै भी एक जीवित प्राणी हूं, मनुष्य हू, समाज का एक अंग हू। मनुष्य के सम्पूर्ण अधिकारो पर मेरा भी स्वत्व है।"

"यह सब तुम कैसे कर सकोगी, जहा एक पति की अनेक पत्निया हों, उपपत्निया हो, और वह किसी एक के प्रति अनुबंधित न हो, पर उन सबको अनुबधित रखे, वहा मानव समानता कहा रही बहिन ? यह 'पति' शब्द ही कैसा घृणास्पद है। हमारी विवश दासता की सारी कहानी तो इसी एक शब्द में निहित है।"

"यह कठिन अवश्य है देवी नन्दिनी, परन्तु मै किसी पुरुष को

'पति, नहीं स्वीकार कर सकती। पुरुष स्त्री का पति नहीं, जीवनसंगी है। पति, तो उसे सम्पत्ति ने बनाया है। सो जब मैं उसकी सम्पत्ति का भोग नहीं करूंगी तो उसे पति भी नहीं मानूंगी।

"परन्तु कौशल के अन्तःपुर में तुम इस युद्ध में विजय प्राप्त कर सकोगी?"

"मैं युद्ध करूंगी ही नहीं देवी नन्दिनी। कोशलपति ने यही तो कहा है कि यदि गान्धारराज अपनी पुत्री मुझे दे तो कौशल राज्य गान्धार का मित्र है। सो गान्धार ने अपना कार्य किया, उसका मैंने विरोध नहीं किया। अब मेरे साथ कैसा व्यवहार होना चाहिये, मेरे क्या २ अधिकार हैं यह मेरा अपना व्यक्तिगत कार्य है। इसमें मैं किसी को हस्तक्षेप नहीं करने दूंगी।"

"किन्तु जीवनसंगी?"

"ओह देवी नन्दिनी, जीवनसंगी जीवन में न मिले तो अकेले ही जीवन यात्रा की जा सकती है। अन्तत बलिदान में कुछ त्याग तो होता ही है।"

"कुछ नहीं, बहुत। तो हला कलिङ्ग, तुम्हारा सदुद्देश्य सफल हो। मैं दासी पुत्री न होती तो मैं भी यह करती, परन्तु अब तुम्हारी सहायता करूंगी।"

इसी समय एक चेटी ने आकर निवेदन किया—'राजकुमार वर्धनो की आज्ञा चाहते हैं।"

"आएं यहां।" नन्दिनी ने कहा।

राजकुमार विदूडभ ने आकर माता को अभिवादन किया।

नन्दिनी ने हंस कर कहा—

'यह तुम्हारी नई मां है पुत्र, इनको अभिवादन करो।"

विदूडभ ने कहा—

'अम्बे, अभिवादन करता हूं।"

"यह तुम्हारा अनुगत पुत्र है हला, आयु में तुम से तनिक ही अधिक

है। परन्तु यह देखने ही में इतना बड़ा है, परन्तु वास्तव में नन्हा सा बालक है।" नन्दिनी ने विनोद से कहा।

कलिंगसेना ने हंस कर कहा—

'अयुष्मान् के वैशिष्ठ्य को बहुत सुन चुकी हू, कामना करती हू आयुष्मान पूर्णाभिलाष हो।'

'चिरवाधित हुआ, इस श्रावस्ती के राजमहालय मे हम दो व्यक्ति तिरस्कृत थे, अब सम्भवत तीन हुऐ।"

"मैंने समझा था मैं अकेली हूं, अब तुम्हे और देवी नन्दिना को पाकर मैं बहुत सुखी हुई हू।"

देवी नन्दिनी ने उठते हुए कहा—

"हला कलिंग, अब मैं जाती हूं, परन्तु एक बात गाठ बाधना, इस राजमहालय में एक पूजनीया है, मल्लिका पट्टराजमहिषी। वे मेरी ही भाति एक नगण्य माली की बेटी है पर मेरी भाति त्यक्ता नही, वे परम तपस्विनी है। उनके धैर्य और गरिमा का अन्त नही है। उनकी पद वन्दना करनी होगी।"

"पूज्य पूजन से मैं अभावधान नहीं हू देवी नन्दिनी, मैंने महालय में आते ही राजमहिषी को प्रभिवादन निवेदन किया था।"

"तुम सुखी रहो बहिन।"

यह कह कर नन्दिनी चली गई। विदूडभ ने भी प्रणाम कर प्रस्थान किया।

: ५१ :

वर्षकार का यन्त्र

सम्राट् ने राजधानी में लौट कर देखा, अवन्तिपति चण्ड महासेन प्रद्योत ने राजगृह को चारो ओर से घेर लिया है। नगर का वातावरण अत्यन्त क्षुब्ध था। सम्राट् थकित और अस्त व्यस्त थे, राजधानी मे महामात्य उपस्थित नहीं थे, न सेनापति चण्डभद्रिक ही थ। सेना की व्यवस्था भी ठीक न थी। चम्पा में फैली हुई सैन्य लौटी न थी, और सेना का श्रेष्ठ भाग श्रावस्ती में बिखर गया था। सम्राट् ने तुरन्त उप सेनापति उदायि को बुलाकर परामर्श किया।

सम्राट ने कहा—

"भणे सेनापति, यह तो विपत्ति ही विपत्ति चारों ओर दीख रही है। मालवपति ने राजगृह को घेरा है, हम विपन्नावस्था में है ही, अब तुम कहते हो कि मथुरापति अवन्तिवर्मन प्रद्योत की सहायता करने आरहा है।"

"ऐसा ही है देव।"

"तो भणे सेनापति, ये दोनों ग्रह परस्पर मिलने न पावें, ऐसा करो।"

"किन्तु देव, आर्य महा अमात्य का कडा आदेश है कि युद्ध किसी भी दशा में न किया जाय।"

"उन्होने यह आदेश किस आधार पर दिया है ?"

'अपने यन्त्र के अधार पर।"

"वह यन्त्र क्या है ?"

"उसे गुप्त रखा गया है।"

"कौन उसके सूत्रधार है ?"

"आचार्य शाम्बव्य काश्यप।"

"तो भणे सेनापति, काश्यप को देखना चाहता हू।"

"परन्तु काश्यप राजधानी मे नही है।"

"कहा है ?"

"आमात्य ने उन्हे छद्म रूप मे कही भेजा है ?"

"आर्य आमात्य यह सब क्या कर रहे हैं ? भणे सेनापति, करणीय वा अकरणीय ?"

"करणीय देव।"

"तो फिर हमे सम्प्रति क्या करणीय है ?"

"आमात्य की प्रतीक्षा।"

"जैसे हम लोग कुछ है ही नही, सब कुछ आमात्य ही है।"

"देव, क्या यद्ध करना चाहते है ?"

"भणे सनापति, युद्ध हम दो सम्मिलित सैन्य से कैसे कर पावेंगे ? हमारे पास सेना कहा है ?"

"देव, मै किसी असम्भाव्य की प्रतीक्षा मे हूं।"

"कब ?"

"किसी भी क्षण।"

इसी समय एक चर ने आकर सूचना दी --"देव, शत्रु रातो रात नगर का घेरा छोड भाग गया। उसकी सेना अत्यन्त विपन्नावस्था में भाग रही है।"

"यह कैसा चमत्कार है सेनापति ? चर, क्या कुछ और भी कहना है ?"

"देव, आचार्य शाम्बव्य ने आश्वासन भेजा है कि प्रद्योत की ओर से देव निश्चिन्त रहे। हां, जितना सैन्य सम्भव हो सीमान्त पर तुरन्त भेज दे, वहा आर्य आमात्य अवन्ति वर्मन का अवरोध कर रहे है। परन्तु उनके पास सेना बहुत कम है।"

"बस, या और कुछ ?"

"देव, आचार्य ने कहा है, कि प्रद्योत को अपने ही सेनानायकों पर अविश्वास हो गया है। इसीसे वह रातो रात अपने नीलगिरि हाथी पर चढ़कर एकाकी ही भाग खड़े हुए हैं, उन्हे पकड़ने का अच्छा काल है।"

"तो भणे सेनापति, उसे पकड़ो, और उसकी भागती हुई सैन्य को अव्यवस्थित और छिन्न भिन्न करदो। मै अपनी अंगरक्षक सेना लेकर सीमान्त पर आमात्य की सहायता के लिये जाता हू। आप प्रद्योत के कार्य मे कृत संकल्प हो सीमान्त पर ससैन्य पहुच जाय।"

"देव की जैसी आज्ञा, अब देव आज्ञा दे तो निवेदन करूं— आमात्य का यन्त्र मुझ पर विदित है।"

"पहले कहा था गुप्त है?"

"गुप्त था चण्ड के पलायन तक।"

"तो कहो भणे, आमात्य ने कैसा यन्त्र किया कि प्रद्योत को इस प्रकार भागना पड़ा।"

"आमात्य ने प्रद्योत के अभियान की सूचना पाकर जहा जहा सैन्य ठहरने योग्य स्थान थे, वहां २ बहुत सी मागधी स्वर्ण मुद्राएं प्रथम ही धरती मे गड़वादी थी।"

"अरे, इसका अभिप्राय क्या था?"

"उन्ही स्थानो पर प्रद्योत के सहायक राजाओ और सेना नायको ने डेरे डाले, तब प्रद्योत को भ्रमा दिया गया कि ये सब सेनानायक और राजा मगध आमात्य से मिल गये है, और बहुतसा हिरण्य ले चुके है। खोजने पर मगध मुद्राङ्कित बहुत सा हिरण्य उन की छावनी से पृथ्वी मे से खोद निकाला गया।"

"और इस भ्रम मे प्रद्योत को किसने डाला?"

"आचार्य काश्यप ने। वे मगध से विश्वासघात करके मालव सैन्य में चले गये थे। चण्ड प्रद्योत उनका मित्र है।"

सम्राट् ने हंस कर कहा—"भणे सेनापति, मगध को जैसे दो अप्रतिम सेनापति प्राप्त हैं, वैसे ही दो कूटनीतिज्ञ ये ब्राह्मण भी।"

"ऐसा तो है ही देव, तो फिर मैं प्रद्योत को देखूं।"

"अवश्य सेनापति और मेरी अङ्गरक्षक सेना भी तैयार रहे। मैं दो प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर कूच करूंगा।"

"जैसी देव की आज्ञा।"

: ५२ :

सोण कोटिविश

शाक्यपुत्र गौतम विहार करते हुए साढ़े बारह सौ भिक्षु सघ के साथ राजगृह पहुंचे और गृध्रकूट पर्वत पर विहार किया। सर्वार्थक-महामात्य ने मगधराज सैनिय बिम्बसार से निवेदन किया—"देव, शाक्य-पुत्र श्रमण राजगृह में भिक्षुमहासघ के सहित छठी बार पधारे हैं, और गृध्रकूट पर विहार कर रहे हैं, उनका मगल यश दिगन्त व्याप्त है, वह भगवान् अर्हत है। सम्यक् सम्बुद्ध है, विद्या और आचरण से युक्त सुगत है। देवताओ और मनुष्यो के शास्ता है। वह ब्रह्मलोक, मारलोक, देवलोक सहित इस लोक को देव-मनुष्य सहित, स धु ब्राह्मण युक्त सब प्रजा को यथावत् जानते है, वह आदि मध्य और अन्त मे कल्याण कारक धर्म का अर्थ सहित, व्यञ्जना सहित उपदेश देते है। वे पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य के उपदेष्ठा और जितेन्द्रिय महापुरुष है। ऐसे अर्हत का दर्शन करना उचित है, आगे जैसी देव की आज्ञा हो।"

सम्राट् ने उत्तर दिया—"तो भणे, तथागत के दर्शनो को चलना चाहिये। तुम बारह लाख मगध निवासी ब्राह्मणो और गृहस्थो को, तथा अस्सी हजार गावो के मुखियो को सूचना दे दो, सब कोई महाश्रमण के दर्शनो को हमारे साथ चले।"

सूचना सचिव ने यही किया। उस समय चम्पा के सुकुमार सेट्ठि-पुत्र सोण कोटिविश राजगृह मे सम्राट् के अतिथि थे। वे इतने सुकुमार थे कि उनके पैरो के तलुओ मे रोम उग आये थे, इसी आश्चर्य को देखने के लिए सम्राट् ने सोण कोटिविश को मगध में बुलाया था। उसने जब सुना कि सम्राट् महाश्रमण के दर्शनो को मागध जनपद सहित जा रहे है, तो उसने कहा—"देव, मुझे इस सौभाग्य से क्यों वंचित किया

जाता है।" तब सम्राट् ने सोण कोटिविश से इस जन्म के हित की बात कही। फिर कहा, "भणे, मैंने तुम्हे इस जन्म के हित का उपदेश दिया, अब तुम्हे यदि जन्मान्तर के हित की बाते सुनने का चाव हो तो तुम जाओ उन भगवान् की सेवा मे।"

इसके बाद श्रेणिक सम्राट बिम्बसार सोण को आगे करके सम्पूर्ण राज परिजन पौर जानपद को सग ले गृध्रकूट पर्वत पर जहां भगवान् गौतम विहार कर रहे थे पहुचे।

उस समय आयुष्मान् स्वागत भगवान् गौतम के उपस्थाक थे। उनके निकट जाकर सूचना सचिव ने निवेदन किया—'भन्ते, यह अगि सम्राट् बिम्बसार, सोण कोटिविश, समस्त राज परिजन, पौर जानपद सहित महाश्रमण के दर्शन को आ रहे है, आप महाश्रमण को सूचित कर दीजिये।"

"तो आयुष्मान, मुहूर्त भर आप लोग यहीं ठहरे, मै भगवान् से निवेदन करूं।" इतना कह आयुष्मान स्वागत ने अर्धचन्द्र पाषाण में प्रवेश किया और ध्यानस्थ बुद्ध से निवेदन किया कि सम्राट् सपरिवार भगवान् का दर्शन किया चाहते है। सो भगवान् अब जिसका काल समझे।"

"तो स्वागत, विहार की छाया मे आसन बछा।"

"अच्छा भन्ते," कहकर आयुष्मान् स्वागत ने सम्पूर्ण व्यवस्था कर दी। और जब महाश्रमण विहार से निकल कर आसन पर बैठ गये तो उसने सम्राट् को सूचना दी। सम्राट् सन्मुख आ, अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। इसके बाद सब लोग यथ स्थान को हाथ जोडकर, कोई मौन होकर, कोई प्रदक्षिणा करके बैठ गये।

महाश्रमण ने उन्हे सम्बोधित कर दानकथा, शीलकथा, स्वर्गकथा, काम भोगों के दुष्परिणाम, उपकार, मालिन्य और काम भोगो से रहित होने के गुणों का वर्णन किया। जिससे श्रावक जन भव्यचित्त, मृदुचित्त, अनाच्छादितचित्त और आल्हादितचित्त हो गये। तब अवसर जान

महाश्रमण ने दुःख, दुःख का कारण, दुःख का नाश और दुःख के नाश का उपाय प्रकट किया। तब सम्राट्, राजवर्ग, पौर जानपद सब को—'जो कुछ उत्पन्न होने वाला है वह सब नाशवान् है, यह विमल विरज निर्मल धर्म चक्षु जहां जो बैठा था, उसी आसन पर उत्पन्न हुआ। तब तथागत ने दृष्ठधर्म, प्राप्तधर्म, विदितधर्म, पर्यवगाढ़धर्म, विचद् व्याख्यात किया।

इस पर बारह लाख मगध निवासी और अस्सी हजार ग्राम मुखिया तथा समस्त राजवर्गी जन सदेह रहित हो संघ, धर्म, और बुद्ध के अञ्जलिबद्ध शरणागत उपासक हो गये।

सोणकोटिविंश चुपचाप सब सुन रहा था। उसने सोचा, महाश्रमण ने जिस सुव्याख्यात धर्म का वर्णन किया है, सो यह सर्वथा परिपूर्ण, शुद्ध और उज्वल ब्रह्मचर्य साधन बिना सुकर नहीं है। ब्रह्मचर्य साधन के निमित्त मुझे परिव्राजक होना उचित है।

जब ससम्राट् राजवर्ग, पौरजानपद, महाश्रमण के भाषण का अभिनन्दन कर आसन से उठ, उनकी प्रदक्षिणा कर चले गये, तब सोण कोटिविंश अपने आसन से उठ कर महाश्रमण के निकट आया, और अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। जब तथागत ने उसकी ओर दृष्टि की, तब उसने करबद्ध प्रार्थना की—"कि भगवन्, मैंने भगवान् के उपदेश धर्म को जिस प्रकार समझा है, उससे जान पड़ता है कि घर मे रह कर ब्रह्मचर्य सुकर नहीं है। अतः मै सिर दाढी मुड़ा कर, काषाय वस्त्र पहन घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ चाहता हूं। भन्ते, मुझे प्रव्रज्या दें।"

सोण कोटिविंश ने प्रव्रज्या और उपसम्पदा पाई। उन्हे सीतवन में विहार के लिए स्थान मिला। परन्तु वह सुकुमार सेट्ठि कुमार कभी पाव प्यादे नही चला था, इसीसे उसके पैरो के तलुओं मे रोम उग आए थे। अब नगे पैर कठोर पृथ्वी पर चलने से उसके पैर लोहूलुहान हो गये और धरती लोहू से भर गई।

तथागत ने यह देखा । वे उस रक्त से भरे मार्ग पर सोण के पदचिन्ह देखते हुए सीतवन मे जहा सोण का विहार था, पहुचे ।

वहा सोण कुमार एकात मे बैठा यह सोच रहा था--"भगवान् के जितने उद्योग परायण विहरने वाले शिष्य है, मै उनमे एक हू । फिर भी मेरा मन आश्रवों को छोडकर मुक्त नही हो रहा है । मेरे घर में भोग सामग्री है, वहा रहते मै भोगो को भी भोग सकता हूं और पुण्य भी कर सकता हू । तब क्यो न मै लौट कर गृहस्थ हो भोगो का उपभोग करू और पुण्य भी सचय करू ।"

तभी भगवन् बुद्ध अनेक भिक्षुओ के साथ वहा पहुच गए । सोण ने भगवन् का समुत्थान पूर्वक स्वागत किया आसन दिया । स्वय एक ओर बैठ गया । स्वस्थ्य होने पर श्रमण बुद्ध ने कहा—

"क्या सोण, एकान्त मे क्या सोच रहे हो ?"

"सोण ने अपने मन का विचार निवेदन कर दिया । तथागत ने कहा—

"क्यो सोण, क्या तू पहले गृहस्थ होते समय वीणा बजाने मे चतुर था ?"

"हा भन्ते ।"

"तो सोण, जब तेरी वीणा के तार खूब खिचे होते थे, तब तेरी वीणा स्वर वाली होती थी ?"

"नहीं भन्ते"

"और जब वे तार खूब ढीले होते थे तब ?"

"तब भी नही भन्ते ।"

"किन्तु जब तार ठीक २ अरोह अवरोह पर होते थे तब ?"

"तब तो भन्ते, वीणा ठीक स्वर देती थी ।"

"तो इसी प्रकार सोण, अत्यधिक उद्योग परायणता औद्धत्य को उत्पन्न करती है, इसलिए सोण तू उद्योग मे समता का ग्रहण कर । इन्द्रियो के सम्बन्ध मे समता का ग्रहण कर, और वहा कारण को

ग्रहण कर।"

"अच्छा भन्ते"

"तो सोण, तू सुकुमार है, तुझे अनुमति देता हू, एक तले का जूता पहन।"

"भन्ते, मैं अस्सी गाडी हिरण्य और हाथियो के सात अनीक को छोड कर घर से बेघर हो परिव्रजित हुआ हू। अब कहने वाले कहेगे, सोण कोटिविश अस्सी गाडी स्वर्ण मुहर और हाथियों की सात अनीक को छोड कर परिव्रजित हुआ, सो वह अब एक तले के जूते मे आसक्त हुआ है? सो भगवान यदि भिक्षु सघ के लिए भी अनुमति देदें तो मै भी एक तल्ले का जूता ग्रहण करूगा, नही तो नही।"

भगवत् ने फिर भिक्षु सघ को एकत्रित किया, तथा इसी प्रकरण में, इसी प्रसङ्ग मे अनेक कथा कह कर भिक्षुओ को एक तल्ले के जूते पहनने की अनुमति दे दी।

: ५२ :

गृहपति अनाथ पिण्डिक

श्रावस्ती का अनाथ पिण्डिक सुदत्त सेट्ठि राजगृह में इसा समय अपने किसी काम से आया था। राजगृह मे उसकी पत्नी का भाई गृहपति था। उस दिन राजगृह के श्रेष्ठी ने तथागत बुद्ध को भोजन का निमन्त्रण दिया था और वह उसकी व्यवस्था मे ऐसा सलग्न था कि अपने सम्मान्य बहनोई का भी स्वागत सत्कार भूल गया। वह दासो और कम्मकरो को आज्ञा दे रहा था:—"भणे, समय पर ही उठकर खिचडो पकाना, भात बनाना, सूप-तेमन तैयार करना ·।"

अनाथ पिण्डिक सेट्ठि ने मन में सोचा—पहिले मेरे आने पर यह सब काम छोड मेरी ही आवभगत मे लगा रहता था, आज वह विक्षिप्तो के समान दासो और कम्मकरो को आज्ञा पर आज्ञा दे रहा है, क्या इसके घर आवाह होगा ? या विवाह होगा ? या महायज्ञ होगा ? या सब राजपरिजन के सहित श्रेणिक सम्राट् बिम्बसार को इसने कल के लिये निमन्त्रित किया है ?

इतने ही मे गृहपति ने आकर अपने बहनोई के साथ प्रति सम्मोदन किया और निकट बैठ गया। तब सेट्ठि अनाथ पिण्डिक ने कहा—

"भणे गृहपति, पहिले मेरे आने पर तुम सब काम धन्धा छोडकर मेरी आवभगत मे लग जाते थे, परन्तु आज यह क्या है ? क्या तुम्हारे यहा आवाह है, या विवाह है, अथवा सम्राट् बिम्बसार निमन्त्रित है ?"

"नही गृहपति, मेरे यहा न आवाह है, न विवाह, न मगध राज निमन्त्रित है। मेरे घर कल बडा यज्ञ है, संघ सहित बुद्ध कल के लिये निमन्त्रित है।"

"गृहपति, तू 'बुद्ध' कह रहा है ?"

"गृहपति, हां, 'बुद्ध' कह रहा हू ।"

"गृहपति, 'बुद्ध' कह रहा है ?"

"गृहपति, हां, 'बुद्ध' कह रहा हू ।"

"गृहपति, क्या 'बुद्ध' कह रहा है ?"

'गहपति, 'बुद्ध' कह रहा हू ।"

"गृहपति, 'बुद्ध' शब्द लोक मे दुलभ है, तू जिसे 'बुद्ध, कहता है, क्या मै उसे देखने अभी जा सकता हू ?"

"अभी नही, गृहपति, यह समय उन सम्यक् अर्हत भगवान्, सम्यक् सम्बुद्ध के दर्शनार्थ जाने का नही है। प्रत्यूष मे सम्यक् सम्बुद्ध के दर्शन होगे ।"

इसके बाद गृहपति सेट्ठि अपने प्रतिष्ठित अतिथि बहनोई के आहार विश्राम की व्यवस्था करके फिर बुद्ध के कल के निमन्त्रण प्रबन्ध मे रातभर जुटा रहा। अनाथ-पिण्डिक गृहपति को भी रात भर नीद नहीं आई। वह रात को ही सवेरा समझ कर तीन बार उठा, और सो रहा। अन्तत रात ही मे वह राजगृह के शिवक द्वार पर पहुचा। अ-मनुष्यों ने द्वार खोल दिया। प्राचीर के बाहर निकलते ही वह अन्धकार और सुनसान देख भयभीत हो गया। उसके रोगटे खडे हो गये। इच्छा हुई कि पीछे लौट जाय। परन्तु उसके कानो में एक दिव्य ध्वनि सुनाई पडी, उसने मानो सुना—'सौ हाथी, सौ घोडे, सौ खच्चरो के रथ, मणि कुण्डल पहने सौ हजार कन्याएं उसके एक पद के क्रमण के सोलहव भाग के मूल्य के बराबर भी नहीं है। चला चल गृहपति, चला चल, चलना ही श्रेयस्कर है। लौटना नही।"

सेट्ठि के हृदय मे प्रकाश उदय हुआ। वह चलता ही गया, गृध्र कूट पर जाकर उसने देखा—सम्यक् सम्बुद्ध प्रत्यूषकाल मे उठकर चंक्रमण में टहल रहे है। उन्होने दूर से आते हुए अनाथपिण्डिक को देखा। देखकर चक्रमण से उलट कर, बिछे आसन पर बैठकर आते हुए

अनाथ पिण्डिक से कहा—

"आ सुदत्त।"

अनाथ पिण्डक गृहपति तथागत को अपना नाम लेकर पुकारते सुन हृष्ट, उदग्र हो निकट जा चरणो मे सिर से पडकर बोला—

"भन्ते, भगवान् को सुख से निद्रा तो आई ?"

"निर्वाण प्राप्त सदा सुख से सोता है। वह शीतल तथा दोष रहित है, काम वासनाओ में लिप्त नही है, सारी आसक्तियों को खण्डित कर, हृदय से भय को दूर कर, चित्त की शान्ति को प्राप्त कर, उपशान्त हो वह सुख से सोता है।"

तब तथागत ने अनाथपिण्डिक गृहपति को आनुपूर्वी कथा कही। इससे गृहपति अनाथपिण्डिक को उसी आसन पर—जो कुछ समुदय धर्म है, वह निरोध-धर्म है—यह विमल विरज चक्षु उत्पन्न हुआ। तब उसने शास्ता के शासन मे स्वतन्त्र हो कहा—"भगवन्, मै भगवान् की शरण जाता हू, धर्म और सघ की शरण जाता हू, आज से मुझे भगवान् साञ्जलि शरण आया उपासक ग्रहण करे और भिक्षु सघ के सहित मेरा कल का निमन्त्रण स्वीकार करे।"

तथागत ने मौन सहित स्वीकार किया। तब गृहपति अनाथपिण्डिक आसन से उठ, भगवान् की प्रदक्षिणा और अभिवादन कर चला आया।

राजगृह के गृहपति ने सुना कि अनाथ पिण्डिक गृहपति ने कल भिक्षु संघ को आमन्त्रित किया है, तब उसने कहा—"गृहपति, तुम आगन्तुक हो और तुम ने कल भिक्षु सघ को आमन्त्रित किया है, इस से मै खर्च देता हूं, उसी से सघ के भोजन की व्यवस्था करो।"

अनाथ पिण्डिक गृहपति ने अस्वीकार करते हुए कहा—'गृहपति, मेरे पास खर्च है।"

तब राजगृह के नैगम ने सुना और खर्च देने का आग्रह किया। सम्राट् ने भी सुनकर आमात्य भेज कर खर्च देने के लिये कहा, किन्तु सेट्ठि अनाथ पिण्डिक ने अस्वीकार करते हुए कहा—'नही, खर्च मेरे

पास है।"

और उसने भोजन की ठाठदार व्यवस्था राजगृह के सेट्ठि के घर पर कर के श्रमण को सूचना दी —

"काल है भन्ते, भात तैयार हो गया।"

तब भगवान् बुद्ध पूर्वाह्ण के समय सु-आच्छादित हो, पात्र चीवर हाथ मे ले, राजगृह के सेट्ठि के मकान पर आए। भिक्षु सघ सहित आसन पर बैठे। तब अनाथ पिण्डक गृहपति ने बुद्ध सहित भिक्षु सघ को अपने हाथ से उत्तम खाद्य भोज्य से सतर्पित कर, पूर्ण कर, भगवान् के भोजन कर, पात्र से हाथ खीच लेने पर स्वस्थ्य चित्त हो कर कहा—

'भगवन्, भिक्षु सघ के सहित श्रावस्ती मे वर्षावास स्वीकार करें।"

'शून्यागार मे गृहपति, तथागत अभिरमण करते है।"

"समझ गया भगवन्, समझ गया सुगत।"

अनाथ पिण्डक गृहपति बहुमित्र, बहुसहाय, और प्रामाणिक था। राजगृह मे जब वह आना काम समाप्त कर चुका और श्रावस्ती को चल पडा तो उसने मार्ग म मित्रो तथा परिचित जनो से कहा—"आर्यो आराम बनवाओ, विहार प्रतिष्ठित करो। लोक मे बुद्ध उत्पन्न हो गये है, उन्हे मैने आमन्त्रित किया है, वे इसी मार्ग से आवेगे।"

तब अनाथ पिण्डक गृहपति से प्रेरणा पाकर लोगो ने आराम बनवाए, विहार प्रतिष्ठित किए सदावर्त लगवाए। जो धनी थे उन्होंने अपने धन से बनवाया, जो निर्धन थे उन्हे गृहपति न धन दिया। इस प्रकार राजगृह मे श्रावस्ती तक पैंतालीस योजन के रास्ते मे योजन योजन पर वह बिहार बनवाता हुआ श्रावस्ती गया। श्रावस्ती पहुँच कर उसने विचार किया—भगवान् कहा निवास करेंगे? ऐसी जगह होनी चाहिए जो बस्ती से न बहुत दूर हो, न बहुत समीप हो, जाने आने वालो के लिए सुविधा की हो। दिन को भीड भाड न रहे, रात को विजन-वात, अल्प-शब्द, अल्प-निर्घोष, मनुष्यो से एकान्त, ध्यान के उपयुक्त हो।

उस का ध्यान जैत राजकुमार के जैत उद्यान की ओर गया। उसे वही स्थान सब भांति उपयुक्त जचा। उसने जैत राजकुमार से कहा—

"आर्य पुत्र, मुझे आराम बनाने के लिये अपना उद्यान दीजिये।"

"गृहपति, कोटि-सथार से भी वह अदेय है।"

"तो आर्य पुत्र, मैंने आराम ले लिया।"

"नही, गृहपति, तूने नही लिया।"

लिया या नही लिया, इस की न्याय व्यवस्था के लिये वह व्यवहार अमात्यों के पास गया। उन्होने कहा —

'आर्यपुत्र ने क्यो कि मोल लिया, इसलिये आराम ले लिया।"

तब गृहपति अनाथ पिण्डिक ने गाडियो पर हिरण्य ढुलवाकर जेतवन मे 'कोटि सथार, बिछा दिया। एक बार के लाये हिरण्य से द्वार के कोठे के चारो ओर का थोडा सा स्थान पूरा न हुआ। तब अनाथ पिण्डिक गृहपति ने अपने मनुष्यो को आज्ञा दी—"जाओ भणे, हिरण्य और ले आओ, हम इस सारी भूमि पर स्वर्ण बिछावेंगे।"

जैत राजकुमार ने देखा—गृहपति इतना स्वर्ण खर्च कर रहा है। तब यह कार्य अत्यन्त महत्त्व का होगा। तब उसने अनाथ पिण्डिक गृहपति से कहा—'हे गृहपति, तू इस खाली स्थान को स्वर्ण से मत ढांप, यह खाली जगह मुझे द। यह मेरा दान होगा।"

इस पर गृहपति अनाथ पिण्डिक ने सोचा—यह जैतकुमार गण्य-मान्य प्रसिद्ध पुरुष है। इस धर्म विनय मे इस का प्रेम लाभदायक होगा। और वह स्थान जैत कुमार को दे दिया। तब जैत कुमार ने उस स्थान पर कोठा बनवाया। अनाथ पिण्डिक ने जेत वन मे विहार बनवाये, परिवेण बनवाए, कोठिया, उपस्थान, शालाऐं, अग्निशालाएँ, काल्पिक कुटिया, बच्चकुटी, बच्चकूप, पिशाबखाने, चक्रमण स्थान, चक्रमणशालाएँ, प्याऊ, प्याऊघर, जलाघर, जलाघरशालाऐं, पुष्करिणियां, मण्डप आदि बनवाए।

सेट्ठि का जेत वन को स्वर्ग से ढापने में १८ करोड मुहरों का एक चहबच्चा खाली हो गया और ८ करोड स्वर्ण खर्च करके आठ करोड भूमि में बिहार आदि बनवाए। और सब भिक्षु संघ को चीवर, पिण्डपात, शयनासन, ग्लान प्रत्यय, भैषज्य, आदि परिष्कारों से सत्कृत होने की व्यवस्था करदी।

———

: ५४ :

मगध महामात्य की कूटनीति

सम्राट् की आज्ञा से तथागत बुद्ध के लिये त्रिकूट पर एक विशाल विहार बनवाना प्रारम्भ हुआ, जिस मे सहस्रो शिल्पी कार्य रत थे। सम्राट् और साम्राज्य दोनो ही महाश्रमण गौतम के चरण सेवक थे। चम्पा के सुकुमार सेट्ठिकुमार कोटिविश सोण जब अपनी इतनी सम्पदा को त्याग कर परिव्राजक होगया तो उसका जन साधारण पर बहुत भारी प्रभाव पडा। यो भी इसबार तथागत गौतम के भिक्षु सघ मे बडे २ दिग्गज नामाङ्कित विद्वान् पण्डित भिक्षु रूप मे उनके साथ थे। जिन में पूर्णकाश्यप, मक्खली गोशाल, अजितकेसकम्बली, प्रकुद्धकात्यायन, सजयवेलट्ठिपुत्त, सारिपुत्त मोद्गलायन, पिण्डोल भारद्वाज आदि प्रमुख थे। महाश्रमण के दर्शन करने. उनके पुण्य उपदेश सुनने को नर नारियो का ताता लगा रहता था। इस समय राजगृह मे केवल दो ही बातो की चर्चा थी, एक चण्ड-प्रद्योत के राजगृह पर आक्रमण और अकस्मात् पलायन की, दूसरे श्रमण गौतम की, जिसके नवीन धर्म के नीचे समस्त पौर जानपद और राजवर्ग समान रूप से नत मस्तक हो गया था। बडे २ राजकुमार, सेट्ठिपुत्र छोटे बडे तरुण अपने सम्पूर्ण विलास ऐश्वर्य त्याग कर भिक्षु बन रहे थे, चारो ओर भिक्षु ही भिक्षु दीख रहे थे। व्रात्यों, सकरों और अब्राह्मणो को उनका धर्म बहुत अनुकूल प्रतीत हो रहा था। अब तक ब्राह्मणों का जो धर्म बलात् प्रजा पर चिपकाया गया था, उस से जनपद को संतोष न था। ब्राह्मण धर्म से भीतर ही भीतर द्वेष भावना देश मे बहुत फैल गई थी, क्यो कि उसमें निम्नश्रेणी के उपजीवियों के विकास का कोई

अवसर ही न था। वास्तव में ब्राह्मण धर्म प्रजा का धर्म अब न था। वह राजाओं, ब्राह्मणों और सेट्ठियों का धर्म था। वही उससे लाभान्वित होते थे। वैदिक देवताओं के नाम पर जो बड़े बड़े खर्चीले यज्ञ किये जाते थे, उन से राजा महाराज बनते तथा महाराज सम्राट् बनते थे, यह उनका लाभ था। पुरोहित मोटी २ दक्षिणा पाकर इन राजाओं को देव कह कर पुकारते और भाग्यवाद का ढंढोरा पीट कर लोगों की स्पर्द्धा को रोक रखते थे। सर्व साधारण को उनके इन यज्ञानुष्ठानों के लिये दिग्विजय करने को अपने तरुण पुत्रों के प्राण भेंट करने पड़ते थे, तथा तरुण कुमारी पुत्रियां दासी के रूप में भेंट करनी पड़ती थीं। एवं अपनी गाढ़ी कमाई का स्वर्ण, चांदी, अन्न, वस्त्र सब कुछ भेंट करना पड़ता था, जिन्हें राजा अपनी ओर से ब्राह्मणों को दान दे वाहवाही लूटते थे। इस प्रकार ब्राह्मण धर्म राजतन्त्र का पोषक था, परन्तु बुद्ध ने प्रजा तन्त्रीय भावना उत्पन्न कर दी थी। ब्राह्मण धर्म में जो ऊंच नीच का भेद था उसे मिटाने में श्रमण गौतम ने बहुत प्रयास किया। उसने बड़े २ खर्चीले और आडम्बर पूर्ण यज्ञों के स्थान में आत्म यज्ञ की महत्ता पर जोर दिया। व्रात्य, सकर और विशय सभी ब्राह्मण धर्म के बोझ से दबे थे, बुद्ध ने इनका उद्धार किया। ब्राह्मणेतर युवकों को उसने श्रमण परिव्राजक बनाया। उन्हें ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की शिक्षा दी। देश के बड़े २ सुकुमार कोटयाधिप युवक जब ऐश्वर्य त्याग कर श्रमण बन गये, तो घबराकर ब्राह्मणों ने आश्रमों की स्थापना की, और यह प्रचार किया कि बिना गृहस्थ हुए और वृद्ध हुए कोई परिव्राजक न हो।

तथागत का चेहरा कुछ पीत, थकित और चिन्तित था, उनका शरीर कृश और वाणी कोमल थी। उनके अङ्ग यौवन से परिपूर्ण थे। सम्पूर्ण अङ्ग में एक सौंदर्य प्रभाव प्रतिभासित होता था। वे बहुत भिनसार में ही आसन पर ध्यान मुद्रा में बैठ जाते थे। और

भक्त जनो को आनुपूर्वी कथा वार्ता सुना कर सदुपदेश देते रहते थे। उनकी दृष्टि तेजवान्, कूटस्थ और स्थिर थी।

आर्य वर्षकार ने पास पहुंच परिक्रमा कर सामने आ अभिवादन किया और एक ओर बैठ गये। महा श्रमण ने प्रसन्न दृष्टि से मगध महामात्य को देखा। मगध महामात्य की दृष्टि में गहरी चिन्ता रेखाए थी। उन्होने कहा—"भगवन्, साम्राज्य जनपद का सर्वश्रेष्ठ संगठन है न ?"

बुद्ध ने हस कर कहा—"यदि वह जनपद के प्रति उत्तरदायी हो।"

मगध महामात्य कुछ देर चुप रहे, फिर उन्होने कहा—"भन्ते, क्या वज्जियो का गणतन्त्र सुसम्पन्न है ?"

उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवन सेवा मे उपस्थित थे। महाश्रमण कुछ देर चुप रहकर स्निग्ध वाणी मे बोले—"आनन्द, वज्जीगण हर बार अपने संघ सम्मेलन करते है न ?"

"भन्ते मैंने ऐसा ही सुना है।"

"और आनन्द, वे अपने गण संघ मे सब एकत्र होकर परामर्श करते है, एक साथ उठते, बैठते तथा मिलकर काम करते है न ?"

"ऐसा ही है भन्ते।"

"वे नियम विरुद्ध कोई कर्य नही करते है न ?"

"यही सत्य है भन्ते"

"वे किसी मर्यादा का उल्लघन तो नही करते ?"

"नही भगवन्।"

"वे अपने पूर्वजो के कुल धर्म का पालन करते है, पूज्य पूजन करते है, ज्येष्ठो की आज्ञा मानते है ?"

"हा, भन्ते।"

"वे कुलपत्नियो तथा कुल कुमारिकाओ पर बलात्कार तो नहीं करते ? उनका अपहरण तो नही करते ?"

"नही भन्ते।"

'वे अपने अभ्यन्तर एवं बाह्य चैत्यो की यथावत् अर्चना करते हैं ? उनकी ठीक २ रक्षा तो करते है, बलि भोग देने में उदासीन तो नहीं है ?"

"नही भन्ते, नही।"

"विद्वानो, अर्हन्तो का रक्षण, पालन यथावत् करते है ? वज्जिसो के गण राज्य मे साधुजन सूखी तो है ?"

'हा भन्ते।"

"तो आनन्द, वज्जीजन जब तक ऐसा करते रहेगे, तब तक उन्नत रहेगे, उनकी अवनति नही हो सकती। उनके अवनत होने का भय नही है। वे समृद्ध होते जाएंगे।"

मगध महामात्य ने बुद्ध का सकेत गाठ बाध लिया। उन्होने समझा कि वैशाली मे फूट डालनी होगी। उनका एकमत भग करना होगा। उन्होने बग, कलिङ्ग, अवन्ती, कौशाम्बी, गान्धार, भोज, भरत, अस्सक, आन्ध्र शवर, माहिष्मती, भृगुकच्छ, शूर्पाटक, अश्मक, प्रतिष्ठान और विदिशा को गुप्तचर भेजे। उन देशो की वैशाली के प्रति उदासीनता उन्हे बडी महत्वपूर्ण लगी। उन्होने अपने गुप्तचर वैशाली मे भी फैला दिये। कोई रत्न पारखी हो कर, कोई मूर्तिकार होकर, कोई स्थपत्यकार होकर वैशाली मे जा बसे। अनेक नट, विट, वेश्याये, कुटनिये, विदूषक और सत्री, वैशाली मे फैला दिए गए। वे वज्जी परिषद के सभ्यो की पारस्परिक कलह, ईर्षा, द्वेष के कारणो का पता लगा २ कर सकेत सूचनाये भेजने लगे। विविध उपायो से वे उनमे कलह बढाने लगे। वे सभ्य नागरिको के भेष मे, शिल्पी, दूत वणिको के वेश मे, वैशाली भर मे फैल गये। बहुतो ने मद्य की हाट खोल ली और वे छोटी २ बातो पर लोगो मे झगडा कराने लगे। ताक्षणचर मेलफल के रस से भरे मद्य के घडे नैषेधिक कह कर सम्भ्रान्त नागरिको को देने लगे। अनेक बन्धविपोषक, प्लवक, नट, नर्तक और सौमिक लोग मुखियो को सुन्दर २ कन्याओ पर आसक्त करके उन्मत्त कर २ के परस्पर लडाने लगे। वे एक सुन्दरी को किसी

मुखिया पर लगाते, जब वह उस पर अनुरक्त हो जाता तो उसे दूसरे के पास भेज देते और पहले से कहते कि उसने उसे जवर्दस्ती रख छोड़ा है। इस प्रकार उनमें घातक युद्ध करा कर एक दूसरे को मरवा डालने लगे। क्षण २ पर अमात्य के पास सन्देश आने लगे। और अब वे इस बात में लगे कि कब और कैसे वैशाली को आक्रान्त किया जाय।

गुप्तचरों ने उन्हें वैशालीगण के सभी भीतरी भेद बता दिए थे। अन्ततः कूटनीति के आगार वर्षकार ने अपनी योजना स्थिर की। गुप्तचरों को बहुत सी आवश्यक बातें समझा कर वैशाली भेज दिया और उन्होंने मगधों की राजपरिषद् बुलाई। सम्राट् के लिए वैशाली का आक्रमण अब साम्राज्य वर्धन का प्रश्न नहीं रह गया था। वे चाहे भी जिस मूल्य पर वैशाली को आक्रान्त कर अम्बपाली को राजगृह ला कर पट्टराजमहिषी बनाने पर तुले थे। यद्यपि अपनी यह अभिसंधि उन्होंने अपने बाल मित्र से भी गुप्त रखी थी, परन्तु आमात्य वर्षकार स्वयं ही उन्हें अम्बपाली के प्रति अभिमुख करते रहते थे।

वर्षकार की योजना थी कि प्रथम अवन्ती के चण्डप्रद्योत पर आक्रमण करके अरब समुद्र तक साम्राज्य का विस्तार किया जाय। रोरुक सौवीर पर उनकी गृद्ध दृष्टि थी ही। जिस प्रकार चम्पा सुदूरपूर्व के व्यापार का मुख था उसी प्रकार रोरुक सौवीर तब पच्छिम का व्यापार मुख था, वहां यहूदी राजा सालोमन के जहाज स्वर्ण भर कर आते थे और बदले में वस्त्र, मसाले, हाथीदांत और अन्य पदार्थ ले जाते थे। उत्तर पच्छिम में साकल का राजा मिलिन्द मगध का मित्र था। वर्षकार ने बहुत से बहुमूल्य उपायन भेजकर यहूदी राजा सालोमन को भी प्रसन्न कर लिया था। अब उनके विराट् साम्राज्य के विस्तार में अवन्ती का चण्डप्रद्योत एक काटा था। वे चाहते थे, पहले उसी को समाप्त करके रोरुक सौवीर पर अधिकार करें, तथा अरब समुद्र तक उनके साम्राज्य का विस्तार हो जाय। इधर कौशल पर विफल आक्रमण होने से गांधार और चम्पा की व्यापार शृंखला टूट रही थी और

कौशल में परास्त होने का बुरा परिणाम वैशाली पर भी दीख पड रहा था, इसीसे आर्यवर्षकार वैशाली से पहले अवन्ती पर अभियान चाहते थे। चाहे जिस कारण से भी हो, आमात्य और सम्राट् में इस विषय मे विवाद बढता ही गया और राज्यवर्गीजनो में भी यह अपवाद फैल गया कि आर्यवर्षकार और सम्राट् में तीव्र मतभेद हो गया है। इसी समय उन्होने मगध की राजपरिषद को बुलाया।

: ५५ :

मागध-विग्रह

राज परिषद का वातावरण बहुत क्षुब्ध था। महामात्य आर्य वर्षकार पत्थर की निश्चल मूर्ति के समान बैठे थे। सम्राट् क्रोध से लाल हो रहे थे। सम्राट् ने कहा—

"मैं पूछता हू किसकी आज्ञा से अवन्ती में दूत भेजा गया।"

"मेरी आज्ञा से देव।"

"मेरी आज्ञा से क्यो नहीं ?"

"देव को राजनीति का ज्ञान नहीं है।"

"मैंने आज्ञा दी थी कि वैशाली पर अभियान की तुरन्त तैयारी की जाय।"

"मैंने उस आज्ञा के पालन की आवश्यकता नहीं समझी।"

"आपने कैसे यह साहस किया ?"

"साम्राज्य की भलाई के लिए देव।"

"परन्तु सम्राट् मै हूं।"

"परन्तु आप साम्राज्य की हानि भी कर सकते है।"

"वह मेरी हानि है।"

"नही, वह साम्राज्य की हानि है।"

"मै सुना चाहता हू, मैंने साम्राज्य की क्या हानि की है।"

"तो देव सुने, कौशल की अपमानजनक पराजय का पूरा दायित्व आप ही पर है।"

"आप पर क्यो नही, आपने समय पर सहायता नही भेजी।"

"मै साम्राज्य के अधिक गुरुतर कार्यों मे व्यस्त था।"

"सम्राट की रक्षा से बढ़कर गुरुतर कार्य कौन है ?"

"साम्राज्य की रक्षा।"

"सम्राट् के बिना?"

"सम्राट् नित्य मरते और पैदा होते हैं देव, वे क्षण भंगुर हैं, साम्राज्य अमर है।"

"आर्य सम्राट् का अपमान कर रहे हैं।"

"सम्राट् स्वयं ही अपना अपमान कर रहे हैं।"

"साम्राज्य का संचालक मैं हूं"

'देव का यह भ्रम है, आप उसके एक शीर्ष स्थानीय रत्न मात्र हैं।"

"मगध साम्राज्य का संचालन कौन करता है?"

"यह ब्राह्मण।"

"अब से मैं अधिकार ग्रहण करता हूं।"

"मेरे रहते नहीं।"

"मैं आर्य को पदच्युत करता हूं।"

"सम्राट् की केवल एक यही आज्ञा मानने को मैं बाध्य हूं।"

'किन्तु मेरी और भी आज्ञाएं हैं।"

"देव कह सकते हैं।"

'आपने राज विद्रोह किया है। किन्तु आप ब्राह्मण हैं, इसलिए अवध्य हैं। परन्तु मैं आपका सर्वस्व हरण करने की आज्ञा देता हूं।"

"मैं ब्राह्मण हूं, इसलिये सम्राट् का यह आदेश भी मानता हूं। परन्तु मेरी एक घोषणा है।"

"आर्य कह सकते हैं परन्तु अनुग्रह नहीं पा सकते।"

"मैं अनार्य श्रेणिक सम्राट् बिम्बसार की अब प्रजा नहीं हूं। सम्राट्, यह आपका खड्ग है।"

महामात्य ने खड्ग पृथ्वी पर रख कर प्रासाद त्याग दिया। सम्राट् ने कहा—

"अप्रजा को मेरे राज्य में रहने का अधिकार नहीं है।"

"मैं मगध को त्यागकर ही अन्न जल ग्रहण करूंगा।" इतना कह

कर महामात्य ने सभा भवन त्याग दिया और पाव प्यादे ही अज्ञात दिशा की ओर चल दिए। राजगृह मे सन्नाटा छा गया। सम्राट् ने विज्ञप्ति प्रज्यापित की—जो कोई आर्य वर्षकार को साम्राज्य मे आश्रय देगा, उसका सर्वस्व हरण करके उसे शूली दी जायगी। इसके बाद उन्होने सेनापतियो को वैशाली पर आक्रमण करने की तैयारी करने की आज्ञा देकर सभा भङ्ग की।

: ५६ :

नापित गुरु

राजगृह के चतुष्पथ पर एक खरकुटी थी। खरकुटी छोटी सी थी, पर वह राजगृह भर में प्रसिद्ध थी। उस के स्वामी का नाम प्रभञ्जन था। वह एक आंख का काना था। आयु उस की साठ को पार कर गई थी। वह लम्बा, दुबला, पतला और फुर्तीला था। बाल मूंडने और उष्णीष बांधने में वह एक था। अनेक व्रात्य, सकर और श्रोत्रीय ब्राह्मण उसकी खरकुटी में आकर बाल मुण्डवाते, और उष्णीष बंधवाते थे। वह बड़ा वाचाल, चतुर और बहुज्ञ था। उस की पहुंच छोटे से बड़े तक सर्वत्र थी। वह बहुत आनन्दी प्रकृति का जीव था। लोग उससे प्रेम करते, उसकी बातों से प्रसन्न होते, उसके कार्य से सतुष्ट होते तथा उससे डरते भी थे। डरने का कारण यह था, कि लोग कानों कान उसके विषय में बहुधा कहते कि—सम्राट् और वर्षकार भी उसे बहुत मानते हैं, और वह महाप्रासाद में जाकर उनके बाल मूण्डता है। कुछ लोगों का कहना था—इसे सम्राट् और वर्षकार के अनेक गुप्त भेद मालूम हैं, इस से सम्राट् तथा आमात्य भी उससे भय खाते हैं। परन्तु जब २ कोई उससे इन महा मान्य जनों की चर्चा करता, वह केवल मुस्कुरा कर टाल जाता, वह बहुधा धार्मिक कथा प्रसग लोगों को सुनाया करता। लोग उसे नापित गुरु कह कर पुकारते थे।

दो दण्ड रात्रि व्यतीत हो चुकी थी। किन्तु खरकुटी में अब भी ग्राहकों की काफी भीड़ भाड़ थी। प्रभञ्जन अपने दो सहायकों के साथ काम में जुटा था, छुरे के साथ ही उसकी जीभ भी तेजी से चल रही थी। इतने में एक ग्रामीण वेशधारी पुरुष ने खरकुटी में प्रवेश

प्रभञ्जन ने बात रोक कर कहा—'क्या चाहिए आवुस, बा[illegible] यदि मुण्डवाना है तो मेरा शिष्य अभी मूंड देगा।"

"परन्तु मैं अवमर्दक [illegible]।"

प्रभञ्जन ने बीच ही में बात काट कर कहा—

"अब इस समय अवमर्दन नहीं हो सकेगा मित्र, कल [illegible]।"

नहीं, नहीं मित्र, मैं अवमर्दक हूं तुम्हारी दूकान में नौकरी चाहता हूं। मैं अपने काम में सावधान हूं, तुम मेरी परीक्षा कर सकते हो।"

प्रभञ्जन ने आगन्तुक को घूर कर देखा। और फिर कहा—एक अवमर्दक की मेरे परिचित एक महानुभाव को आवश्यकता है, यदि तुम अपने काम के ठीक ज्ञाता हो तो मैं तुम्हें वहां पहुंचा सकता हूं। परन्तु आवुस, तुम आ कहां से रहे हो?

"वैशाली से मित्र।"

"क्या लिच्छवी हो?"

"नहीं, नहीं, लिच्छवी क्या अवमर्दक होते हैं? मैं व्रात्य हूं।"

"सो तो मैं तुम्हारी नोकदार झुकी हुई उष्णीष देखते ही पहचान गया था, फिर भी पूंछा, वैशाली के लिच्छवी अब पहिले जैसे नहीं हैं।"

"सो कैसे मित्र?"

"मित्र नहीं आवुस, नापित गुरु कहो।"

"तो नापित गुरु, यदि तुम मुझे कहीं नौकर रखवा दोगे तो मैं तुम्हारा भी उपकार करूंगा।"

"कैसा उपकार करोगे आवुस?"

"एक मास का वेतन दे दूंगा, और तुम्हारा वह गुण गान करूंगा, कि जिस का नाम।"

"तो आवुस, तुम अभी यहीं खरकुटी में विश्राम करो, मैं कल प्रभात में तुम्हें वहां ले जाऊंगा। परन्तु सुनो, वे एक बहुत भारी राजपुरुष हैं, तुम ने क्या कभी किसी राजपुरुष की सेवा की है?"

"बहुत, बहुत, नापित गुरु, मैं केवल राज पुरुषों ही की सेवा

करता करता रहा हू। जन साधारण की नही।"

"तब अच्छा है, तो इधर से आवुस।"

प्रभञ्जन उसे खरकुटि के भीतर एक छोटे से प्राङ्गण मे ले गया, प्राङ्गण के उस पार कई छोटी कोठरिया थी। एक को खोल कर उसने कहा—आवुस, अभी तुम यहा विश्राम करो, एक मुहूर्त में मै काम से निपट कर तुम्हारे आहार की व्यवस्था कर दूगा, आज मैं बहुत व्यस्त रहा हू मित्र, तुमने सुना—'सम्राट् ने आर्य आमात्य को पदच्युत किया है। प्रभञ्जन तेजी से कहकर लौटा जाता था। आगन्तुक व्यक्ति ने अपना उष्णीष एक ओर फेंक दिया, और वापिस लौटते हुए नापित से कहा —'प्रभञ्जन'

अतर्कित और अकल्पित ढग पर अपना नाम सुन कर वह चौक पडा। उसने लौट कर देखा तो साक्षात् मगध महामात्य वहा उपस्थित थे। नापित ने भूमात करके प्रणाम किया। आमात्य ने कहा— "प्रभञ्जन' लेख की सामग्री ला, और अभी एक लम्बी यात्रा की तैयारी कर।"

प्रभञ्जन की वाचालिता लुप्त हो गयी। वह तेजी से दूसरी कोठरी में घुस गया। और लेख की सामग्री लाकर आमात्य के सामने रखदी। इस प्रकार छद्म वेष में एकाकी पैदल आमात्य का इस समय खरकुटी में आना उसे सर्वथा असंभाव्य प्रतीत हो रहा था। उसने विनयाञ्जलि होकर, कहा—"आर्य यदि एक घटी भर का मुझे अवकाश दें "

"हा, हा, इतना काल तो मुझे लेख में लग जायगा, परन्तु प्रभञ्जन, तेरी यह यात्रा अत्यन्त गुप्त होगी, और मै अभी तीन दिन इसी वेश में इसी खरकुटी में रहूंगा। ऐसा यत्न कर, कि इसका किसी को ज्ञान न हो।"

"ऐसा ही होगा आर्य"

आमात्य लेख लिखने मे लग गये। और प्रभञ्जन ने झटपट

ग्राहकों से छुट्टी ले सहयोगियों को आवश्यक आदेश दिये। एक खड्ग वस्त्रों में छिपाया, षद्म वेश धारण किया। और पर्यटक बंजारे के वेश में आमात्य के सम्मुख आ उपस्थित हुआ।"

आमात्य ने देखा, मुस्करा कर समर्थन किया, फिर एक मुहर बद्ध पत्र और मुहरों से भरी थैली उसे देकर कहा—"यह पत्र जितना शीघ्र सम्भव हो श्रावस्ती में सेनापति उदायि अथवा उनके सहकारी को मिल जाय।"

"और कुछ कहना भी होगा, आर्य!"

"नहीं, यहां से घोड़ा जाना होगा प्रभञ्जन? मार्ग में एक अश्व खरीद लेना। किन्तु वह साधारण ही हो जिस में किसी को संदेह न हो और तुम दस्युओं की दृष्टि में न पड़ो। हां, श्रावस्ती से लौटकर तुम वैशाली के मार्ग में मेरी प्रतीक्षा करना। जाओ तुम, प्रभञ्जन?"

प्रभञ्जन ने अभिवादन किया और तेजी से अंधकार में विलीन हो गया। आमात्य कोठरी का द्वार बन्द कर दीपक सामने रख लेख लिखने में व्यस्त हो गये। यह किसी को भी नहीं प्रतीत हुआ कि इस नापित्र गुरु की इस खरकुटी की एक कोठरी में बैठे महामहिम मगध महामात्य महाराजनीति चक्र चला रहे हैं।"

: ५७ :

शालिभद्र

राजगृह में गोभद्र सेट्ठि का पुत्र शालिभद्र था। वह अति सुकुमार और माता पिता का प्रिय युवक था। उसकी सर्व लक्षण सम्पन्न बत्तीस पत्नियां थीं, जिनके साथ वह अपने विलास भवन में विविध देश देशान्तरों से संचित विपुल भोग्य पदार्थों को भोगता था।

उन दिनों पारस्य देशीय कुछ व्यापारी राजगृह में बहुत से रत्न-कम्बल लेकर बेचने के लिये आये थे। परन्तु उनका मूल्य इतना अधिक था कि विविध युद्धों में व्यस्त सम्राट् बिम्बसार ने रिक्त राजकोष देख कर इन रत्नकम्बलों को खरीदना अस्वीकार कर दिया। व्यापारी बहुत दूर से आशा करके आए थे। अब प्रतापी मगध के सम्राट् से ऐसी बात सुन कर वे बड़े निराश हुए। राजमहालय से निकल कर वे नगरवीथी में होकर जा रहे थे, जब वे शालिभद्र के विलास भवन के निकट पहुंचे तो शालिभद्र की माता भद्रा ने पसन्द करके सम्पूर्ण रत्नकम्बल खरीद लिये।

साम्राज्ञी को खबर मिली कि पारस्य देश के व्यापारी बहुमूल्य रत्न कम्बल बेचने के लिए राजगृह आये हैं। उन्होंने सम्राट् से चाहे भी जिस मूल्य पर एक रत्न कम्बल खरीद देने का अनुरोध किया। सम्राट् ने अपने सर्वाधिक महामात्य को आदेश दिया—"भणे महामात्य, साम्राज्ञी एक रत्न कम्बल चाहती हैं, सो एक कम्बल पारस्य सार्थवाहों से चाहे भी जिस मूल्य पर खरीद लो।"

सर्वार्थक महामात्य ने सार्थवाहों से पूछ कर सम्राट् से निवेदन

किया—"देव उन्होंने तो सम्पूर्ण रत्नकम्बल भद्रा सेट्ठिनी के हाथ बेच दिये हैं।"

"तो भणे महामात्य, तुम भद्रा सेट्ठिनी को मूल्य देकर एक कम्बल साम्रज्ञी के लिए मगा दो।"

भद्रा सेट्ठिणी के पास सर्वार्थ महामात्य ने आदमी भेजा। उसने कहा—"भद्र, उन सब रत्न कम्बलो के मैंने अपनी पुत्र बधुओ के पैर पोंछने के पौछन बनाने के हेतु छोटे २ टुकडे कर डाले है। एक भी रत्न कम्बल समूचा शेष नही है।"

सर्वार्थ महामात्य ने सम्राट् से निवेदन किया। सम्राट् ने सुन कर आश्चर्य से आखें फैला कर कहा—"भणे महामात्य, क्या मेरे राज्य में ऐसे २ धनिक कुबेर बसते है? तो मै एक बार उस सेट्ठिनी पुत्र शालिभद्र को देखा चाहता हूं। सर्वार्थ महामात्य ने स्वय भद्रा सेट्ठिनी की सेवा में उपस्थित हो कर सम्राट् का अभिप्राय उससे कहा। इस पर भद्रा सेट्ठिनी महार्घ शिविका मे बैठ स्वय सम्राट् की सेवा में राजमहालय में आई। और उसने सम्राट् के सम्मुख उपस्थित होकर कहा—"देव, मेरा पुत्र शालिभद्र, हर्म्य के सातवें खण्ड से नीचे नही उतरता है, इसलिए सम्राट् ही कृपा कर मेरे घर पधार कर मेरी प्रतिष्ठा बढ़ावे।"

सम्राट् को भद्रा की बात सुन कर अत्यन्त कौतूहल हुआ। उन्होंने भद्रा सेट्ठिनी का अनरोध स्वीकार किया।

यथा समय सम्राट् भद्रा सेट्ठिनी के आवास मे अपने सम्पूर्ण राज वैभव के साथ पधारे। भद्रा ने सम्राट् को हर्म्य के चौथे खण्ड में ले जा कर उनका मर्यादा के अनुकूल अनुपम सत्कार किया। फिर उसने पुत्र की प्रधान दासी के द्वारा पुत्र के पास संदेश भेजा कि—सम्राट तुझ से मिलने हमारे घर पधारे है तू आ।

सन्देश सुन करशालिभद्र ने कहा—माता से कह—कि सम्राट को

जो कुछ देना दिलाना हो देकर उन्हे बिदा कर दो, मेरा वहां क्या काम है ?

इस पर भद्रा सेट्ठिनी स्वय पुत्र के पास गई और उसे समझाया कि पुत्र, हम सब श्रेणिय सम्राट् की प्रजा है, उन्होने तुझे राजमहालय में बुलाया था परन्तु मेरी विनीत विनय स्वीकार करके वे तुझे देखने स्वय यहां पधारे है और चौथे खण्ड पर बैठे है। इसलिए दो तीन खण्ड नीचे उतर कर तुझे उनसे मिलना ही चाहिए।'

सेट्ठिकुमार शालिभद्र ने, चाहिये, शब्द पहली ही बार माता के मुह से सुन, सुन कर उसका मन उदास हो गया। वह सोचने लगा— यह तो पराधीनता है, इस पराधीनता में यह सुख भोग किस काम के ? मनुष्य को जब तक दूसरे किसी की पराधीनता भोगनी है तो फिर सुख तो नाम मात्र ही का सुख है। वह विगत भाव से सम्राट् के निकट आया। सम्राट् को उसने प्रणाम किया और बिना एक शब्द बोले, बिना एक क्षण ठहरे ऊपर चला गया। परन्तु इस विवशता की चुभन उसके हृदय में घर कर गई और वह अत्यन्त उदास हो सप्तम कक्ष मे जा पडा।

: ५८ :

सर्वजित-महावीर

एक सात हाथ ऊचा बलिष्ठ क्षत्रिय कुमार, जिसके लोह स्तम्भ स सुदृढ़ भुजदण्ड थे और उन्नत विशाल वक्ष था, जिसकी कलाइयो म धनुष की डोरी खींचने के चिन्ह थे, जिसका वर्ण अत्यन्त गौर, नेत्र भव्य और विशाल, मुख गम्भीर, कम्बुग्रीवा और आजानुबाहु थी, चुपचाप दृष्टि पृथ्वी पर दिये लाट देश मे पाव प्यादा विचरण कर रहा था। यह पुरुष एकाकी था, और उसके शरीर पर एक चिथड़ा भी न था।

उसे कभी २ बैठने को आसन भी प्राप्त नही होता था और उसे वृक्ष के सहारे नगी भूमि पर बैठकर श्रान्ति दूर करना पडता था। बहुधा लोग उसे उन्मत्त समझ कर मारते, बालक उसके पीछे टोली बाध कर छेडछाड करते चिल्लाते हुए घूमते थे। कई कई दिन बाद उसे बहुत कम रुखा सूखा कुछ मिल जाता था। कुत्ते उसे देखकर भूंसने लगते, कभी २ वे दौडकर उसकी टागों का मास उखाड ले जाते थे। उपद्रवी लड़के कुत्तो को उस पर उत्तेजित करके दौडाते थे, परन्तु यह महावीर पुरुष इन सब काम दुःखो पर विजय पाता, सुख दुःख में समभाव रखता, निर्विरोध चुपचाप मौन भाव से आगे बढ़ता जाता था। बहुत बार दूर दूर तक गाव बस्ती का चिन्ह भी न होता था। कही २ गाव के निकट आने पर गांव के लोग बाहर आकर उसे मारपीट कर भगा देते थे, या उस पर धूल, पत्थर, घास और गन्दगी फेंकते थे। ऐसा भी होता था कि उसे लोग उठाकर पटक देते थे। या चुपचापध्यान मेंबैठे हुए को धकेल कर आसन से गिरा देते थे।

यह पुरुष महा तीर्थंकर महावीर जिन था। जिसने अपनी कुल परंपरा के आधार पर अपनी किशोरावस्था 'आयुष जीवी, होकर व्यतीत की थी। और अब कामभोग की परितृपप्ति के लिये, मायामय आचरण, सयम रहित वैरभाव युक्त हो आत्मा का अहित करने वाली प्रवृत्तियो को त्यागकर, पापकर्म रूप काँटे को जड मूल से खीच निकालने में सतत यत्न शील था। अहिंसा उसका मूलमन्त्र था।

वह सर्वजित् पुरुष प्रत्येक वर्षा ऋतु का चातुर्मास किसी नगर ग्राम मे ठहर कर काटता। चार चार मास उपवास करता और वर्षा समाप्ति पर फिर पैदल यात्रा करता था। इस प्रकार वह कठिन वज्र भूमि लाटदेश को पार कर भद्दिलपुर, कदली समागम, कूपिक, भद्रिकापुरी, आदि ग्राम, जानपद घूमता हुआ राजगृह मे आ पहुंचा।

राजगृह में बुद्ध महाश्रमण की बहुत धूम था। वे अनेक बार राजगृह आ चुके थे और अब नगर मे भिक्षु ही भिक्षु चारो ओर घूमते दीख पडते थे। परन्तु इस श्रमण का आचार व्यवहार ही भिन्न था। महाश्रमण बुद्ध ब्रह्मचर्य पर विशेष बल देते थे,पर तु महावीर जिन अहिंसा पर आग्रह रखते थे। वे 'छै जीवनिकाय' का उपदेश देते थे, उसी पर स्वय भी आचरण करते और उसे धर्मज्ञान कराने वाला, चित्त शुद्धि कराने वाला और प्राणी मात्र को श्रेयस्कर समझते थे।

देखते ही देखते यह महापरिव्राजक राजगृह मे पूजित होने लगा। पौर जानपद जनो के साथ श्रेणिक सम्राट् विम्बसार भी इस तपस्वी को देखने आए।

"शालिभद्र की एक पत्नी ने कहा—

"आर्यपुत्र ने सुना है कि राजगृह मे एक सर्वजित अर्हन्त श्रमण आए है जो सब भाति शुद्ध बुद्ध उन्मुक्त है।"

"क्या वह महाश्रमण तथागत गौतम शाक्यपुत्र है ? जिनके अनुगत सारिपुत्र मौद्गलायन और महाकाश्यप है ?"

"नहीं, ये सर्वजित् महावीर है, वे निगण्ठ है, अल्प भाषी है, सेनिय

मगध राज ने उसकी सेवा की है।"

"क्या वे मेरा दुःख दूर कर सकते है ?"

"आर्यपुत्र को दुःख क्या है ?"

"शुभे, तूने क्या नही देखा, माता मुझे आदेश देती है कि मुझे क्या करना चाहिये, हन्त, मै बन्धन ग्रस्त हू। मुझे ये सब काम भोग व्यर्थ दीख रहे है, मै संतप्त हू, मै भारयुक्त हू।"

"तो आर्यपुत्र, हम सब क्यो न सर्वजित परिव्राजक के दर्शन करें।"

"तब ऐसा ही हो शुभे, तू माता से जा कर अनुज्ञा ले।"

सेट्ठिवधू ने सास से कहा और सेट्ठिनी ने स्वीकार कर सावरोध पुत्र को लेकर जहा सर्वजित महावीर थे वहा पहुंची, सावरोध अर्हन्त की प्रदक्षिणा की और अञ्जलिबद्ध प्रणाम कर एक ओर बैठ गई। बैठ कर उसने कहा—"महाश्रमण, यह मेरापुत्र अपनी बत्तीस पत्नियो के साथ अपने जीवन मे प्रथमबार भूस्पर्श करके आपके दर्शनार्थ आया है, सम्राट् ने एक बार उसे देखना चाहा था, उस समय यह मेरा पुत्र सात खण्ड से नीचे कभी उतरा ही न था, तब सविनय निवेदन करने से सम्राट् स्वय मेरे घर पधारे थे और पुत्र ने चतुर्थ खण्ड मे उतर कर उनका सत्कार किया था। पुत्र को इसका बडा दुःख हुआ है, तभी से यह उदास और विमन रहता है। सो भन्ते श्रमण, यह अब आपके दर्शनार्थ भूस्पर्श करके सावरोध आया है, इसे अमृत देकर चिरवाधित कीजिये।"

तब कुछ देर मौन रह कर महाश्रमण ने कहा "हे आयुष्मान्, तू छै जीव निकाय का ज्ञान जान, जीव छै प्रकार के है, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक। इन सर्व जीवो को स्वयं कभी दुःख न देना, किसी दूसरे को दुःख देने की प्रेरणा न करना, कोई दुःख देता हो तो उसे प्रेरणा न देना और इसके लिए यह पाच महा व्रत मन, वचन, कर्म से यावज्जीवन धारण करना—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

इन पाच महाव्रतो की पच्चीस भावनायें है। आयुष्मान्, यही मैंने जीवन मे धारण की है और सभी को धारण करने को कहता हूं। सर्व जीवो को अपने ही समान जानने और देखने वाला इन्द्रिय निग्रही पुरुष पापमुक्त होता है। प्रथम ज्ञान और पीछे दया। अज्ञानी को आचार ज्ञान नही। जीव कौन है और अजीव कौन है, यह भेद जो नही जानता वह मोक्ष मार्ग को भी नहीं प्राप्त हो सकता। जो जीव और अजीव के तत्त्व को जानता है वही सर्व जीवो की अनेक विधगति को जानता है। जो जीवो की अनेक विधगति को जानता है वह उसके कारण, रूप, पुण्य-पाप को तथा बन्ध मोक्ष को भी जानता ह। उसीको दैवी तथा मानुषी भोगो मे निर्वेद प्राप्त होता है, और वह भोगो से विरक्त हो जाता है। बाहर भीतर के उसके सब सम्बन्ध टूट जाते है और वह त्यागी परिव्राजक हो जाता है, और सब पाप कर्मों का त्याग कर धर्म का पालन करता है। तथा अज्ञान से सचित कर्मरूपी पंक से अलिप्त हो जाता है। उसे सर्व विषयक केवली ज्ञान प्राप्त हो जाता है और वह-केवल ज्ञानी जिन-लोक अलोक के सच्चे स्वरूप को जान लेता है। तब वह अपने मन, वचन, कर्म के व्यापारो का निरोध करके शैल जैसा निश्चल, 'शलेषी' दशा प्राप्त करता है। उस समय उसके सब कर्मों का क्षय हो जाता है और वह निरञ्जन होकर लोक की मूर्धा पर 'सिद्धि' गति को प्राप्त करता है और शाश्वत सिद्ध बन जाता है। महाश्रमण यह उपदेश देकर मौन हो गए। शालिभद्र ने सावरोध उठ कर उनकी परिक्रमा की और अपने आवास को चल दिया।

: ५६ :

शालिभद्र का विराग

शालिभद्र के मन मे भोगो के त्याग की तीव्र इच्छा उत्पन्न होगई। उसने सब सांसारिक सुखों की विनश्वरता को समझ लिया। फिर उसने माता के निकट आकर दीक्षा लेने की अनुज्ञा मांगी।

सेठिनी भद्रा पुत्र के आग्रही स्वभाव को जानती थी। उसने अपनी निरुपायता देखकर पुत्र को समझा कर कहा—"तेरा विचार शुभ है, परन्तु तू जो सब वस्तुओं का एक बारगी ही त्याग करेगा, तो तुझे दुःख होगा। इससे तू क्रमशः त्याग कर। त्याग का अभ्यास कर, और जब तुझे कठोर जीवन का अभ्यास हो जाय तो तू सर्वत्यागी हो जाना।"

शालिभद्र ने माता का कहना मान लिया। उसने प्रति दिन एक एक स्त्री का त्याग करने का निश्चय किया।

अपनी बत्तीसों पत्नियो को उसनें अपने निकट बुलाकर कहा—हे देवानु प्रियाओ, तुम सब प्रियदर्शना, मृदुभाषिणी, स्नेहमयी हो, और मुझे प्राणाधिक प्रिय हो, परन्तु विनाश के दुःख से यह सम्पूर्ण लोक जल रहा है। जैसे कोई गृहस्थ अपने जलते हुए घर में से मूल्यवान् वस्तुओ को बचाने की चेष्टा करता है उसी भांति मेरा आत्मा भी बहुमूल्य है। वह इष्ट है, कान्त है, प्रिय, सुन्दर, मन के अनुकूल, स्थिर, विश्वासपात्र है। इसलिए भूख प्यास, सन्निपात, परिषह, तथा उपसर्ग उसकी हानि करे इससे प्रथम ही उसे बचा लू, मै यह चाहता हू। वह आत्मा मुझे परलोक में हितरूप, सुखरूप, कुशलरूप, तथा परम्परा से कल्याणरूप होगा। इसलिए, हे प्रियाओं, मै चाहता हूं कि मैं अनुविग्न होऊं, और प्रतिलेखनादि आचार क्रियाओं को सीखू।

माता का उपदेश है कि मैं एक बारगी ही कठिन त्याग न करू सो मैंने प्रति दिन एकाशन करने और एक पत्नी को त्यागने की इच्छा की है। अब तुम में जो मुझे सबसे अधिक प्रेम करती हो, वह मेरे कल्याण के लिए स्वेच्छा से मुझे आज बन्धन मुक्त करे। इसके बाद दूसरी, फिर तीसरी।

इस पर विदेह के वाणिज्यग्राम के सुदर्शन सेट्ठि की पुत्री सुश्री पद्मावती ने बड़े २ लोचनो मे मोती के समान् आसू भर के कहा—"नाथ, यह शरीर, यौवन और सम्पत्ति स्थिर नही, आप यदि आत्मा का मुक्ति के लिए कृतोद्यम है तो मै आपको पति भाव से मुक्त करती हू। यह कहकर उसने अपने सब शृङ्गार और सौभाग्य चिन्ह त्याग एक क्षोम वस्त्र धारण कर लिया और भूपात कर शालिभद्र का अभिवादन करके कहा—"आर्य्या, मै भी आत्मा की उन्नति के लिये आपका अनुसरण करूगी।"

इस पर शालिभद्र ने कहा—"उदग्र हू भद्रे, आप्यायित हूं। आ फिर हम दोनो ही आज स्वेच्छा पिण्डपात ग्रहण करें।

इस पर शालि भद्र की शेष बधुओ ने दोनो को पूजन अर्चन करा कर सतर्पित किया।

शालिभद्र प्रति दिन इसी प्रकार एक एक करके अपनी पत्नियो को त्यागने लगा, और वे श्रेष्ठा सुकुमारी श्रीमन्तकुमारी भी एक २ कर कठिन व्रत लेती गई।

शालिभद्र की छोटी बहिन राजगृह ही मे धन्य सेट्ठि को ब्याही थी। उसने जब यह सुना तो वह बहुत रोई तथा रोते २ भाई के कठोर व्रत धारण करने की बात पति से कहने लगी।

धन्य सेट्ठि ने उसकी हंसी उडाते हुए हस कर कहा—"अरा, चिन्ता न कर, रोज २ एक-एक स्त्री की शैया त्यागने वाला साधु नहीं हो सकता।"

इस पर उसकी स्त्री ने क्रुद्ध होकर ताना मारा और कहा—"तुम्हें

यदि यह काम इतना सहज दीखता हो तो तुम्ही न साधु हो जाओ।"

धन्य सेट्ठि को पत्नी की बात चुभ गई और उसने उसी क्षण सर्वज्ञित महावीर के पास जा कर दीक्षा लेली। शालिभद्र ने जब यह सुना तो वह भी घर से निकल चला और महावीर से उसने भी दीक्षा ले ली।

दोनों सेट्ठियो ने सर्वज्ञित महावीर का उपदेश अङ्गीभूत करके खड्ग की धार के समान तीक्ष्ण तप करना प्रारम्भ किया। बिना शरीर की परवा किये वे साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, द्विमासिक उपवास करने लगे। इससे उनका शरीर केवल हाड पर मढा चर्म की मूर्ति सा हो गया।

श्रमण महावीर तब राजगृह मे चतुर्मास व्यतीत कर रहे थे। द्विमासिक उपवास करने के बाद जब पारणा करने के लिए भिक्षा मागने की उन्होंने अनुमति मागी तब महावीर ने कहा—"अपने घर जा कर अपनी माता से भिक्षा ग्रहण कर पारणा करो।"

तब शालिभद्र और धन्य दोनो ही चुपचाप जाकर भद्रा सेट्ठिनी के द्वार पर जा कर खड़े हो गये।

पुत्र की व्रत समाप्ति और पारणा की सूचना भद्रा सेट्ठिनी को लग चुकी थी। वह पुत्र का पारणा सम्पूर्ण कराने को जल्दी २ चल कर सर्वज्ञित महावीर जहा थे—वहाँ पहुची। जल्दी मे द्वार पर उपवास से कृशाङ्गीभूत पुत्र और जामातृ को खडा देख कर उसने पहचाना नही। कुछ देर वहां खडे रह कर वे पीछे लौटे, मार्ग मे एक ग्वालिनी ने उन्हे पारणा कराया। लौटकर उन्होंने श्रमण से अन्तिम व्रत अनुष्ठान की अनुमति मागी। अनुमति मिलने पर वे वभार गिरि पर चले गये।

भद्रा ने श्रमण के पास पहुच कर अपने पुत्र और जामातृ के सम्बन्ध में प्रश्न किये। महावीर ने कहा—

'वे तेरे द्वार पर भिक्षा के लिए गये थे। परन्तु वहां आवे की उतावली में तूने उन्हें पहचाना नहीं। अब वे दोनों मुनि मेरे

निकट अन्तिम अनशन व्रत ग्रहण कर संसार से मुक्त होने के विचार से अभी २ वैभार गिरि पर चले गए है।"

अंतिम अनशनो क बात सुन कर भद्रा सेट्ठिनी का हृदय विदीर्ण हो गया। सम्राट् बिम्बसार ने भी सुना, और वे आए। दोनो ने वैभार गिरि पर जा कर देखा—दोनो मुनि शान्त स्थिर मुद्रा में शिलाखण्ड के सहारे स्थिर पडे है। देख कर भद्रा विलाप करने लगी। वह, द्विमास उपवास के बाद स्वेच्छा से भिक्षा के लिए द्वार पर आये पुत्र को न पहचानने के लिए अपने को तथा स्त्री जाति को बारम्बार धिक्कार देने लगी। श्रेणिक बिम्बसार ने उसे समझाया, और कहा—"भद्रे सेट्ठिनी, अब अन्तिम व्रत मे उपवेशित पुत्र को अपने रुदन से व्यथित करना ठीक नही है।"

वह बार बार पुत्र की प्रदक्षिणा करके लौटी और धन्य तथा शालिभद्र ने उसी उपवास मे शरीर त्यागन किया।

— — —

: ६० :

पांचालों की परिषद्

उत्तरी पांचाल की राजधानी कम्पिला में पांचालों की परिषद् जुड़ी थी। पांचालसंघ राज्य के सभी प्रतिनिधि उपस्थित थे। परिषद् में कुरुसंघ राज्य के धनंजय, श्रुतसोम, अम्पक के राजा ब्रह्मदत्त, [illegible] राजा सत्यभू, शौवीर के भरत, विदेह के रेणु तथा काशीराज धृतराष्ट्र-परिषद् में उपस्थित हुए थे। मद्रराज मिलिन्द और कोशल के पांचों सामन्त पुत्र भी आये थे। कपिलवस्तु, धान्यकण्टक, जेतवन, नालन्द, तक्षशिला, कन्नौज, काशी उज्जयनी, मिथिला, मगध, राजगृह, कौशाम्बी के आर्यों और ब्राह्मणों के प्रतिनिधि भी सम्मिलित हुए थे। श्रोत्रीयभारद्वाजकात्यायन, क्षौनक, बौधायन, गौतम, आपस्तम्ब, शाम्बव्य, जैमिनी, कणाद औलूक, वासिष्ठ, माण्डायन हारीत पाणिनि और वंशम्पायनपक्ष आदि धर्माचार्य भी उपस्थित थे। माण्डव्य उपरिचर भी आये थे।

अथर्व आङ्गिरस ने सबसे प्रथम विवाह की नई मर्यादा उपस्थित की। उसने कहा—"परिषद् सुने, मैं अब से विवाह की नई मर्यादा स्थापित करता हूं। मैं अब तक प्रचलित वैदिक मर्यादा को बन्द करता हूं। अब से कोई कन्या अवस्था प्राप्त करने पर कुमारी न रहे, वह स्वयं पति को न चुने, वह एक पति के साथ अनुबन्धित रहे, वह सपत्नियों से ईर्षारहित रहे। केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए ही युवती तरुणों को न वरें। वह उनके गृहकृत्यों के लिए सुगृहिणी बने। वर को कन्या कन्या के गुरुजन दें, और वह वृद्धावस्था तक उसी एक पति के साथ सुगृहिणी होकर रहे।"

वैशम्पायनपैल ने कहा—"किन्तु यह तो अवैदिक मर्यादा है। वैदिक मर्यादा मे कन्या वर चुनने में स्वतन्त्र है, वह आजीवन उसके साथ रहने को बाध्य भी नही, वह आजन्म कुमारी भी रह सकती है।"

आङ्गिरस ने कहा—"आज से अथर्वाङ्गिरस चतुर्थ वेद हो। गाय के चार पाद है, वेद भी तीन नही—चार हो। नई मर्यादा की आवश्यकता इसलिए है कि अब हमारा जनपद किसान और पशु पालक नही रह गया। हममे बड़े २ राजन्य है, उनकी सेना, राजसम्पदा, तथा राज्याधिकार है। हममे राजपुरोहित ब्राह्मण है, जो समाज के नियन्ता है। हमारी सम्पत्ति, अधिकार और राजधर्म की मर्यादा अब प्राचीन मर्यादा नही है। आजम पुरुष पति है, स्त्री उसके आधीन है, वह दत्ता है। यज्ञ और धर्म कृत्यो मे उसका स्थान ब्राह्मण ग्रहण करे और दायभाग वह नही, उसका पुत्र ग्रहण करे।"

भारद्वाज ने कहा—"तो इसका यह अर्थ है कि अब स्त्री पति की जीवन सगिनी है और वह धार्मिक कृत्यो मे अभिन्न नही।"

आङ्गिरस ने कहा—"वह जीवन साथी रहे, अभिन्न भी रहे, पर अधिकार पति और पुत्र का हो।"

वैशम्पायन ने कहा—"क्या समाज मे स्त्री पुरुष समान नही?"

ऐतरेय ने खडे होकर कहा—"नही, मेरी मर्यादा है कि एक पुरुष की अनेक पत्नियां हो। पर एक स्त्री के अनेक पति नही। मै यह भी मर्यादा स्थापित करता हू कि चार पीढियो के अन्तर्गत आत्मीयो में विवाह न हो। वे चार पीढी बाद सम्मिलित हो।"

अथर्वाङ्गिरस—"और उसे गुरुजन जिसे दान मे दे, वह उसीकी पत्नी हो। वह प्रियदृष्टिवाली, पति की अनुरक्ता, सुखदायिनी, कार्यनिपुणा, सेवा करने वाली, नियमो का पालन करने वाली, वीर पुत्र उत्पन्न करने वाली तथा देवर की कामना करने वाली हो।"

भारद्वाज ने कहा—"पति की सेवा करने वाली, नियमो का पालन करने वाली, और देवर की कामना करने वाली तथा गुरुजनदत्ता, ये

चार नई मर्यादा स्थापित हुई ?"

अथर्वाङ्गिरस ने कहा—"एक पाचवी और, वह सास श्वसुर तथा पति के कुटुम्ब के साथ रहे।"

"तो वह अब पति की पत्नी ही नही, पति के परिवार की अङ्ग भी हो ?" वैजयायन शैल ने पूछा।

"ऐसा ही है भद्र, यह मर्यादा उन आर्य अनार्य अनुलोम सकर सभी पर लागू हो, जो वर्णधर्मी हो, और यह वैदिक मर्यादा ही रहे। इससे राष्ट्र की सम्पत्ति, घर और राजनीति अखड रहेगी। आन्ध्र सौराष्ट्र, चोल, चेरा, पाण्य, अग, बग, कलिङ्ग सभी जनपद यह मर्यादा पालन करे।"

परिषद ने मर्यादा स्वीकृत की। अब गौतम ने खडे होकर कहा—"मित्रों, मै इससे भी अधिक आवश्यक प्रश्न उठाता हू। हमारे लिए अब चार वर्ण यथेष्ट नही है। अब अनेक अनार्य बन्धु के मिश्रण से जातियो की अनेक शाखा फैलती जा रही है। अनार्य बधु सज्ञा को उत्तेजन देने को हमने असवर्ण विवाह मर्यादा स्थिर की थी। मै ऐसे विवाहो से उत्पन्न सतान को अब दाय भाग से वञ्चित करता हू, तथा उन्हे शुद्ध वर्ण और गोत्र की परम्परा से भी वञ्चित करता हूं। वे अनुलोम हो या प्रतिलोम, मै उनकी पृथक् जाति स्थापित करता हू। मै छ प्रकार के विवाह घोषित करता हूं। एक ब्राह्म—जिसमे पिता बटक वर को जल का अर्घ देकर कन्या अर्पण करेगा। यह ब्राह्मण का ब्राह्मण के लिए है। दूसरा दैव—जिसमे पिता कन्या को वस्त्राभूषणो से सज्जित करके यज्ञ में स्थानापन्न पुरोहित को देगा। यह क्षत्रिय का ब्राह्मण के लिए है। तीसरा आर्ष—जिसमें पिता एक गाय या बैल लेकर उसके बदले कन्या दे। यह जनपद के लिए है। चौथा गान्धर्व—जिसमें तरुण तरुणी स्वय ही परस्पर वरण करेगे। यह वयस्को के लिए है। पाचवा क्षात्र—जिसमें पति कन्या के सम्बन्धियो को युद्ध मे मार कर साक्षात् कन्या का हरण करेगा। यह क्षत्रिय का क्षत्रिय के लिए है। छठा मानुष—

जिसमे पति कन्या को उसके पिता से मोल लेगा—यह क्षत्रिय, ब्राह्मण का शूद्र के लिए है ।'

आपस्तम्ब ने कहा—"मै यह मर्यादा स्वीकार करता हू, परन्तु क्षत्रि विवाह को 'राक्षस' और मानुष को 'आसुर' घोषित करता हू। मेरे दक्षिण के जन पद में रक्ष और असुरो में ये विवाह मर्यादा स्थापित है।"

वाशिष्ट—"मै जानता हू। असुर कन्या शर्मिष्ठा को हम भुला नही सकते, मद्र और केकय वश की कन्याओ को मध्य देशीय क्षत्रिय सदैव मोल देकर लेते है, और जिन क्षत्रियो के कुलो मे असुरो से सम्बन्ध है, वहा यही कुल परम्परा है। यदि हम इन क्षत्रियराजकुमारियों को विवाहित पत्नी नही मानते है तो उनकी सन्तानों के अधिकार की रक्षा नहा होगी। हा, नीच जाति की सुन्दरी कन्याएं दासी की भाँति मोल ली और बेची जा सकती है, परन्तु उन्हे विवाहिता पत्नी के अधिकार नही प्राप्त होगे।"

आपस्तम्ब—'आप ठीक कहते है ब्रह्म, दक्षिणापथ में इसी प्रकार राक्षस कुल तथा दानव और दैत्य कुल मे जो राक्षस कुल से भी उन्नत और आर्य सभ्यता गृहीत है, अपना कुल मर्यादा नहीं छोड सकते। आप जानते है वे दीन नही है, आर्यों के ज्येष्ठ कुलो में तथा देवता कुल मे भी उनके विवाह सम्बन्ध हो चुके है। दैत्य दानव युद्ध जो होते है—वे जातीय है धार्मिक नही। वे यज्ञ भी करते है। प्रह्लाद और बलि के दान और यज्ञ भलाये नही जा सकते, पुलोमा दैत्य की पुत्री शची इन्द्र की पत्नी थी ही, उसकी कन्या जयन्ती का विवाह प्रथम शुक्राचार्य और फिर ऋषभ देव से हुआ था। मधु दैत्य की कन्या मधुमती सूर्यवशी हर्यश्व को ब्याही थी और वृषपर्वा दैत्य की कन्या का ययाति ने पत्नी बनाया था, बाण दैत्य की कन्या का विवाह अनिरुद्ध से हुआ था, तथा वज्रनाभि के कुटुम्ब की तीन कन्याएं यादवो में

आई है। इसलिये मेरी यह मर्यादा स्वीकार करने योग्य है कि 'राक्षस' और 'असुर' विवाह आर्य परिपाटी में स्वीकृत कर लिये जायं, जिससे इन जातियों की कन्याओं के अधिकारों का हनन न हो। परन्तु उत्तम विवाह प्रथम के तीन ही हैं।'

गौतम ने कहा—"मेरी मर्यादा है कि इन छः प्रकारों में प्रजापत्य, और 'पिशाच' दो प्रकार और बढ़ा दिये जायं। प्रजापत्य, विवाह वह है—जहां पिता कन्या को यह कह कर दे कि तुम दोनों मिल कर नियमों का पालन करो। यह उत्तरापथ के गणसंघ शासितों की मर्यादा है। पिशाच, विवाह में उसे कहता हूं, जहां मूर्छित, रोती, कलपती, कन्या का बलात् हरण किया जाय।"

वाशिष्ठ ने कहा—"किन्तु यह विवाह नहीं है।"

गौतम ने कहा—"यह मर्यादा काम्बोजों में विहित है, नन्दिनगर का काम्बोज संघ भी आर्यों के संघ में मिल चुका है। आप जानते हैं कि उत्तरापथ में काम्बोज की भीषण मार-धाड़ में गिनती है। उनकी रीति निःसन्देह जंगली तो है ही, परन्तु उन्हें हमें आर्यों के समान बनाना है।"

बोधायन ने कहा—"यह मर्यादा मुझे मान्य है।"

गौतम—"तो एक ही गोत्र और प्रवर के स्त्री पुरुष विवाह न करें। वे ही विवाह करें, जो माता की चार पीढ़ियों और पिता की छः पीढ़ियों में न हों।"

आपस्तम्ब—"नहीं, नहीं, माता पिता दोनों ही की छः २ पीढ़ियों में न हों। गोत्र के निषेध को मैं स्वीकार करता हूं, परन्तु प्रवर का बन्धन नहीं।"

"मेरी मर्यादा है कि वह चाची या मामा की लड़की से विवाह कर सकता है।"

गौतम—'मैं उत्तरापथ में यह मर्यादा कदापि स्थापित न होने दूंगा। दूसरे, मैं संकर समस्या पर भी विचार उपस्थित करता हूं। इस समय हम आर्यों के तीन वर्ण हैं, एक ब्राह्मण पुरोहित दूसरा

क्षत्रिय राजा, तीसरा जनपद अर्थात् विश। इनके सिवा अनार्य, दस्यु, दास, राक्षस, दैत्य और दानव कुल भी है। आप जानते है कि प्रारम्भ में सभी आर्य खेती और पशु पालन करते थे। पीछे उन मे राजन्य हुए जो आज क्षत्रिय राजा है, वे शासन व्यवस्था करते है। दूसरे, ब्राह्मण पुरोहित हुए जो यज्ञ के अधिकारी है, तथा धर्ममर्यादा स्थापित करते है। इनके बाद जो जन बचे वे विश थे। वे ही आर्यों के पुराने कार्य, कृषि और पशु पालन करते आये थे। परन्तु हमारे राज्य वैभव-विस्तार और बहुमुखी सभ्यता के विस्तार के कारण वे भी बहुत वाणिज्य करने लगे। अत आर्यों का प्राचीन धन्धा पशु-पालन और कृषि उन से निकृष्ट शूद्रों को करना पड रहा है। परन्तु उनमे जो इन कार्यों मे सम्पन्न हो गये है वे सेवा नही करते, सेवाकार्य का दायित्व क्रीत दासो के सुपुर्द हो गया है।"

आपस्तम्ब—"मित्र गौतम का अभिप्राय क्या है?"

गौतम—"बडा जटिल मित्र, वही मै कहता हूं। आर्यों की पुरानी मर्यादानुसार उच्च वर्ण का पुरुष आने मे नीच वर्ण की स्त्री से विवाह कर सकता है। इससे ब्राह्मण को चारो वर्णों की स्त्रिया ब्याहने का अधिकार है। क्षत्रियो को तीन की पर वैश्यो को दो ही की। फिर उन्हे कृषि, वाणिज्य और शिल्प के लिए दासों शूद्रो और कम्मकरो से घनिष्ट रहना पडता है। नियम से भी उन्हे अपने सिवा शूद्रा स्त्री ही मिल सकती है। इससे उनके रक्त मे शूद्रो और अनार्य दासो का रक्त बहुत अधिक मिश्रित हो गया है, जिससे समाज में बहुत गडबडी और अशुद्धि उत्पन्न हो गई है। नियमानुसार ऐसे विवाह को सन्तान पिता की जाति की मानी जाती है। इस मिश्रण से वैश्यो का रंग भी बदल गया है और उनका बुद्धिविकास भी कम हो गया है। संकर जनपद में जो सेट्ठिजन है उन्हे छोड़ कर सर्वत्र ही विशकुल हीन हो गया है। अत. मै आर्यों मे संकर भाव को बन्द करना हू। मै यह मर्यादा स्थापित

करता हूं कि अपने ही वर्ण की स्त्री की सतान पिता के वर्ण को प्राप्त हो, वही सम्पत्ति में भागी हो।"

वाशिष्ठ—परन्तु यह प्राचीन मर्यादा है कि ब्राह्मण तीनो वर्णों की स्त्री से ब्राह्मण सन्तान पैदा कर सकता है। यह सत्य नहीं है कि संकर संतान हीन गुण होती है। मत्स्यगन्धा मे पराशर ऋषि के औरस से व्यास का जन्म हुआ जो विद्या बुद्धि में अपने पिता से भी बढ़ चढ़ कर हुए। उनकी योग्यता का व्यक्ति उस युग में ब्राह्मणों में भी कोई न था।"

गौतम—"इतना होने पर भी उन पर 'न देव चरितं चरेत्' का नियम लगा दिया गया था और उन्हें ब्राह्मण नही माना गया था। और यह स्पष्ट कर दिया गया था कि ब्राह्मण शूद्रा में सन्तान न उत्पन्न करे, करे तो वह ब्राह्मण नही।"

वाशिष्ट—"ब्राह्मण नही तो कौन ? वह शूद्र भी नहीं।"

गौतम—"मै उसे 'पारशव' घाषित करता हूं और उसकी मर्यादा स्थापित करता हू कि वह अपने कुल की सेवा करे।"

वाशिष्ठ—"तब क्षत्रिय भी शूद्रा में जो संतान उत्पन्न करें वह क्षत्रिय नहीं, उसे मै 'उग्र' घोषित करता हू। उसकी पृथक जाति हो, परन्तु वैश्य पिता की शूद्रा में सन्तान वैश्य ही रहे। किन्तु वैश्या माता और ब्राह्मण पिता की सन्तान ब्राह्मण नहीं, मै उसे 'अम्बष्ट' घाषित करता हूं। वही उसकी जाति हो।"

अब शौनक ने उठकर कहा—"तो हम अब ऐसी मर्यादा स्थापित करते है कि सवर्ण विवाह की सन्तान ही सवर्ण है, प्रतिलोम की भाति अनुलोम सन्तान भी आज से संकर हुई, तथा वे आर्यों से बहिर्गत हुई।"

आश्वायन श्रोत्रीय ने कहा—"ऐसा ही हो। नहीं तो आर्य कुल का नाश हो जायगा। क्या आप देखते नहीं कि आर्यों के सब राज्य, शिल्प, वाणिज्य संकरों ने अपना लिए है।"

आपस्तम्ब--किन्तु मित्र, इस व्यवस्था से तो संकरो का अधिक संगठन होगा। वे और सबल होंगे। वे आर्यों से विद्रोही हो जावेंगे। संकरो की प्रत्येक जाति में एक प्रकार का गर्व उत्पन्न हो जायगा, क्योंकि प्रत्येक जाति यह समझने लगेगी कि किसी न किसी जाति से तो हम श्रेष्ठ हैं ही। फिर जहां कहीं धन और शक्ति का आधिक्य हो गया तो यह गर्व और बढ़ जायगा तथा भीतरी भेद उत्पन्न होने लगेंगे। देश भेद, रहन, सहन और खान पान में अन्तर पड़ जायगा। विवाह भी उन्हीं जातियों में होने लग जायेंगे। ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों की तथा शूद्रों की भी अनेक उप जातियां बन जायेंगी। उन्हीं में उनके विवाह और खानपान सीमित हो जावेंगे। संकरों की भी अनगिनत जातियां बन जायेंगी, इससे आर्यों का सम्पूर्ण संगठन नष्ट हो जायगा। उदाहरण के लिये मैं कोशल अधिपति प्रसेनजित के परिणाम की ओर आपका ध्यान आकर्षित करता हूं।"

गौतम--"चाहे भी जो हो हम रक्त की शुद्धता को नष्ट नहीं होने देंगे। अब तक विवाह की तीन विधियां थीं। एक--अग्निप्रदक्षिणा, दूसरी--सप्तपदी-लाजाहोम तीसरी शिलारोहण। मैं अबसे पांच विधि स्थापित करता हूं, तीन थे, चौथी--कन्यादान और पांचवीं--गोत्रों का बचाव। आर्यों का विवाह इन पांच विधियों के पूर्ण हुए बिना सम्पादन न हो।"

वाशिष्ठ--"ऐसा ही हो। अब मैं क्षेत्रज पुत्र को दायभाग में दूसरा स्थान देता हूं।"

गौतम--"मैं स्वीकार करता हूं।"

बौधायन--"मैं मतभेद रखता हूं, क्षेत्रज का स्थान मैं तीसरा स्थापित करता हूं।"

आपस्तम्ब--"मैं विरोध करता हूं। मैं नियोग की प्रथा को बन्द कर देने के पक्ष में हूं। किसी सभ्य पुरुष को अपनी स्त्री अपने कुटुम्बी को छोड़ कर किसी दूसरे को नहीं देनी चाहिए। नियम के

अनुसार पति को छोड कर उसे दूसरे पुरुष का हाथ अज्ञात पुरुष का हाथ समझना चाहिये ।"

गौतम—"मैं यह मर्यादा स्थापित करता हूं कि विधवा स्त्री जिसे सतान की इच्छा हो—देवर से गुरुजनों की आज्ञा ले ऋतुगमन कर ले। देवर का अभाव हो तो सपिण्ड, सगोत्र, समान प्रवर या सवर्ण पुरुष से कर ले। वह दो से अधिक सन्तान न करे। सन्तान उसकी है जो उत्पन्न करे, यदि पति जीवित हो और सहमत हो तो सन्तान दोनों की है।"

हारीत—"मैं सहमत हूं।"

भारद्वाज—"जो अविवाहिता और अक्षत योनि ही है उसे मैं कन्या घोषित करता हूं। उसका नियमानुसार विवाह हो।"

बोधायन—"सम्भोग हो भी गया हो परन्तु विधिवत् विवाह न हुआ हो तो वह भी कन्या ही है। उसका विधिवत् विवाह हो।"

पाणिनि—"जो अविवाहिता है वही कन्या है, पर पुरुष से भोगी जा कर भी उसका कन्या भाव दूषित न हो। विवाह विधि होने के बाद पुरुष सग ही से उसका कन्या भाव छूटे।"

वशिष्ठ—"मैं छ कन्याएं घोषित करता हूं एक—जो अविवाहिता और अक्षत है। दो—जो अविवाहिता है और क्षत है, तीन—जो विवाहिता है और अक्षत है, चार—साधारण स्त्री, पांच—विशिष्ठ स्त्रियां, छै—मुक्तभोगिनी।"

गौतम—"यदि किसी स्त्री का पति एकाएक विदेश चला जाय तो वह छै वर्ष बाट देख कर पुनर्विवाह कर ले, पर यदि पति ब्राह्मण हो और विद्या अध्ययन के लिए गया हो तो बारह वर्ष राह देखे।"

कात्यायन—"नपुसक या पतित पति की स्त्री यदि दूसरा ब्याह करे, तो उसका पुत्र पौनर्भव हो, वह माता के पहिले पति की दाय से भोजन वस्त्र पावे।"

वशिष्ठ—"जो स्त्री अपने अल्पवयस्क पति को छोड अन्य पुरुष के पास रहे तथा फिर पहले पति के वयस्क होने पर उसके पास आ

जाय वह पुनर्भू है। यदि उसका पति पागल, पतित, या नपुंसक हो और वह उसे छोड़कर दूसरे पति से विवाह करे तो वह पौनर्भव हो।"

हारीत—"ये छः पुत्र दायाद बन्धु हैं। औरस, क्षेत्रज, पौनर्भव, कानीन, पुत्रिकापुत्र, और गूढज। ये क्रम से दायाद भागी हो।"

: ६१ :

जैतवन में तथागत

तथागत बुद्ध कपिलवस्तु से चारिका करते श्रावस्ती आए। उनके साथ महा भिक्षु संघ भी था। जिस में आयुष्मान सारिपुत्त, आयुष्मान् महामौद्गलायन, आयुष्मान्, महा कात्यायन् आयुष्मान् महा कोट्ठित, आयुष्मान् महा कापियन् आयुष्मान् महाचुन्द, आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् रेवत आयुष्मान् उपालि, आयुष्मान् आनन्द, आयुष्मान्, राहुल आदि संघ प्रमुख स्थविर थे।

गृहपति सनाथपिण्डिक ने सुना। सुनकर बोधिपुत्र माणवक को बुला कर कहा—सौम्य बोधि पुत्र, जहाँ भगवान् है वहा जाओ, और मेरे वचन से भगवान के चरणो मे सिर से वन्दना करके आरोग्य, अन आतंक, लघु-उत्थान, बल, अनुकूल विहार पूछो और यह भी कहो—"भन्ते, भिक्षु संघ सहित भगवान जैतवन में विहार करे तथा कल का भोजन भी स्वीकार करें।"

"अच्छा भो" कह बोधि कुमार माणवक जहा तथागत थे, वहा गया और अभिवादन कर उसने गृहपति का संदेश कहा। तथागत ने मौन से स्वीकार किया। तब माणवक ने लौट कर गृहपति से कहा।

गृहपति ने उदग्र हो घर में उत्तम खादनीय, भोजनीय पदार्थ तैयार करवाए। जैतवन विहार के प्रवेश मार्ग को अवदात धुस्सो से सीढ़ी के नीचे तक बिछवा कर सजाया सवारा।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समयपहिन पात्र चीवर ले संघ सहित जैतवन के द्वार पर पहुचे। गृहपति द्वार कोष्ठक के बाहर खड़ा तथागत की प्रतीक्षा कर रहा था। देखते ही अगवानी कर भगवान् की वन्दना कर ले चला। जब बुद्ध निचली सीढ़ी पर पहुचे, तो खड़े हो गए।

गृहपति ने कहा—"भगवान, धुस्सो पर चलें। सुगत, धुस्सो पर चले जिससे यह चिरकाल तक मेरे हित और सुखके लिये हो।"

परन्तु तथागत चुपचाप खड़े रहे। गृहपति ने दूसरी बार, फिर तीसरी बार भी कहा। तब तथागत ने आनन्द की ओर देखा।

आनन्द ने कहा– "गृहपति, धुस्से समेट लो। भगवान चैत्य पंक्ति पर नहीं चलते।" गृहपति ने धुस्सो को समेट लिया। तब तथागत बुद्ध ने आराम में प्रवेश किया और संघ सहित बिछे हुए आसनों पर बैठे। तब गृहपति ने बुद्ध सहित भिक्षुसंघ को अपने हाथ से उत्तम खाद्य भोज्यपदार्थों से संतर्पित किया। भगवान के हाथ हटा लेने पर एक ओर बैठ कर उसने कहा—

"भगवान, जेतवन के विषय में कैसे करूं?"

'गृहपति, जेतवन आगत अनागत चातुर्दिश भिक्षुसंघ के लिये प्रदान करदे।"

अनाथ-पिण्डिक ने कहा—

'ऐसा ही हो भन्ते।'

तब महाश्रमण बुद्ध ने अनाथपिण्डिक के दान को अनुमोदित करते हुए गाथा कही—

"सर्दी, गर्मी और क्रूर जन्तुओं से रक्षा करता है। सरीसृप, मच्छर, शिशिर, वर्षा, हवा पानी से बचाता है। आश्रय के लिये, सुखके लिये ध्यान के लिये, विपश्यन के लिये संघ को विहार का दान श्रेष्ठ है। रमणीय विहार बनवाकर वहां बहुश्रुतों को बसा कर उन्हें अन्न पान वस्त्र और शयन आसन प्रसन्न चित्त से प्रदान करे।

तब दर्भ मल्लपुत्र ने आकर तथागत से कहा—

"भन्ते, यदि अनुमति हो तो मैं संघ के शयन आसन का प्रबन्ध करूं।"

"साधु, साधु, दर्भ! तू संघ के शयन आसन और भोजन का प्रबन्ध कर।"

तब उन्होंने भिक्षु संघ को एकत्रित कर के कहा—"भिक्षुओं, संघ दर्भ मल्लपुत्र को संघ के शयन आसन का प्रबन्धक और भोजन का नियामक चुने।"

संघ ने दर्भ मल्लपुत्र को चुन लिया। तब दर्भ मल्लपुत्र ने भिक्षुओं का एक एक स्थान पर शयन आसन प्रज्ञापित किया। जो सूत्रान्तिक थे उनका एक स्थान पर, जो विनयधर थे उनका दूसरे स्थान पर, जो धर्म कथिक थे वे तीसरे स्थान पर, इसी प्रकार से दर्भ मल्लपुत्र ने सम्पूर्ण भिक्षु संघ को प्रज्ञापित किया। गृद्धकूट, चोर प्रपात ऋषि गिरि की कालशिला, वैभार श्रृङ्ग, सप्तपर्णि गुहा, सीतवन, सर्पशौंडिक, प्राग्भार गौतम कन्दरा, कपोत कन्दरा, तपोदाराम, आम्रवन, मद्रकुक्षि मृगदाव सर्वत्र दर्भ मल्लपुत्र ने तेजोधातु की समापत्ति के प्रकाश में भिक्षु संघ का शयन आसन प्रज्ञापित किया। वे यत्न से प्रत्येक भिक्षु को बताते यह मंच है, यह पीठ है, यह भिसि है, यह विम्बोहन है, यह कलहदंण्ड है, यह संघ का कतिक सन्थान है।

दर्भ मल्लपुत्र के अन्तेवासी भाण्डागारिक, चीवर प्रतिग्राहक, चीवर भाजक, यवागू भाजक, फल भाजक, खाद्य भाजक, शाटिक-ग्रहायक, आरामिक प्रेषक श्रामणेर प्रेषक आदि भिक्षु संघ से चुने हुए भिन्न २ विहारों के लिये नियत थे।

: ६२ :

अजित-केसम्बल

पूर्वाराम मृगार माता प्रासाद बन कर तैयार हो गया था। यह भवन श्रावस्ती ही में नहीं, प्रत्युत जम्बू द्वीप भर में अद्वितीय विहार था। इसमें एक सहस्त्र प्रकोष्ठ थे और यह विहार सात तल्ला था। सेठि मृगार की पुत्रवधू विशाखा ने इसे अपने एक हार के दाम से तैयार कराके बुद्ध को भेट करने का निश्चय किया था, परन्तु अनाथ पिण्डिक के जेतवन विहार मे श्रमण गोतम ने वर्षावास स्वीकार कर लिया, इससे सेठि मृगार की इच्छा पूरी नहीं हुई।

अजित केसम्बल अपने शिष्यो सहित सरयू के तीर अपने आश्रम में मृगचर्म पर बैठे थे। उनका शरीर बिल्कुल काला था, डील डोल विशाल और आखे चमकदार थी। वे एक साधारण सूती वस्त्र कमर मे लपेटे थे। स्वच्छ जनऊ उनके कज्जलकृष्ण अंग की शोभा बढा रहा था। उनके सामने महाशाल लोहित्य एक आसन पर बैठे थे। इनका अंग दुबला पतला और गौर वर्ण था। कंठ में जनेऊ और सिर पर बडी चोटी थी। उनकी आखे बडी २ और वक्ष विशाल था।

अजित ने कहा—"तो महाशाल लोहित्य, गौतम श्रावस्ती मे आ गया है न?"

"हा आचार्य, और इस बार उसके ठाठ निराले है। उसने बहुत से विश्रुत ब्राह्मणो को भी शिष्य बना लिया है।"

"हा, हा, ऐसा तो होना ही था महाशाल, इन मूर्ख ब्राह्मणो का बेडा डूबा। मैने तो तुम से बार बार कहा है कि ब्राह्मण याज्ञवल्क्य, जैविलि और उद्दालक ने पुराने यज्ञवाद को गौण करके जो यह ब्रह्मवाद का ढकोसला खडा किया था और उनके गुरु प्रवाहण ने जो

पुनर्जन्म की घडन्त घडी थी, उसका एक दिन भण्डाफोड होगा ही। अब तुम देखोगे कि विदेह जनक के सारे प्रयासो पर पानी फिर जायगा। उसकी ये बडी २ परिषदे बुलाना, ब्रह्मवाद पर शास्त्रार्थ कराना, और बडे २ दान देना सब व्यर्थ होगा और लोग स्वतन्त्र रीति से विचारना प्रारम्भ कर देगे। अब इसी शाक्य गौतम ही को लो, इसने एक और ढकोसला चलाया है। क्यों महासामन्त पायासी, तुम तो उसके पिता शुद्धोदन से मिले थे। क्या कहता है वह अपने पुत्रके सम्बन्ध मे ?"

महासामन्त पायासी का ताम्रवर्ण शरीर, लाल लाल आखे और बलिष्ठ भुजदण्ड एव भारी २ गलमुच्छे बडे प्रभावशाली थे। उन्होन हाथ जोड कर कहा–' वह भी उसका शिष्य हो गया है। आचार्य, वही नही, कपिलवस्तु के सारे ही शाक्य उसके शिष्य हो गये है। शुद्धोदन को इससे बडा लाभ है आचार्य, वह कौशल के प्रभुत्व का जुआ उतार फेकना चाहता है। अब तक तो शाक्यगण कौशल के आधीन था, अब गौतम का पिता तथा अनुगत शिष्य होने से शुद्धोदन का आदर बढ गया है। उधर मगध सम्राट् भी उसका बहुत सम्मान करने लगे है, वे भी गौतम के शिष्य हो गये है।'

'होंगे क्यो नही, बिना ऐसा किये वे अपने अमूर-रक्त प्रभावित वर्णसकर वश को छिपायेगे कैसे ? पर राजमहिषी मल्लिका ?"

"राजमहिषी तो सेट्ठि विशाखा के पूरे प्रभाव मे है आचार्य, और वह भी गौतम की शिष्या हो गई है।"

"तब महाराज प्रसेनजित अब किसकी प्रतीक्षा कर रहे है ?"

"वे घपले में पडे है आचार्य, असल बात तो यह है कि वे राजकुमार विदूडभ से बहुत भयभीत है। और सच पूछिये तो शाक्य शुद्धोदन को भी उसका बडा भय है। इस भय से बचने के लिये गौतम की शरण ही एक ढाल है।'

"ठीक है पायासी, पर तुमने सुना-गौतम शाक्य कहता क्या है ?"

"आचार्य, वह आप ही की भाति कहता है कि आत्मा और ईश्वर

कोई नित्य वस्तु विश्व मे नही है। सभी वस्तु उत्पन्न होती है और फिर विलीन होती है, ससार वस्तुओ का नही—घटनाओ का प्रवाह है।"

"वाह पट्ठे, सुनने मे तो ये सब बाते बडी सुन्दर जान पडती है। अरे उसने सत्य पर मुलम्मा किया है। क्यो लोहित्य, क्या कहते हो? जो लोग लोक मर्यादा, धर्म और निर्धन,तथा दास स्वामी के भेदको लेकर मझमे भडकते है वे गौतम के इस जाल मे फस जायेगे। पर यह ससार घटनाओ का प्रवाह कैसे है भाई?"

"आचार्य, गौतम कहता है कि—यद्यपि कोई सनातन चैतन्य आत्मा ससार मे नही है परन्तु एक चेतना प्रवाह स्वर्ग या नर्क आदि लोकों के भीतर एक शरीर से दूसरे शरीर मे, एक शरीर प्रवाह से दूसरे शरीर प्रवाह मे बदलता रहता है।"

"बडी चालाकी करता है यह गौतम शाक्य, वत्स लोहित्य! वह मेरे सत्य को भी पकडे हुए है और प्रवाहण के पुनर्जन्म के पाखण्ड को भी। अब मै समझा पायासी कि यदि वह ऐसा न करता तो क्या साकेत, कौशाम्बी, श्रावस्ती और राजगृह के राजा, महाराज, सेट्ठि, सामन्त महाशाल उसके चरणों मे सिर नवाते? और अपना थैलियां यो उसके आगे खोल देते?"

"यही तो बात है आचार्य, सुना नही आपने, विशाखा का एक प्रतिस्पर्द्धी मूर्ख और खडा हुआ है, श्रावस्ती मे।"

"कौन है वह।"

"अनाथपिण्डिक सुदत्त-सेट्ठि।"

"सेट्ठि सुदत्त? क्या किया है उसने लोहित्य??"

"जब उसने देखा कि पुत्र वधू विशाखा की आड में सेट्ठि मृगार महिषी मल्लिका के द्वारा शाक्य गौतम और महाराज प्रसेनजित का कृपा पात्र होना चाहता है, तब उसने भी एक मार्ग निकाल लिया।"

"कौन सा मार्ग?"

"उसने जेत राजकुमार को साधन बनाया है आचार्य।"

"किस भाति लौहित्य ?"

"राजकुमार से उसका क्रीडा उद्यान जेतवन क्रय कर विहार बनवा उसने गौतम शाक्य को भेंट कर दिया ?"

"जेतवन भेंट कर दिया ? क्या कहते हो लौहित्य ?"

"सत्य कहता हू आचार्य।"

"जेत राजकुमार ने जेतवन देन दिया ?"

"वे नही देना चाहते थे, पर सुदत्त ने जेतवन की सम्पूर्ण भूमि पर स्वर्ण बिछाकर उसे क्रय कर लिया। आचार्य, अठारह कोड स्वर्ण दिया उसने।"

"तो यो कहो, जेतराज कुमार को एक भारी उत्कोच दिया गया।"

"यही तो बात है आचार्य, उसके तीन पात स्वर्ण द्वीप मे स्वर्ण भर कर लौटें है, सुदत्त अनाथ पिण्डिक के पास स्वर्ण की क्या कमी है। अब उसकी कीर्ति घर २ गाई जा रही है, विशाखा का सप्तखण्डी मृगार माता प्रासाद धरा ही रह गया!"

"यह तो होना ही था। फिर राजकुमार जेत की इतनी कृपा दृष्टि।"

"जेत ही की क्यों पायासी, गौतम शाक्य की भी कहो। यही देखलो, राजमहिषी मल्लिका अब यहा नही आती, सुना है उन पर इस गौतम का अच्छा रग चढ़ा है।"

"चढे नही तो क्या आचार्य, मालीं की बेटी अपने रूप के कारण बनी कोसल पट्टराजमहिषी, सो वह रूप की दुपहरी तो कब की ढल गई, महाराज प्रसेनजित को नित नए यौवनो से फुर्सत नही। उनकी विलसित वासना को राजगृह का वह तरुण वैद्य अपने वाजीकरण से नहीं दूर कर सका, अब वह चार्वाक पन्थी माण्डव्य अपने रसायन का चमत्कार दिखाना चाह रहा है।"

"साकेत के उस पाजी बृहस्पति चार्वाक के चेले की बात कह रहे

हो ? बड़ा घृणित है वह ब्राह्मण कुलकलंक । हां, सो उसने राजा को खूब भरमा रखा है ?"

"जी हां, वह यही तो कहता है कि—इन्द्रियों को तृप्त होकर अपने २ विषय भोग लेने दो, यथेष्ठ आनन्द करो।"

"और उस धूर्त ने राजा को कुछ रसायन दी है।"

"जी हां, सो जैसे सूखा ईंधन अनुकूल वायु पाकर धायं धायं जलता है, वैसे ही उस अतृप्त कामाग्नि में राजा भी जलकर राख हो जायेगा। इस सत्तर वर्ष की अवस्था में वह गांधारी कलिंगसेना का विवाह करने जा रहा है । उधर विदूडभ राजपुत्र उसे मारकर कोशल के सिंहासन को आधीन करने का षड्यन्त्र रच रहा है।"

"यह क्या कहते हो पायासी सौम्य, राजकुमार विदूडभ ?"

"हां, आचार्य ! शाक्यों ने जब से उसका दासी पुत्र कह कर अपमान किया है, वह महाराज से घोर घृणा करता है । वह कहता है, जब मालों की लड़की मल्लिका को उन्होंने पट्टराजमहिषी का पद दिया, तो उसकी माता शाक्य दासी नन्दिनी को क्यों दासी ही रहने दिया ? शाक्यों से अपादृत होकर वह और भी क्रुद्ध हो उठा है।"

"उसका यह कथन अयथार्थ तो नहीं है प्रिय, पर सत्य जानो, ये दासीपुत्र इन सभी बूढ़े कामुक राजाओं को डुबोवेंगे। तो विदूडभ तो शाक्य गौतम से भी घृणा करता होगा ?"

"उसका वश चले तो वह उसे मार ही डाले, पर उसका वह मित्र . . . . ।"

"कौन ?"

"राज गृह का वही तरुण वैद्य । वह उस शाक्य गौतम का परम भक्त है । आजकल वह उसका बहुत घनिष्ट हो रहा है।"

"तो यों कहो, श्रावस्ती में जहां देखो वहीं उस धूर्त शाक्य श्रमण के गुप्तचर भर रहे हैं। पर सौम्य लोहित्य, तुम उस मूर्ख राजकुमार

विदूडभ को मेरे पास लाओ, उसे तो हमारे ही दल मे मिलना चाहिये।"

"मै चेष्टा करूंगा आचार्य, पर वह तरुण राजकुमार उतना मूर्ख नहीं है, वह बडा तेजस्वी है।"

"तब तो और भी अच्छा है। अरे, ये सभी वर्णसकर जन आर्यो से अधिक तेजस्वी होते है प्रिय, यदि वही निकट भविष्य में कोशल का सिंहासन आक्रात करेगा, तो उसे अपने निकटवर्ती रखना अच्छा है। विशेषकर इसलिए कि वह शाक्य गौतम से घृणा करता है, जिसके नाम का श्रावस्ती, कोशल, राजगृह, वैशाली सर्वत्र ही जनपद मे डका बज रहा है।"

"मै उसे लाऊगा आचार्य, वह मेरा आदर करता है।"

"तो उससे लाभ उठाओ भाई। हा, राजमहिषी मल्लिका की क्या बात कह रहे थे?"

"वे नित्य उस श्रमण गौतम के पास जाती है। वे जानती है, उनका माली की पुत्री होने का लाच्छन वही मिटा सकता है। सेट्ठि वधू विशाखा उनके बहुत मुह लगी है।"

"तो उन दोनो का भेद कराना होगा, राजमहिषी को भी हमारे ही दल में मिलना चाहिऐ, फिर मै उस शाक्य शौद्धोदन को समझ लूगा।"

"यह तनिक कठिन होगा आचार्य, देवी मल्लिका माली की बेटी तो है, परन्तु उनकी निष्ठा बहुत है, और कोशल जन-पद मे उनका मान महाराज प्रसेनजित के ही समान है।"

"तभी तो सोम्य लौहित्य। परन्तु चिन्ता न करो, मै उपाय कर लूगा। राजमहिषी मल्लिका को मेरी शरण आना ही होगा,-यह राजसूय समाप्त होने दो। जब तक यज्ञ समाप्त नही हो जाता राजा मेरी ही इच्छा के आधीन है। परन्तु श्रावस्ती पर एक और भी तो पापग्रह है।"

"वह कौन ? "

"श्रमण महावीर जिन"

"उसकी तपश्चर्या ही निराली है आचार्य, कुछ समझ में ही नहीं आता है, सुना है वह दो २ मास निराहार रहते हैं। आजीवकों की भांति नंगे रहते हैं। उनके शील और व्रत बहुत श्रावक धारण कर रहे हैं। वह भी शूद्र और ब्राह्मण में अभेद रखते हैं। राजपुत्र विदूडभ उन्हें बहुत मानते हैं।"

"समझ गया। अरे लौहित्य, प्रसिद्धि के अनेक उपाय हैं। इस लिच्छवि निर्ग्रन्थ श्रमण को भी मैं अच्छी तरह जानता हूं। उधर शाक्यों ने, इधर लिच्छवियों ने अपने गण राज्य के विस्तार का यह धर्म ढोंग रचा है, इनका उच्छेद सम्राट् द्वारा नहीं, विदूडभ के द्वारा होगा। नहीं तो ये कोशल के आर्य राज्य को खोखला कर डालेंगे। अच्छा-अच्छा देखूंगा इसे। राजसूय समाप्त होने दो।"

: ६३ :

राजपुत्र विदूडभ

राजकुमार विदूडभ ने आचार्य के निकट आ अभिवादन कर आसन पर बैठ कर कहा—

"आपने मुझे स्मरण किया था आचार्य ?"

"तुम्हारा कल्याण हो राजकुमार, मुझे भासता है कि तुम्हे मेरी आवश्यकता है।"

"किस लिए आचार्य ?"

"अपने गुरुतर उद्देश्य की पूर्ति के लिये।"

"आप किस सदर्भ का सकेत कर रहें है आचार्य ?।"

"तो क्या तुम मेरा सकेत समझे नही, कुमार ?"

"आचार्य कुछ कहें तो—"

"अरे, श्रावस्ती में कितना अनर्थ हो रहा है आयुष्मान् ?"

"कैसा अनर्थ ?"

"यह श्रमण गौतम क्या राजा प्रजा सभी को नष्ट कर डालेगा ?"

"ऐसी आप कैसे कल्पना करते है ?"

"तो तुमने नहीं सुना कि सेठ सुदत्त ने जेतवन कुमारजेत से अठारह करोड स्वर्ण मे मोल ले कर गौतम को भेंट कर दिया।"

"सुना है आचार्य।"

"और विशाखा ने जो वह सात खण्ड का पूर्वाराम मृगार माता प्रासाद, बनाया है सो ?"

"वह भी जानता हूं।"

"राजमहिषी मल्लिका नित्य वहा जाती है ?"

"जाती तो है।"

"इसे भी मैं नष्ट करूंगा।"

"तभी तुम कौशल के सिंहासन पर आसीन होगे। सुनो आयुष्मान्, मैं तुम्हारी सहायता करूंगा, तुम्हारा कण्टक मुझे ज्ञात है।"

"वह क्या है आचार्य ?"

'बंधुल मल्ल और उसके बारहो पुत्र परिजन। बन्धुल के ऊपर निर्भर होकर राजा राजकाज से निश्चिन्त हो गया है, बंधुल स्वयं आमात्य हो गया है और उसने अपने बारहो पुत्र परिजनों को सेना और राज कोष का अधिपति बना दिया है। ये जब तक जीवित हैं, तुम्हारा स्वप्न सिद्ध नहीं होगा।"

"परन्तु आचार्य, मैं समय की प्रतीक्षा कर रहा हूं।"

"मूर्खता की बातें हैं आयुष्यमान्, यह उद्ग्राव यौवन तुम्हारा प्रतीक्षा ही में विगलित हो जायगा। फिर उसी के साथ साहस और उच्चाकांक्षाएं भी। मित्रगण निराश होकर थक जावेंगे, और वे अधिक आशावान् शत्रु को सेवेंगे। तुम आयुष्मान, खींचकर समय को वर्तमान में ले आओ।"

"किस प्रकार आचार्य ?"

"कहता हूं, सुनो। इस बंधुल और उसके बारहो पुत्र परिजनों को नष्ट करदो आयुष्मान्, और बन्धुल के भागिनेय दीर्घकारायण को अपना अन्तरंग बनाओ, इसमें तुम्हारा यन्त्र सफल होगा। दीर्घकारायण बंधुल और राजा दोनों से अनादृत और वीर पुरुष है।"

'परन्तु यह अति कठिन है आचार्य।"

'अति सरल आयुष्मान्। वत्सराज उदयन सीमान्त पर सैन्य संग्रह कर रहा है। कलिङ्गसेना के आहरण से वह अति क्रुद्ध है। महाराज को भय है कि विवाह और यज्ञ में वह विघ्न करेगा।"

"यह मैं जानता हूं, महाराज ने उधर सेनापति कारायण को भेजा है।"

"मैं ऐसी व्यवस्था करूंगा कि सेनापति कारायण को सफलता न मिले आयुष्मान्।"

"इससे क्या होगा आचार्य।"

"तब तुम महाराज और बधुल को उत्तेजित करके बन्धुल के बारहों पुत्रपरिजनों को सीमान्त पर भिजवा देना और कारायण को राजधानी में वापस बुलाकर राजा से अनादृत कराना।"

"मैं ऐसा कर सकूंगा।"

"बधुल के बारहों पुत्र परिजन सीमान्त से जीवित नहीं लौटेंगे, और बधुल को स्वयं उस अभियान पर जाने को विवश होना पड़ेगा। विम्बसार को पराजित करके वह गर्व तो बहुत अनुभव करता है, पर उसका सैन्य संगठन इस युद्ध में छिन्न भिन्न हो गया है। आयुष्मान, उसे कौशाम्बीपति और उसके आमात्य यौगन्धरायण से लोहा लेने में बहुत सामर्थ्य खर्च करनी पड़ेगी।"

"किन्तु बधुल के बारहों पुत्र परिजनों का निधन कैसे होगा आचार्य? वे सब भांति सुसज्जित और संगठित हैं।"

"उनकी चिन्ता न करो आयुष्मान्, पृथ्वी का सर्वश्रेष्ठ सामर्थ्यवान् महामात्य यौगन्धरायण मेरा बालमित्र है। मैं आवश्यक संदेश देकर आजही पायासी महासामन्त को सीमान्त भेज दूंगा। बन्धुल के पुत्र परिजनों का वध सीमान्त पहुंचने के प्रथम ही हो जायगा।"

"यह तो असाध्य साधन होगा भन्ते आचार्य।"

"और एक बात है, पायासी कारायण के साथ साकेत को लौटेगा। मार्ग ही में वह उसे तुम पर अनुरक्त कर देगा, साकेत पहुंचने पर और महाराज से अनादृत होने पर उसे भली भांति समादृत करके मित्र बना लेना तुम्हारा काम है।"

"इस सम्बन्ध में आप निश्चिन्त रहें आचार्य।"

"तो पुत्र, इसी यज्ञ समारोह में तुम्हारी अभिसन्धि पूरी होगी। किन्तु एक बात है।"

"क्या ?"

"अनाथपिण्डिक सुदत्त शाक्य गौतम का जेतवन में नित्य स्वागत करता है ।"

"हां आचार्य, मुझे ज्ञात है ।"

"जाओ तुम भी, और श्रमण से कपट सम्बन्ध स्थापित करो ।'

"आचार्य, क्या उसे मार डालना होगा ?"

"नहीं आयुष्मान्, वह अभी जीवित रहना चाहिये। वह इन सब राजाओं को, सेठियों को, सेट्टि पुत्रों को मार डालेगा, ये ही तो आज तुम्हारे शत्रु है। आयुष्मान् अभी उसे अपना कार्य करने दो, परन्तु यह श्रमण विशाखा के पूर्वाराम मृगार प्रासाद में कब जा रहा है ?"

"इसी पूर्णिमा को आचार्य ।"

"उसी समय राजमहिषी मल्लिका देवी भी गौतम से दीक्षा लेंगी ।"

'ऐसी ही व्यवस्था सेठिपुत्रवधू विशाखा ने की है ।'

"तो तू ऐसा कर सोम्य, कि बन्धुल मल्ल की पत्नी मल्लिका भी उस श्रमण के चुंगल में फस जाय, वह भी राजमहिषी के साथ ही दीक्षा ले ।"

'यह तो अति सरल है आचार्य । उससे मेरा अच्छा परिचय है, मैं उसे सहमत कर लूंगा ।"

"श्रमण की खूब प्रशसा करो आयुष्मान्, और राजमहिषी के साथ ही गौतम के पास जाने की उससे प्रेरणा करो, कर सकोगे ?"

"कर सकूंगा । मैं जानता हूं, महिषी का उस पर बहुत प्रेम भाव है ।"

'यह बहुत अच्छा है आयुष्मान्, और एक बात याद रखो ।"

"वह क्या आचार्य ?"

"वही करो जो उचित है ।"

"उचित क्या है ?"

"जो आवश्यक है, वही उचित है आयुष्मान्।"

विदूडभ ने हसकर कहा—"आचार्य, आपका धर्म गौतम की अपेक्षा बहुत अच्छा है।"

"परन्तु आयुष्मान्, यह धर्म पदार्थ एक महा-असत्य वस्तु है, इसे केवल परधन हरण करने और उसे शान्ति से उपभोग करने के लिये ही कुछ चतुर जनो ने अपनाया हुआ है। इससे प्रिय, तुम किसी की ठगाई मे न आना। धर्म के सत्य रूप को समझना और उससे भय न करना। उससे काम लेना और जो उचित हो वही करना।"

"समझ गया आचार्य, राजगृह के उस तरुण वैद्य के पास कुछ अति भयकर विष है, परन्तु वह उनसे काम लेना जानता है। वह जो उचित है वही करता है। वह कहता है, ऐसा करने मे ये सब भयानक विष अमृत का काम देते है, उनसे मृत प्राय आदमी जी उठते है।"

"ऐसा ही है आयुष्मान्, अब तुम इस तत्त्व को भली भाति समझ गये। अब जाओ तुम प्रिय, तुरन्त साकेत जाकर शुभ कार्य का अनुष्ठान करो।"

"अच्छा भन्ते," कहकर राजकुमार ने उठकर आचार्य को अभिवादन किया और आचार्य ने दोनो हाथ उठाकर उसे आशीर्वाद दिया।

राजकुमार बिदा हुए।

: ६४ :

दासों के हट्ट में

जीवककौमारभृत्य को एक दासी की आवश्यकता थी। उसने मित्र राजपाल से कहा—"मित्र, हट्ट में चल, एक दासी मोल लेंगे। सुना है यवन का एक दास विक्रेता नगर में आया है, उसके पास कुछ अच्छी तरुण दासियां हैं।"

दोनों मित्र हट्ट में पहुंचे। अन्तरापण में पणजट्टक के बाड़े में कुछ दास दासी एक शृंखला में बंधे बैठे थे। अभी दोपहर होने में देर थी। हाट के बीचोबीच बिना छत का लोहे के सींखचों से घिरा हुआ एक बाड़ा था, उसी में पन्द्रह बीस दास दासियां जो बचे जाने को थे-बन्द थे, सबके पैरों में एक लोहे की शृङ्खला पड़ी थी। इनमें सभी आयु के दास दासी थे। कुछ दासियां यवनी थीं। एक की आयु तीस वर्ष के लगभग थी, परन्तु यौवन का प्रभाव अब भी उसके शरीर पर था। दूसरी युवती की आयु बीस बरस की थी, उसका रंग मोती के समान स्वच्छ और आंखें वैदूर्य के समान सतेज थीं। वह दोनों हाथ छाती पर बांधे एक वृद्धा के पास नीची दृष्टि किए बैठी थी। एक बालक बारह चौदह वर्ष का था। कई दास काले थे।

दासविक्रेता एक बूढ़ा ठिगना यवन था। वह बहुत बार श्रावस्ती आ चुका था। उसका सफेद दाढ़ी, ठिगनी गर्दन और क्रूर आंखें उसको अन्य पुरुषों से पृथक् कर रही थीं। उसके हाथ में चमड़े का एक सुदृढ़ चाबुक था। वह एक क्रीता-दासी को लेकर बाड़े में आया। दासी की गोद में तीन साल का बालक था। बालक हृष्ट पुष्ट और सुन्दर था। जब दासों के व्यापारी ने उस स्त्री को दासों के बाड़े में बैठा कर उसके पैरों में शृङ्खला डाल दी, तो वह स्त्री रोने लगी।

दास विक्रेता ने कहा "रोती क्यों है, क्या चाबुक खायगी ?"

"तुमने मुझे यहां किस लिये बैठाया है ?"

"यह तो प्रगट है कि बेचने के लिए। देखा नहीं, बीस निष्क सोने के देकर मैंने तुझे और तेरे इस छोकरे को खरीदा है।"

"कहा ? मुझे तो मेरे मालिक ने यह कहा था कि वैशाली में तेरा आदमी है, वही यह भला मानस तुझे ले जावेगा।"

व्यापारी ने हंस कर कहा—"ऐसा न कहता तो तू वहीं रो धो कर एक टंटा न खड़ा कर देती ? पर अब रोकर अपना चेहरा न खराब कर, नहीं तो ग्राहक अच्छे दाम नहीं लगावेगा।"

स्त्री ने निराश दृष्टि से उसकी ओर ताकते हुए कहा—"तो क्या तुम मुझे बेचोगे ?"

"नहीं तो क्या बैठा कर खिलाऊंगा ? यहां तो इधर लिया, उधर दिया।"

इतने में एक आदमी ने लड़के के मांसल कन्धों में हाथ से गड़ाकर देखा और कहा—

"अरे इस छोकरे को सस्ते दामों में दे तो मैं ही ले लूं।"

"सस्ते की खूब कही, छोकरा कितना तैयार है, खरे दाम चोखा माल।"

"पर इतना सा तो है, काम लायक बड़ा होने तक कितना खिलाना पिलाना होगा, जानते हो ? मैं दस कार्षापण दे सकता हूं।"

"क्या दस ? कभी नहीं, और छै महीने बाद पचास में बिकेगा।"

"और जो मर गया तो माल से भी जाओगे। मान जाओ, पन्द्रह कार्षापण ले लो।"

"अच्छा बीस पर तोड़ करिये। बहुत खरा माल है, कैसा गोरा रंग है।"

ग्राहक कार्षापण गिनने लगा, तो स्त्री ने आंख में भय और आंसू भर कर कहा—"मुझे भी खरीद लीजिए मन्ते।"

व्यापारी ने हाथ का चाबक उठाकर कहा—"चल, चल, ग्राहको को नंग न कर।" उसने खीचकर बालक का ग्राहक के हाथो मे दे दिया। बालक रोने लगा, उसकी मा मूर्छित हो गई।

व्यापारी ने कहा—"अब इस अवसर पर आप अपना माल लेकर चल दीजिए, होश मे आने पर यह और टटा खडा करेगी।"

ग्राहक सिसकते हुए बालक को लेकर चला गया। थोडी देर मे स्त्री ने होश मे आकर शून्य दृष्टि से अपने चारो ओर देखा। दास विक्रेता ने पास आकर कहा—"चिन्ता न कर, जिसने खरीदा है वह भला आदमी है, लडका सुख से रहेगा। और तेरा भी झझट जाता रहा।" स्त्री भाव-हीन आखो से उसे देखती रही, उसके होठ हिले, पर बोली नही निकली, वह सिर से पैर तक कपडे से शरीर ढाप कर पड रही।

एक बूढे ब्राह्मण ने आकर कहा—'एक दासी मुझे चाहिए।"

"देखिये, इतनी दासिया है। युवती चाहिए या दास?"

"दास।"

"तब यह देखिए।' उसने एक तरुणी की ओर सकेत किया। वह चुपचाप अधोमुखी बैठी रही। व्यापारी ने कहा—'चतुर भाषा बोल सकती है आर्य, रसोई बनानी और चरण सेवा भी जानती है, अभी युवती है।" यह कह कर उसने उसे खडा किया। युवती सकुचाती हुई उठ खडी हुई।

ब्राह्मण ने साथ के दास से कहा—'देख काक, दात देख, सब ठीक-ठाक है?"

ब्राह्मण के क्रीतदास ने मुह मे उगली डाल कर दात देखे, और निश्शक वक्षस्थल मे हाथ डालकर वक्ष टटोला। कमर और शरीर को जगह जगह से टटोल कर, दबाकर देखा और फिर हंस कर कहा—"काम लायक है मालिक, खूब मजबूत है।"

व्यापारी ने हस कर कहा—"मैंने पहिले ही कहा था, परन्तु सस्ते, मूल्य चालीस निष्क से कम नही होगा।"

"इतना बहुत है, तीस निष्क दूंगा।"

"आप श्रोत्रिय ब्राह्मण है, मुझे उचित है कि आप ही को बेचू।" उसने हंसते हंसते युवती के पर की शृङ्खला खोल दी। ब्राह्मण ने स्वर्ण गिन दिया और दास से कहा—'लक्षवेधु ठीक-ठाक लिखाकर दासी को ले आ।" व चले गये।

काक ने सब लिखापढी कराकर दासी से कहा—"चल चल, घबरा मत, हमी तेरे मालिक है, भय न कर।" दासी चुपचाप उसके पीछे २ चल दी।

जीवक कौमारभृत्य घूर २ कर प्रत्येक दासी को देख रहे थे। आश्चर्य से उसने व्यापारी से कहा—'भन्ते, आप को कैसा दास चाहिए? इस छोकरे को देखिए—कैसे हाथ पैर है, रंग भी काला नहीं है।" उसने छोकरे के परो से शृङ्खला खोल कर कहा—

"तनिक नाच तो दिखा रे?

बालक ने डरते २ खडे होकर भद्दी तरह नाच कर दिखा दिया। व्यापारी ने फिर कहा—"गाना भी सुना।"

उसने दासो का एक गीत भी गा दिया। व्यापारी हंसने लगा।

जीवक ने कान मे सिकुडी हुई बठी युवती को ओर उगली उठा कर कहा—"उस यवनी दासी का क्या माल है भणे"।

व्यापारी ने हस कर हाथ मलते हुए कहा—"आप बडे काइया है भन्ते, असल माल टटोल लिया है। बडी दूर से लाया हू, दाम भी बहुत दिए है। व्यय भी करना पडा है। संगीत, नृत्य और विविध कला म पारङ्गत है। भोजन बहुत अच्छा बना सकती है, अनेक भाषा बोल सकती है। रूप सौन्दर्य देखिए "

उसने दासी को अनावृत्त करने को हाथ बढाया। परन्तु जीवक ने कहा—"रहने दे मित्र, दाम कहे"

"साठ निष्क से एक भी कम नहीं।"

"इतना ही ले।"

जीवक ने स्वर्ण भरी थैली उसकी ओर फेंक दी। व्यापारी प्रसन्न हो और दासो के निकट जाकर उसकी शृङ्खला खोलते हुए कहा—"भाग्य को सराह, ऐसा मालिक मिला।"

दासी ने कृतज्ञ नेत्रो से जीवक को देखा और उसके निकट आ खडी हुई। जीवक ने उसे अपने पीछे २ आने का संकेत किया, तथा मित्र से बात करता हुआ अपने आवास की ओर आया।

इसी समय और भी बहुत से दास और दासिया बिकने के लिए हट्ट मे आये। पणजेष्ठक ने सबके मालिको के नामपट्ट देख, शुल्क ली और एक २ करके शृङ्खला उनके पैरो मे डाल दी। इन दास दासियो में बूढे भी थे, जवान भी थे, अधेड भी थे, लडकिया भी थी। सत्तर वर्ष की बुढिया से लेकर चार वर्ष तक की लडकी थी। एक दस वर्ष की लडकी कराह रही थी। कल इसकी मा बिक चुकी थी, और यह मा, मा, चिल्ला रही थी। वह सत्तर साल की बुढिया वात रोग से गठरी सी बनी लगातार रो रही थी। इसके पाच छै लडके लडकिया लोग खरीद ले गये थे। यह तीन चार दिन से हट्ट मे बिकने को आ रही थी, पर कोई इसका खरीदार ही नही खडा हो रहा था। दो औरते एक दूसरी से चिपटा बैठी थी। एक की आयु २५ वर्ष की होगी, दूसरी १५ वर्ष की थी। दोनो मा बेटिया थी, सकर थी, आर्य पिता और दासी से उनकी उत्पत्ति थी। दासी भी सकर थी, उनके कपडे लत्ते साफ सुथरे और अग कोमल थे। इससे प्रतीत होता था कि उन्होने परिश्रम नही किया था। ये एक ब्राह्मण श्रोत्रीय के यहा से आई थी। दोनो पढी लिखी थी। एक सामन्त ने उन्हे ब्राह्मण को यज्ञ की दक्षिणा मे दिया था। ब्राह्मण ने उनके स्वर्णाभरण उतार कर उन्हे बेचने को हट्ट में भेज दिया था।

दासो को देखने और उनका क्रय विक्रय करने वालो की हट्ट मे बडी भीड हो रही थी। उसी भीड मे एक आर सोम चुपचाप खडे तीव्र

दृष्टि से एक एक करके दासो को देख रहे थे। उनका चेहरा पीला पड गया था और उसपर श्रा नही रह गई थी। इतने ही मे किसी ने पीछे से उनके कन्धे पर हाथ रखा सोम ने पीछे फिर कर देखा तो कुण्डनी है। कुण्डना ने सकेत से उन्हे एक ओर ले जाकर कहा—"बडी बात हुई जो तुम्हे देख पाई, मै तुम्हारे लिये बहुत चिन्तित थी। परन्तु राजनन्दिनी की खोज-पट मे मै तुम्हारे लिये कुछ न कर सकी। तुम क्या सीधे श्रावस्ती ही से चले आरहे हो?"

"हा मुझे अप्रत्याशित रूप से राह मे अटकना पडा, परन्तु मै मागध भर तुम्हे खोजता आया हू।"

"मुझे या चम्पा की राजनन्दिनी को?"

कुण्डनी ने सोम पर एक कटाक्ष करके हस दिया। सोम भी हस पडा। उसने कहा—"राजकुमारी है कहा?"

"वह इसी दस्यु यवन दास विक्रेता के फन्दे मे फस गई।"

"तुम रक्षा नही कर सकी कुण्डनी?" सोम ने रूखे कण्ठ से कहा।

"नही, मैने उस समय उन्हे छोड कर पलायन करना ही ठीक समझा।"

"अरे? तो वह दुष्ट क्या उन्हे दासी की भाति बेचेगा?" सोम ने क्रोध से नथुने फुलाकर खड्ग पर हाथ रक्खा और एक पग आगे बढाया।

कुण्डनी ने उनका हाथ पकड लिया। कहा—बेवकूफी मत करो, वह तो उन्हे बेच भी चुका।"

"बेच चुका, कहा?"

"अन्तःपुर मे। अन्तःपुर का अधिकारी मेरे सामने स्वर्ण देकर उन्हे महालय मे लेगया।"

"और तुम यह सब देखती रही कुण्डनी?" सोम की वाणी कठोर हुई

"दूसरा उपाय न था, परन्तु अन्तःपुर की सब बातें मुझ पर विदित हैं।"

"कौन बातें ?"

"गान्धार कन्या कलिङ्गसेना का महाराज प्रसेनजित् से विवाह होगा। उस अवसर पर पट्टराजमहिषी मल्लिका उन्हें एक दासी नियमानुसार भेंट करेंगी। इस काम के लिये बहुत दासियां इकट्ठी की गई थीं। उनमें कञ्चुकी भाण्डायन ने चम्पा राजकुमारी को ही चुना। वह उन्हें मुंहमांगे मूल्य पर क्रय कर लेगया और राजमहिषी मल्लिका ने उन्हीं को विवाह के उपलक्ष्य में महाराज की भेंट करने का निर्णय किया है।"

"परन्तु यह अत्यन्त भयानक है कुण्डनी, यह कदापि न होने पायेगा। तुम इस सम्बन्ध में कुछ न करोगी ?"

"क्यों नहीं, हमें राजनन्दिनी को बचाना होगा। परन्तु क्या तुम साहस करोगे ?"

"यदि प्रसेनजित् को अपने सेनापति बधुल पर अभिमान है, तो मैं कुण्डनी, अकेला ही कोसल का गर्व भंग करूंगा। मागधपराजय का पूरा बदला लूंगा।"

"तुम अकेले यह कर सकोगे ?"

"अकेला नहीं, यह खड्ग भी तो है ?"

"खड्ग पर यदि तुम्हें इतना विश्वास है तो दूसरी बात है, परन्तु तुम यहां मुझसे कुछ आशा मत रखना।"

"तो तुम राजनन्दिनी पर इतनी निर्दय हो ? तब उसे इस विपत्ति में डालने को लाई क्यों थी ?"

"मैंने उनका विपत्ति से उद्धार किया था ?"

"तो अब भी उद्धार करो।"

"कर सकती हूं, परन्तु तुम्हारी योजना पर नहीं, अपनी योजना पर।"

"वह क्या है ?"

"कहती हू, पहिले यह कहो कि तुम साहस कर सकते हो ?'

"मेरा यह खड्ग तुम देखती नही ?"

"फिर खड्ग, अरे भाई, खड्ग का यहा काम नहीं है ।"

"तब ?"

"कोशल का ।"

"क्या असुरपुरी का मृत्यु-चम्बन ?"

"नहीं नहीं, सोम, यह असुरपुरी नही, कोशल महाराज्य की राजधानी श्रावस्ती है ।"

"जानते हो, यदि यहा यह पता लगा जाय कि हम मागध है तो चर होने के संदेह मे हमे सूली चढना होगा ।"

"तो फिर कहो भी, तुम्हारी योजना क्या है ?"

"हम मागध है, पराजित मागध।"

"मै अस्वीकार करता हू ।"

"व्यर्थ है, यह कहो साहस कर सकोगे ?"

"अच्छा करूगा । कहो, क्या करना होगा ?"

कुण्डनी हस दी—"हा ठीक, है इसी भाति मेरे अनुगत रहो ।"

सोम को भी हसना पडा । उसने कहा —' तो अनुग्रहीत भी करो ।"

"नही तो कर रही हू ।'

"क्या करना होगा, कहो ?"

"तुम्हें मेरे साथ अन्त पुर मे प्रवेश करना होगा ।"

"कैसे ?"

"स्त्री वेश मे ।"

"अरे ! यह कैसे होगा ?"

'चुपचाप मेरी योजना पर विश्वास करो । वस्त्र मै जुटा दूगी । कहो, कर सकोगे ?"

सोम ने हसकर कहा—"तुम्हारे लिये यह भी सहा कुण्डनी ।"

"मेरे लिये नहीं भाई, राजनन्दिनी के लिए।"

"ऐसा ही सही।"

"अच्छा, अब चलो मेरे साथ।"

"कहां ?"

जहां आर्य आमात्य हैं ?

"आमात्य क्या यहां हैं ? और सम्राट् ?

"वे राजगृह पहुंच गये हैं।"

"उनके पास अभी चलना होगा?"

"अभी नहीं, अब तो स्नान भोजन और विश्राम करना होगा। फिर रात्रि होने पर।"

"चलो फिर।"

दोनों जन टेढ़ीमेढ़ी गलियों को पार करते चले गये।

———

: ६५ :

युग्म-युग पुरुष

नगर के बाहर एक यक्ष निकेतन था। निकेतन बहुत पुराना था। उसमे विराटकाय यक्ष प्रतिमा थी। निकेतन का अधिकाश पृथ्वीगर्भ मे था, और उसका प्रवेश एक गुफा द्वार से होता था। यक्ष प्रतिमा सफेद पत्थर की थी, जो उस अधकारपूर्ण निकेतन मे प्रभावशाली प्रतीत होती थी। नगर के इस प्रान्त भाग मे लोगो का आना जाना बहुत कम होता था। कभी २ लोग यक्ष पूजन के लिए आते और दीप जलाकर गुहागर्भ मे प्रवेश करते थे। साधारणतया यह प्रसिद्ध था कि यक्ष के प्रकोप से मनुष्य का मस्तक कट गिरता है। इसी से इस यक्ष निकेतन के प्रति लोगो म बडी भीति थी। रात्रि को इधर भूल कर भी कोई नही आता था।

कुण्डिनी सोम को टेढे मेढ मार्गों से पार कराती इसी यक्ष निकेतन मे ले आई। उसने दृढता मे सोम का हाथ पकडकर उस अन्धकारपूर्ण भयावनी गुहा मे प्रवेश किया। सोम टटोल २ कर उसके पीछे २ चलने लगे। गुहा के बिलकुल अन्त मे यक्ष प्रतिमा की पीठ पर ढासना लगाए, दीपक के क्षीण प्रकाश मे आर्य वर्षकार गम्भीर मुद्रा से बैठे ताल पत्र पर कुछ लेख लिखने मे व्यस्त थे। कुण्डिनी और सोम ने निकट जाकर अभिवादन किया। आर्य वर्षकार ने सिर उठाकर देखा, फिर सकेत से बैठने को कह अपना लेख पूरा किया। लेख पूरा करके उन्होने गीली मिट्टी की उभार अपनी मुद्रिका से मुद्रण लगा दी। फिर सोमप्रभ की ओर देख कर कहा—"आयुष्मान् सोम, हम लोगो के आने के प्रथम ही सम्राट् की सेना पराजित हो गई।"

"सुन चुका हू आर्य!" सोम ने धीरे से कहा।

"अभी भगवन् पाद बादरायण का संदेश मुझे मिला है, सम्राट् अब राजगृह पहुंच गये होंगे। मेरा उधर तुरन्त पहुंचना आवश्यक है, क्योंकि राजगृह पर चण्डमहासेन ने अभियान किया है और मथुरा का अवन्ति वर्मन भी उससे मिलने आ रहा है। किन्तु मैं निमित्त से रुका हूं, काल क्या है ?"

"एक दण्ड रात्रि व्यतीत हुई है।"

"तो आयुष्मान् सोम, यह पत्र तुम यत्न से रखो और सेनापति उदायि को ढूंढढाढ कर उन्हें दे दो। वह बिखरी हुई मागध सैन्य का संगठन कर रहे हैं। तुम उन्हें सहायता दो तथा अत्यन्त गोपनीय भाव से सेना को संगठित करो और अवसर पाते ही यज्ञ विध्वंस कर दो।"

"क्या कौशलपति के प्रति आर्य कोई विशेष आदेश देंगे ?"

"नहीं, परन्तु यथा काल तुम करणीय करो।"

"राजकुमार विदूडभ ?"

"उसके जीवन की रक्षा होनी चाहिए, किन्तु पिता पुत्र के विवाद से तुम लाभान्वित हो सकते हो।"

"जैसी आज्ञा आर्य।"

"पुत्री कुण्डनी, तुझे अन्तःपुर का सब महत्वपूर्ण समाचार सुविदित होना चाहिये। तुम लोग नगर में छद्म नाम और छद्म वेश में रह सकते हो। हां, मल्ल श्वपच को नष्ट कर दो।"

"जो आज्ञा आर्य।"

"और एक बात, उपालि कुम्भकार हमारा मित्र है, भूलना नहीं।"

"नहीं आर्य, नहीं।"

"तो जाओ अब, तुम्हारा कल्याण हो।"

दोनों ने अभिवादन कर प्रस्थान किया। वर्षकार फिर कुछ लिखने लगे। इतने ही में पदशब्द सुनकर उन्होंने खड्ग उठाया और खड़े हुए।

किसी ने मृदु मन्द स्वर से कहा—"वहाँ कौन है ?"

"यदि वयस्य यौगन्धरायण है, तो वर्षकार स्वागत करता है।"

"स्वस्ति मित्र, स्वस्ति।"

दोनो ने अपने २ स्थान से आगे बढ़कर परस्पर आलिङ्गन किया। उस अधकारपूर्ण गुफा मे विश्व के दो अप्रतिम राजनीतिज्ञ एकत्रित थे।

यौगन्धरायण ने कहा—

"मगध सम्राट् की पराजय का दायित्व मुझी पर है मित्र।"

"मै जानता हू, परन्तु मै आपको दोष नही दे सकता।"

"सुनकर सुखी हुआ। कौशाम्बीपति ने केवल कलिङ्गसेना के कारण अभियान किया था।"

"किन्तु सुश्रो कलिङ्गसेना ने प्रियदर्शी महाराज उदयन को छोड कर विगलित यौवन प्रसेन को कैसे स्वीकार किया ?"

"मेरे ही कौशल से मित्र।"

"तो क्या वह नही जानती थी कि प्रसेनजित बूढे है ?"

"क्यो नही।"

"तो क्या महाराज उदयन न उसका त्याग किया ?"

"नही, मैने ही यह विवाह नही होने दिया।"

"क्यो मित्र ?"

"कौशाम्बी की कल्याण कामना से।"

"तो क्या वयस्य यौगन्धरायण यह समझते है कि गान्धारराज की मैत्री इतनी हीन है ? उससे तो सम्पूर्ण उत्तर कुरु तक महाराज उदयन का प्रभाव हो जाता।

"वह तो है ही मित्र, कौशाम्बीपति ने जब से देवासुर संग्राम मे क्रियात्मक भाग लिया है तब से देवराज इन्द्र उन्हे परम मित्र मानता है।"

"सुनकर सुखी हुआ, किन्तु कलिङ्गसेना के व्याह मे क्या राजनीतिक बाधा थी ?"

"मैं अवन्तीनरेश महाराज चण्डमहासेन को क्रुद्ध नहीं करना चाहता था। आप तो जानते ही हैं कि कन्या हरण के बाद वे बड़ी कठिनाई से प्रसन्न हुए थे और मालव मित्रता की कौशाम्बी राज्य को बड़ी आवश्यकता है मित्र।"

"किन्तु कदाचित् कौशाम्बी के महामात्य यौगन्धरायण मगध सम्राट् की प्रसन्नता की उतनी चिन्ता नहीं करते।"

"क्यों नहीं, मगध के महाबहिम आमात्य वर्षकार भली भांति जानते हैं कि मगध मित्रता ही की प्राप्ति के लिये मैंने युक्ति से देवी वासवदत्ता को छल से मृतक घोषित करके मागधनन्दिनी पद्मावती का विवाह कौशाम्बीपति से कराया था। मगध सम्राट् की प्रसन्नता की कौशाम्बीपति को उतनी ही आवश्यकता है मित्र, जितनी मगध सम्राट् को कौशाम्बीपति की।"

"सुनकर आश्वस्त हुआ मित्र, आपको विदित ही होगा, इसीसे असन्तुष्ट होकर अवन्तीनरेश ने मगध पर अभियान किया है। कलिङ्गसेना से उदयन महाराज का विवाह मगध सम्राट् को भी अभीष्ट नहीं था।"

यौगन्धरायण ने हंसकर कहा—"सम्राट् को कौशाम्बीपति की गान्धार राज्य की मैत्री से पश्चिमोत्तर दिशा से भय ही भय है, तो मित्र सम्राट् की इस महत्वाकांक्षा में कौशाम्बी राज्य बाधक नहीं है। सच पूछिये तो कौशाम्बीपति को विश्वास था कि मगध-अभियान कौशल राज्य के जीर्णशीर्ण ढांचे को अकेला ही ढहा देगा।"

"सो मित्र यौगन्धरायण, मागध अभियान अभी समाप्त नहीं है, अभी वर्षकार जीवित है।"

"वयस्य वर्षकार का प्रबल प्रताप मुझपर विदित है, मुझे सुख है कि मुझे और कौशाम्बीपति को उसकी और मगधसम्राट् की मित्रता प्राप्त है।"

"मगध सम्राट् सदैव ही कौशाम्बीपति को मित्र समझते हैं।"

"महाराज यह सुनकर सुखी होंगे। तो मित्र, अब स्वस्ति।"

"स्वस्ति मित्र, स्वस्ति।"

आर्य योगन्धरायण चले गये और उनके कुछ ही देर बाद आर्य वर्षकार गुप्त द्वार से निकले। बाहर आकर उन्होंने कुछ संकेत किया। एक चर ने आकर उनके कान में धीरे २ कुछ कहा। आर्य वर्षकार ने नेत्रों में संतोष भर कर कहा—

"अब तुम अपने कार्य में लगो सौम्य। मेरा अश्व तैयार है?"

"जी हां आर्य।"

"ठीक है।" वे उत्तरीय से शरीर को अच्छी तरह लपेट एक ओर को चल दिये।

———

: ६६ :

विदूडभ का कूट-यन्त्र

महाराज प्रसेनजित् अशान्त मुद्रा मे बैठे बन्धुल मल्ल से कोई गुप्त परामर्श कर रहे थे। विदूडभ ने वहा प्रवेश किया। महाराज ने कहा—"बैठो राजपुत्र, तुम श्रावस्ती अकस्मात् ही चले गये, मुझे सूचना भी नही दी।"

"जाना पडा महाराज।"

"किसलिये पुत्र ?"

"एक महत्वपूर्ण सदेश पाकर।"

"कैसा ?"

"क्या निवेदन करू ?"

"कहो पुत्र ?"

"मुझे सूचना मिली थी।"

"कैसी ?"

"अप्रिय।"

"कहा से ?"

'सीमान्त स।"

"वह पुत्र क्या सूचना थी।"

"कौशाम्बीपति ठीक यज्ञ के समय कोशल पर आक्रमण करेगा।",

'कहाँ ? कारायण ने तो नही लिखा, यह उसका पत्र है। वह लिखता है, चिन्ता का कोई कारण नही है।"

"मेरे पास भी एक पत्र है महाराज।"

"किसका पुत्र ?"

"सेनापति कारायण का।"

"किसके नाम ?"

'किसी गुप्त मित्र के नाम।"

विदूडभ ने एक पत्रवस्त्र से निकाल कर महाराज के हाथ में दे दिया। महाराज ने मल्ल बन्धुल को देकर कहा—'पढो बन्धुल।"

बन्धुल ने पढ़ा। उसका मुंह सूख गया। वह उलट पुलट कर पत्र को देखने लगा।

महाराज ने कहा—"पत्र में क्या लिखा है ?"

"लिखा है, ठीक दिन कोशाम्बीपति श्रावस्ती पर आक्रमण करेंगे। मैं प्रकट में विरोध करूंगा, परन्तु भीतर से अनुकूल हूं। तुम नगर-रक्षक सैन्य को ठीक रखना। तुम्हारा प्रयत्न चल रहा है।'

"पत्र पर क्या कारायण के हस्ताक्षर हैं ?"

"हां महाराज," बन्धुल ने क्रुद्ध स्वर में कहा।

"पत्र किसे लिखा गया है ?"

"कोटपाल को।"

'तुम पर यह अभिसन्धि कैसे प्रकट हुई ?"

'मेरे चर द्वारा।"

"श्रावस्ती क्यों गये ?"

"नगर का प्रबन्ध देखने, तथा पत्रवाहक मिल जाय तो विशेष समाचार जानने।"

"तो पुत्र, अब करना क्या है ?"

"यह सेनापति बन्धुल कहेंगे, वे महाराज के विश्वासपात्र और वीर हैं।"

"तुम भी कहो पुत्र ?"

"महाराज जानते हैं कि मेरा मत महाराज से नहीं मिलता।"

"किन्तु यह कोशल की प्रतिष्ठा का प्रश्न है पुत्र।"

"इसीसे मैं श्रावस्ती गया था महाराज।"

"तो बन्धुल, तुम सीमान्त को अभी प्रयाण करो और कारायण

को बन्दी करके यहाँ भेज दें।"

'मैं विरोध कहता हू महाराज।"

"क्यो पुत्र ?"

"सेनापति की यहा अधिक आवश्यकता है।"

"परन्तु सीमान्त पर आप भी यावक।"

"वहा, सेनापति के बारहो पुत्र परिजन जा सकते है। वे वीर और योद्धा हैं और विश्वस्त है। आगा पीछा सोचने योग्य भी है।"

"पर वे सब राजकाज म नियुक्त है पुत्र।"

"राजधानी का कार्यभार म ग्रहण करता हू महाराज।"

"तो बन्धुल यही ठीक है। वे सीमान्त को तुरन्त बीस सहस्र नई सैन्य लेकर जाय।"

"नही महाराज, मेरी एक योजना है।"

"वह क्या है ?"

"यदि सब एकत्र सैन्य लेकर जायेंग तो शत्रु सावधान हो जायगा। उसमे भय उपस्थित हो सकता है।"

"तुम्हारी योजना क्या है ?"

"वे बारहो बन्धुल परिजन सैन्य बिना लिये महाराज के दूत के रूप मे उपानय लेकर कौशाम्बीपति के पास जाय और यज्ञ मे उन्हे निमन्त्रण देकर उनकी रुचि देखे। सैन्य प्रच्छिन्न रूप मे पीछे २ जाय। कोई योग्य सामन्त या सेनापति उसका सचालन करे।"

"युक्ति बुरी नही है, पर सैन्य सचालन कौन करेगा ?"

"यह भन्ते सेनापति ठीक करे।"

अब मल्ल बन्धुल ने मुंह खोला। उसने कहा—

"सैन्य की व्यवस्था हो जायगी। राजकुमार की योजना उत्तम है, किन्तु कारायण ?"

"उसे तुरन्त राजधानी मे बुला लिया जाय। यहाँ आने पर

जैसा महाराज उचित समझें, उपाय अभियोग करें।" महाराज एकदम संयत हो उठे। उन्होंने कहा—"सेनापति, तुम आज ही बारहों मंत्री पुत्र परिजन को सीमान्त पर भेज दो और सेना का भी प्रबन्ध करो। और पुत्र, तुम श्रावस्ती जाकर नगर व्यवस्था आदि आर्थेतर करो।"

राजपुत्र विदूडभ कृतकृत्य होकर उसी समय श्रावस्ती को चल दिये। उन्हीं के साथ उनके रजतेभ सिंह वीरक कोसारभृत्य भी श्रावस्ती गये।

— —

और हाथीदांत के मूठो वाले खड्ग तथा काली गर्दन वाले और सौ कोस तक दौडने वाले हजार खच्चर भीतर भेजने की व्यवस्था कर अपने देश को लौट गये। उत्तर कुरु के देव दिव्यओषध, अम्लान पुष्पमाल, और कदली मृगचर्म लेकर आए खडे थे। क्रूरकर्मा असभ्य किरात, खस और दर्दर विविध पशु पक्षियो का शिकार लेकर, तथा पांच सौ यवनी दासिया लेकर आए थे।

अनेक राजा लोगो ने द्वार पर जाकर देखा कि दण्डधर दौवारिक लोगो को रोक कर विनयपूर्वक कह रहे है-"भन्ते, तनिक ठहरिए। यथा समय क्रमश आप भीतर जा सकेंगे। महाराज आपके उपानय भी ग्रहण करेंगे।" मगध के सम्राट् श्रेनिय बिम्बसार ने लम्बे दांतो तथा सुनहरी झूलो वाले सौ मत्त हाथी, और इतने ही वायुवेगी अश्व, जो सुनहरी साज से सजे थे, भेंट भेजे थे। इसी प्रकार अनेक राजा महाराजा, गणपति, सेट्ठि, नगर सेट्ठि और पौर जानपद प्रमुखो ने विविध उपानय वस्तु महाराज प्रसेनजित को प्रसन्न करने के लिये भेजी थी। पच्छिमी गान्धार के अधिपति कलिङ्गसेन ने आम के पत्तो के समान रग वाले अपूर्व सोलह अश्व और दो सौ नवनीत कोमल ङ्गी गानवाद्य द्यूत निपुणा दासिया भेजी थी।

आगत जनो के लिये कोशलपति ने स्वागत सत्कार की समुचित व्यवस्था की थी। सहस्त्र सेवक, दास कम्मकर लोगो को खिलाने पिलाने, ठहराने तथा उनके वाहनो की व्यवस्था मे लगे हुए थे। सैकडो कणिक लेखा जोखा लिख २ कर उपानय सामग्री कोठार मे पहुचाते तथा रसद तोल रहे थे। कही कच्ची रसद तोल २ कर बाटी जा रही थी, और कही अन्न पकाया जा रहा था। कही भोजन करने वालो के आगे भोजन परसा जा रहा था। साधु, श्रमण, निगण्ठ, श्रोत्रिय, भक्ष्य; भोज्य, चूष्य, लेह्य, चर्व्य आदि विविध पदार्थो का आस्वाद ले रहे थे। चारो ओर ऐसा कोलाहल हो रहा था कि कान नहीं दिया जाता था। जगह जगह पुण्याह पाठ हो रहा

था। अभ्यागतों को भोजन, वस्त्र, स्वर्ण, गौ, रत्न दान दिया जा रहा था। यज्ञ कार्य के निमित्त अजित केसम्बल, हिरण्यकेशी, बौधायन, भारद्वाज, लौनक, जैमिनि, गौतम शाम्बव्य, कणाद ओलूक, साँख्यायन, वैशम्पायनपैल, सावर्ण, स्कन्दक न्यायत, आदि वेद वेदाङ्गों के वेत्ता षडङ्ग वेदपाठी, षोडशोपचारसम्कर्ता, षष्टितन्त्र, गणित, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द व्युत्पत्ति, ज्योतिष-तथा नीतिशास्त्रों के ज्ञाता महाश्रोत्रिय प्रकाण्ड ब्राह्मण प्रमुख, कर्ता नियत किये गये थे, जिन में से प्रत्येक की सेवा के लिये राजा ने सोलह रूपगुणालंकृता दासियां नियत की थीं। सहस्र ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी नित्य स्वर्ण थाल में हविष्य भोजन करते और अखण्ड स्वर सामगान करते थे। राजाओं और सरदारों की लाई हुई सहस्रों जंगली गायें जहां तहां चर रही थीं। जगह २ यज्ञ के पशु पड़े, बछड़े, वृषभ और अन्य पशु बंधे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि स्वर्ग और सारे संसार की सम्पदा और जानपद इस काल श्रावस्ती में ही एकत्र हो गया है।

: ६८ :

वज्रपात

नगर आनन्दोत्सव मे व्यस्त था। राज महालय और वीथी, हर्म्य अट्टालिकाएँ सम्मान्य आगतो से परिपूर्ण थी। यज्ञ मे भेट स्वरूप आई वस्तुओ के ढेर लगे थे। सैकडो कर्णिक, कोठारिक, द्वार बन्ध, कचुकी उसकी व्यवस्था में लगे हुए थे। परन्तु महाराज प्रसेनजित् अपने अन्त: कक्ष मे अर्द्ध विक्षिप्त अवस्था मे बक झक कर रहे थे। सीमान्त से बडी भयानक सूचना आई थी। बारहो मल्ल पुत्रपरिजनो को राह में दस्युओ ने मार कर सब उपानय सामग्री लूट ली थी। बन्धुल मल्ल काष्ठ के कुन्दे की भाँति शोक सतप्त भूमि पर पडे थे। राजकुमार विदूडभ तीखी दृष्टि से दोनो आहत प्रतिद्वन्दिओ को चुपचाप खडे देख रहे थे।

महाराज ने बडी देर तक बकझक करने के बाद कहा–"राजकुमार, क्या कारायण आया है?"

"हा महाराज।"

"तो पुत्र, उसे अभी उपस्थित कर।"

"महाराज, यह अनुपयुक्त होगा, इस समय यह गृह विवाद प्रगट नही होना चाहिये। कारायण कोई उपद्रव खडा कर सकता है।"

'तो क्या उसे दण्ड नही दिया जाय?"

"क्यो नही महाराज, अभी उस बन्दीगृह मे रक्खा जाय, पीछे यज्ञ समारोह की समाप्ति पर न्याय विचार से जैसा उसका अपराध हो, उसे दण्ड दिया जायगा, जिससे महाराज का न्याय दूषित न हो।"

"तो पुत्र, तुम जैसा ठीक समझो, व्यवस्था करो।"

'नही महाराज, वह साधारण जन नही, सेनापति है। उसकी धारा-

व्यवस्था भन्ते सेनापति कर सकते है।"

"तो बन्धुल, ऐसा ही हो।"

युवराज ने कहा--"महाराज, इससे भी गुरुतर कार्य है।"

"कैसा कार्य पुत्र ?"

'सीमान्त का प्रबन्ध, वहा सेना गई है परन्तु सेनानी विश्वस्त और योग्य नही है। सर्वत्र छिद्र-ही-छिद्र है, इस समय यदि कोशाम्बी नरेश श्रावस्ती पर आक्रमण करे तो भयानक परिणाम हो सकता है। मेरी सम्मति है, सेनापति स्वय सीमान्त पर जाय।"

राजा और बन्धुल चुप रहे। कुमार ने फिर कहा—"मुझे सन्देह है महाराज।"

"कैसा सन्देह ?"

"बारह मल्ल बन्धुओं की हत्या केवल दस्युओ का साधारण कार्य नही प्रतीत होता, इसमे षडयन्त्र भी हो सकता है।"

बन्धुल ने सिर उठाकर कहा—

"यदि ऐसा है तो मै कोशाम्बी को जला कर छार न करू तो बन्धुल नही।'

"भन्ते सेनापति, इसी से मेरी सम्मति मे आपका ही सीमान्त पर जाना ठीक है। रक्षा भी होगी, यथार्थ का पता भी लगेगा।"

"तो महाराज, मुझे सीमान्त पर जाने दीजिए।"

"जा मित्र, परन्तु यहा तेरे बिना मै अकेला हू।"

"महाराज, इस समय यज्ञ अनुष्ठान मे व्यस्त है। पुर, पौरजन तथा राजपुरुषो से व्याप्त है। चिन्ता की बात नही। मै सीमान्त जाता हू।"

बन्धुल ने उसी समय सीमान्त पर प्रयाण किया। तब तक कारायण को बन्दी-गृह मे भेज दिया गया।

६६ :

क्रीता दासी

हंस के समान उज्ज्वल ज्योत्स्ना से भूलोक ओत प्रोत था। डेढ़ प्रहर रात्रि जा चुकी थी। आज चन्द्रमा कुछ देर से उगा था, परन्तु अभी भी उसके उदय काल की ललाई झलक रही थी। सारा आकाश चांदनी से भरा था। तारे टिमटिमा रहे थे, और सन्नाटे ने प्राणियों पर एक अलस निद्रा का प्रभाव डाल दिया था। कुण्डनी के पीछे उसकी सखी के रूप में सोना चोर मयूरगीव से राजमहालय की ओर बढ़ा जा रहा था। उसे ऐसा भास हो रहा था कि जैसे प्रकृति में एक अवसाद ओत-प्रोत हो रहा है। उसने साहस करके कहा—"कुण्डनी यदि हम सफल न हुए?"

"चुप, मैं ऐसा कभी नहीं सोचती।"

धीरे २ वे महालय के निकट पहुंच गये। जहां अजातशत्रु की सेना फैल रही थी।

राजमहालय के अन्तःपुर में बहुत भीड़ थी। दासी चेटी नागरिका, राजवधू, गणिका, भद्रा आदि अगणित स्त्रियां वहां भर रही थीं। रत्नों सुगन्ध दीप जल रहे थे, और विविध वाद्य बज रहे थे। दास, दासी, विकट दण्डधर, कंचुकी अपने २ कामों में दौड़ धूप कर रहे थे।

परिखा पार कर जब वे कोष्ठक के निकट पहुंचे तो देखा—अलिन्द में बहुत से सशस्त्र प्रहरी ड्योढ़ी की रखवाली कर रहे हैं। कुण्डनी ने वहां निश्शंक आकर एक प्रहरी की ओर उंगली उठाई और सोन की ओर देखकर कहा—"हन्द जे, यही है, इसी चोर ने दासी को उड़ाया है।"

प्रहरी कुण्डनी की रूप ज्वाला और ठाठ से चमत्कृत हो गया।

उसने घबराकर कहा—"कैसी दासी हला ?"

इस पर सोम ने यथासाध्य कोमल कण्ठ करके कहा—"चुप, इस पर विचार महिषी मल्लिका करेंगी, तू उनकी सेवा में चल।"

पहरी सोम का मुंह ताकने लगा। सोम प्रकाश की आड देकर खडा होगया था। कुण्डनी ने उसे डांट कर कहा—'चल चल, महिषी की सेवा में चल।'

"किन्तु हन्द जे, "

'पाजे, महिषी की आज्ञा है, चल।'

प्रहरी को भी रोष आगया। उसने दृढ स्वर में कहा—"मैं चोर नहीं हूं, चलो।"

वह अन्त पुर की ओर चला। पीछे कुण्डनी और सोम चले। अन्त पुर का पोर पर वे निर्विघ्न पहुंच गये। वहां पोर पर भी प्रहरी थे। कुण्डनी ने उन्हें समझाकर सोम से कहा—"हला, तू जाकर देवी को सूचना दे आ, मैं तब तक इस चोर पर पहरा दूंगी।"

सोम स्थिर गति से अन्त पुर में घुस गया। प्रहरियों ने उसे नहीं रोका। वे कुण्डनी को घेर कर खडे हो गये। कोई उसके कान में लटकते बहुमूल्य हीरक कुण्डलों को, कोई उन्नत उरोजों पर कसी स्वर्ण-कञ्चुकी को, कोई उसके नवविकसित यौवन को प्यासी चितवनों से देखने लगे। उनके जेठक ने कुण्डनी को प्रसन्न करने के लिये कहा—

"आर्य हुआ क्या ?"

कुण्डनी ने उसकी ओर एक कटाक्ष पात करके कहा—

'पाजो ने महिषी की अन्तर्वासिनी दासी को उडाया है। इसे आज सूली चढवाऊंगी।

"वह तु यह असत्य है, असत्य।'

एक प्रहरी ने कहा—"इसका प्रमाण क्या है ?"

कुण्डनी ने क्रुद्ध होकर कहा—"अरे मोघपुरुष, प्रमाण क्या तुझे ही बताना पडेगा। तू भी इसका साथी है, देवी से निवेदन करना

होगा।"

"नही, नही अज्जे, मुझसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।"

सब प्रहरी हंसने लगे। एकने कुण्डनी की कृपा दृष्टि प्राप्त करने की इच्छा से कहा—"अज्जे, इस पक्खडा कहा ?"

कुण्डनी ने उस पर एक कटाक्ष फेंका और मुस्करा कर कहा—'पकडा क्या यो हीं, तीन पहर से घूम रही हू। देवी की आज्ञा है, जहा मिले, उपस्थित कर।'

इसी समय सोम ने आकर कहा—"चलो"। प्रहरियों ने बाधा नहीं दी। कुण्डनी प्रहरी सहित अन्त पुर की ओर मे घुस गई।

सोम ने कहा—"अब?"

"अब इसे यहां से भगाना होगा, नही तो यह थोडी ही देर में भीड इकट्ठी कर लेगा। तुम उसे जाकर युक्ति से भगाओ, मै तब तक उस लता मण्डप में हू।"

कुण्डनी आगे बढ गई। सोम ने सिपाही के पास आकर कहा—

"प्राण बचाना चाहता है ?"

"हला, मै चोर नहीं हू।"

"तो चा कुछ मुझे दे, तुझे छोडती हूं।"

'मेरे पास केवल चार कार्षापण हैं।'

"वही दे मोघ पुरुष, और भाग। तब तक मै दूसरी ओर देख रही हू। परन्तु याद रख, मेरी सखिनी की दृष्टि में बड़ा और मरा, वह तुझ पर क्रुद्ध है। दो चार दिन अन्तर्धान रह।"

"ऐसा ही सही हला, तुम्हारा कल्याण हो।" वह कार्षापण दे बाहर को भागा। सोम ने लम्बे २ डग भरते हुए लता मण्डप के निकट पहुंच कर कुण्डनी से कहा—"पातक कट गया, चार कार्षापण उत्कोच में मिले।"

"परन्तु सोम, तुम्हारी चाल दूषित है, स्त्रिया इस भांति नहीं छलतीं।"

सोम ने हंस कर कहा--"अब एक दिन में सम्पूर्ण स्त्री नहीं बन सकता हूं। परन्तु राजकुमारी कहां है ?"

"मैं जानती हूं। वहां पहुंचने के लिये पूरा जन कोलाहल पार करना होगा। उधर नये हर्म्य में जाना होगा। परन्तु तुम बहुत लम्बे हो, और तुम्हारे भीतर झिझक दीख रही है, यह ठीक नहीं है क्या"

"परन्तु यह झिझक नहीं है-व्रीडा है सखि।"

कुण्डनी हंस दी। सोम भी हंस पड़े। कुण्डनी ने कहा--

"जो हो, पर अस्वाभाविक कुछ न हो, सावधान, कड़ी परीक्षा का समय है। आओ अब।"

आगे २ कुण्डनी और पीछे २ सोम अन्तर्द्वार में प्रविष्ट हुए। पद पद पर दीपालोक बढ़ रहा था, नगरपिता उन्मत्त विलास में मग्न थी। अन्तःपुर से मृदंग और मदिरा में उन्मत्त कोकिल कण्ठ स्वर सुनाई दे रहे थे। दूर तक विस्तीर्ण वाटिका में नाग, पुन्नाग, अशोक, अरिष्ट, शिरीष के सघन वृक्ष लगे थे। मालावच्छावलिया दूर तक फैल रही थी। उन नील सघन गुल्मों के पत्तों पर उज्ज्वल ज्योत्स्ना की मनोखी छटा दीख रही थी। दोनों अर्द्धवृक्षों की छाया में अपने को छिपाते अग्रिम मार्ग से चले जा रहे थे। अन्तःकोष्ठ के लोहार्गल युक्त पट के उस ओर द्वारपाल को देखकर कुण्डनी ने हंसते हुए स्वर्णमण्डित ताम्बूल की दो बीटिका उसके मुंह में ठूंस दीं, द्वारपाल प्रसन्न हो गया।

कुण्डनी ने कहा--"आज तो हुड़दंग का दिन है भणे।"

"हुन्दजे, आनन्द है, आनन्द है।"

दोनों आगे बढ़ गये। द्वारपाल ने बाधा नहीं दी। दोनों विस्तृत वाटिका बीथियों पर चलने लगे। दोनों ओर की सघन वृक्षों की पंक्तियों से यहां अन्धेरा छाया हुआ था। अन्ततः दोनों अन्तःपुर के अन्तः प्रवेश द्वार पर आ पहुंचे। सोम का हृदय धड़कने लगा। द्वार पर यवनी दासियां धनुषबाण लिये मुस्तैद खड़ी थीं। उनका वर्ण गौर था। उनका सारा अङ्ग आगुल्फ कंचुक से आवेष्टित था। एक एक

छोटा खड्ग उनकी कटि मे बधा था, तथा मस्तक पर उत्तरीय स्वर्ण खचित पट्ट से बधा था। उनके कान के दन्तपत्र उनके चिक्कण कपोलो पर क्रीडा कर रहे थे। पैरो में लगा अलक्तक रस दूर ही से भाषित हो रहा था। वे कुल पाच थे। मदिरा के आवेश से उनकी आखो के कोए लाल हो रहे थे। उन्होने कुछ चकित भाव से कुण्डनी की ओर देखा। वह समझ ही नही रहे थे कि कुण्डनी किस दर्जे की स्त्री है। कुण्डनी ने हसकर उनके दन्तपत्र को क्रीडा से छुपा। फिर कचुक से मद्यपात्र निकाल कर कहा—"पिओ हला, देवी कलिङ्ग सेना के लिये।"

पाचो ने मद्यपात्र छीन लिया। एकने पात्र मुह से लगाया, दूसरी उसे छीनने लगी। कुण्डनी हसती हुई उन्हे एक दूसरी पर धकेल कर चली गई। किसी ने उनकी तरफ नहीं देखा।

अब वे वास्तविक अन्त पुर मे आगये। सोम ने स्खलित वाणी से कहा—"कुण्डनी, अन्ततः कही कभी इस अन्त पुर का अन्त भी होगा?"

परन्तु कुण्डनी ने उसे चुप रहने का सकेत किया। वे मल्लिका कुरण्टक, नवमल्लिक आदि के गुल्मो को पार करते हुए चलते गये। बकुल और सिन्धुवार की भीनी महक ने उन्हे उन्मत्त कर दिया। उधर गवाक्षो से लाल पीली नीली प्रकाश छटा छनकर उनपर पड रही थी। उनमे से मृदग, मंजीर, काहल और शख का नाद सुनाई पड रहा था। परिचारिकाये द्विपदी खण्ड गान कर रही थी। आगे चलकर देखा, तरुणियो का एक झुण्ड नृत्य गान करता आरहा है। वे पान मत्त थी। नारी सुलभ मर्यादा को वे त्याग चुकी थी। उनके केशपाश खुल गये थे। उत्तरीय खिसक गये थे। मजरीक, उरच्छद, वटक और अचेलक मालाये अस्त व्यस्त हो रही थी। पैरो के नूपुर बारम्बार पैर पटकने से झनझना रहे थे। वे सब इनके पास आगई, सोम कुण्डनी की पीठ में छिप गया। कुण्डनी ने सखिल भाव से उच्च स्वर मे मदोन्मत्त की भाति मदा बना कर कहा—"जय, जय। जय, जय। मित्तिया, जय, जय,

सब मिलकर दोनो को घेर कर नाचने गाने लगी। कुण्डनी हंसती रही। पर सोम की मुद्रा देख एक दो ने उसे छेडना प्रारम्भ किया। कुण्डनी ने रोक कर कहा--"उसे न छेड़ हला, अल्हड बछेडी है।"

सब रहस्य की हसी हसदी, और उनी भांति गाती बजाती चल दी। सोम ने अर्घ कर साफ ली।

दो प्रहर रात जा चुकी थी। दक्षिण समीर मलयानिल को ला रही थी। उसमे वाटिका के सब लता गुल्म झूमते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे—मानो इन सबने भी पी है।

कुण्डनी ने अब द्रुतगति से एक हर्म्य की ओर पग बढाया और उस अट्टालिका म घुस गई। वह अनेक अलिन्दो, कुट्टिम वीथियो, कोष्ठक, निवेश, वातायन, मिषिका, पार करते हुए उस घर मे पहुचे, जहा चक लिका के भीतर राजनन्दिनी अधोमुखा, निश्चल बैठी थी। कक्ष के भीतर का वातावरण एकदम शान्त था। कोलाहल से परिपूर्ण सम्पूर्ण रग महल का जैसे यहा कुछ प्रभाव ही न था। घर के एक कोने मे एक नातिदीर्घ आसन्दी पडी थी, उस पर दुग्धफेन के समान प्रच्छदपट ढका था। उसी के निकट एक भद्रपीठ पर एक अष्ट पदक बिछा था, उसी पर सद्योस्नाता राजनन्दिनी चुपचाप ध्यान मुद्रा म बैठी थी। उनके सामने एक वेदिका पर गन्ध, माल्य, चन्दन और नैवेद्य रक्खा था। एक छोटी सी मणि पीठ पर सुगन्धित सिक्थपिटक और सौगन्धिक पुटिका रक्खी हुई थी। उससे तनिक हट कर एक हिरण्य-स्तवक मे मातुलुङ्ग की छाल और पान के अन्यान्य उपकरण रखे थे। आसंदी के पादाधान की ओर रजत पतद्ग्रह रखा हुआ था। एक नाग दन्त पर कुरण्ड-माल लटकाई हुई थी।

सोम इस कमनीय मूर्ति को इस अवस्था मे देख भाव मूच्छित हो गया। राजबाला के सम्पूर्ण शरीर से स्वच्छ कान्ति प्रस्फुटित हो रही थी। उसका सद्य स्नात हिमधवल प्रभापुज गात, शरद कालीन मेघो से आच्छादित चन्द्रकला जैसा प्रतीत हो रहा था। वह मूर्तिमती स्वर्ग-

मन्दाकिनी सी, शख से खोद कर बनाई हुई सी, दिव्य प्रतिमा सी प्रतीत हो रही थी। जैसे अभी २ विधाता ने उसे चन्द्रकिरणो के कूर्चक से धोकर, रजत रस मे आप्लावित करके सिन्धुवार के पुष्पों की धवल कान्ति से सजा कर वहा बैठाया था।

उसने पद आहट पाकर उत्पल के समान बडी २ आख उठा कर देखा और सामने दुखसगिनी को देख कुछ कहने को होट खोले। परन्तु शब्द निकलने से प्रथम ही कुण्डनी ने होठो पर उगली रख कुमारी को चप रहने का सकेत किया। कुमारी ने मिसिका मे खम्भे का सहारा लिये ऊघती हुई दासी को कातर दृष्टि से देखा और आखें नीची कर ली। उनकी आखो मे झर २ अश्रुधारा बहने लगी।

कुण्डनी ने दासी के निकट जा उसे हिलाते हुए डपटकर कहा—"भाकुटिका, इसी भाति सावधान रहा जाता है?"

दासी हडबडा कर कुण्डनी का मुह देखने लगी। उसका मुह सूख गया।

कुण्डनी ने कहा—"कबसे तू बैठी है, बोल?"

"हन्द जे, तीन प्रहर से। सब लोग उधर विवाह के आमोद प्रमोद में लगे है।"

"तो जा, तुझे भी छुट्टी देती हू, भाग, यहा अब मै हू। तू भी समारोह देख—माध्वीक पी, तुझे क्या पुरस्कार नही मिला?"

"नही, हन्द जे।"

"तो जल्दी जा मूर्खे, सभी को रत्नभाण्ड मिल रहे है।" दासी ने और विवेचना नही की। वह तेजी से अन्त पुर की ओर भागी।

उधर नर्तकिया चर्चरी ताल के साथ नाच गा रही थी। उनकी सम्मिलित ध्वनि यहा भी आरही थी।

कुण्डनी फिर चुपचाप कुमारी के पास आकर बैठ गई। कुछ देर उसके मुह से शब्द नहीं निकला। फिर उसने कहा—"राजकुमारी, यहाँ से भागो।"

राजकुमारी ने आसूपरे नेत्रो से कुण्डनी की ओर देखा, कुछ कहना चाहा, पर केवल ओंठ हिल कर रह गये। हठात् उन्होंने भय और आशका से सोम की ओर देखा। सोम लज्जा और ग्लानि से डूबे हुआ भीत में चुपक कर चुपचाप खडे थे। कुण्डनी ने फुसफुसा कर कहा--"सोम है, सखी।" सुनकर राजकुमारी चमत्कृत हुई। उन्होने बडी २आंखें उठा कर सोम को देखा। सोम के स्त्री वेश को देख इस विपन्नावस्था मे भी उनके होठों पर क्षण भर को मुस्कान फैल गई। कुछ देर बाद राजकुमारी ने कहा--

"अब ?"

"यहा से भागो।"

"क्या यह सम्भव है ?"

"निरापद तो नही है।"

सोम ने आगे बढ कर कहा--"मेरे पास खड्ग है, चिन्ता नहीं।" परन्तु कुण्डनी ने कहा—"फिर साहस करने की अपेक्षा और उपाय ही क्या है ?"

"हे सखि।"

"तो कहो कुमारी ?"

"भगवान् महावीर।"

"वे श्रावस्ती में है ?"

"है, मै जानता हू।"

"उन तक मेरा सदेश ले जाओ, फिर जैसा समझें।"

"उनसे मै क्या कहू भद्रे ?"

"कहना भद्र, कि चम्पा की दग्धभग्ना कुमारी चन्द्रभद्रा बद्धाजलि शरणागत है, प्रसाद हो।"

"किन्तु कुमारी, इस कार्य में समय लगेगा, तब तक यदि कुछ अनिष्ट हो ?"

"नहीं होगा, मैने तीन दिन व्रत उपवास का समय मांग लिया है,

कल सन्ध्या तक मेरे पास कोई नही आवेगा ।"

"तो कुण्डनी, यही ठीक है । कुमारी का यहाँ से निकलने की अपेक्षा यहा रहना ही ठीक है, परन्तु क्या भगवान् महावीर सहायता करेंगे ?"

"करेंगे भद्र ।" राज कन्या ने फिर आसू भरी बडी २ आंखों से सोम को देखा ।

"किन्तु यदि सफलता नही मिली ।"

"तो भद्र, फिर जो उचित हो करना ।' इतना कह वह फफक फफक कर रो पडी ।

कण्डनी ने कहा—"सोम, मैं किसी भाति कल तक अन्तःपुर मे रह जाऊंगी । तुम अभी जाओ और प्रातःकाल ही भगवान् महावीर से मिलो ।"

"किन्तु ?"

"जाओ सोम, किन्तु सिंहद्वार से नही । प्रमोदवन के बाहर बाहर वृक्षो की आड मे, वाटिका के मध्य मे जो वापी है, वहा जाओ । वहा स्त्री भेष त्याग वृक्षपर चढ किसी शाखा के सहारे प्राचीर को लाघ जाना । परन्तु यदि तीन दण्ड दिन चढने तक तुम्हारे उद्योग का कोई प्रभाव न हुआ तो फिर मैं कोई दूसरा कौशल रचूंगी । तब तुम उसी प्राचीर के उस ओर हमारी प्रतीक्षा करना ।"

सोम ने एक बार राज नन्दिनी को कातर और म्लान दृष्टि से देखा, फिर तेजी से कक्ष से बाहर हो गए ।

———

: ७० :

निगंठ दर्शन

उपाश्रय के द्वार पर ही एक सामनेर हाथ में पोथी लिये कुछ सूत्र रट रहा था। सोम ने सीधा उसी के पास पहुंच कर कहा—"भन्ते सामनेर, मैं श्रमण भगवान् महावीर का दर्शन किया चाहता हूं।"

"श्रमण भगवान् अवरोध में नहीं रहते भद्र, किन्तु मैं उनकी आज्ञा ले आता हूं, आप कौन हैं?"

"एक अर्थी हूं और गुरुतर कार्यवश मैं भगवान् का दर्शन किया चाहता हूं।"

"तो भद्र, तुम क्षण भर ठहरो, मैं अभी आया।"

सामनेर जाकर शीघ्र ही लौट आया। आकर उसने कहा—"भन्ते भगवान् श्रमण ने इसी समय तुम्हें दर्शन देने का प्रसाद किया है। मेरे साथ आओ।" आगे २ सामनेर और पीछे २ सोम उपाश्रय के सिंह द्वार को पार कर एक विशाल मैदान में पहुंचे। वहां देखा, एक वट वृक्ष की छांह में सर्वजित् महावीर जिन सिर नीचा किये ध्यान मुद्रा में बैठे थे। उनके छोटे २ श्वेत श्मश्रु-केश मुख और सिर पर विरल दीख रहे थे। अंग में वृद्धावस्था के लक्षण लक्षित थे। उनका गौर वर्ण अंग इस अवस्था में भी तेजपूर्ण था, तथा दृष्टि मर्मभेदनी थी। उसमें स्नेह और करुणा का प्रवाह बहता सा प्रतीत हो रहा था। उनकी आकृति तप्त काचन के समान प्रभापूर्ण दीख रही थी, और स्थिर मुद्रा एक सहज शांत भाव का सृजन कर रही थी। सोम अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। श्रमण ने गर्दन को तनिक सोम की ओर घुमा कर कहा—"कहो वत्स, मैं तेरा क्या प्रिय करूं?"

"भन्ते, मैं गुह्य निवेदन किया चाहता हूं।"

"तो एक क्षण ठहर भद्र," इतना कह कर श्रमण महावीर ने अपने चारो ओर देखा। उपासक उठ गये। एक शिष्य बैठा था, उससे श्रमण ने कहा--"अभी तू जा वत्स, फिर आना।" और सामनेर की ओर देख कर कहा--'तू द्वार पर ठहर, जब तक मैं आयुष्मान् से बात करूं। इधर कोई न आवे।"

वे दोनो भी चले गय। तब श्रमण महावीर ने सोम की ओर देख कर कहा--"अब कह भद्र ?"

"भन्ते, चम्पाराजनन्दिनी चन्द्रभद्रा भगवान् की शरण कामना करती है।"

श्रमण महावीर एक बारगी ही विस्मय और उद्वेग से आखे फाड २ कर सोम की ओर देखने लगे। उन्होने कहा--"तो क्या सुश्री शीलचन्दनाचन्द्रभद्रा अभी जीवित है ? वह कहा है, शीघ्र कह।"

'श्रावस्ती ही मे है भन्ते।"

"कहा भद्र ? शीघ्र कह, उस शोभामयी सुकुमारी कुमारी की शुचि मूर्ति देखने को मैं व्याकुल हू। वह कुमारी कहा है, मागधो ने उसे जीवित कैसे छोड दिया ?"

सोम ने लज्जा से आखे नीची करली और मन्द स्वर से कहा--"भन्ते भगवन्, वह चम्पा पतन के बाद आपकी शरण मे श्रावस्ती आ रही थीं। मार्ग मे तस्कर दासविक्रेताओ के फन्दे मे फस गईं। उन्होने उन्हें यहाँ श्रावस्ती में लाकर दासो के हट्ट मे बेच दिया।"

"बेच दिया ? क्या कहते हो भद्र !"

"हा भगवन्, महाराज प्रसेनजित के नवविवाह के उपलक्ष्य में राजमहिषी मल्लिका को नियमानसार महाराज को भेट करने के लिये एक दासी की आवश्यकता थी, उसी काम के लिये राजमहालय के कचुकी ने स्वर्ण भार देकर कुमारी को क्रय कर लिया।"

"शान्त पाप, क्या महिषी मल्लिका ने उसे दासी भाव से महा-

राज को भेंट करने के लिये क्रय किया है ?"

"हा भन्ते ।"

"तुम कौन हो भद्र ?"

"मै मागध हू ।"

"ओह," भगवान् महावीर नीची दृष्टि किये कुछ देर सोचते रहे । फिर बोले--"तो क्या कुमारी को यह ज्ञात है कि वह कर्म विपाक से शत्रु की उपकृत हुई है ?"

"ज्ञात है भन्ते ।"

"तुम्ही ने राजकुमारी की सहायता की है ?"

"भन्ते, कुमारी की एक सखी और है ।"

"वह कौन है ?"

"मागधी ही है, चम्पा के पतन के बाद, कुमारी की रक्षा और व्यवस्था हम लोगो ने शक्ति भर की है ।" सोम ने अपने स्त्री वेश मे अन्तःपुर प्रवेश का भी वर्णन कर दिया ।

सब सुन कर श्रमण महावीर ने कहा--"तुम्हारा नाम क्या है भद्र ?"

"सोम, भन्ते ।"

"अच्छा तो सोम भद्र, तुम मुहूर्त भर वहाँ उपाश्रय में प्रतीक्षा करो, तब मै तुम से बात करूगा और उस पीठिका पर से उस सामनेर को मेरे पास भेज दो ।"

सोम ने अभिवादन करके स्वीकार किया । वह चले गए । सामनेर ने श्रमण के सम्मुख आकर वन्दना की ।

श्रमण ने कहा--"भद्र, हम अभी कुमार विदूडभ को देखा चाहते है ।"

"भगवान् की जैसी आज्ञा ।"

सामनेर चला गया । महावीर स्वामी गहन चिन्ता मे मग्न हो गये ।

: ७१ :

द्वन्द

उसी सामनेर ने आकर सोम से कहा—"चलिए भन्ते, कुमार विदूडभ आपकी प्रतीक्षा कर रहे है।"

"कुमार विदूडभ?" सोम ने आश्चर्यचकित होकर कहा।

"श्रमण भगवान् के आदेशानुसार ही वे आपसे भेंट किया चाहते है।"

सोम ने और अधिक बात नही की। वह चुपचाप सामनेर के पीछे २ हो लिये। एक छोटे से अलिन्द मे राजकुमार विदूडभ गम्भीर मुद्रा मे एक तृणास्तर पर बैठे थे। उनका वेश सादा था और कोई शस्त्र उनके पास न था। वे धवल कौशेय पट्ट पहने थे। उनके मुख मण्डल पर उनकी अल्पायु की अपेक्षा अधिक दीप्ति भासित हो रही थी। सोम को उन्होने अभ्युत्थानपूर्वक स्वागत किया और मृदु वाणी से कहा—

"स्वस्ति मित्र, मै विदूडभ हू। भगवत् ज्ञातिपुत्र ने मुझे चम्पा की राजनन्दिनी के सरक्षण का आदेश दिया है। सो मै उनका सरक्षण स्वीकार करता हू। अब तुम आश्वस्त हो।"

सोम को यह भाषण न जाने कहा जाकर चुभ गया। उन्होने एक प्रकार से उद्धत भाव से कहा—"किन्तु यह तो यथष्ठ नही है।"

सोम का यह उत्तर राजकुमार को कुछ धृष्ट प्रतीत हुआ। उन्होने कहा—

"मित्र, तुम अप्रियवादी हो, कोशल के राजकुमार से तुम्हे मर्यादा से बात करना चाहिये।"

"कोशल राजकुमार का मै उपकृत नहीं हूं। और कोशल परिवार ने राजकुमारी के साथ जो व्यवहार किया है, उसे देखते मै नहीं समझता

कि चम्पा राजनन्दिनी किसी कोशल के सरक्षण में रहना स्वीकार करेंगी।"

"मुझे श्रमण ज्ञातिपुत्र से ज्ञात हुआ है कि तुम मागध हो। सो मागध मित्र, तुम्हें विश्वास करना चाहिये कि मागधों से अधिक बुरा व्यवहार चम्पा की राजकुमारी के साथ कोशल में नहीं किया जायगा।"

सोम ने उत्तेजित होकर कहा—

"राजकुमार, मागध कोशलों से शिष्टाचार सीखने की अपेक्षा नहीं रखते। किन्तु राजकुमारी की इच्छा के विरुद्ध आप उनके संरक्षक नहीं हो सकते।"

राजकुमार विदूडभ ने हंसकर कहा—"सो ठीक है मित्र, कोशल मागधों का शास्ता बनने को उत्सुक नहीं है, परन्तु कुमारी की इच्छा और भगवान् महावीर के सत्परामर्श से कुमारी की सम्यक् व्यवस्था कर दी जायगी। इस सम्बन्ध में तुम सर्वथा निश्चित रह सकते हो।"

"किन्तु मैं अब तक कुमारी का अभिभावक रहा हूं। मैं जब तक आश्वस्त न हूं "

'तो तुम आश्वस्त रहो मित्र, अबसे मैं कुमारी का अभिभावक रहा।'

"परन्तु कुमारी यह स्वीकार न करेंगी, वे किसी कोशल के आश्रय में रहना नहीं चाहेंगी।"

युवराज ने व्यंग से मुस्कुराकर कहा—

"कोशल ने तो कुमारी का कोई अहित नहीं किया, न उनके पिता का राज्य हरण किया, न उन्हें पथ की भिखारिणी बनाया।"

"किन्तु कोशलों ने उन्हें क्रीतदासी बनाने की धृष्टता की है।" सोम ने उत्तेजित होकर कहा।

राजकुमार का मुंह क्रोध से लाल हो गया। उन्होंने कहा—"यह तो अभद्रता की पराकाष्ठा है मित्र, तुम जानते हो—केवल मागध होने ही के अपराध में श्रावस्ती में तुम्हारा शिरच्छेद हो जायगा, फिर तुमने

छद्मवेश में अन्तःपुर में प्रविष्ट होने का अक्षम्य अपराध भी किया है।"

"यह सिर, इतना निश्चय नहीं है कुमार, फिर मागध प्रतिकार अभी अवशिष्ट है।" सोम ने अपने खड्ग पर हाथ डाला।

इसी समय श्रमण महावीर ने वहां आकर कहा—

"भद्र, यह तुम क्या कर रहे हो। मेरे अनुरोध से ही कुमार विदूडभ राजकुमारी की रक्षा करने पर सन्नद्ध हुये हैं।"

"किन्तु· "

"किन्तु-परन्तु कुछ नहीं भद्र, राजकुमार विश्वसनीय भद्र पुरुष हैं, तुम्हें उनका विश्वास करना चाहिए।"

"किन्तु मैं राजकुमारी से एक बार मिलना चाहता हूं।"

"यह सम्भव नहीं है।" राजकुमार ने कहा।

"बिना उनका मत जाने मैं स्वीकार नहीं करूंगा।"

महावीर जिन हंस पड़े। फिर सोम के सिर पर हाथ रखकर बोले—

"तुम्हारे मन का कलुष मुझे दीख गया भद्र, उसे दूर करो। कुमारी का कल्याण जिसमें होगा, वही मैं करूंगा।"

सोम बड़ी देर तक चुप रहे। फिर बोले—

"राजकुमार क्या उन्हें यहीं श्रावस्ती ही में रखेंगे?"

श्रमण ने कुमार के मुख की ओर देखा। कुमार ने कहा—'नहीं, यह निरापद नहीं है। कुमारी को अपने विश्वस्त चरों के तत्त्वावधान में साकेत भेजना श्रेयस्कर होगा। परन्तु यह सब गांधारी माता के परामर्श पर निर्भर है।'

'तो मैं समझूं, कि कुमारी अब अतीतदासी हैं। वे कुमार की गांधारी माता और कुमार की इच्छा पर निर्भर होने को बाध्य हैं।"

"नहीं भद्र, वह मेरी शरण है, जिसमें उनका कल्याण हो वह मैं करूंगा, तुम्हारा काम समाप्त हुआ, अब तुम जाओ।"

सोम कुछ देर सोचते रहे। फिर वह खिन्न भाव से श्रमण को अभिवादन करके चलने लगे। तब कुमार ने हाथ बढ़ाकर रुकते हुए

कहा--"यह क्या मित्र, बिना ही विदूडभ से प्रतिसम्मोदन किये ?"

उन्होंने सोम का आलिङ्गन किया। सोम ने कहा--'मैं अपने अविनय के लिए लज्जित हू, कुमार।"

"वह कुछ नहीं मित्र, भगवान् ज्ञातिपुत्र ने तुम्हारे मन का कलुष देख लिया। मुझ से भी वह छिपा न रहा, मित्र, मैं भगवान के समक्ष निवेदन करता हू—भगवान् के आदेश पालन को छोड़ चम्पाराजनान्दिनी के प्रति मेरे मन में दूसरा अन्य भाव नहीं है। वह, यदि मित्र, तेरे प्रति अनुरक्त है, तो तेरी धरोहर के रूप मे विदूडभ के पास उपयुक्त काल तक रहेगी। विदूडभ भगिनी की भाति उसके मानमर्यादा की रक्षा प्राणों के मूल्य पर भी करेगा।"

'आश्वस्त हुआ कुमार, आप की शालीनता को मैं अभिवादन करता हू, सोम की सेवाऐं सदा आपके लिए उपस्थित रहेंगी।"

"आप्यायित हुआ मित्र।"

दोनो ने फिर प्रेमालिङ्गन किया और अपने २ मार्ग चले।

: ७२ :

उद्धार

महारानी नन्दिनी पट्ट राजमहिषी मल्लिका की अन्तेवासिनी हो समागता स्त्रियों की व्यवस्था तथा राजमहिषी के अन्य आदेशों का तत्परता से पालन कर रही थी। अन्तःपुर की इस अव्यवस्थित भीड में यदि व्यवस्थित-कार्यतत्पर कोई थी, तो देवी नन्दिनी थी। राजकुमार विदूडभ ने वहीं पहुचकर माता से कहा--'एक अति गुरुतर विषय पर मुझे आपसे इसी समय परामर्श करना है।'

'क्या इतना गुरुतर पुत्र ?"

"अति गुरुतर।'

"किन्तु मन्त्र योग्य निरापद स्थान इस कोलाहल में कहा है ?'

"क्यों, माता गांधारी के आवास मे।"

"वहा ?"

"परामर्श मे उनका भी रहना अनिवार्य है।"

"तुम कहते हो पुत्र, अनिवार्य ?"

"अम्बा, विषय अति गुरुतर है।"

"तब चलो।"

दोनो ने देवी कलिङ्गसेना के आवास में आकर देखा, देवी स्थिर चित्त से बैठी कुछ अध्ययन कर रही है। केवल एक चवरवाहिनी प्रकोष्ठ से बाहर अलिन्द में आज्ञा की प्रतीक्षा में खडी है। कलिङ्गसेना ने देवी नन्दिनी का अभ्युत्थानपूर्वक स्वागत किया।

विदूडभ ने अभिवादन किया। कलिङ्गसेना ने हंसकर दोनों से कहा -'स्वागत बहिन, स्वागत जात, इस अनवकाश में अवकाश कैसे मिला ?'

"निमित्त से अय्य" विदूडभ ने बात न बढ़ाकर कहा।

'तो निमित्त कहो जात ?' गान्धारी रानी ने आशंकित होकर कहा।

"एक दुष्कर्म रोकना होगा, अय्ये।"

"दुष्कर्म ?"

"हां, अय्ये।"

"कह, जात ?"

"राज महिषी ने विवाहोपलक्ष्य में महाराज की भेंट देने के लिये एक दासी मोल ली है।'

गान्धारी कलिङ्गसेना ने मुस्कुरा कर कहा--

"तो पुत्र, इसमें नवीन क्या है, असाधारण क्या है, दुष्कर्म क्या है ?"

"अय्ये, वह दासी चम्पा की राजनन्दिनी-सुश्री-चन्द्रभद्रा शीलचन्दना है।"

"अम्भु मे, अम्भु मे। यह तो अति भयानक बात है पुत्त।"

"इसका निराकरण करना होगा, अय्ये।"

"तुम्हे किसने कहा ?"

"श्रमण भगवान् महावीर ने।"

"कुमारी कहां है भद्र ?"

"दक्षिण हर्म्य के अन्त प्रकोष्ट में।"

"तब चलो हला, राजकुमारी को आश्वासन दे।"

"किन्तु करणीय क्या है बहिन ?"

"कुमारी से कौशल राजकुल को क्षमा मागनी होगी।"

"परन्तु उसकी रक्षा ?"

"क्या महिषी देवी मल्लिका सब जान सुनकर भी राजनन्दनी को दासी भाव से मुक्त न करेगी ?"

"हो सकता है, पर पिता जी से आशा नही है। इसलिये अभी

उन्हें तुरन्त श्रावस्ती से बाहर गोपनीय रीति पर भेजना होगा। पीछे और बातों पर विचार होगा।"

"जो जात्, तू व्यवस्था कर, तब तक हम राजनन्दिनी को आश्वासन देंगी।"

"मैंने अपना लघु पोत तैयार करने का आदेश दे दिया है, तथा पचास विश्वस्त भट उस पर नियत कर दिये हैं। पोत उन्हें अति गोपनीय भाव से साकेत ले जायगा। वहां राजनन्दिनी सुखपूर्वक गुप्तभाव से रह सकेंगी। मैं अपने गुरुवर ब्रह्मण्यबन्धु को सब व्यवस्था करने को लिख दूंगा।"

"तो ऐसा ही हो जात, व्यवस्था करो।"

"परन्तु अय्ये, आप को दो काम एक मुहूर्त में करने हैं। महालय के वाम तोरण पर शिविका उपस्थित है, वहां अत्यन्त गुप्तभाव से राजनन्दिनी पहुंच जायं।"

"यह हो जायेगा, और ?"

"राजनन्दिनी के लिये दस विश्वस्त दासियां आप तुरन्त तट पर भेजदें। पोत दो मुहूर्त में चल देगा।"

गान्धारी कलिङ्गसेना ने कहा—"यह भार मुझ पर रहा जात। यह सब व्यवस्था हम कर लेंगे तुम अपनी व्यवस्था करो। चलो बहिन, हम राजनन्दिनी का चल कर अभिनन्दन करें।"

राजकुमारी कुण्डनी से धीरे २ बात कर रही थी कि देवी कलिङ्गसेना और नन्दिनी ने पहुंचकर राजनन्दिनी का अभिनन्दन किया। कुमारी दोनों को देखकर ससम्भ्रम उठ खड़ी हुई। कलिङ्ग ने उन्हें अङ्क में भरकर कहा—"शुभे राजकुमारी, मैं ही हतभाग्या कलिङ्गसेना हूं—जिसके कारण तुम्हें यह भाग्य विडम्बना भी सहनी पड़ी है। ये युवराज विदूडभ की माता महारानी नन्दिनी देवी हैं। हम दोनों कोशलवश की ओर से तुम से क्षमा प्रार्थना करती हैं, और आश्वासन दिलाती हैं कि अब तुम्हारा कष्ट दूर हुआ। श्रमण महावीर के आदेश से कुमार

विडूडभ ने तुम्हारा सरक्षण ग्रहण किया है, और अभी एक मुहूर्त में तुम्हारा यहा से उद्धार हो जायगा बहिन, मै अपनी दस विश्वस्त दासियां तुम्हारे अर्पण करती हू। भगवान् महावीर जैसा कहेंगे, वैसा ही किया जायगा। फिर, हम लोग भी तुम्हारी प्रिय हे हला, अब थाक त्यागो, और हमारे साथ चलो। परन्तु, यहा से तुम्हारा अभिगमन अत्यन्त गुप्त होना चाहिये, इससे सौम्य, वाम तोरण तक तुम्हे अवगुठन में पाव प्यादा चलना होगा।"

राजकुमारी रोती हुई कलिङ्गसेना से लिपट गई। रोते २ उसने कहा—"भद्रे, मै कैसे आपका और देवी नन्दिनी का उपकार व्यक्त करूं! ओह, यह आशातीत है।"

"नही, नहीं सौम्ये, अब चलो।"

अब कुण्डनी की ओर राजनन्दिनी ने आंख उठाकर देखा। उस रूप की ज्वाला की ओर अभी दोनो रानियो ने ध्यान ही नही दिया था। अब उसे देखकर कहा—"तुम कौन हो भद्रे?"

"मै कुमारी की एक सेविका हू।"

कुमारी ने कहा—"यह मेरी प्राण रक्षिका है, एक और व्यक्ति भी है।" कहते २ कुमारी का मुह लाल हो गया।

कुण्डनी ने आगे बढकर उन्हे प्रणाम करके कहा—

"मेरा अपराध क्षमा हो, भद्रे, मैंने छद्मवेश में अन्तःपुर में प्रवेश कर कुमारी को सहायता दी है। मैंने ही श्रमण महावीर को सूचना दी—जिससे राजकुमारी आप की कृपा प्राप्त कर सकी।"

"तो शुभे, आपत्ति नहीं, पर अब कहा जाओगी? राजनन्दिनी के साथ तो रहना नही हो सकेगा।"

"नही अय्ये, मै राजकुमारी के साथ नहीं जाऊंगी। मेरा कार्य समाप्त हो गया। राजनन्दिनी की रक्षा हो गई। तो कुमारी, अब विदा!"

: ७२ :

उद्धार

महारानी नन्दिनी पट्ट राजमहिषी मल्लिका की अन्तेवासिनी हो समागता स्त्रियों की व्यवस्था तथा राजमहिषी के अन्य आदेशों का तत्परता से पालन कर रही थी। अन्तःपुर की इस अव्यवस्थित भीड में यदि व्यवस्थित-कार्यतत्पर कोई थी, तो देवी नन्दिनी थी। राजकुमार विदूडभ ने वहीं पहुचकर माता से कहा--'एक अति गुरुतर विषय पर मुझे आपसे इसी समय परामर्श करना है।'

'क्या इतना गुरुतर पुत्र ?"

"अति गुरुतर।'

"किन्तु मत्र योग्य निरापद स्थान इस कोलाहल में कहा है ?"

"क्यो, माता गाधारी के आवास मे।"

"वहा ?"

"परामर्श मे उनका भी रहना अनिवार्य है।"

"तुम कहते हो पुत्र, अनिवार्य ?"

"अम्बा, विषय अति गुरुतर है।"

"तब चलो।"

दोनो ने देवी कलिङ्गसेना के आवास में आकर देखा, देवी स्थिर चित्त से बैठी कुछ अध्ययन कर रही हैं। केवल एक चवरवाहिनी प्रकोष्ठ से बाहर अलिन्द में आज्ञा की प्रतीक्षा में खडी है। कलिङ्गसेना ने देवी नन्दिनी का अभ्युत्थानपूर्वक स्वागत किया।

विदूडभ ने अभिवादन किया। कलिङ्गसेना ने हंसकर दोनों से कहा -'स्वागत बहिन, स्वागत जात, इस अनवकाश में अवकाश कैसे मिला ?'

"निमित्त से अय्य" विदूडभ ने बात न बढाकर कहा।

'तो निमित्त कहो जात ?' गान्धारी रानी ने आशंकित होकर कहा।

"एक दुष्कर्म रोकना होगा, अय्ये।"

"दुष्कर्म ?"

"हा, अय्ये।"

"कह, जात ?"

"राज महिषी ने विवाहोपलक्ष्य में महाराज की भेंट देने के लिये एक दासी मोल ली है।'

गान्धारी कलिङ्गसेना ने मुस्कुरा कर कहा--

"तो पुत्र, इसमें नवीन क्या है, असाधारण क्या है, दुष्कर्म क्या है ?"

"अय्ये, वह दासी चम्पा की राजनन्दिनी-सुश्री-चन्द्रभद्रा शीलचन्दना है।"

"अम्भु मे, अम्भु मे। यह तो अति भयानक बात है पुत्त।"

"इसका निराकरण करना होगा, अय्ये।"

"तुम्हे किसने कहा ?"

"श्रमण भगवान् महावीर ने।"

"कुमारी कहां है भद्र ?"

"दक्षिण हर्म्य के अन्त प्रकोष्ट में।"

"तब चलो हला, राजकुमारी को आश्वासन दे।"

"किन्तु करणीय क्या है बहिन ?"

"कुमारी से कौशल राजकुल को क्षमा मागनी होगी।"

"परन्तु उसकी रक्षा ?"

"क्या महिषी देवी मल्लिका सब जान सुनकर भी राजनन्दनी को दासी भाव से मुक्त न करेगी ?"

"हो सकता है, पर पिता जी से आशा नही है। इसलिये अभी

उन्हें तुरन्त श्रावस्ती से बाहर गोपनीय रीति पर भेजना होगा। पीछे और बातों पर विचार होगा।"

"जो आज्ञा, तू व्यवस्था कर, तब तक हम राजनन्दिनी को आश्वासन देंगी।"

"मैंने अपना लघु पोत तैयार करने का आदेश दे दिया है, तथा पचास विश्वस्त भट उस पर नियत कर दिये हैं। पोत उन्हें अति गोपनीय भाव से साकेत ले जायगा। वहां राजनन्दिनी सुखपूर्वक गुप्तभाव से रह सकेंगी। मैं अपने गुरुवर ब्रह्मबन्धु को सब व्यवस्था करने को लिख दूंगा।"

"तो ऐसा ही हो जात, व्यवस्था करो।"

"परन्तु अय्ये, आप को दो काम एक मुहूर्त में करने हैं। महालय के वाम तोरण पर शिविका उपस्थित है, वहां अत्यन्त गुप्तभाव से राजनन्दिनी पहुंच जाय।"

"यह हो जायेगा, और ?"

"राजनन्दिनी के लिये दस विश्वस्त दासियां आप तुरन्त तट पर भेजदें। पोत दो मुहूर्त में चल देगा।"

गान्धारी कलिङ्गसेना ने कहा—"यह भार मुझ पर रहा जात। यह सब व्यवस्था हम कर लेंगे तुम अपनी व्यवस्था करो। चलो हला, हम राजनन्दिनी का चल कर अभिनन्दन करें।"

राजकुमारी कुण्डनी से धीरे २ बात कर रही थी कि देवी कलिङ्गसेना और नन्दिनी ने पहुंचकर राजनन्दिनी का अभिनन्दन किया। कुमारी दोनों को देखकर ससभ्रम उठ खड़ी हुई। कलिङ्ग ने उन्हें अङ्क में भरकर कहा—"शुभे राजकुमारी, मैं ही हतभाग्या कलिङ्गसेना हूं—जिसके कारण तुम्हें यह भाग्य विडम्बना भी सहनी पड़ी है। ये युवराज विदूडभ की माता महारानी नन्दिनी देवी हैं। हम दोनों कौशलपति की ओर से तुम से क्षमा प्रार्थना करती हैं, और आश्वासन दिलाती हैं कि अब तुम्हारा कष्ट दूर हुआ। श्रमण महावीर के आदेश से कुमार

विदूडभ ने तुम्हारा सरक्षण ग्रहण किया है, और अभी एक मुहूर्त में तुम्हारा यहा से उद्धार हो जायगा बहिन, मै अपनी दस विश्वस्त दासियां तुम्हारे अर्पण करती हूं। भगवान् महावीर जैसा कहेंगे, वैसा ही किया जायगा। फिर, हम लोग भी तुम्हारी प्रिय हैं हला, अब थाक त्यागो, और हमारे साथ चलो। परन्तु, यहा से तुम्हारा अभिगमन अत्यन्त गुप्त होना चाहिये, इसमे सौम्य, वाम तोरण तक तुम्हे अवगुठन में पाव प्यादा चलना होगा।"

राजकुमारी रोती हुई कलिङ्गसेना से लिपट गई। रोते २ उसने कहा—"भद्रे, मै कैसे आपका और देवी नन्दिनी का उपकार व्यक्त करूं! ओह, यह आशातीत है।"

"नही, नहीं सौम्ये, अब चलो।"

अब कुण्डनी की ओर राजनन्दिनी ने आख उठाकर देखा। उस रूप की ज्वाला की ओर अभी दोनो रानियो ने ध्यान ही नही दिया था। अब उसे देखकर कहा—"तुम कौन हो भद्रे?"

"मै कुमारी की एक सेविका हू।"

कुमारी ने कहा—"यह मेरी प्राण रक्षिका है, एक और व्यक्ति भी है।" कहते २ कुमारी का मुह लाल हो गया।

कुण्डनी ने आगे बढकर उन्हे प्रणाम करके कहा—

"मेरा अपराध क्षमा हो, भद्रे, मैंने छद्मवेश में अन्तःपुर में प्रवेश कर कुमारी को सहायता दी है। मैंने ही श्रमण महावीर को सूचना दी—जिससे राजकुमारी आप की कृपा प्राप्त कर सकी।"

"तो शुभे, आपत्ति नहीं, पर अब कहा जाओगी? राजनन्दिनी के साथ तो रहना नही हो सकेगा।"

"नही अय्ये, मै राजकुमारी के साथ नहीं जाऊंगी। मेरा कार्य समाप्त हो गया। राजनन्दिनी की रक्षा हो गई। तो कुमारी, अब विदा!"

कुमारी आखों में आंसू भरे देखती ही रही और कुण्डनी तीनों को प्रणाम कर वहाँ से चलदी ।

कुछ देर बाद राजकुमारी को अत्यन्त प्रछिन्न रूप में शिविका में पहुचा दिया गया और वे यथा समय साकेत सुरक्षित पहुच गईं ।

: ७३ :

प्रसेनजित का कौतूहल

देवी कलिङ्गसेना से वृद्ध महाराज प्रसेनजित् का विवाह निर्विघ्न सम्पन्न हो गया। देवी कलिङ्गसेना ने विरोध नहीं किया। सारे कार्य सुचारु रूप से हो गये। गान्धारराज ने ब्याह के कौतुक में बहुत सा धन भेंट किया। किङ्किणी जाल मण्डित चार घोडो के सारथी सहित सौ रथ, मथुरा की एक सहस्त्र बछड़े वाली दुधार गाये, सुवर्ण भरण से अलकृत वायुवेगी अजानीय सौ अश्व, और वायुवेगी सौ खच्चर, स्नान, खान पान, और उत्सव के समय सेवा करने में शिक्षिता, गौराङ्गी, सुवेशिनी, सुकेशनी, सुप्रभा, रत्नाभरण भूषिता, तरुणी, सुन्दरी, सौ यवनी दासियां। बहुत से सधे हुए वाल्हीक देश के अश्व, बहुमूल्य प्रावार, कौशेय प्रावार, कोजव, क्षौम, क्षौममिश्रित कम्बल, शाण, भंग, आदि विविध वस्त्र और स्वर्ण के रत्नजटित ढेर-के-ढेर आभूषण दिये। महाराज ने भी गान्धार जनों को दान मान सत्कार से बिदाई दी। परन्तु यज्ञ की खटपट मे महाराज को कलिङ्गसेना से मिलने का अवकाश ही नहीं मिला। बहुत चाहने पर भी न मिला।

अधिकृत भेंट की क्रीतादासी के महल से अकस्मात् पलायन करने की सूचना महाराज के कानों में भी पहुंची, बहुत यत्न खोज करने पर भी उस दासी के सम्बन्ध में कोई नहीं बता सका कि वह राज महालय के प्रबल प्रबरोध में से कहां चली गई। तब महाराज को भी इसके सम्बन्ध में कौतूहल हुआ। और महाराज यज्ञ में दीक्षित होने पर भी अनियमित रूप से एक दिन रात्रि को देवी कलिङ्गसेना के प्रासाद मे पधारे। देवी कलिङ्गसेना ने अभ्युत्थानपूर्वक महाराज का सम्मान किया। यथोचित आसन पर बैठने पर महाराज ने कहा—

"शुभे कलिङ्ग, कौशल के राजमहालय में तुम्हारा स्वागत करने मैं सबसे प्रथम नहीं आ सका, इसका मुझे खेद है।"

'महाराज के आमात्यों, भृत्यों, और राज पौर जानपद सभी ने मेरा यथेष्ट स्वागत किया महाराज, मैं इसके लिये आपकी कृतज्ञ हूं। और इसलिये भी, कि आपने मात्र मुझ नगण्यनारी ही से सतुष्ट होकर उत्तर गान्धार को सुदूरपूर्व का वाणिज्य द्वार खोल दिया। महाराज, आप जानते ही हैं, बिना सुदूरपूर्व के वाणिज्य के हमारा गान्धार जानपद जी ही नहीं सकता।"

महाराज ने हस कर कहा, "पर यह कैसी बात सुश्रीकलिङ्ग, कि तुम इस राजनीति में अपने मूल्य का अंकन करती हो।"

"निस्सन्देह महाराज, वह कथनीय नहीं है।"

"न, न, कलिङ्ग, ऐसा नहीं, मैं तुम्हें — · · "

"समझ गई, महाराज मुझे बहुत चाहते हैं, सुनकर कृतकृत्य हुई महाराज।"

"परन्तु वह क्रीतादासी।"

"भाग गई? जाने दीजिए। महाराज के अन्तःपुर में दासियों और रानियों की गणना ही नहीं है, फिर न सही एक दासी।"

"पर, विभ्रभ्य कहता है, वह असाधारण सुन्दरी थी।"

"थी तो महाराज! आपके अन्तपुर में वैसी एक भी नहीं है।"

"क्या तुम भी कलिङ्ग?"

'मैं भी महाराज।'

"पर तुमने तो उसे देखा ही नहीं।"

"देखा था महाराज। पलायन के समय मैं उससे कौशल राजवश की ओर से क्षमा मागने गई थी।"

"क्या कहती हो? क्या उसका पलायन तुम पर विदित है?"

"मैंने ही उसे भगाया है महाराज।"

"किसलिये?"

"दुष्कर्म निवारण के विचार से।"

"दुष्कर्म क्या था ?"

"यही, कि उसे क्रीतादासी बनाया गया था।"

"यह तो अति साधारण है कलिङ्ग।"

"दुर्भाग्य से यह अति असाधारण था महाराज।"

"क्या इसमें कुछ रहस्य है ?"

"हां महाराज।"

"वह क्या है ?"

"वह दासी चम्पा के महाराज दधिवाहन की पुत्री सुश्रीचन्द्र-भद्रा शीलचन्दना थी।"

"अरे, चम्पा की राजकुमारी ?"

"हां, महाराज।"

"वह यहां कैसे दासों में बिकने आई ?"

"कर्म विपाक से महाराज।"

"और तुम कहती हो, वह अनिन्द्य सुन्दरी थी।"

"हां, महाराज।"

"तो महाराज दधिवाहन मर चुके, उनका राज्य भी भ्रष्ट हो गया। फिर वह दासी जब मूल्य देकर क्रय कर ली गई, तब मेरा उस पर अधिकार हो गया।"

"यही सोच कर मैंने उसे भगा दिया महाराज।"

"क्या गान्धार को ?"

"नहीं महाराज।"

"तब ?"

"अकथ्य है।"

"कहो कलिङ्ग ?"

"नहीं महाराज।"

"कहना होगा ?"

"नही महाराज।"

"तुमने अपराध किया है।"

"तो आप दण्ड दे सकते है।"

"तब इस पर विचार किया जायगा।"

महाराज क्रुद्ध होकर कलिङ्गसेना के प्रासाद से उठ गए।

: ७४ :

यज्ञ

पहिले दिन सहस्त्र दक्षिण चार दीक्षा वाला सोमयाग प्रारम्भ हुआ, और पुरोडाश चढाया गया। इसके बाद ध्रुवहोम, विष्णुयाग, चातुर्मास्य, वरुण प्रवास, साक मेधीय, शुनासीरीय और पञ्च वानीय याग अनुष्ठान हुआ। आहवनीय अग्नि का देवताओ की दिशा मे विस्तार किया गया। फिर 'इन्द्रत्रीय, यज्ञ और अपामार्ग होम हुआ।

आचार्य अजितकेसम्वल यज्ञ के अध्वर्यु और कणाद ओलूक, वैशम्पायनपैल, स्कन्दकात्यायन जैमिनि, क्षौनक, कात्यायन, वररुचि, बौधायन, भारद्वाज, पातञ्जलि, शाम्बव्य, सौर्यायन् आदि सोलह कर्मकाण्डी वेदपाठी ब्राह्मण ऋत्विक् थे। माल मलीदे खाने वाले और बहुत से ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, वटुक और श्रमण निरन्तर राजधानी में आ रहे थे। राजा-महाराजा आगत कुछ आते थे कुछ जाते थे। व्यवस्था करने पर भी अव्यवस्था बहुत थी। देश देशान्तर की वेश्याऐ भी यज्ञ में आई थी, वे हप २ कर ब्राह्मणो और समागत जनो के अंग पर गध माल्य लेपन और परिहास से उनका मनोरजन कर रही थी।

अग्निदेव को निरन्तर घृत की धार पान कराई जा रही थी, कुप्पे के कुप्पे घी यज्ञ-स्थल में रखे थे। विविध शाकल्य, वनस्पति, पुरोडाश, बलि और आहवनीय पदार्थों से भरे सैकडो पात्र दास, दासिया और राजपुत्र यज्ञ भूमि में ला रहे थे। यज्ञवेदी के निकट यूप के चारों ओर एक बड़े बाडे में घिरे देश देशान्तरों से लाये हुए बछड़े बैल, भेड़ आदि पशु गवालम्भन अनुष्ठान की प्रतीक्षा में विविध रगों और पुष्पों से सुसज्जित और पूजित हो हरी २ घास खा रहे थे। देवताओं को मांस का हविर्भाग अर्पण करके जो हविर्मांस बचता था,

उसमे हरिण, वराह आदि मेध्य पशुओ का मांस और कन्द मूल फल, तिल, मधु, घृत मिलाकर 'खाण्डवराग, तैयार किया जा रहा था। जिसे वेदपाठी ब्राह्मण रुच २ कर और बारम्बार माग २ कर खा रहे थे। एक २ देवता का आवाहन करके विविध पशुओ, पक्षियों, जलचरो, और ऋषभो की आहुति यज्ञकुण्ड में दी जा रही थी। ब्राह्मणो के साथ ही क्षत्रिय, वैश्य और व्रात्य आगत समागत यज्ञबलि प्रसाद श्रद्धापूर्वक खा रहे थे। कही गृहस्थाश्रमी श्रोत्रीय ब्राह्मणो के लिये दूध, खीर, खिचडी, यवागू, मास, बड़े, सूप, आदि खाद्यपीण बनाए जा रहे थे।

गौडीय, माध्वीक, द्राक्षा, ढाली जा रही थी। सोपधान आराम से बैठे हुए आगत विविध प्रकार से भुने हुए कुरकुरे मांस के साथ सौवण, राजत तथा मणिमय पात्रो मे मद्य पान करके परस्पर विनोद कर रहे थे। आढ्य पुरुष रुच रुच कर मासोदन खा रहे थे। कुछ लोग सक्तु घी और शर्करा मिला कर आनन्द से खा रहे थे। सैकडो आरालिक, सूपकार और रागखाण्डविक लोग विविध खाद्य संस्कार मे सलग्न थे।

गवालम्भन और पशुयाग को लेकर नगर में एक क्षोभ का वातावरण भा उठ खडा हुआ था। श्रवण महावीर और शाक्य गौतम दोनो ही महापुरुष इस समय श्रावस्ती ही में थे। वे निरन्तर अपने प्रवचनो में यज्ञ विरोधी भावना प्रकट करते रहते थे। और इसके कारण अनेक सेठि गृहपति, सामन्त राजपुत्र और विस यज्ञके गवालम्भन को लेकर भीतर ही भीतर महाराज के प्रति विद्रोही होते जा रहे थे। प्रच्छिन्न रूप में राजकुमार विदूडभ और आचार्य अजितकेसम्बल ऐसे लोगो को प्रोत्साहन दे रहे थे। राजधानी मे सेनापति मल्ल बन्धुल नही थे,उनके बारहो बन्धु परिजन मारे जा चुके थे। इससे राजा बहुत चिन्तित और व्यग्र हो रहे थे। एक ओर जहां समारोह हो रहा था, वहा दूसरी ओर भय, आशका और विद्रोह की भावना मे राजा का

अशान्त कर रखा था।

गान्धारी नववधू कलिङ्गसेना से पहिली ही भेंट में राजा को क्षोभ हो गया था। वे इसके बाद फिर उससे मिले भी नहीं। परन्तु इस अनिन्द्य सुन्दरी बाला को प्रथम परिचय ही में क्षुब्ध कर देने, तथा चम्पा की हाथ में आई राजकुमारी का खो बैठने से वे भीतर ही भीतर बहुत तलमला रहे थे। उधर यज्ञ के विविध अनुष्ठान, व्रत, नियम, प्रक्रियाएं, तथा प्रबन्ध सम्बन्धी अनेक उलझनों ने उन्हें असयत कर दिया था।

राजकुमार विदूडभ ने इस सुयोग से बहुत लाभ उठाया था। उन्होंने सागत अनेक राजाओं को अपना मित्र बना लिया था, वे उनके सहायक और समर्थक हो गये थे। नगर के जो गृहपति, सेट्ठि, पौरजन और निगम राजा पर आक्षेप लेकर आते, उन पर युवराज विदूडभ अपनी गहरी सहानुभूति प्रकट करते और राजा की मनमानी पर अपनी वेदसी और रोष भी प्रकट करते थे। इस प्रकार घर बाहर उनके मित्र, समर्थक और सहायकों का एक दल और अनकूल वातावरण बन गया था।

एक दिन अवकाश पा उन्होंने आचार्य अजितकेसम्बल से एकान्त वार्तालाप किया। राजकुमार ने कहा—

"आचार्य, अब यह यज्ञ पाखण्ड और कितने दिन चलेगा?"

"यह पुण्य समारोह है युवराज, सौ वर्ष भी चल सकता है, बारह वर्ष भी, और अठारह मास पर्यन्त भी।"

"और इतने काल तक राज्य की सारी व्यवस्था इसी प्रकार रहेगी?"

"तो कुमार, एक ही बात हो सकता है, या तो राजा स्वर्ग के लिये पुण्यार्जन करें, या दुनियादारी की खटपट मे पड़े।"

"बहुत पुण्य सचय हो चुका आचार्य, अब अधिक की आवश्यकता नहीं है।"

आचार्य हस पड़े। उन्होने कहा—"पुत्र, मै तुम्हारे लिये असाध्य-साधन नही हू।"

'तो आचार्य, यही ठीक समय है, न जाने बन्धुल सेनापति कब आ जाय।"

"अभी आ नही सकता पुत्र, सीमान्त पर वह जटिल कठिनाइयों में फंसा है। वयस्य योगन्धरायण ने उसे विग्रह और भेद मे विमूढ़ कर दिया है।"

"फिर भी आचार्य, यदि मै इस समय विद्रोह करू, तो सफलता होगी?"

"अभी नही, रत्नहोम के बाद। आज द्वितीया है, त्रयोदशी को रत्नहोम सम्पूर्ण होगा। फिर पन्द्रह दिन खाली जायेगे, यज्ञ की मुख्य क्रिया नही होगी, यजमान की उपस्थिति भी न होगी। इसके बाद आगामी चतुर्दशी को अभिषेक होगा। इसी अवकाश मे पुत्र, तुम कार्यसिद्धि करना। अभी मैं सीमान्त से पायासी के लौटने की प्रतीक्षा कर रहा हूं।"

"क्या आपने कोई योजना स्थिर की है आर्य्य?"

"हा पुत्र, मै तुझे यथा समय अवगत करूगा।"

"जैसी आपकी आज्ञा। मैंने अनेक राजाओ को मिला लिया है, पौर जानपद भी गवालम्भन के कारण क्षुब्ध है।"

"मै भी यही समझ कर श्रमण महावीर और शाक्य पुत्र को सहन कर रहा हू, उन्हें अपना काम करने दो।"

"परन्तु कारायण का क्या होगा?"

"समय पर कहूगा कुमार, अभी नहीं। अभी तुम राजा के अनुगत रहो। जिससे वह आश्वस्त रहे। तुमने देखा है, राजा बहुत क्षुब्ध है।"

"देख रहा हूं आचार्य।"

"तो पुत्र, तू निश्चिन्त रह। नियत काल में मैं तेरे ही सिर पर यज्ञ पूत जल का अभिषेक करूंगा।"

"तो आचार्य, मैं भी आपका चिर अनुगत रहूंगा।" यह कह कर राजकुमार विदूडभ ने आचार्य को प्रणाम कर बिदा ली।

: ७५ :

राजनन्दिनी

साकेत के सर्वसाधन सुलभ प्रासाद मे राजनन्दिनी चन्द्रभद्रा सुख से रहने लगी। उसके लिये सुख के जितने साधन कौशल राजकुमार प्रस्तुत कर सकते थे, उन्होने यत्न पूर्वक कर दिये। उन्होने यद्यपि राजकुमारी की केवल एक झलक भर नौकारूढ होते समय देख पाई थी, पर उसी से उनका सुप्त-तारुण्य सहस्र मुख से जागरित हो गया। परन्तु राजकुमार बिदूडभ चरित्रवान् पुरुष थे, उन्होने मागध मित्र को जो शब्द कहे थे, उनका मूल्य अकन करना वह जानते थे। उन्होने यत्न-पूर्वक अपने को राजकुमारी मे तटस्थ रक्खा। फिर भी उनका मन रह २ कर विद्रोह करने लगा। वे राजकुमारी को विविध सुविधाऐ, सुखसाधन और मनोरंजन के साधन प्रस्तुत करने मे हार्दिक आह्लाद की अनुभूति करते रहे। परन्तु बहुत इच्छा होने पर भी उन्होने राजनन्दिनी को देखने की चेष्टा नही की। यद्यपि इसमे एक यह भी कारण था कि यज्ञ की उलझनो और अपनी अभिसन्धि के ताने-बाने मे वे बुरी तरह उलझ रहे थे।

राजनन्दिनी के साथ जो दस यवनी दासिया गान्धारी कलिङ्गसेना ने भेजी थी, वे बडा चतुरा थी, उन्होने विविध नृत्य गान विनोद और कौतुक प्रदर्शन से कुमारी का अच्छा मनोरजन किया। क्षण भर को कुमारी यहा आकर अपनी विपन्नावस्था को भूल गई।

परन्तु सोम की स्मृति अब उन्हे और अधिक संतापित करने लगी। दिन २ उन्हे सोम का वियोग असह्य होने लगा। परन्तु उन्हे विश्वास था कि सोम उनके निकट है, और उन्हे प्राप्त करने मे अब कोई बाधा नही होगी। इसी विचार से वह प्रहर्षित थीं।

सोम और कुण्डनी ने भी प्रच्छिन्न भाव से साकेत तक राजनन्दिनी

के साथ ही यात्रा की थी, और एक दिन सयोग पाकर कुण्डनी प्रासाद में जा कुमारी से मिली भी थी। कुण्डनी को देख कुमारी अत्यन्त आनन्दित हुई, उसका बहुविधि आलिङ्गन करके उन्होने विविध सकेतो से प्रश्न किये। पर कुण्डनी ने वाकछल और चातुर्य से उन्हे तग करने के बाद बताया कि सोम भी साकेत मे है और कुमारी का देखना चाहते है, तथा उनका भी प्रेमावेश कम नहीं है। यद्यपि यहा सोम के आने में विशेष बाधा नही थी, फिर भी लज्जावश कुमारी ने सामने छिपकर मिलना नही स्वीकार किया। उन्होने बहुविधि सोम की चर्चा की, और फिर साहस करके उन्होने कुण्डनी से कहा —"सखी, उनसे कहो, वे भगवान् महाश्रमण से मिलकर उनसे मन की बात कहदे, फिर वे जो कुछ आदेश दे।"

कुमारी की इच्छा जान कर सोम और कुण्डनी श्रावस्ती आए। आकर सोम ने श्रमण महावीर से फिर साक्षात् किया। श्रमण महावीर ने बहुत देर मौन रह कर कहा—"भद्र सोम, अपने हित के लिये तुम उनसे अभी दूर रहो। यथा समय मैं तुम्हे कर्तव्य प्रदर्शन करूगा।"

सोम श्रमण महावीर की बात से बहुत निराश हुये। उन्होंने हठ कर के श्रमण की इच्छा के विपरीत कुण्डनी को फिर साकेत भेजा। उसने कुमारी से साक्षात कर श्रमण महावीर का अभिप्राय कुमारी से कहा। कुमारी ने सुनकर कहा—"तो हला कुण्डनी, जैसी भगवान् महाश्रमण की इच्छा है, वैसा हो हो। तुम सोमभद्र से कहो कि वे जब तक महाश्रमण का आदेश न हो यहा न आवे। यथासमय महाश्रमण स्वय आदेश देगे।"

सोम कुण्डनी से कुमारी का यह उत्तर पाकर निराश और उदास होकर रहने लगे। परन्तु सेनापति उदायि ने उन्हे कुछ अत्यावश्यक आदेश दिये थे। वह उनके पालन मे कई दिन तक बहुत व्यस्त रहे और एक प्रकार से उन्होंने कुमारी का ध्यान ही न किया। परन्तु अवसर पाते ही वह साकेत गये, और राजकुमारी से भेंट की।

उस समय कुमारी ने श्वेत पुष्प-गुच्छो का शृङ्गार किया तथा श्वेत कौशेय धारण किया था। सोमप्रभ को देखते ही उनके नेत्र हंसने लगे।

सोम ने अनुताप के स्वर में कहा—

"संयत न रह सका राजनन्दिनी, महाश्रमण के आदेश के विपरीत आने का दुःसाहस मैंने किया है।"

"यह तो ठीक नहीं हुआ, प्रियदर्शन।"

"परन्तु मैं क्या करूं कुमारी, तुम्हीं ने इस अकिञ्चन को बांध लिया।"

"प्रिय, ऐसा अधैर्य क्यों? भगवान् महाश्रमण जानेंगे तब?"

'प्रिये, तुम कह दो कि तुम मेरी हो, फिर मैं भगवान् महाश्रमण के अपराध का प्रायश्चित्त कर लूंगा।"

"और यदि मैं कुछ न कहूं तो?" कुमारी ने हास्य छिपाते हुए कहा।

सोम ने दो चरण आगे रख कुमारी का अंचल हाथ में ले घुटनों के बल बैठ चूम लिया। उन्होंने कहा—"प्रिये चारुशीले, तुमने मुझे आप्यायित कर दिया, मैंने तुम्हारे नेत्रों में पढ़ लिया।"

"तो भद्र, मुझे भी आप्यायित करो।"

"कहो प्रिये, मुझे क्या करना होगा?"

"अब बिना महाश्रमण की आज्ञा लिए यहां मत आना भद्र।"

"ओह, यह तो अति दुःसह है।"

"सो क्या तुम्हारे ही लिये प्रिय?"

"तो प्रिये, मैं सहन करूंगा।"

"यही उत्तम है, धर्म सम्मत है, गुरुजन अनुमोदित है, सोम प्रियदर्शन, अब तुम जाओ, कोई दासी हमें साथ देखे, यह शोभनीय नहीं है।"

"जैसी राजनन्दिनी की इच्छा।"

सोम बार-बार प्यासी चितवनों से कुमारी को फिर २ देखते हुए वाटिका से निकले और शीघ्र श्रावस्ती की ओर चल दिये।

: ७६ :

सेनापति-कारायण

बन्दीगृह में जाकर राजकुमार विदूडभ ने कहा—"सेनापति, तुम स्वतन्त्र हो, बाहर जाओ।"

बन्दीगृह के अन्धकार मे कारायण नें विदूडभ को नही पहचान उसने कहा—

"यह किसने मुझे उपकृत किया भन्ते ?"

"मै विदूडभ हू मित्र।"

"राजकुमार, मै आपका किस प्रकार आभार मान् ?"

'पहिले इस कलुषित स्थान से बाहर आओ मित्र, और बातें पीछे होंगी।'

"परन्तु मै बेडियो के बोझ से चल नही सकता।"

विदूडभ ने उसे उठा कर कन्धे पर बैठा लिया। बाहर आकर उन्होने कहा—"यहा एकान्त मे क्षण भर ठहरो सेनापति, मेरा एक मित्र लुहार निकट ही है, मै उसे अभी लाकर बेडिया कटवाता हू।"

विदूडभ चले गए। लुहार ने आकर बेडिया काट दी। कारायण ने मुक्त होकर राजकुमार को अभिवादन करके कहा—"मै राजकुमार का अनुगत सेवक हूं।"

"क्या आभारभाराक्रान्त ?"

"नहीं भन्ते, पहिले ही से।"

"परन्तु मित्र, तुम स्वतन्त्र हो, कोई बन्धन नही है।"

"मै आपका अनुगत सेवक हू कुमार।"

"तो यह हथियार ग्रहण करो मित्र, मै तुम्हे कोशल सैन्य का

प्रधान सेनापति नियत करता हू ।'

"क्या मै आपको देव कौशलपति कहकर हर्षित होऊ ?"

"यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो यही सही मित्र ।"

"तो देव कौशलपति, आपकी क्या आज्ञा है ?"

"सेनापति, तुम अभी नगर को अधिकृत कर अपने हरी और चौकी बैठा दो ।"

"जो आज्ञा देव, और भी ?"

"हाँ, दो सौ अश्वारोही लेकर आज सूर्यास्त के समय नगर द्वार पर स्वय उपस्थित रहो। महाराज प्रसेनजित् आज जेतवन मे श्रमण गौतम के दर्शन को जावेंगे। उन्हे जाने मे बाधा देने की कोई आवश्यकता नहीं है, परन्तु जब वे लौटे तो दक्षिण द्वार पर उनका अवरोध करो। उन्हे बन्दी करलो और एक की पूर्वी सीमान्त पर छोड आओ, उनके अग रक्षक विरोध करे तो उन्हे काट डालो। सहायक सेना निकट ही रक्खो। परन्तु सब काम अत्यन्त चुपचाप होना चाहिये ।"

"बहुत अच्छा महाराज, ऐसा ही होगा ।"

'एक बात और। महिषी मल्लिका भी महाराज के साथ होगी। उनसे राजमहालय मे आने का अनुरोध करना तथा महाराज को सीमान्त पर प्रवेश देना ।"

"ऐसा ही होगा महाराज, और कुछ ?"

"हा, सेनापति, गुप्तचरो से पता लगा है, बन्धुल मल्ल सीमान्त से आ रहा है। उसे प्रत्येक मूल्य पर रोको, यदि मारना भी पड़े तो मार डालो।"

"बन्धुल मेरा आत्मीय है,परन्तु मेरे सम्पूर्ण उत्पीडन का मूल है। मै उसका शिरच्छेद करूंगा, आप निश्चिन्त रहे महाराज ।"

"तो जाओ सेनापति, बन्धुल का आवास तुम्हारे लिये प्रस्तुत है, वहा तुम्हारे परिजन भी पहुच गये है—विश्राम करो, अभी तुम्हारे पास यथेष्ट समय है। सावधानी रहो और प्रत्येक प्रगति से मुझे सूचित करो।'

: ७७ :

प्रसेनजित् का निष्कासन

जेतवन से महाराज प्रसेनजित् ने लौटकर देखा-नगरद्वार पर भारी अवरोध उपस्थित है। सेनापति कारायण नग्न खड्ग लेकर राजा के सम्मुख आये। राजा ने उन्हें देखकर कहा—"यह क्या बात है कारायण, मैंने तुम्हें बन्दी किया था, किसने तुम्हें मुक्त किया ?"

"कौशल के अधिपति ने।"

"कौशल का अधिपति मैं हूं, मैंने तुझे मुक्त नहीं किया।" राजा ने क्रोध से लाल लाल आखें करके कहा।

"आप जैसा समझें।"

"तेरी यहां उपस्थिति का क्या कारण है ?"

"मैं आपको बन्दी करने के निमित्त यहां उपस्थित हूं?"

"किसकी आज्ञा से ?"

"कौशल के अधिपति महाराज विदूडभ की आज्ञा से।"

"तेरा इतना साहस ? बचक, कुटिल, मैं अभी तेरा शिरच्छेद करूंगा।" राजा ने खड्ग कोश से खींच लिया।

"तो महाराज प्रसेनजित्, आप यदि इसी समय मृत्यु को वरण किया चाहते हैं तो आप की इच्छा, आइऐ इधर।" कारायण ने मैदान की ओर खड्ग से सकेत किया।

राजा ने क्रोध से कापते हुए सैनिको को आज्ञा दी—"सैनिको, इस बचक को बन्दी करो।"

किन्तु सब सैनिक चुपचाप शिर झुकाकर खडे हो गये। यह देखकर राजा का हृदय भय से दहल उठा। वह कापते हुए हाथों में खड्ग लिये हुए काष्ठ प्रतिमा के समान खडा रह गया।

कारायण ने हंसकर कहा–"महाराज प्रसेनजित्, विरोध प्रदर्शन से कोई लाभ नहीं। चुपचाप महाराज विदूडभ की आज्ञा शिरोधार्य कीजिऐ।"

"कैसी भाग्य विडम्बना है, क्या मैं नगर मे नही जा सकता ?"

"नहीं।"

"तेरे महाराज— उस दासी पुत्र की क्या आज्ञा है रे ?"

"यही, कि यदि आप चुपचाप बन्दी होना स्वीकार करले तो आपको प्राण दान देदिया जाय।"

"और यदि मैं न स्वीकार करूं ?"

"तो महाराजा की आज्ञा है कि आपका बध करके आपके शरीर के चार टुकडे करके नगर की चारो दिशाओ मे बलि-पिण्ड की भाति फेंक दिये जाय।"

राजा की आखों मे आसू ढलकने लगे। उसने हाथ का खड्ग पृथ्वी पर फेंक दिया, कण्ठ से मौक्तिक माला तोड कर उसके दाने धूल में बखेर दिये। सिर का उष्णीष टुकडे २ करके फेक दिया। फिर कहा—"तो धृष्ट भाकुटिक सेनापति, तू अपने वृद्ध, असहाय राजा से जैसा व्यवहार करना चाहता है– कर।"

"तो महाराज प्रसेनजित्, आप अपने सेवको–सहित आगे बढ़ कर मेरे इन सैनिकों के बीच में आजाँय।" महाराज चुपचाप सैनिको के मध्य मे जा खडे हुए। देवी मल्लिका भी चुपचाप राजा के साथ आ खडी हुई। अनुगमन करती हुई दासियो को निवारण करते हुए उन्होने कहा—"हज्जे, ऐसा ही काल उपस्थित हुआ है। तुम महालय में लौट जाओ और अपने राजा को सेवा करो। मुझे तुम्हारी सेवाओ की आवश्यकता नहीं रही।" इतना कहकर उन्होने अपने सब रत्नाभूषण उन्हे बांट दिये। दासियां खडी हो रोने लगी।

कारायण ने आगे बढकर कहा—"पट्टराजमहिषी के चरणों में

महाराज विदूडभ ने यह निवेदन किया है कि वे महालय मे पधार कर अपने अनुगत पुत्र को आप्यायित करे।"

"पुत्र विदूडभ ने यह अपने योग्य ही कहा, भन्ते सेनापति, पर मुझे अपना कर्तव्य विदित है। जहा महाराज वहा मै, पुत्र विदूडभ से कहना--वह कौशल के यशस्वी आर्यकुल की मर्यादा की रक्षा करें। मै आशीर्वाद देती हूँ--वह यशस्वी हो, वर्चस्वी हो, चिरजीवी हो।" राजा ने भी अपने आभरण सेवको के ऊपर फेंकते हुऐ कहा--"भणे, तुम्हारा कल्याण हो, तुम राज सेवक हो। तुमने राजा की सेवा जीवन भर की, अब यह प्रसेनजित् राजा नही रहा, तो उसका सेवको से क्या काम। तुम्हारा कल्याण हो। जाओ, राजा का सेवन करो।" फिर उसने कारायण की ओर मुंह करके कहा--"तो भाकुटिक सेनापति, अब विलम्ब क्यो? तू राजाज्ञा का पालन कर।"

"तो फिर ऐसा ही हो।" उसने सैनिको को सकेत किया। और वे राजा रानी के अश्वों को घेर कर चल दिये। दास दासी खडे रोते रहे। उस समय प्रतीची दिग मांग मे सिन्दूर दिये कौसुम्बिक चीनाकुश पहने वधूटी सी प्रतीत होरही थी। सूर्यकुल प्रदीप महाराज प्रसेनजित् मागध विजयी पाच महाराज्यो के अधिपति, अर्ध शताब्दि तक लोकोत्तर वैभव भोग कर आज दिनान्त में राज्यश्री भ्रष्ट हो-अपने ही सेवको द्वारा बन्दी हो कर अदृष्ट विधि और नियतिवश अज्ञात दिशा को चले जारहे थे।

: ७८ :

बन्धुल का दावपेंच

सीमान्त पर बन्धुल भारी उलझनो में फंस गया। वत्स सैन्य ने सीमान्त के निकट ही स्कन्धावार स्थापित करके धान्वन, वन, मकट, पङ्क, विषम, नीहार आदि सत्र स्थापित किये थे और वह सैन्य छिपकर इन स्थलों पर गति करती थी। इससे यहा स्पष्ट कूटयुद्ध हो रहा था। शत्रु बन्धुल को दूष्य सेना तथा आटविक के द्वारा बारम्बार थका डाल रहे थे। वे अवसर पाते ही धावा मार कर सीमान्त का उल्लघन कर गाय, पशु, और खाद्य सामग्री लूट ले जाते या नष्ट कर जाते थे। कौशल के जो वीर प्रतिकार के लिये उधर जाते थे, उन्हे सत्रो में छिपकर मार डालते थे। बहुधा वे रात्रि मे छापा मारते। लूटपाट करके या आग लगाकर भाग जाते। इससे कौशल सैनिक रात को सो ही न पा रहे थे। बहुधा चमडे के खोल पैरो मे बाधे हुये सैकडो हाथियो के द्वारा वे कौशल छावनी मे घुसकर सोते हुए सैनिको को कुचलवा डालते थे।

इन कठिनाइयो के कारण बन्धुल को बहुत ही सावधान रहना पडता था। पर उसकी दूसरी कठिनाई यह थी कि राजधानी से न तो उसे पूजना ही मिल रही थी, न सैन्य, न रसद। रसद समाप्त हो रही थी, कोष खाली हो चुका था, और सेना अस्तव्यस्त हो रही थी, और बारम्बार पत्र भेजने पर भी राजा सहायता नही भेज रहा था। वास्तव मे यह विदूडभ की अभिसन्धि का परिणाम था। फिर भी बन्धुल को चरो के द्वारा इस अभिसन्धि का पता चल गया। उसने सीमापाल को सीमान्त की गतिविधि देखने की व्यवस्था करके श्रावस्ती की ओर अत्यन्त प्रच्छिन्न भाव से प्रयाण किया। जिस दिन राजा का श्रावस्ती से निष्कासन हुआ वह श्रावस्ती पहुच गया था। उसने छद्मवेश में अपनी आखो से

राजा का निष्कासन देखा। वह निरुपाय था। सेना उसके हाथ में न थी। विदूडभ का सम्पूर्ण अभिसन्धि वह जान गया। कारायण का प्रबन्ध बहुत जाग्रत था और वह प्रगट होकर अब कुछ नहीं कर सकता था। कारायण को उसने राजा के साथ जाते देखा। उसने समझा कि अवश्य ही राजा को कहीं कैद कर दिया जायगा। उसने सोचा इसका पता लगाना असम्भव नहीं है। अत उसने सबसे प्रथम विदूडभ को पकडने का विचार किया। यह साधारण कार्य न था, परंतु उसने सोचा कि यदि आज नहीं तो फिर कभी नहीं। कारायण की अनुपस्थिति से उसने पूरा लाभ उठाने का निश्चय किया। परन्तु वह जैसा योद्धा था वैसा कूटनीतिज्ञ न था। फिर भी वह चुपचाप अपने गुप्तवास स्थान पर लौट आया। अपने चुने हुए मित्रों और सहायकों से उसने परामर्श किया और विदूडभ के अपहरण की एक योजना बनाई।

राजकुमार विदूडभ इस गहरी कूटनीति मे घुसकर भी अपनी रक्षा की ओर से सर्वथा असावधान थे। वह आचार्य अजितकेसम्बल से गुप्त परामर्श करके केवल एक भृत्य के साथ निश्शंक राजपथपर जारहे थे। रात्रिका अन्धकार राजपथ पर फैला हुआ था। दो चार जन इधर उधर आ जा रहे थे। बन्धुल ने अनायास सुयोग पा लिया, राज पथ के एक विजन मोड पर बन्धुल के एक ही हाथ ने अनुचरों को धराशायी कर दिया और उसी समय उसके तीक्ष्ण जनों ने भगवस्त्र डालकर राजकुमार को विवश कर दिया। क्षण भर मे यह कार्य हो गया। किसी को कानोकान खबर नहीं लगी। बन्धुल के तीक्ष्ण जन राजकुमार को हाथो हाथ उठाकर ले भागे।

परन्तु राजा और राजकुमार दोनो ही का इस प्रकार जो अप्रकाश्य रूप से राजधानी से विलोप हुआ, यह किसी भी मनुष्य ने नहीं जाना। अभिसन्धि की अङ्गीभूत योजनानुसार आचार्य अजितकेसम्बल ने रत्न-हाम के बाद पन्द्रह दिन का अवकाश मुख्यानुष्ठान के लिये कर दिया

था। साधारण होम और हविष्य याग चल रहे थे, परन्तु उनमे यजमान के उपस्थित होने की आवश्यकता न थी। राजकुमार का हरण ऐसी गोपनीय रीति से हुआ था कि आचार्य अजित को भी आठ प्रहर तक उसका पता नही लगा। परन्तु जब मागध वैद्य जीवक ने आचार्य को सूचना दी कि राजकुमार कल रात से राजधानी मे नही है तो वे एक बारगी ही चिन्तातुर हो उठे। वे अधैर्य से कारायण के सीमान्त से लौटने की बाट देखने लगे। साथ ही उन्होंने शूनाध्यक्ष और राष्ट्रपाल को अत्यन्त सावधानी से नगर रक्षण के लिये सचेत कर दिया।

दिन के पिछले प्रहर में बन्धुल मल्ल आचार्य अजित के पास गया। आकर अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। उस समय आचार्य बहुत व्यस्त थे। यज्ञ से सम्बन्धित विविध आदेश विविध जनो को दे रहे थे। बन्धुल को देखकर आचार्य अथ से इति तक सब रहस्य विदूडभ के लोप हो जाने का जान गये। भयभीत भी हुये, परन्तु प्रकट मे उन्होने सेनापति का प्रहर्षित हो स्वागत करते हुए कहा—"प्रसन्न तो रहा, सम्मोदित तो रहा सेनापति, सीमान्त में सब भाति कुशल तो है ?"

"हाँ आचार्य, सब ठीक है। भला यहां यज्ञानुष्ठान तो ठीक २ चल रहा है ?"

"सब ठीक है बन्धुल।,,

"मैंने सोचा, मैं भी तो यह समारोह देखूं, इसी से आ गया।"

"साधु, साधु सेनापति, परन्तु अभी तो रत्न होम सम्पन्न हुआ है। अब दो दिन का अवकाश है। हवियंज्ञ तो होगा पर शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को अभिषेक होगा, तब तक ठहरना सेनापति।"

"अवश्य आचार्य, किन्तु महाराज प्रसन्न तो है ?"

"बहुत थकित है बन्धुल, यज्ञ समारोह का पूरा भार, फिर व्रत, उपवास, कर्मकाण्ड, उन्हें क्या एक कार्य है ? अब जो अवकाश मिला है भाई, रत्ती २ काल गान्धारी रानी के लिये राजा ने सुरक्षित रख लिया। दर्शन ही नही होते। परन्तु हानि नही, अनुष्ठान निर्विघ्न चल रहे है।"

"यह अच्छा है आचार्य, कुमार विदूडभ तो प्रसन्न है ?

"इधर देखा नहीं है, बन्धुल ।"

"कदाचित् वे भी किसी नव वधू के फेर में न हो आचार्य, आप देखते हैं—आय है ।"

"हाँ, हा बन्धुल ।" आचार्य हँस पड़े । बन्धुल भी हसे, परन्तु दोनों ने दोनो को जलती आखो से देखा । आचार्य ने कहा—

"तो बन्धुल सेनापति देख ही रहे है, यज्ञ व्यवस्था में बहुत व्यस्त हू । आहार विश्राम भी नही मिलता ।"

"तो आचार्य, विश्राम करे, मै भी चला ।"

बन्धुल अभिवादन करके चल दिया ।

———

: ७६ :

कुटिल ब्राह्मण

अजितकेसम्बल ने जो कूटनीति का ताना बाना इतनी चतुराई से फैलाया था उसमे युवराज विदूडभ के अकस्मात् लुप्त हो जाने से बडा व्याघात पड गया। युवराज को मल्ल बन्धुल ने ही उडाया है, इस सम्बन्ध मे आचार्य को तनिक भी सन्देह नही रहा। आचार्य ने बन्धुल के जाते ही अस्वस्थता का ढोग रचा और आसपास के लोगो को बिदाकर एकान्त मे शैया पर पड रहे। शैया पर पडकर उन्होने एक शिष्य को बुलाकर कहा--"सौम्य माधव, तू तनिक जाकर उस मागध वैद्य को बुला ला, मुझे उदरपीडा है।"

जीवक के आने पर आचार्य ने परामर्श किया। जीवक ने भी यही निश्चय किया कि कुमार को बन्धुल ने ही उडाया है। दोनो इस बात पर सहमत थे कि कुमार का यह गोपन प्रगट मे न लाया जाय। बन्धुल इसे प्रगट न करेगा यह निश्चय है, वह उसके प्राण संकट म भी नही डालेगा, क्योंकि उसका अभिप्राय केवल यही है कि सम्राट् का पता लगाया जाय। परन्तु अब विचारणीय बाते दो है--एक यह कि राजकुमार को छिपाया कहा गया है। दूसरी यह कि उसका उद्धार कैसे हो। जीवक और आचार्य दोनो ही निरुपाय थे।

आचार्य ने कहा-"जीवक हमे सेनापति कारायण की प्रतीक्षा करनी होगी।"

"किन्तु आचार्य, राजपुत्र का एक मित्र है।"

"कौन है वह?"

"वह एक मागध तरुण है।"

"वह कहा है?"

"ढूंढना होगा आचार्य, परन्तु वह निश्चय ही श्रावस्ती मे है।"

"तब ढूंढो प्रिय जीवक, तब तक मैं अन्त पुर मे क्या प्रतिक्रिया हो रही है एक बार देखूं।" वैद्य को विदा करके आचार्य ने शिष्य से कहा-"पुत्र, तू राजमहल म देवी कलिंगसेना के हर्म्य मे जा, और कञ्चुकी वाभ्रव्य से कह कि आचार्य विष्णुपादामृत बेला में विशेष अनुष्ठान के लिये देवी के महल मे आवेंगे। देव पूजन की सब व्यवस्था करके देवी स्नाता होकर तैयार रहे। उन्हे उपवास भी करना होगा।"

शिष्य समाचार लेकर महालय की ओर चला गया। आचार्य बहुत सी बातो पर विचार करते हुए अपने शयनकक्ष मे पडे रहे। इसी समय कारायण ने व्यग्र भाव से आकर कहा—

"यह क्या सुन रहा हूं मैं, आचार्य ?"

"सेनापति धैर्य से पूर्ण सम्बन्ध पर विचार कर कर्तव्य का निर्णय करो।"

"परन्तु मेरा कर्तव्य है कि सर्व प्रथम मल्ल बन्धुल को बन्दी करू।"

"नहीं सेनापति, ऐसा करने से राजपुत्र का पता नहीं लगेगा।"

"तब क्या करना होगा ?"

"दो कार्य, एक नगर की रक्षा का सुदृढ प्रबन्ध, दूसरे बन्धुल की गतिविधि पर सतर्क दृष्टि।"

"तब ऐसा ही हो आचार्य परन्तु क्या हम कुमार की ओर से निश्चिन्त बैठे रहे ?"

"निश्चिन्त क्यो सेनापति, कुमार कहा है, पहिले इसका पता लगाया जाय, पीछे उन्हे छुडाया जाय। बन्धुल अवश्य ही अत्यन्त गुप्त रूप से कुमार से मिलने जायगा और उन्हे डरा धमकाकर महाराज का पता पूछेगा। ऐसी स्थिति मे उसका अत्यन्त छद्म रूप मे बहुत सावधानी के साथ पीछा होना चाहिये।"

"ऐसा ही होगा आचार्य।"

"एक बात और। वत्स राज्य की सीमा पर जो सेना है, उससे किसी भी दशा में बन्धुल का सम्बन्ध सम्पर्क नही रहना चाहिये। इसके लिये पूरा सतर्क रहना होगा, उसका कोई चर सीमान्त पर न पहुचने पावे, तुरन्त उसे बन्दी कर लिया जाय, और बन्धुल को भी इसका पता नहीं लगना चाहिये।"

"समझ गया आचार्य, मै ऐसी ही व्यवस्था करूंगा।"

"तो सेनापति, तम समुचित व्यवस्था करो, और एक बात है ?"

"वह क्या ?"

"एक मागध तरुण कुमार का मित्र श्रावस्ती मे है, उसे दृढ़न मे मागध वैद्य जीवक को सहायता देना होगा।"

"अच्छा आचार्य।"

सेनापति अभिवादन कर वहा से चल दिया।

: ८० :

दुःखद अन्त

बन्दी राजदम्पति को लेकर सेनापति कारायण चलते ही गये। चलते ही चलते रात्रि का अन्त हो गया। प्राची में उज्ज्वल आलोक की एक किरण फूटी। इसी समय कोशल की सीमा आ गई। सीमान्त पर कारायण रुक गया। उसने अपने सैनिकों को एक ओर हटकर खड़े होने का आदेश दिया। फिर राजदम्पति के निकट जाकर कहा—"अब आप मुक्त हैं महाराज प्रसेनजित्, मैं राजाज्ञा पालन कर चुका। अब आप स्वेच्छा से जहां जाना चाहें जा सकते हैं। यह आपका पाथेय है।" उसने स्वर्ण से भरी एक छोटी सी थैली राजा के हाथ में थमा दी और बिना ही एक क्षण ठहरे और उत्तर की प्रतीक्षा किये वह तुरन्त लौट चला।

उस टूटती रात में, एकान्त शान्त निर्जन वन में दोनों वृद्ध राजदम्पति सर्वथा निराह एकाकी खड़े रह गये। वह स्वर्णदम्म से भरी सेनापति के द्वारा दी गई छोटी सी थैली न जाने कब उनके हाथ से खसककर भूमि में जा गिरी।

बहुत देर बाद राजा ने महिषी से कहा— 'अब, मल्लिका ?

'महाराज, जिसका काल जाने।"

"तो मगध चलो, प्रिये।"

"पराजित सेनिय बिम्बसार से पराभव पाने में क्या लाभ है महाराज ?"

"श्रेणिक बिम्बसार मगधपति हैं। वह उत्तर भारत का शीर्षस्थानीय नरपति है, वह कर्तव्याकर्तव्य का समझता है, उसका द्वेष ईर्षा जो कुछ भी हो सकती है, कोशल के अधिपति के प्रति हो सकती है, प्रसेन

के प्रति नहो। प्रसेन अब एक निरीह पुरुष है, वह साधारण नागरिक भी नहीं है, वह राज्यभ्रष्ट, श्रीभ्रष्ट, अधिकार भ्रष्ट, मित्र-बन्धु-सेवक और सम्पत्ति से रहित आगत शरणागत जन है। श्रेणिक बिम्बसार उस का स्वागत करेगा, उसे आश्रय देगा। फिर मैंने उसे कन्या दी थी, वह मेरा सम्बन्धी जामातृ है, वह उसकी मर्यादा भी पालन करेगा।"

"तो देव, जैसी आपकी इच्छा, मगध ही चलिये। परन्तु आपने तो पाथेय भी ग्रहण नहीं किया और सब आभरण हमने भृत्यों को दे दिये। मार्ग मे पाथेय का क्या होगा?"

"क्या मै सेवक का दान ग्रहण करूगा?"

"तो महाराज, मार्ग म हम खायेगे क्या?"

"क्यो? क्या भिक्षा नहीं मिलेगी?"

"हन्तदव, क्या भिक्षा ग्रहण करेंगे?"

महाराज ने एकाएक कुछ स्मरण करके हसते हुए कहा—

"ओह देवी, पाथेय की व्यवस्था होगई?"

"किस प्रकार महाराज?"

"मेरे दातो मे हीरक कील है, उखाड लेने पर यथष्ट होगा।"

"क्षान्त पाप, महाराज क्या दात तोड कर उसकी हीरक कील निकालेंगे?"

'य दात अब किस काम आवेंगे देवी मल्लिका, सब त्यागा तो दातो का मोह क्या? फिर य सब विगलित होकर चल विचलित होगये है. तोडन मे अधिक कष्ट नहीं होगा।"

मल्लिका कुछ न कह कर रोने लगीं। राजा ने घोडे से उतरते हुए कहा—'रोने से क्या लाभ मल्लिके, अश्व से उतर आओ, कोशल राज्य का यह चिन्ह भी हमारे काम का नहीं। प्रिये, तुम माली की बेटी हो, क्या पुष्पमाल नहीं गूंथ सकती?"

"अति बाल-काल में गूंथी थी महाराज, गूंथ सकूंगी।"

"तो प्रिये, मैं उसे गृहस्थों को बेच आऊंगा, हमारा पाथेय चल जायगा। चलो प्रिये।"

राजा ने रानी का हाथ पकड़ा और वे दोनों पाँव प्यादे, कठोर, ऊबड़ खाबड़ जन्य शून्य मार्ग पर अपने अनभ्यस्त चरणों से बढ़ चले।

दिन निकला, अस्त हुआ, रात हुई, प्रभात हुआ। ये दोनों निरीह वृद्ध, नियति संतप्त राजदम्पति चलते ही चले गये। मार्ग में लोगों ने देखा, दया करके भोजन देना चाहा, पर उन्होंने उस ओर नहीं देखा। बहुतों ने नाम धाम पूछा, उन्होंने उत्तर नहीं दिया। बहुतों ने मान किया, अपमान किया, उपहास किया, उन्होंने उनकी ओर नहीं देखा। वे चलते चले गये, उनके पैर लोहू और घावों से भर गये, पिण्डलियाँ तन गईं, वस्त्र गन्दे होगये, वे झाड़ियों में उलझ कर फट गये, मुंह सूख गया। भूख और प्यास से होंठ जड़ होगये। पर वे चलते ही चले गये। चलते ही चले गये।

अन्त में वे राजगृह के द्वार पर जा पहुंचे, उस समय दो दण्ड रात्रि व्यतीत हो चुकी थी, द्वार बन्द थे। उन्होंने थकित वाणी से द्वारी से कहा—"मित्र, द्वार खोल।"

दो वृद्ध निरीह भिक्षुक पुरुष स्त्री को प्रव्रज्या की दृष्टि से देखकर द्वारी ने कहा—'क्या तुम्हारे आदेश से?'

"नहीं मित्र, परन्तु हम दूर से आरहे हैं।"

"तो उधर चैत्य में स्थान है, रातभर रहो। प्रातः द्वार खुलने पर नगर में जाना।"

राजा ने निराश दृष्टि से रानी की ओर देखा। उनमें खड़े होने और बोलने की शक्ति नहीं रही थी। रानी ने मन्द स्वर से कहा—

"ऐसा ही हो महाराज।"

राजा ने मुद्रिका उंगली से निकाल कर दौवारिक को देते हुए कहा—"तो मित्र, यह मुद्रिका तेरे स्वामी मगध के सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के लिये है, यह श्रेणिक बिम्बसार को दे।"

दौवारिक राजमुद्रा देख आश्चर्यचकित होगया। उसने थोड़ा आदर प्रदशन कर कहा—"कुछ सन्देश भी है भन्ते ?"

"नही।" कह कर राजदम्पत्ति चैत्य मे आकर एक शिला खण्ड पर पड रहे।

शिला पर गिरते ही देवी मल्लिका के प्राण निकल गये। उन्हें गत प्राण देख महाराज प्रसेनजित कुछ होठो ही मे बडबडाए और वे भी धीरे से देवी मल्लिका के शरीर पर गिर गये। उसी रात उनकी भी मृत्यु होगई।

मुद्रिका पाकर श्रेणिक बिम्बसार आमात्य वर्ग सहित कोशलपति की अभ्यर्थना को जब वहा आया तो दोनो राजदम्पति चिपटे अङ्ग पर लपेटे चिर निद्रा में सो रहे थे। सम्राट् ने राजविधान के साथ उनका संस्कार किया और सारे साम्राज्य मे सूतक मनाया।

: ८१ :

नाउन

नगर के प्रान्त भाग मे एक नाउन का घर था । घर कच्चा मिट्टी का था । परन्तु उसकी स्वच्छता दिव्य और आकर्षक थी । नाउन घर में अकेली रहती थी । यौवन उसका चनाचकी पर था, परन्तु उसकी देहयष्टि अतिमोहक, आकर्षक और कमनीय थी । उसकी आखे चमकदार थीं परन्तु उनके चारो ओर किनारों पर फैली स्याही की रेखाये नाउन के चिर विषाद का प्रकट कर देती थी । उसका हास्य शीतकाल की दुपहरी की भाति सुखद था । वह स्यामलता के समान कोमलाङ्गी तथा आकर्षक था । नृत्य, गान, पान वितरण, अङ्गमर्दन, अलक्तक लेपन आदि कार्यों मे वह पटु थी । उसके इन्ही गुणो के कारण राजमहालय से लेकर छोटे बडे गृहस्थ गृहपतियो के अन्तःपुरो तक में उसका आवागमन था ।

इसी नाउन के घर मे सोम और कण्डनी ने डेरा डाला था । राजनन्दिनी को खोकर सोम बहुत उदास और दुःखी दीख पडते थे । वे विपन मे मागध सैन्य का सगठन कर रहे थे । सेनापति उदयि प्रच्छन्न भाव से उनसे मिलते रहते थे । यज्ञ समारोह की भीडभाड और देशदेशान्तर के समागत लोगो से मिल कर उनके विचार भावना जानने का सोम को यह बडा भारी सुयोग प्राप्त हुआ था । परन्तु विमन और खिन्न होने के कारण वे अधिकतर इस नाउन के घर चुपचाप कई २ दिन पडे रहते थे । कुण्डनी छद्म वेश मे बहुधा अन्त पुर मे जाती रहती थी । नाउन भी कभी २ उसके साथ जाती थी । आवश्यकता से अधिक स्वर्ण पाकर नाउन बहुत प्रसन्न थी और दोनो अतिथियों को अभिसार

मूर्ति समझ उनकी खूब आवभगत करती और उनकी प्रत्येक इच्छा की पूर्ति करने की चेष्टा करती थी।

कुण्डनी ने बड़ी ही हड़बड़ी में बाहर से आकर सोते हुए सोम को जगाकर कहा— 'सोम, भयानक समाचार है।"

"क्या लोग हमारा छिद्र पा गये है ?"

"नहीं, नहीं, महाराज प्रसेनजित् और विदूडभ दोनों ही राजधानी में नहीं है।"

"राजधानी मे नहीं है तो कहा गये ?"

"यही हमारी गवेषणा का विषय है।"

"तुमने कहा सुना ?"

"राजमहालय मे ?"

"परन्तु नगर मे तो कोई हलचल नहीं है ?"

"नगरवासियो से यह समाचार छिपा कर रखा गया है।"

"यह कैसी बात है ?" सोम उठकर बैठ गए। फिर कहा—"अब कहो, तुमने कहा सुना ?"

"देवी कलिङ्गसेना के प्रासाद म।"

"किसके मुह स।"

"आचार्य अजितकेसकम्बल के मुह से, वे आज प्रातःकाल ही देवी कलिङ्गसेना को अनुष्ठान कराने के बहाने उनके प्रासाद में गये, वहा विचार विनिमय हुआ। महाराज प्रसेनजित् को राजकुमार ने बन्दी करके अज्ञात स्थान पर भेज दिया है।"

"यह तो मै पहले ही समझ गया। परन्तु कुमार विदूडभ ?"

'उन्हे सम्भवत बन्धुलमल्ल ने बन्दी कर लिया है।"

"बन्धुल क्या यहा है ?"

"वे कल ही सीमान्त से आये है।"

"तो कुण्डनी, इस सम्बन्ध में हमें क्या करणीय है ?"

"देवी कलिङ्ग तुम्हे देखा चाहती हैं ?"

"किसलिये ?"

"राजकुमार की मुक्ति के लिए, वे तुम से सहायता की याचना करेंगी ।"

"परन्तु मैं क्यो सहायता करूगा ?"

देवी न चम्पा राजकुमारी की मुक्ति में हमारी सहायता की थी ।"

"की थी ।" सोमने धीरे मे कहा । वे उठकर टहलने लगे । कुछ देर बाद उन्होने कहा—"कुण्डनी, मै इसी समय आर्य उदयि से मिलना चाहता हू ।"

"ठहरो सोम, मुझे बताना होगा, किसलिए ?" कुण्डनी की मुद्रा कठोर हो गई ।

सोमने रूखे स्वर मे कहा—"अकथ्य क्या है ? मागधो के लिये यह स्वर्ण सयोग है, मागध बदला लेगे । कौशल जय का यह स्वर्णयोग है । वे कौशल को आक्रान्त करेगे ।"

"परन्तु किसमे बदला लेगे सोम ?"

"कौशलो से ?"

'कहा है वे कोसल, विचार तो करो, क्या तुम विश्वासघात करने जा रहे हो सोम ?"

"किस से ? क्या शत्रु से ? इस मे विश्वासघात क्या है, मेरे पास इस समय दस सहस्र मागध सेना है, मै दो घडी मे कोसल को आक्रान्त करके कोसल का अधीश्वर बन जाऊगा । फिर मैं चम्पा की राजनन्दिनी को परिषोध दूगा ।"

"किस प्रकार ?"

"कौशल की पट्टराजमहिषी बनाकर ।"

'तो सोम, विद्वानो का यह कथन सत्य है, कि जन्म से जो पतित होते है, उनके हीन ही विचार होते है ।"

"इसका क्या अभिप्राय है कुण्डनी ?"

"यही, कि तुम अज्ञात कुलशील हो, मैंने तुम्हारा शौर्य और तेज

देख तुम्हें कुलीन समझा था, पर अब मैंने अपनी भूल समझ ली।"

"क्या ऐसी बात ?" सोम ने कुण्डनी के मस्तक पर खड्ग ताना।

"सत्य है, सत्य है, यह समुचित होगा, पहले कुण्डनी का वध करो, फिर मित्र के साथ विश्वासघात करके कोशल का सिंहासन और चम्पा की राजकुमारी को एकही दाव में प्राप्त करो।"

"मित्र का विश्वासघात क्यो ?" सोम ने चिल्ला कर कहा।

"क्या तुमने राजकुमार को मित्र नहीं कहा ? क्या उन्होंने राजकुमारी को तुम्हारी धरोहर नहीं कहा ? क्या उन्होने और राजमाताओ ने कुमारी की रक्षा करने मे हमारी सहायता नही की ? क्या तुम्ने खड्ग छूकर राजकुमार से नहीं कहा था कि मित्र, यह खड्ग तेरी सेवा को सदा प्रस्तुत है ?"

सोम ने खड्ग नीचे रख दिया। वे चुपचाप पृथ्वी पर बैठ गये। बहुत देर तक चुप रहने के बाद उन्होन कहा—

"कुण्डनी, क्या करना होगा ?"

"कर सकोगे ?"

"और उपाय ही क्या है कुण्डनी ?"

"सत्य ह, नही है, कल तुम्हे महालय मे जाना होगा।"

"किस प्रकार ?"

"आचार्य का ब्रह्मचारी बनकर, आशीर्वाद देने ?"

"आचार्य ने क्या एसा ही कहा है ?"

"यही योजना स्थिर हुई है, और भी एक बात है।"

'क्या ?"

"मैंने वचन दिया है कि मै युवराज की रक्षा करूंगी। तुम यदि न करोगे तो मुझे करना होगा सोम।"

"मै जब तक जीवित हूं, मै करूगा, तुम केवल मेरा पथ प्रदर्शन करो। मुझे कुण्डनी, मै तुम्हारा अनुगत सोम हू।"

"तो सोम, प्रभात में हमें महालय चलना होगा, सारी योजना

वहीं स्थिर की जायगी। परन्तु अभी हमें एक काम करना है।"

"क्या ?"

"दीहदन्त के अड्डे पर जाना होगा।"

"वह तो बहुत दूषित स्थान है।"

"परन्तु हमें वहां जाना होगा।"

"क्यों ?"

"राजकुमार का पता वहीं लगने की सम्भावना है।"

"तो मैं वहां जाता हूं।"

"नहीं, हम तीनों को जाना होगा। न उन उस पापी को पहचानती है।"

"नाउन क्या इस अभियान में विश्वासनीय रहेगी ?"

"वह सर्वथा विश्वास के योग्य है।"

"तब जैसी तुम्हारी इच्छा।"

"तो हम लोग एक मुहूर्त में तैयार होती हैं। अभी एक दण्ड दिन है। ठीक सूर्यास्त के बाद हम वहां पहुंचना होगा। तब तक तुम भी एक लुच्चे मद्यप का रूप धारण कर लो।"

कुण्डनी का यह वाक्य सुनकर सोम अमयत होने पर भी हंस दिया।

कुण्डनी चली गई।

: ८२ :

दीह-दन्त का अड्डा

कुण्डनी ने कार्पास कचुक पहिन कुसुम्भ नमतक धारण किया, नेत्रो को अपाग से शृगारित किया। स्तनो पर कौशेय पट्ट बाधा, स्वर्ण-वलय भुजा में पहिने, अलक्त रागरजित चरणो मे झंकार युक्त नूपुर धारण किये, माथे पर जडाऊ बैन्दुल लगाया। फिर उसने हंसकर कहा—"ठीक हुआ नाउन ?"

"अभी नही," नाउन ने हसकर कहा। फिर उसने उठकर बहुत सा लोध्ररेणु उसके मुख पर पोत मुख को मैनसिल से लाछित कर दिया, स्याही से चिबुक और कपोल पर तिल बनाया और हाथो में रगीन हस्तिदन्त के चूडे पहनाए। फिर लम्बे कायबन्धन कमर में लटका चोलपट्ट पहनाया और तब कहा--

"अब हुआ।"

"तो अब तू भी साज सज।" कुण्डनी ने उसका भी अपना ही सा शृङ्गार किया। नाउन ने हसकर कहा--"समझ्या अभिनय करना होगा सखि, कर सकोगी ?"

"क्यों नही, परन्तु नई नई देहात से जो आई हू, अल्हड बछेडी हूं," कुण्डनी ने नाऊन की चुटकी भरते हुए कहा—"फिर बोली, चल, अब देखें नागर के कैसे रग है ?"

सोर ने एक नटखट नागर का उल्बण वेश धारण किया था। उसने शतवल्लिक धारण किया था और कण्ठ में मजरीक पहनी थी। कमर में कलाबुक मुरज बाधा था वह लाल उपानत पहन झट तैयार हो गया।

तीनों जब राजमार्ग पर पहुचे तो अलिन्द सूने थे, गवाक्षों के

कपाट बन्द थ, वीथियो में जहाँ तहा राजदीप जल रहे थे, परन्तु राजपथ का अन्धकार उनसे दूर नही हो रहा था।

दीहदन्त का अड्डा श्रावस्ती के जनाकीर्ण अतरालय में एक गन्दी और तग गली में था। वहा उस समय मिट्टी के दीप जल रहे थे। मद्य की दुर्गन्ध आ रही थी। मद्यप, द्यूतका, चोर, गलाकट, तथा निम्न श्रेणी के विट् विदूषक और लम्पट वहाँ बैठे मद्य पीते हुए भाति भाँति के गपोडे हाक रहे थे। बहुत से लोग अपशब्द बक रहे थे। बहुत से स्त्रियो के क्रय-विक्रय की बात कर रहे थे। एक जुआरी ने चार दम्म में अपनी स्त्री को एक मित्र के पास गिरवी रख दिया था, अब वह वहा बैठा लोगो से अपने उस मित्र का सिर फाड देने का सकल्प भी प्रकट कर रहा था और गोडीय मद्य के घूंट भी गले मे उतारता जा रहा था। एक दुबली पतली नवयुवती मदपायियो को चषक भर भर कर देती जा रही थी। मदमत्त ग्राहक उसे छेड २ कर गन्दी बातें बक रहे थे। लोग सुनकर हस रहे थे।

तीनो ने वहा पहुच कर एक अन्धकारपूर्ण स्थान में खडे होकर परामर्श किया। पहिले नाउन अड्डे म गई। उसे दीहदन्त देखते ही प्रसन्न हो गया। हसते हुए उसने कहा –

"अरी, तेरी जय रहे, रानी आज इतने दिन बाद किधर ?"

नाउन ने होठो पर उगली रख सकेत से उसे अपने पास बुलाया और कान मे धीरे से कहा––

"एक चिडिया फास लाई हू। अड्डे मे समज्या अभिनय करेगी, ग्राहको को मद्य देगी। अवसर पाकर बेच लेना। बीस दम्म से कम न मिलेगे ?"

"अरे वाह, यह तो बहुत बढिया बात है, वह क्या कोई अगारिका है ?"

"नहीं, नटनी है।"

"कोई हानि नहीं, किन्तु सुन्दरी है ?"

"देख ले, सुन्दरी क्या ऐसी बसी ?"

"तो उसे पिछले द्वार से भीतर ला, वहा आलोक मे देखू ।"

"पर कहे देती हू, दस दम्म लूगी । एक भी कम नही ।"

"पर पहिले माल तो दिखा ?"

'हा माल देखो, खूब खरा है ।"

नाउन बाहर आई और कुण्डनी को भीतर ले गई । कुण्डनी का रूप देख दन्ति की आखो मे धुन्ध छा गई ।

उसने हाथ मलते हुए कहा—"हन्द जे, तू क्या समझ्या अभिनय कर सकता है ?"

कुण्डनी न व्रीडा लास्य दिखाकर और क्षणिक मुस्करा कर सिर हिला दिया ।

"तब अच्छा है, तो नाउन, तू पाच दम्म ले, दखले, अभी नई है, बहुत खिलाना पिलाना सिखाना पडगा ।"

'नही रे, सिखाना नही, सब जानती है, देख ।"

उसने जाकर कुण्डनी को सकत किया ।

कुण्डनी ने जो नृत्य लास्य किया और रूप का उभार दिखाया तो उपस्थित चोर और हलाकू लम्पट वाह वाह करने लगे ।

जिस जुआरी न अपनी औरत को गिरो रख दिया था, उसन हाथ के दम्म उछाल कर कहा—'कह रे दीह, कितने मे बेचेगा इस दासी को ?"

उसके साथ वाले पुरुष ने उसे धकेलते हुए और बाह से होठों का मद्य पोछते हुए कहा—

"यह दासी मैं लूंगा, मुझे सौ दम्म को भी भारी नही ।"

इसी समय सोम नागरिक लम्पट का वेश धारण करके अड्डे में आ एक आसन पर बैठ गया । मद्य ढालने वाली लडकी ने सुराभाण्ड और चषक उसके आगे धर दिये । सोम ने घोड़े से स्वर्णखण्ड दीहदन्त के आगे फेंक कर कहा—"दे सबको मद्य ।" सब मद्यप प्रसन्न हो गये

और उसके चारो ओर आ जुटे। दीहदन्त ने उसे प्रसन्न करने को आसन्दी आसिक्तकोपधान पर उसे बैठाया। नाउन ने कहा—"यही वह हदन्त ?"

"वह कौन ?"

"राजपुत्र को जिसने उडाया है। देखते तो हो, कितना स्वर्ण है उसके पास।"

दीहदन्त ने हसकर कहा—"यह नही है, वह है।"

उसने दोनो उवारियो की ओर सकेत किया। नाउन ने उचककर उन्हे देखा और कुण्डनी को सकेत किया। कुण्डनी ने लीला विलास करके उन्हे सम्मोहित कर दिया। दोनो झगडा बन्द कर हंसने और मद्य पीने लगे।

सोम नाउन का संकेत पा उनके पास आ बैठा। उसने कहा—

"कह मित्र, दासी कैसी है ?"

'क्या कहने हैं मित्र, परन्तु इसे मै मोल लूंगा।"

"किन्तु मित्र, यह सहज नही है, इस दुष्ट दीह ने इसे राजकुमार विदूडभ को भेंट करने का सकल्प किया है ?"

"हाथ का मद्य पात्र रिक्त कर उसने हसते हुए कहा—'तो जाय यह कौशल दुर्ग मे।"

सोम के कान खडे हो गये। उसने कहा—

"कौशल दुर्ग मे इसे भेजना चाहिये मित्र, कोई कौशल कर, वह उसी नटी के सम्बन्ध मे उस दासी से बात कर रहा है। ले पी मित्र।" सोम ने मद्य पात्र उसके आगे करके कहा।

"बन्धुल मेरा मित्र है। वह सबका सेनापति है, मेरा नही। मेरा मित्र है।" उसने हसते हुए कहा।

"तो मित्र, फिर बाधा क्या है। बन्धुल सेनापति यदि कौशल दुर्ग में है, तो इस दीह को वही लाद दो। फिर दासी तेरी है, एक पण भी खर्च नहीं होगा।"

"मैं आज ही मित्र बन्धुल से कहूंगा, मित्र। रहस्य की बात है, बन्धुल मेरा चिरबाधित है।"

"और कुमार विदूडभ ?"

"ओह, उसकी क्या बात ? वह बन्दी है।"

'क्या सच ? यह क्या कहते हो मित्र,"

"चुप, कहने योग्य नहीं, यह उसी कौशल दुर्ग में बन्दी है।"

"नहीं मित्र, तुझे किसी ने भ्रमित किया है।"

"तू मूर्ख है मित्र, मैंने उसे स्वयं दुर्ग के बन्दीगृह में पहुंचाया है। अरे, जलगर्भ में बन्दी घर का द्वार है।"

"क्या कह रहा है मित्र, ले मद्य पी।"

और चषक पीकर उसने कहा--"क्या मेरी बात पर अविश्वास करते हो ?"

"विश्वास नहीं होता मित्र, तू झूठ बोलता है।"

"तो दांव बद।"

'मैं सौ दम्म दाव पर लगाता हूं।"

"क्या सौ दम्म ?" उस पुरुष ने आश्चर्य से आंखें फाड़ २ कर सोम को देखा।

"पूरे सौ दम्म, मित्र, उसने दम्मों से परिपूर्ण थैली निकाल कर दिखाते हुए कहा--"तो अभी दिखा, और सौ दम्म ले।"

"परन्तु रात है।"

"तो क्या हुआ।"

"राह अगम्य कानन में है।"

"अरे मित्र, यह खड्ग है। फिर मेरे पास बाहर दो बढ़िया अश्व हैं।"

"दम्म भी हैं, अश्व भी हैं, तब विलम्ब क्यों, चल मित्र अभी।"

"तब चल।"

दोनों व्यक्ति अड्डे से बाहर आये, और अश्व पर चढ़ एक ओर तेजी से बढ़कर अन्धकार में लीन हो गये।

*

: ८३ :

कोसल दुर्ग

श्रावस्ती से तीन कोस दक्षिण दिशा में सरयू के तट पर एक सुदृढ़ दुर्ग था। जो 'कौशल कोट' के नाम से प्रसिद्ध था। इस कोट के एक ओर नदी और तीन ओर खाई थी। दुर्ग का रूप वर्गाकार था। और इसकी हर एक भुजा सहस्र हाथ लम्बी थी। गढ की चारो दिशाओ मे दो विशाल मुख्य द्वार थे और आठ छोटे प्रवेश पथ थे। गढ की बाहरी प्राचीर मिट्टी की थी जो तीस हाथ ऊंची थी, और उसकी नीव का निचला भाग सौ हाथ मोटा था। प्राचीर के दोनो ओर तीन चार आयत विस्तार का मोटा पक्का मसाले का पलस्तर था। उसके बाद पक्की ईटो की पर्त लगी थी। जो छोटे २ आठ द्वार थे उनमे से प्रत्येक की चौडाई पच्चीस हाथ था। इन द्वारो के भीतरी भाग मे तेरह तेरह हाथ के और भी द्वार थ। इन द्वारो के पार्श्व भाग मे छोटे २ पांच छ हाथ चौडे और भी द्वार थे। सूर्यास्त के बाद बडे द्वारो के बन्द हो जाने पर कोट के निवासी इन्ही छोटे द्वारो से आते जाते थे। प्रधान द्वार के पार्श्व मे ऊचे २ तिरसठ हाथ लम्बे और अट्ठाईस हाथ चौडे चतुष्कोण गुम्बज थ, जिन पर चढने की सीढ़िया बनी हुई थी। दुर्ग मे बीचोबीच सोलह खम्भो पर सभा भवन टिका था। खाई और मुख्य द्वार को एक काठ का बहुत भारी पुल जोड़ता था। सूर्यास्त के बाद यह पुल रस्सियों से उठा दिया जाता था। उस समय दुर्ग मे आना किसी भांति सम्भव नहीं था। श्रावस्ती से बाहर आते ही अगम कान्तार लग जाता था, उसमें कोई मार्ग या वीथी नहीं थी। सम्पूर्ण कान्तार बड़े २ घने वृक्षो और गुल्मो से भरा था, वहां बहुत से हिंस्रजन्तु रात दिन विचरण

करते थे। सर्व साधारण की बात तो दूर रही, बड़े २ जीवट के आदमियों का भी उधर जाने का साहस नहीं होता था! दुर्दान्त डाकू, भीषण अपराधी, पक्के जुवारी, हत्यारे, राजविद्रोही आदि राजदण्ड से बचने के लिये ही इस महा कान्तार ने आश्रय लिया करते थे। दुर्ग में थोड़ी सी सेना भी रहती थी। परन्तु सब सैनिक रात को दुर्ग में नहीं रहने पाते थे। दुर्ग के मुख्य द्वार से कोई सहस्र हाथ के अन्तर पर एक छोटी सी बस्ती थी, इसी में इन सैनिकों का परिवार रहता था। सैनिक भी रात को वहीं चले जाते थे। दुर्ग पे केवल गिने हुए आवश्यक जन ही रह जाते थे। श्रावस्ती से एक घनाबदार कच्ची राह इस ग्राम तक आई थी।

दुर्गपति एक वृद्ध क्षत्रप थे। वे सपरिवार दुर्ग ही में रहते थे। उनकी आयु साठ को पार कर गई थी। डीलडौल के लम्बे, हाथ पैरों के मजबूत और साहसी आदमी थे। उनका कण्ठ स्वर बहुत भारी था और दृष्टि पैनी। परिवार में केवल एक किशोरी इकलौती पुत्री थी। उस जिस ने शिशुकाल से पोषण किया था, वह एक क्रीता काली दासी थी। दासी को दुर्गपति और उनकी पुत्री दोनों ही बहुत मानते थे। विधि विडम्बना से दुर्गपति भग्न हृदय थे। उन्होंने यह एकान्त एकनिष्ट जीवन स्वयं ही महाराज प्रसेनजित् से मांग लिया था। गत् सत्रह वर्षों से वे निरन्तर इसी दुर्ग में रह रहे थे। एक बार भी वे इससे बाहर कभी निकले नहीं। इस दासी के सिवा एक दास भी उनका था। वह वज्र जड था। वह निपट बहरा और गूंगा था, परन्तु उसमें एक सांड के बराबर बल था। इसे दुर्गपति ने बहुत बाल्यावस्था में तीर्थ-यात्रा करते हुए अनार्य देश से मोल खरीदा था।

मालिक की भांति दुर्गपति के दोनों सेवक भी विश्व के संबंधों से पृथक् थे। ये दोनों भी कभी किसी नगर में नहीं गये। हां, दास और कभी २ दासी भी उस निकटवर्ती गांव में अवश्य चली जाती थीं।

इन चार मूल प्राणियों के सिवा रात को पुल बंद होने के बाद

केवल आठ सिपाही दुर्ग में रह जाते थे। वे केवल दुर्ग द्वार पर पहरा देते थे।

दुर्ग के पश्चिम मुख्य द्वार के निकट, जिधर गहन कान्तार पड़ता था एक दृढ प्रकोष्ट पत्थरों का बना था। यह वास्तव में बन्दीगृह था। बन्दीगृह में कोई प्रकोष्ठ प्रकट प्रवेश द्वार न था। केवल छत के पास एक आयतमर का छिद्र था। इस छिद्र के द्वारा ही बन्दी को वायु, अन्न, जल और प्रकाश प्राप्त होता था। गुप्तद्वार जल के भीतर था। द्वार के ऊपर एक अलिन्द था, जिसमे दृढ़ लौह फलक जड़े थे। उस अलिन्द मे, जब वहां कोई बन्दी रहता था, तो आठ प्रहरी खास तौर पर बन्दी घर पहरा देने रात दिन नियत रहते थे।

खाई के उस पार इस बन्दीघर के ठीक छिद्र के सामने एक छोटी सी पक्की दुमंजिला अट्टालिका थी। यह अट्टालिका प्रायः सदा बन्द रहती थी, कभी २ इसमें रहस्यपूर्ण रीति से कोई राजपुरुष दो चार दिन को आ ठहरते थे। वहां तक दुर्ग के उस ओर वाली बस्ती को केवल एक छोटी सी पगडण्डी चली गई थी। बस्ती में सिपाहियों के घरों के सिवा कुछ घर कृषकों के भी थे। उन्होंने आसपास की थोड़ी सी भूमि साफ करके अपने खेत बना लिये थे। कुल बस्ती में केवल एक दुकान मोदी की थी, तथा एक पानागार था। रात्रि को बहुत देर तक उसी पानागार में चहल पहल रहती थी। बस्ती के रहने वाले प्रायः वहां बैठकर गप्प करते हुये गप्पें उड़ाया करते थे।

इस समय दुर्ग में एक बन्दी था। इससे बन्दीगृह के बाहरी अलिन्द में आठ सशस्त्र सैनिकों का पहरा बैठा था। और खाई के उस पार जो घर था उसमें भी मनुष्यों के रहने का आभास मिल रहा था। परन्तु नियमित रूप से जैसी व्यवस्था चली आ रही थी, दुर्ग में वैसी ही चल रही थी। दुर्गपति साधारण नित्य नियम से रह रहे थे। केवल बन्दीगृह के प्रान्त को छोड़ कर और कहीं कुछ नवीनता नहीं प्रकट हो रही थी।

: ८४ :

नर्म साचिव्य

कीचड और मिट्टी में लतपत सोमप्रभ ने सूर्योदय से प्रथम ही घर में प्रवेश किया। उनका अश्व भी बुरी तरह थक गया था। कुण्डनी और नाउन तमाम रात जागती रह कर सोम की प्रतीक्षा करती रही थी। अब कुण्डनी ने कुछ आश्वस्त होकर किन्तु सन्देह भरे नेत्रों से सोम को देखा। सोम ने सक्षेप में कहा—"कुण्डनी सब देख आया हू। राजकुमार को छुडाना सहज नही ह, परन्तु चला, अब हम राजमहिषी से पहले मिलले। मै अभी एक मुहूर्त मे तैयार होता हू। तुम भी तैयार हो लो।"

और बातें नही हुई। सोम ने नित्यकर्म से निवृत्त हो खूब डटकर स्नान किया। आपाद श्वेत कौशेय धारण किया। मस्तक पर चन्दन का तिलक लगाया। सिर पर भंगपट्ट बाधा। उत्तरासग को ब्रह्मचारी की भाति कन्धे पर डालकर कहा—"कुण्डनी, अब इस वेश में खड्ग ले में नहीं ले जा सकूगा।"

"उसकी आवश्यकता नही सोम।"

"क्यो नहीं, शत्रु के अन्तःपुर में छद्म वेश में प्रवेश करना होगा, फिर दिनदहाड, तू कहती है कि खड्ग की आवश्यकता नहीं।"

"नहीं ह सोम, हम शत्रु का उपकार करने उसाका नियक्ति पर आरहे ह।"

विशेष बातचीत नहीं हुई। तीनों जन चलकर राजद्वार पर पहुंचे। नाउन ने पुष्प करडिका और गगाजल की झारझर साम के हाथ में देदी। कुण्डनी और नाउन का द्वारी से परिचय था अत. उसने द्वार देदिया तीनों टेढ़ी तिरछी वीथियों को पार करत हुए कलिङ्गसेना महिषी के हर्म्य में पहुच गये।

आचार्यके सम्बल वही उपस्थित थे । देवी नन्दिनी भी तुरन्त आ उपस्थित हुई ।

सोम ने भूमिका न बढ़ा कर कहा—"आचार्य, राजकुमार कोसल दुर्ग मे बन्दी है, वहाँ से उनकी मुक्ति सहज नही होगी ?"

"परन्तु सौम्य, तुझे अपना पराक्रम दिखाना होगा । यह तेरी कोशल राजवश पर भारी अनुकम्पा होगी ।"

नन्दिनीदेवी ने आखो में आसू भरकर कहा—'कोसलगढ़ को मैं जानती हू भद्र, महाराज ने वहा मेरे पिता को बन्दी कर दिया था । उन्होने मेरा समर्पण महाराज को करके अपना उद्धार किया था ।"

कलिङ्गसेना ने दृढ़ स्वर में कहा—"भद्र, यदि तुम्हे कुछ असुविधा हो तो मै स्वय कोसल दुर्ग में खड्गहस्त जाऊगी । तुम्हे जो कुछ विदित है, वह कहो ।"

"नही भद्रे, मै जीवन के मूल्य पर भी राजकुमार का उद्धार करूगा ।" सोम ने धीरे से कहा ।

"साधु, साधु, भद्र, ऐसा ही होना चाहिए । मै कारायण को तुम्हारी सहायता के लिये कह दूंगा ।"आचार्य ने गद्गद् होकर कहा ।

सोम ने कहा—

"आचार्य, वहा युक्ति बल से काम चलेगा । बन्दीघर का द्वार जल मग्न है । उसमे एक भारी यन्त्रक जडा है । उसकी सूत्रेका चाहिए , यह एक बात है ।"

"दुर्ग के बाहर मल्ल बन्धुल स्वय पचास भटों के साथ अत्यन्त सावधानी से बन्दी पर पहरा देरहा है । उससे सम्मुख युद्ध नही हो सकता है । कूट युद्ध करना होगा, यह दूसरी बात है ।"

"हम लोग दुर्ग पर आक्रमण करके बलपूर्वक युवराज का उद्धार करेगे, इसका गुमान भी यदि बन्धुल को होगया तो वह राजकुमार की हत्या कर सकता है । अभीतक उसने जो उन्हे हनन नही किया, इसका कारण यही प्रतीत होता है कि वह उनसे महाराज का पत्ता

पूछना चाहता है। यह तीसरी बात है।"

'दुर्गपति बड़ा कठोर और एकान्त व्यक्ति है। बन्दी के गुह द्वार की सूत्रिका उसी के पास रहती है, वहाँ से उसका प्राप्त होना असम्भव है। यह चौथी बात है।"

"दुर्ग में बाहर भीतर सब मिलाकर भी आदमी है। जिनमें पचास भट बन्धुल के साथ अट्टालिका में है। शेष उस गाव मे। दुर्ग में केवल दो दो भट एक एक प्रहर बन्दीगृह पर पहरा देते है, परन्तु आवश्यकता होने पर तुरन्त सहायता प्राप्त हो सकती है।"

आचार्य ने सब सुनकर कहा—'क्या तुमने कोई योजना निश्चित की है सौम्य ?"

'की है, किन्तु वह अपूर्ण है आचार्य, मै प्रतीक्षा कर रहा हूं।"

"किसकी भद्र ?"

"एक लम्पट धूर्त की ?"

"किस अभिप्राय से ?"

"वह युवराज को उड़ाने के षड्यन्त्र में सम्मिलित था। उसने स्वर्ण लेकर मुझे अपना सब भेद बता दिया है, और सूत्रिका को सिक्थ मुद्रा मुझे ला देने का वचन दिया है। वह मुझ दो दण्ड दिन चढ़े तक मिलेगा। वह अपने उद्योग में सलग्न है।'

"क्या भद्र, वह छल नही करेगा ?" देवी नन्दिनी ने कहा।

'आशा तो नहीं है देवी, उसे भारी पारश्रमिक मिल चुका है। केवल सूत्रिका सिक्थ मुद्रा ला देने से ही उसे सहस्त्र स्वर्ण की प्राप्ति और होगी, जो वह जीवन भर मे सग्रह नहीं कर सकता।"

"कहो भद्र, तुम हमें क्या करने को कहते हो ?" गान्धार पुत्री कलिङ्गसेना ने सुनील नेत्रो से उसकी ओर देख कर कहा। "मै अपनी सामर्थ्य से दुर्ग में पहुंच भर सकती हू, परन्तु यह क्या यथेष्ट होगा ?"

"नही भद्रे, यथेष्ट भी न होगा और उचित भी नही होगा।"

"किन्तु भद्र, यदि तुम्हें सिक्थ मुद्रा न मिली ?" आचार्य ने चिन्तित भाव से पूछा।

"तो भी मैं देख लूंगा आचार्य, किन्तु मैं अभी एकबार सेनपति कारायण से मिलना चाहता हूं। हां, आपको राजपुत्र की कब आवश्यकता होगी?"

"कल तीन दण्ड सूर्य चढ़ने पर। वही मुहूर्त अभिषेक का है। अभी तक महाराज और राजपुत्र दोनों के अपहरण के समाचार अप्रकट हैं। सब यही जानते हैं, महाराज देवी के प्रासाद में हैं। यही मैं भी कहता हूं। मैं कल सूर्योदय होते ही यज्ञानुष्ठान साधारण रीति पर प्रारम्भ कर दूंगा। तीन दण्ड दिनमान होने पर महाराज को अभिषेक की वेदी पर आना होगा।"

"तो आचार्य जैसे भी होगा मैं ठीक समय पर राजपुत्र को अभिषेक वेदी पर ला बैठाऊंगा। यदि न ला सकूं तो यही समझना कि सोमप्रभ जीवित नहीं है।"

वह एक बारगी ही उठ कर चल दिये। सबके हृदय आतंकित हो गये। कुण्डनी और नाउन ने उनका अनुगमन किया। सब स्तब्ध थे।

: ८५ :

कठिन अभियान

सब योजना ठीक कर ली गई। सिन्ध मुद्रा मिल गई। उस पर से सूत्रिका बन गई। नाउत को संग लेकर कुण्डनी ने एक प्रहर दिन रहे भटनी के वेश में दुर्ग की ओर प्रस्थान किया। चलती बार वह अपनी विषदग्ध कटार को यत्न से वेणी में छिपाना नहीं भूली।

सोम ने दिन भर सो कर काटा था। सूर्यास्त के समय उन्होंने सुवर्णाङ्ग पर तैलाभ्यंग किया, एक कोपीन कसी और कठिन कंचुक पहन एक क्षोम प्रावार से शरीर को लपेट लिया। खड्ग उन्होंने वस्त्र में छिपा लिया।

साम्ब को एक मजबूत बड़ी रस्सी और दण्डसन्धक दी गई। एक छोटा धनुष और कुछ बाण भी उसे दिये गये। उसे भी तैलाभ्यक्त कर कोपीन धारण कराया गया। इसके बाद दोनों ने एक दण्ड रात्रि व्यतीत होने पर गहन कान्तार में प्रवेश किया।

इसी समय कात्यायन ने अपने दो सौ सैनिकों की टुकड़ी लेकर दूसरे मार्ग से कोसल दुर्ग की निकटवर्ती अट्टालिका की ओर कूच किया।

कान्तार भूमि सोम ने भली भांति देखकर मार्ग की शोध कर ली थी, इसलिए अन्धकार होने पर भी वे दो मुहूर्त में ही दुर्ग के दक्षिण द्वार के सामने पहुंच गये। अपने अश्वों को उन्होंने कान्तार में छिपा कर लम्बी बागडोर से बांध दिया। इसके बाद उन्होंने निःशब्द दुर्ग द्वार की ओर प्रयाण किया।

द्वार के बाहर जो अट्टालिका थी, उसमें काफी चहल पहल थी। उसमें से नृत्य गीत की, और बीच २ में मनुष्यों के उच्च हास्य की ध्वनि आ रही थी। सोम ने समझ लिया कि यहां कुण्डनी का रंग

जमा हुआ है। बन्दी घर के ऊपर अलिन्द में प्रकाश न था। परन्तु दो छायामूर्तियां वहां घूमती दीख रही थीं। सोम पार्श्व में पूर्व की ओर घूम कर एक अश्वत्थ वृक्ष के निकट पहुंचे। अश्वत्थ के तने में उन्होंने रस्सी का एक सिरा दृढता से बांधा, तथा दूसरे को अच्छी तरह कमर में बांध लिया। साम्ब से कहा—'साम्ब, सामने केवल दो छाया मूर्ति अलिन्द में दीख रही हैं। आवश्यकता होने पर वे आठ हो सकती हैं। इससे अधिक नहीं। ध्यान से सुन, मैं जल में जाता हूं। तू रस्सी को थामे रह, ज्यों ही वह ढीली प्रतीत हो तू तुरन्त वृक्ष पर चढ़कर छिप कर यत्न से बैठ जाना। तेरे तरकस में सोलह बाण हैं। याद रख, एक भी बाण व्यर्थ न जाय, और अलिन्द पर एक भी जीवित पुरुष खड़ा न रहने पावे। परन्तु प्रथम रस्सी का ध्यान रखना।"

साम्ब ने सिर हिला कर स्वीकार किया। वह दण्डसत्वक को हाथ में ले दूसरे हाथसे रस्सी को थाम खाई के किनारे बैठ गया। सोम ने चुपचाप जल में प्रवेश कर निश्शब्द डुबकी लगाई। रस्सी की खिंच बढ़ गई। वह वृक्ष के तने में अच्छी तरह बंधी हुई थी। साम्ब उसको छोर हाथ में लिये ध्यान से उसका तनाव देख रहा था।

सोम निश्शब्द जल के भीतर ही भीतर बन्दी गृह के द्वार पर जा पहुंचे। थोड़े ही यत्न से द्वार सुरंग उन्हें मिल गई। वे द्वार सुरंग में प्रविष्ट होगये। सुरंग सीढ़ी की भांति उन्नत होती गई थी। दस पैंड़ी ऊपर जाने पर उनका सिर जल से बाहर निकला। क्षण भर ठहर कर उन्होंने श्वास ली। और रस्सी कमर से खोल दी। फिर वे और चार पांच पैंड़ी चढ़े। अब उन्हें वह लोह द्वार मिला, जहां भारी यन्त्रक लगा था। सूत्रिका उनके पास थी, उससे उन्होंने यन्त्रक खोल डाला। गुहा में घोर अन्धकार था। वायु का भी वहां प्रवेश न था। उस छोटी सी जगह में उनका दम घुट रहा था। यन्त्रक खोलते ही वे एक दूसरी छोटी सी कोठरी में जा पहुंचे। जो चारों ओर से पत्थरों दीवारों से घिरी थी। उसमें कोई दूसरा द्वार न था। प्रकाश का

साधन सोम के पास न था, वे टटोल २ कर चारों ओर उस कोठरी में घूमने लगे। वे सोच रहे थे, यदि यही बन्दी गृह है तो बन्दी कहाँ है ? यदि बन्दीगृह और है तो उसका मार्ग क ा है ? परन्तु उन्हे इसका कोई भी निराकरण नहीं मिल रहा था। वे अन्तत एक बार विमूढ़ हो उसी कोठरी मे बं गये।

उधर, ज्यो ही सोम ने रस्सी कमर से खोली, रस्सी ढीली हो गई। शाम्ब आश्वस्त हो हंसते हुए रस्सी का सिरा छोड़ अश्वत्थ पर चढ़ गया, और अच्छी तरह डालना मार आसन जमा बैठ गया। बठ कर उसने ध्यानपूर्वक अलिन्द की ओर देखा। दो छाया मूर्ति वहाँ अन्धकार में घूम रही थीं। शाम्ब ने बाण सीधा किया और कान तक तानकर छोड दिया, बाण उस व्यक्ति की पसलियों को चीरता हुआ फेफड़े में अटक गया, वह व्यक्ति झूम कर अलिन्द के किनारे तक आया और छप से जल में गिर गया। दूसरे व्यक्ति को यह पता नहीं लगा कि क्या हुआ। वह आश्चर्यमुद्रा से झुककर उस पुरुष को देखने लगा। इसी समय दूसरे बाण ने उसके कन्धे में घुसकर उसे भी समाप्त कर दिया। वह पुरुष भी वहीं अलिन्द म झूम पड़ा।

शाम्ब अपनी सफलता पर बहुत प्रसन्न हुआ। और वह अब ध्यान से तीसरे शिकार की ताक में बैठ गया। थोड़ी ही देर में दो सैनिक बातें करते हुए अलिन्द में आए और प्रहरी को इस भांति लटकते देख उनमें से एकने उसका नाम लेकर पुकारा। उत्तर न पाकर वह निकट आया। निकट आकर देखा—वह पुरुष मृत है। एक बाण उसके अंग में घुस गया है। दोनो प्रहरी भयभीत हो एक दूसरे को देखने लगे, इसी समय शाम्ब का तीसरा बाण सनसनाता हुआ आकर उनमें से एक के वक्ष गह्वर में पार हो गया। वह पुरुष रक्त वमन करता हुआ वहीं गिर गया।

दूसरे सैनिक ने आतंकित हो तुरही फूंकी। तुरही की तीव्रध्वनि घूम्र रात्रि में दूर २ तक घूम उठी। इसी समय शाम्ब का चौथा बाण

उसके कण्ठ के आर पार हो गया। तुरही उसके हाथ से छूट पड़ी। वह मृत होकर वहीं गिर गया।

परन्तु तुरही का शब्द अट्टालिका के लोगों ने सुन लिया। शब्द सुनते ही वहां के मनुष्यों में प्रगति प्रकट हुई। वाद्य नृत्य बन्द हो गया और मनुष्यों की दौड़ धूप, चिल्लाहट के शब्द सुनाई देने लगे। शस्त्रों की झनझनाहट भी सुनाई देने लगी।

कारायण अपने दो सौ भटों को लिये पूर्व नियोजित योजना के अनुसार इस अट्टालिका के चारों ओर अत्यन्त अप्रकट रूप से घेरा डाले पड़े थे। उन्होंने सैनिकों को आवश्यक आदेश दिये और वे अट्टालिका से बाहर निकले मनुष्यों पर प्रहार करने को सन्नद्ध हो गये। परन्तु यह देखकर उनके आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा कि अट्टालिका का प्रकाश बुझ गया। वहां सन्नाटा छा गया। किसी जीवित प्राणी का वहां रहने का आभास ही नहीं रहा।

सेनापति कारायण अब विमूढ़ होकर सोचने लगे कि क्या करना चाहिये। इसी समय दुर्ग में विपत्ति सूचक घण्ट बजा और निकटवर्ती ग्राम से सोते हुए सैनिक शस्त्र सन्नद्ध होकर दौड़ते हुए दुर्ग की ओर दौड़ते दीख पड़े। खाई पर बड़ी २ चक्रियां काष्ठ के भारी पुल को गिराने लगीं। कारायण ने यह देख अपना कर्त्तव्य निश्चय कर लिया। उन्होंने पचास भट छांट कर अपने साथ लिये। शेष डेढ़ सौ सैनिक अपने अधिनायकों की अधीनता में तीन टुकड़ियों में विभक्त किये। पहली टुकड़ी के नायक को आदेश दिया—कि वह तुरन्त दुर्ग द्वार पर प्रच्छिन्न भाव से जाकर खाई के पुल पर अधिकार कर ले। दुर्ग में किसी शत्रु सैनिक को प्रविष्ठ न होने दे। प्रत्येक सैनिक को सामने आते ही जान से मार डाले। नायक अपने सैनिक लेकर तब पैर दुर्ग द्वार की ओर दौड़ चला।

दूसरे नायक को सेनापति ने आदेश दिया कि वह घूमकर पश्चिमी

दुर्ग द्वार के चारों ओर फैल जाय। और ग्राम से आये हुए सैनिकों को काट डाले। नायक के उधर चले जाने पर सेनापति ने तीसरी टुकड़ी के नायक को आज्ञा दी कि मैं अट्टालिका पर आक्रमण करता हूं। तुम बाहर से इसकी रक्षा करना। किसी भी सैनिक को भीतर मत घुसने देना। इतनी व्यवस्था कर सेनापति ने अपने पचास भट लेकर अट्टालिका पर आक्रमण किया। साधारण आघात से द्वार भग्न हो गया। परन्तु उसे यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हो रहा था कि अट्टालिका में इतने आदमियों की चहल पहल थी, प्रकाश था, वहां से गान वाद्य की ध्वनि आ रही थी और वहां से एक भी जन बाहर निकला नहीं है। क्या कारण है कि अब वहां एक बारगी ही सन्नाटा छा गया? क्या भूमि मनुष्यों को निगल गई? कारायण सेनापति ने सैनिकों को प्रकाश करने का आदेश दिया। प्रकाश में उन्होंने मान पान के अवशेष देखे परन्तु मनुष्य नहीं। उन्होंने अत्यन्त सावधानी से प्रत्येक प्रकोष्ठ को, प्रत्येक कोष्टक को देखना प्रारम्भ किया। एक प्रकोष्ठ में उन्हें कुण्डनी और नाउन को वस्त्र खण्ड से बंधी हुई पड़ी देखा। सेनापति ने उन्हें बन्धन मुक्त करके उनके मुंह में ठूंसा हुआ कपड़ा निकाला। सेनापति कुण्डनी और उनकी सगनी से परिचित न थे। उन्होंने उनसे पूछा—

"तुम कौन हो और कक्ष के और आदमी कहां हैं?

कुण्डनी ने पूछा—"क्या आप सेनापति कारायण हैं?"

'हां, मैं कारायण हूं।"

"तो सेनापति, संकट सन्निकट है, शीघ्रता कीजिये वह गर्भद्वार है। वहां सोलह सशस्त्र भट गए हैं। सम्भव है सोमभद्र से उनका संघर्ष हो जाय। भीतर गर्भगृह में सोम एकाकी गये हैं।"

कारायण ने नग्न खड्ग लेकर गर्भगृह में प्रवेश किया। परन्तु वहां अधिक जन नहीं जा सकते थे। सेनापति ने सोलह भट छांट लिए।

सम्बी और पतली गुहा में चलते २ उन्होंने चार सशस्त्र तरुणों को

सामने देखा। इन्हें देखते ही वे इन पर , पड़े, परन्तु सेनापति ने क्षण भर ही में उन्हें काट डाला। आगे उन्होंने एक लोह द्वार को देखा जो बन्द था। सेनापति उसे देखकर हताश होकर । वे द्वार तोड़ने या खोलने का उद्योग करने लगे।

कुण्डनी ने नाउन से कहा—"धन्यो हला, अब हम अपने उद्योग का दूसरा प्रकरण पूरा करें। बाहर कहीं साम्ब है, पहिले उसे देखना होगा। निश्चय उन्हीं की प्रतिक्रिया होने से सैनिकों ने तुरही नाद किया था, इससे वह बन्दीगृह के उस ओर कहीं होगा।"

इतना कह कुण्डनी नाउन का हाथ पकड़ कर बाहर आई। उसने उसी अश्वत्थ वृक्ष के नीचे खड़ा होकर संकेत किया। साम्ब झट वृक्ष पर से कूद पड़ा।

कुण्डनी ने कहा—"साम्ब तेरा स्वामी कहाँ है?"

"वे जल में गये हैं।"

"कितना विलम्ब हुआ है?"

"बहुत, एक दण्ड काल।"

"तो साम्ब, वे विपद में पड़ सकते हैं, तू साहस कर।"

साम्ब ने हुंकृति की।

कुण्डनी ने कहा—'वह बन्दीगृह देख रहा है?"

साम्ब ने सिर हिलाया। कुण्डनी ने कहा—'उसका प्रवेश द्वार जल मग्न है। तू गोता लगा, ठीक उस अलिन्द के मध्य भाग के नीचे तुझे एक गुहा छिद्र मिलेगा, वह उन्नत सोपान है, उसमें घुसकर तू बन्दीगृह में पहुंचेगा। उसी में तेरे स्वामी का मित्र बन्दी है। जिसके उद्धार के लिये सोम वहां एकाकी गये हैं, परन्तु उनके सामने सशस्त्र योद्धा है, साम्ब तू साहस कर।'

साम्ब ने दण्ड सदृश्य दृढ़ता से हाथ में थामा, और धनुष बाण कुण्डनी को देकर कहा—"इसमें से केवल चार बाण कम हुए हैं, बारह बाण अभी तूणीर में हैं, इससे देवी की रक्षा हो सकती है, मेरे

लिये यह यथेष्ठ है।" उसने हसकर दण्डसत्थक की ओर सकेत किया।

कुण्डनी ने धनुष बाण ले लिया। साम्ब ने रस्सी का छोर कमर से बाधते हुए कहा—"यह रस्सी थाम्हे रहे देवी, जब यह ढीली हो तो समझना, साम्ब ठीक स्थान पर पहुच गया।" "कुण्डनी ने रस्सी थाम्ह ली। साम्ब ने धीरे से जल में प्रवेश किया और अदृश्य हो गया। थोड़ी ही देर मे रस्सी ढीली हो गई।

कुण्डनी ने नाउन से कहा—"हला, सोम को यथायता पहुंच गई, इधर से भी और इधर से भी, अब हमें इस अश्वत्थ पर चढ़कर बैठना चाहिए, तथा परिणाम की प्रतीक्षा करना चाहिये।"

सोम उस कोष्टक मे चारो ओर घूमते, हाथो से टटोलते, खड्ग की मूठ से दीवार और फर्श ठोकते परन्तु कोई फल न होता था, वहा से कहीं जाने का कोई द्वार नहीं दीख पडता था। वे हताश होकर बैठ जाते और फिर उद्योग करते। बहुत देर बाद उन्हे कोठरी मे प्रकाश का आभास हुआ। वे ध्यान से देखने लगे कि प्रकाश कहा से आया। उन्हें कुछ ही क्षणो मे प्रतीत हो गया कि ऊपर छत में एक छिद्र है, प्रकाश वहीं से आ रहा है। इसी समय चार मनुष्य उस छिद्र में से उस कोष्ठक में कूद पड़े। एक के हाथ में प्रकाश था। सोम उन्हें देख फुर्ती से गुप्तद्वार में छिप गये। चार मनुष्यों में से एक ने कहा—'मैं बन्दी को देखता हू-तुम यहीं यत्न से द्वार की रक्षा करो,' उसने किसी युक्ति से तल भूमि की एक शिला को हटा दिया और उसमे घुस गया। सोम ने देखा, वह मल्लबन्धुल था।

सोम एक बारगी ही खड्ग लेकर उन मनुष्यों पर टूट पड़े। वे मनुष्य भी साधारण भट न थे। सोम ने क्षण भर ही म कठिनाई को समझ लिया। सोम चाहते थे कि वे बन्धुल का अनुगमन करके दूसरे कक्ष में प्रविष्ट हों, परन्तु तीनों भटों ने कठिन अवरोध किया। प्रारम्भ ही मे सोम एक घाव खा गये।

इसी क्षण साम्ब ने कोष्ठक में प्रवेश कर दण्ड हस्थक का एक भर-

पूर हाथ एक भट के सिर पर मारा, जिससे उसके कपाल के दो खण्ड हो गये और रक्त की वित्ताभर फव्वार उठ खड़ी हुई। ठीक समय पर साम्ब का साहाय्य पाकर सोम ने हर्ष से चिल्लाकर कहा—"वाह साम्ब, खूब किया, रोक इन दोनों को, मैं भीतर जाता हूं।" और सोम दुर्धर्ष वेग से खड्ग फेंकते हुए तनभूमि में प्रविष्ट हो गये।

बन्धुल खड्ग ऊंचा किये विदूडभ का हनन करने आ रहा था। बन्धुल ने कहा—"दासीपुत्र कह, महाराज कहां है? या मर।" विदूडभ लौह शृङ्खला से आबद्ध दीवार में चिपके हुए चुपचाप खड़े थे। उनके ओठ परस्पर चुपक गये थे, आंखों से घृणा और क्रोध प्रकट हो रहा था। सोम ने पहुंच कर बन्धुल को ललकारते हुए कहा—"बन्धुल, शृङ्खलाबद्ध बन्दी की हत्या से तेरा वीरत्व कलुषित होगा। आ इधर, मैंने अभी तक मल्लों का खड्ग देखा नहीं है।"

"तब देख, तू कदाचित् वही चोर की भांति अन्तःपुर में घुसने वाला मागध है।" बन्धुल ने घूमकर कहा।

"वही हूं बन्धुल।"

"तब ले।"

बन्धुल ने करारा वार किया। सोम यत्न से बचाव और वार करने लगे। दोनों अप्रतिम सुभट उस छोटे कक्ष में भीषण खड्ग युद्ध में व्यस्त हो गये।

युवराज विदूडभ ने चिल्लाकर उच्च हो कहा—"अरे वाह मित्र, ठीक आए। परन्तु खेद है कि मैं सहायता नहीं कर सकता।" फिर भी उन्होंने आगे बढ़ कर शृङ्खलाबद्ध दोनों हाथ जोर से बन्धुल के सिर पर दे मारे। बन्धुल के सिर से रक्त फूट पड़ा, उसने पलट कर खड्ग का राजकुमार पर एक वार किया। इसी क्षण सुयोग पा सोम ने बन्धुल के वामस्कन्ध पर एक भरपूर हाथ मारा। बन्धुल और राजकुमार दोनों ही गिरकर तड़पने लगे।

सेनापति कारायण हताश होकर जब गर्भमार्ग में औहार्गल को

खोल नहीं सके तो उन्होंने द्वार भङ्ग करने का उद्योग किया। इसी समय द्वार खुला और कुछ भट सामने दीख पड़े। ये भट बन्धुल के थे, जो नीचे बन्दीगृह में युद्ध होता देख सहायता को लौटे थे। परन्तु सामने शत्रु को देख वे पीछे भाग पड़े। कारायण भी उनके पीछे अपने भट ले कर भागे। उनके पास प्रकाश था, भागने में बाधा नहीं हुई। बन्धुल के भट छत के छेद से प्रकोष्ट में कूद पड़े। यही कारायण ने किया। इस समय एक भट साम्ब से जूझ रहा था। इनमें से एक ने साम्ब पर प्रहार किया और वह भीतर तनबृह में घुस गया।

ठीक इसी समय बन्धुल और युवराज घायल हो कर गिरे थे। सोम ने आहट पाकर पीछे शत्रु को देखा, परन्तु उनके पीछे कारायण और उनके भटों को आते देख हर्षनाद किया।

देखते ही देखते सब भट काट डाले गये। बन्धुल को बन्दी कर लिया गया। तथा आहत राजकुमार को लेकर वे सब गुप्त मार्ग से चल कर दुर्ग के बाहर अट्टालिका में लौट आए।

बाहर कारायण के सैनिकों ने अनायास ही दुर्ग रक्षक सेना के सिपाहियों को मार डाला था। वे सावधान नहीं थे, इससे कुछ प्रतिरोध भी न कर सके।

दुर्गपति ने जो विपत्ति घण्ट बजाया था। उसे सुन कर जो सैनिक निकट के गांव से सहायतार्थ दौड़ थे उन्हें मार कर कारायण के सैनिकों ने पुल पार कर दुर्गपति को सपरिवार बन्दी कर लिया था। दुर्गपति इस आक्रमण से सर्वथा असावधान थे। वे कारायण के सैनिकों को अपने सैनिक समझे थे।

दिन का प्रकाश इस समय तक पूर्वाकाश में फैल गया था। कुण्डनी और नाउन अश्वत्थ पर चढ़ी सब गति विधि देख रही थी। अट्टालिका में अपने आदमियों को फिर से लौटा हुआ समझ वे भी वृक्ष से उतर कर वहीं आ गईं।

सोम और विदूडभ दोनों आहत थे। कुण्डनी ने नाउन की सहायता

से उनके घाव बाध। इसके बाद उन्होंने साम्ब को चारो ओर देखा। साम्ब वहा नहीं था। सब लोग साम्ब को भूल ही गये थे। सोम को याद आया कि साम्ब को हमने गर्भगृह म युद्ध करते छोडा था।

कुछ सनिक फिर गर्भगृह में गय परन्तु साम्ब वहा नहीं था।

सबके चले जाने पर गर्भगृह मे अन्धकार हो गया। साम्ब समझ ही नही सका कि सब कहा लोप हो गए। अपने प्रतिद्वन्दी को भूपतित करके साम्ब न मार्ग की बहुत खोज टटोल की। अन्तत वह उसी जल गमस्थित मार्ग से लौटा। जब सब कोई साम्ब के लिये चिन्तित थे, कुण्डनी ने उसे जल मे तरते हुए देखा। जल से निकल कर वह स्वामी के निकट आया। वह बहुत प्रसन्न था।

बन्दियो को सेनापति कारायण को सौंप, सोम न शरीर रक्षक सैन्य सहित आहत राजकुमार को लेकर तुरन्त राजधानी की ओर कूच किया साम्ब, कुण्डनी और नाउन भी उन्ही के साथ चल दिये।

: ८६ :

अभिषेक

यज्ञ मण्डप में बड़ी भीड़ थी। अध्वर्यु और सोलहों ऋत्विक् अभिषेक द्रव्य लिये उपस्थित थे। अनुगत राजा, क्षत्रप, माण्डलिक, गणपति, निगम, श्रेष्ठि, गृहपति, सामन्त और जानपद सभी एकत्रित थे। राजा की प्रतीक्षा हो रही थी। राजा अन्तःपुर से नहीं आ रहे थे। राजा के इस विलम्ब के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की अटकलें लगाई जा रही थीं। बहुत लोग बहुविधि कानाफूसी कर रहे थे।

आचार्य अजितकेसम्बल ने उच्च स्वर से कहा—"अभिषेक का महायोग उपस्थित है, यजमान यज्ञभूमि में आकर वेदी पर बैठें।"

इसी समय यज्ञभूमि के प्रांत भाग में कोलाहल होने लगा। क्षण-भर बाद ही सोमप्रभ रक्त से भरा खड्ग हाथ में लिये हुये, रक्तप्लुत घायल राजपुत्र विदूडभ को सम्मुख किये, हठात् यज्ञ भूमि में घुस आये। नग्न खड्ग हाथ में लिए कारायण और उनके भट उनके पीछे थे। यह दृश्य देख कर चारों ओर कोलाहल मच गया। अनेक क्षत्रपों, राजाओं और माण्डलिकों ने खड्ग खींच लिये। सेना में भी हलचल मच गई और चारों ओर कोलाहल होने लगा।

सोमप्रभ ने आगे बढ़कर वेदी पर विदूडभ को प्रतिष्ठित करके खड्ग और हाथ ऊंचा उठा कर उच्च स्वर से कहा—"भन्ते गण, राजसभासद, ब्राह्मण और पौर जानपद सुनें। यह महाराज विदूडभ कोशलपति यहां उपस्थित हैं। अभिषेक महायोग है, अभिषेक प्रारम्भ हो। मैं बागध सोमप्रभ घोषित करता हूं कि कोशल के अबाध अधि-पति महाराज विदूडभ हैं। जो कोई विरोध का साहस करेगा, उसका संहार यह खड्ग करेगा।"

उन्होने वही रक्त से भरा हुआ खड्ग हवा में ऊंचा किया । बहुत से कण्ठो ने एक साथ ही जय जयकार किया—"महाराज कोशलपति की जय ! देव कोशलपति विदूडभ की जय !!"

बहुतो ने विरोध में शस्त्र निकाले । कारायण, उनके भट और सोम व्याघ्र की भांति उन पर टूट पडे । देखते ही देखते यूप के चारो ओर मुरदो के ढेर लग गये । यज्ञ पशु अव्यवस्थित हो इधर उधर भागने लगे । अनेक राजाओ, क्षत्रपो और मण्डलाधियो ने इन वीरो का साथ दिया । वे गाजर मूली की तरह विरोधियो को काटने लगे । पौर, जानपद, निगम, श्रेणीपति सब बारबार महाराज विदूडभ का जय जयकार करने लगे । विरोधी दल का कोई नेता न रह गया ।

अध्वर्यु अजितकेसम्बल ने हाथ उठा कर कहा—"सब कोई सुनें, कौन है जो नए महाराज का विरोधी है वह आगे आवे ।" कोई प्रमुख पुरुष आगे नही बढा । आचार्य ने पुकार कर फिर कहा—"जिसे नए राजा से विरोध हो वह अग्रसर हो ।' इस पर भी सन्नाटा रहा । तब तीसरी बार घोषणा हुई ।

अब आचार्य अजितकेसम्बल ने कहा—"सब कोई सुनें । पुराना राजा यहा पर मण्डप मे उपस्थित नही है और न कोई उसका प्रतिनिधि समर्थक ही है । राज्य एक क्षण भी राजा के बिना नही रह सकता । नया राजा उसका औरस पुत्र है । उसका कोई विरोध नही कर सकता है । अत मै घोषणा करता हू कि वही अब इस यज्ञ का यजमान है । तो महाराज विदूडभ, मै तुम्हे यज्ञपूत करता हू । कहो तुम, "मै इस राजसूय महानुष्ठान के लिये आपको वरण करता हू ।"

"मै वरण करता हू ।" विदूडभ ने तीन बार आचार्य को वरण करना कहा ।

आचार्य ने घोषणा की—"हे विश्वेदेवा सुनो, हे ब्राह्मणो सुनो, हे मनुष्यो सुनो, हम वृणीत सोलहो ऋत्विग् विधिवत् अब इस राजसूय महद् अनुष्ठान में देव कोशलपति विदूडभ का अभिषेक करते है ।"

आचार्य के संकेत से बहुत से शंख एक साथ बज उठे

अभिषेक अनुष्ठान प्रारम्भ हो गया। राजा लोग अपने हाथों में अभिषेक सामग्री से भरे पात्रों को विधिपूर्वक सजाकर पद मर्यादा के क्रम से खड़े हो गये। रेणु विदेहराज ने श्वेत रंग का कम्बोजी अश्व भेंट किया। अस्सक के राजा ब्रह्मदत्त ने स्वर्ण मण्डित रथ ला उपस्थित किया। वलिंगराज सत्यभू ने रथ पर ध्वजा रोपण की। मागध सम्राट की भेजी हुई रत्नमाला और मणि ग्रथित उष्णीष मागध अमात्य ने राजा को धारण कराई। शाक्यों के गण प्रतिनिधि ने रथ में स्वर्णमण्डित जूआ जोड़ा, किसी ने मणिजटित जूते, किसी ने तरकस, किसी ने खड्ग राजा को धारण कराया, किसी ने गन्धमाल्य दिया।

अब अजितकेसकम्बल, कणाद, ओलूक, वैशम्पायनपल स्कन्द-कात्यायन, जैमिनी और क्षीणक ने राज्याभिषेक विधि का प्रारम्भ किया। वेद पाठ होने लगा। कुरु सृंजय राज्य के शुन, सोम, और धनञ्जय श्वेत छत्र लेकर राजा के पीछे खड़े हुए।

सौवीर मरुत, विदेह राजरेणु कलिंगराज, धनञ्जय, सेनजय हिरण्यनाभ राजा पर चंवर डुलाने लगे। आठ रत्नदक्षिणावर्त शंख फूंके गये। फिर उन्हीं शंखों में भरभर कर पन्द्रह तीर्थों का जल और एक सूर्य किरणों का जल कुल अठारह प्रकार के जल, जो यूप की उत्तर दिशा में उदुम्बर पात्रों में पृथक २ रक्खे हुए थे, उनसे राजा का अभिषेक किया जाने लगा।

पहले सरस्वती नदी के जल से फिर बहावाली नदी के जल से, फिर प्रतिलोम जल से, मार्गान्तर के जल से, समुद्र जल से, भंवर के जल से, स्थिर जल से धारा की वर्षा के जल से, तालाब के जल से, कुएं के जल से, ओस के जल से, फिर तीर्थों के विविध जलों से भिन्न भिन्न मन्त्रपाठ करके राजा का अभिषेक किया गया।

अब सोम पान होकर गवालम्भन हुआ, और फिर बारह 'पार्थहोम' किये गये और नये महाराज को श्वेतवस्त्र पहनाया गया। उस पर

यज्ञपात्रों के चित्र सुई से कढ़े हुए थे। उस पर बिना रंगी ऊन का पाण्डर कम्बल और उसके ऊपर लम्बा चोगा पहनाया गया। ऋत्विजों ने पुकारा—"यह क्षत्र की नाभि है।"

अध्वर्यु ने धनुष चढ़ाकर कहा—"यह इन्द्र का वृत्रहन्ता भुज है।" और उसके दोनों छोर मन्त्रपूत करके महाराज को दिये। फिर उसने मन्त्रपूत तीन बाण राजा को दिये। और यज्ञ में बैठे हुए पंडक के मुंह में ताम्बा दिया। अब दिग्विजय का होम पाठ हुआ। यजमान की बांह पकड़ कर उसे अध्वर्यु ने चारों ओर घुमाया। प्रति दिशा में कुछ पंड चलाकर कहा—

'प्राची को चढ़, गायत्री छन्द, रथन्तर साम, त्रिवृत् स्तोम, वसन्त ऋतु और ब्रह्मवर्चस तेरी रक्षा करे।"

"दक्षिण को चढ़, त्रिष्टुभ छन्द, बृहत् साम, पंचदश स्तोम, ग्रीष्म ऋतु और क्षत्रधर्म तेरी रक्षा करे।"

"पश्चिम को चढ़, जगती छन्द, वैरूप साम, सप्तदश स्तोम, वर्षाऋतु और विशधर्म तेरी रक्षा करे।"

"उत्तर को चढ़, अनुष्टुप छन्द, वैराज साम, एक विंश स्तोम, शरद् ऋतु और फल रूपी धन तेरी रक्षा करे।"

"ऊपर को चढ़ पंक्ति छन्द, शाक्वर रैवत साम, सत्ताईस और तेतीस स्तोम, हेमन्त शिशिर ऋतु और वर्चस धन तेरी रक्षा करे।"

फिर राजा ने व्याघ्र चर्म के नीचे रखे सीपे को ठोकर मारी, अध्वर्यु ने मन्त्र पढ़ा, फिर राजा व्याघ्रचर्म पर बैठा। सोने का एक चाद राजा के पैरों पर रखा गया। अध्वर्यु ने कहा—"मृत्यु से बचा।"

सौ छिद्र वाला स्वर्ण का मुकुट सिर पर धारण कराया गया। अध्वर्यु ने कहा—'तू ओज है, अमृत है, विजय है।"

राजा ने दोनों भुजा ऊंची करके घोष किया—

'हे मित्र वरुण, अपने रथ पर चढ़ो और दिति-प्रदिति सीमावद्ध और असीम को देखो।"

अब अध्वर्यु और पुरोहित ने फिर राजा का पलाश के पात्र में रक्खे जलों से अभिषेक किया। ब्रह्मा ने मन्त्र पाठ किया। अध्वर्यु ने फिर उच्च स्वर से घोषित किया—'हे देवो, इसे उत्तेजित करो, कोई इसका सपत्न न हो, बड़े क्षत्र के लिए, बड़े बड़प्पन के लिये, बड़े मनुष्यों पर राज्य के लिए, इन्द्र के इन्द्रिय के लिये, कौशल जनपद के लिये यह राजा, महाराजा विदूडभ तुम कौशलों का राजा है। हम ब्राह्मणों का राजा सोम है।"

तब अठारह दक्षिणावर्त शंख एक साथ फिर फूके गये।

अब रथविमोचनीय होम हुआ। और भिन्न २ मन्त्र पढकर रथ के अंग प्रत्यंग होम किये गये।

राजा को व्याघ्रचर्म पर खदिर की चौकी पर रखे हुये सिंहासन पर बैठाया गया और राजा 'धृतव्रत' घोषित किया गया।

फिर द्यूत हुआ। बहेड के पासे लाये गये। रत्न राजा को घेर कर बैठे। अध्वर्यु ने राजा को यज्ञश्रेष्ठ से पीटा।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्,

अध्वर्यु—तू ब्रह्मा है, तू सत्यप्रसेना सविता है।

राजा—ब्रह्मन्!

अध्वर्यु—तू ब्रह्मा है तू प्रजाओं का बलवान् इन्द्र है।

राजा—ब्रह्मन्!

अध्वर्यु—तू ब्रह्मा है, तू कृपालु रुद्र है।

राजा—ब्रह्मन!

अध्वर्यु—तू ब्रह्मा है।

इस प्रकार अभिषेक समाप्त हुआ। इसके दसवें दिन 'दाशपेय' याग हुआ। सोम से भरे हुए दस प्याले—एक यजमान और नौ ऋत्विक् के लिये रखे गये। दसों को कमर झुकाकर प्याला की ओर रेंगना पड़ा और अपने दादा से लेकर पहिले, पीछे का और ऐसे दस पुरखों के नाम लेने पड़े, जो सोम याजी रहे हों। उस समय मन्त्र पाठ हुआ—

"सविता प्रेरणा करने वाले से, सरस्वती वाणी से, त्वष्टा बनाये रूपों से, पूषा पशुओं से, यमराज इन्द्र से, बृहस्पति ब्रह्मा से, वरुण ओज से, अग्नि तेज से, सोम राजा से, विष्णु दसवीं देवता से, प्रेरित होकर मैं देता हूं।"

प्रत्येक प्याले में दस दस जनों ने पिया। एक ऋत्विज और नौ और। यों सौ जनों ने सोम पान किया। राजा ने सबको सोने के कमलों की मालाएं पहनाईं।

अब यज्ञ की समाप्ति पर सहस्र शंख ध्वनि हुई। विदूडभ राजा ने प्रत्येक आत्रेय ब्राह्मण को सौ गाय सींग में सोना मढ़कर तथा ग्यारह युवती सुन्दरी स्वर्णालंकार से अलंकृता दासियां प्रत्येक को दीं। ब्रह्मा उद्गाता तथा अन्य ऋत्विजों को उनकी मर्यादा के अनुसार बहुत सा स्वर्ण, रत्न, वस्त्र, दासी और बछड़े दिये गये।

दान मान सत्कार दक्षिणा आतिथ्य भोजन आदि से सन्तुष्ट हो ब्राह्मण महाराज विदूडभ की जय जयकार करते हुए बिदा हुए। समागत राजाओं, जानपद प्रधानों, और सट्ठियों, जट्टकों आदि को भी विविध भेंट, दान मान से नये राजा ने बिदा किया। जो मित्र बन्धु और राजा नहीं आये थे, उन्हें गाड़ियों और छकड़ों में सामग्री भरकर उनके घर भेज दी गई। जो वीर योद्धा यज्ञ विद्रोह में मारे गये, उनके उत्तराधिकारी पुत्र परिजनों को दान मान पदवी और पुरस्कार से सत्कृत कर सन्तुष्ट किया गया।

इस प्रकार यज्ञ में आये सब ब्राह्मण, यति, ब्रह्मचारी, राजन्यगण, पौर-जानपद, सब भांति सन्तुष्ट प्रसन्न हो महाराज विदूडभ का दिग्दिगान्त में यशोगान करते हुए अपने २ घरों को गये। भाग्यहीन विगलित यौवन गतश्री प्रसेनजित् को किसी ने स्मरण भी नहीं किया।

: ८७ :

आत्म दान

राज महालय के एक सुसज्जित कक्ष म सोमप्रभ शैया पर पड़े थे। उनके घाव प्रब भर गये थे, परन्तु दुर्बलता अभी थी। कुण्डनी उनकी शैया के निकट चुपचाप बैठी थी। साम्ब कक्ष के एक कोने में बैठा स्वामी को चुपचाप देख रहा था। सोम किसी गम्भीर चिन्तना से व्याकुल थे। उनकी चिन्तना का गहन विषय था कि राजनन्दिनी चन्द्रभद्रा को लेजाकर कहा रक्खा जाय। वे क्या उससे विवाह करने के अधिकारी भी है या नही। क्या उनके जैसे अज्ञात कुलशील व्यक्ति का इतने बड़े राज्य के अधिपति की पुत्री से विवाह करना समचित होगा? विशेषकर उस दशा म, जबकि वही राजकुमारी के पिता के हन्ता, उनके राज्य के हर्ता और राजनन्दिनी की विपत्ति के आधार थे। उन्हे क्या राजकुमारी की अवश अवस्था और परिस्थिति से ऐसा अनुचित लाभ उठाना चाहिए। यदि यह परिस्थिति न उत्पन्न हो जाती तो क्या चम्पा राजनन्दिनी उन्हे प्राप्त हो सकती थी? क्या अपने स्वार्थवश उन्हे राजनन्दिनी का अहित करना ठीक है? यही सब विचार थे। जो उन्हे उद्विग्न और विचालित कर रहे थे।

इसी समय महाश्रमण भगवान् महावीर वहा आ उपस्थित हुए। कुण्डनी ने आसन पर बैठाकर उनका अभिवादन किया।

श्रमण महावीर ने कहा—"भद्र सोमप्रभ, मै तेरे ही लिये आया हूं, अपने मुख को देख, पुण्य को देख, मलरहित हो। पुत्र, यह शरीर बहु मलों का घर है। इसमें काम है, क्रोध है, लोभ है, मोह है, ऐषणाऐं है। सो पुत्र, यह समुद्र के समान है, समुद्र में आठ अद्भुत गुण है, इसी से असुर महा समुद्र मे अभिरमण करते है, वह क्रमशः निम्न,

क्रमश प्रवण, क्रमश प्रभार, होता है। वह स्थिर धर्म है, किनारे को नहीं छोड़ता, वह मृत शरीर को निवास नहीं करने देता, बाहर फेंक देता है, सब महा नदी गगा, यमना, अचिरवती, शरभू, मही जब महा समद्र को प्राप्त होती है तो अपना नाम गोत्र त्याग देती है, और भी पानी धारें, अन्तरिक्ष का वर्षा जल समुद्र में जाता है, परन्तु महासमद्र मे ऊनता या पूर्णता कभी नहीं होती। वह महा समुद्र एक रस है, वह रत्नाकर है। शख, मोती मूगा, वैडूर्य, शिला, रजत वज्रमणि, प्रवाल मणि, समुद्र म रहती है। वह महा समुद्र महान् प्राणियो का निवास है, तिमि तिमिगिल, तिमिर पिंगल, असुर, नाग, गन्धव, उसम वास करते है। उनम सौ योजन वाले भी शरीर धारी है। तीन सौ योजन वाले भी है। चार सौ योजन वाले भी है।'

'सो पुत्र, धर्ममय जीवन भी समुद्र की भाति क्रमश गहरा क्रमशः प्रवण, क्रमश प्रभार है एकदम किनारे से खडा नहीं होता। सो धर्म जीवन में क्रमश शिक्षा क्रिया, मार्ग, आज्ञा, ज्ञानवेध होता है। उसी का क्रमश अभ्यास करने से मनुष्य अनागामी भी होता है। यह जीवन का ध्रुव ध्येय है। सो सोमभद्र, तू महा समद्र के अनुरूप बन, पुण्य कर, और मलरहित हो निर्वाण को प्राप्त कर।"

सोम ने कहा—"तो भगवन्, आप जैसा मेरे लिये हितकर समझें।"

"यही तो भद्र। तूने विदूडभ को राजा बनाया, यह तेरा सत्कर्म हुआ। पर शील का भार अभी भी तुझ पर है, उसे भी उतार। वह तेरे लिये सहाय न होगा, कल्याणकर न होगा।"

"भगवन्—आप जैसा ठीक समझें।"

"उसे तू कोसलराट्राजमहिषी बनने दे भद्र, बस इसी में सब होगया।"

सोम का मुख रक्तहीन श्वेत होगया वह मृत पुरुष की भाति शय्या पर पड रहे। परन्तु उन्होंने स्थिर वाणी से कहा—

"भगवन्, ऐसा ही हो। आप सत्य कहते हैं, मैं वह भार वहन नहीं कर सकता।"

"तेरा कल्याण हो आयुष्मान, मैं कुमारी से कहूंगा, राजकुमार से भी।"

"आप्यायित हुआ भगवन्, चिरवाधित हुआ भगवन्।" सोम ने मन्त्रवत् कहा। वह काष्ठवत् शैया में पड़े रह गये। कण्डनी ने सुना। उसका मुंह सूख गया। भगवान महावीर कक्ष से धीरे २ चले गये।

— ——— —

सहभोग्यमिदं राज्यम्

मध्यान्होत्तर चतुर्ङ्गना छाया काल में राजसभा आयोजन हुआ। कोशलपति महाराज विदूडभ छत्र चवर धारण किये सभाभवन में पधारे। उनके आगे २ सामप्रमनगन खड्ग लिये और पीछे सेनापति कायायण खड्ग लिय चल रहे थे। सिंहासन पर बठने हो महालय से शख-ध्वनि हुई। वेदपाठी ब्राह्मणों ने स्वस्ति वाचन पाठ किया और कुल कुमारिकाम न अक्षत लाजा विसर्जन किया। इसके बाद महाराज विदूडभ ने सिंहासन से खडे होकर आचार्य अजितकेसम्बल को महामत्र का खड्ग देकर कहा—"आय, मे आपको कोशल के महामात्य पद पर नियोजित करता हू। यह खड्ग ग्रहण कीजिय।"

आचाय ने खड्ग ग्र ण करके उच्चासन के निकट आकर उच्च स्वर से कहा—'सह भाग्यमिद राज्यम्" साथ २ भोगने योग्य राज्य को कोई अकेला नही भाग सकता, इसलिये मैं घोषणा करता हू कि जो आमात्य और राजकमचारी निष्ठापूर्वक अपने अधिकारो पर रहना चाहते हैं, वे शान्तिपूर्वक रहे। महाराज विदूडभ अपने राज्यकाल मे उन्हें द्विगुणित भक्त-वेतन दगे। जिस आमात्य और राजकमचारी ने राजविद्रोह किया हो, उसका वह कार्य पूर्व महाराज प्रसेनजित् के प्रति आदर भावना का द्योतक समझ कर महाराज विदूडभ उसे क्षमा करते हैं। अब वह यदि राजनिष्ठा से राजसेवा कर तो उनकी नियुक्ति यथापूर्व रहेगी। सेवा न करे तो अपने पुत्र परिजन और धन सहित स्वेच्छा से जहा चाहे चले जाय, कोई प्रतिबध नही ह। परन्तु जो कोई राज्य में विद्रोह करेगा या किसी प्रकार मन-वचन-कर्म से शाति भग करेगा, उसे कठोरतम दण्ड दिया जायगा।"

इस घोषणा के होने पर सभा में हर्ष ध्वनि और महाराज विदूडभ का जय जयकार हुआ। महामात्य ने फिर कहा—"महाराज की आज्ञा से

में सबसे प्रथम महाराज और कोशल राज्य की ओर से मागध राज मित्र और कौशल के मान्य राज-अतिथि श्री सोमप्रभदेव का अभिनन्दन करता हूं, जिनके शौर्य, विक्रम और मैत्री के फलस्वरूप हमें आज का सुमदिन देखना हुआ। महाराज विदूडभ यह घोषित करते हैं कि आज से कोशल सदैव मगध का मित्र है। मगध का शत्रु कोशल का शत्रु और मगध का मित्र कोशल का मित्र है। कोशल के परममित्र मागध श्रीसोमप्रभदेव के अनुरोध पर कोशलपति महाराज विदूडभ यह घोषणा करते हैं कि वत्सराज उदयन की मत्री चाहे भी जिस मूल्य पर कोशल प्राप्त करेगा और हम सदय लेकर शीघ्र ही कोई राजपुरुष वत्सराज महाराज उदयन की सेवा में जायगा। अपनी मैत्री, सदभावना, और कृतज्ञता प्रकाशन स्वरूप महाराज विदूडभ मगध सम्राट् को काशी का राज्य भेंट करते हैं।"

इस पर सब ओर हर्ष ध्वनि हुई और महामात्य ने कहा—"अब सन्धि विग्रहिक के पद पर महासामन्त पायासी और अर्थमत्री के पद पर महाशाल लोहित्य की नियुक्ति की जाती है। तथा राज्य व्यवस्था के सचालनार्थ आठ आमात्यो का एक आमात्य-मण्डल नियक्त किया जाता है। उनके सामर्थ्य की परीक्षा उनके किये हुए कार्यों की सफलता पर की जायगी। महाबलाधिकृत सेनापति कारायण को और राजपुरोहित सुभद्र को नियत किया जाता है जो शास्त्र प्रतिपादित गुणो से युक्त, उच्च कुल, षडङ्ग वेदो के ज्ञाता, दण्ड नीति, ज्योतिष तथा अथर्व वेदोक्त मानुषी और दैवी विपत्तियो के प्रतीकार में निपुण है।"

इसके बाद महाराज विदूडभ को भेंट दी जाने लगी। सबसे प्रथम मगध की ओर से सोमदेव ने एक रत्नजटित खड्ग भेंट किया। इसके बाद देश २ के राजा, राजप्रतिनिधि और फिर श्रीमन्त सेट्ठि तथा पौरगण और राज कर्मचारियों ने भेंटें अर्पित कीं। फिर मंगलवाद्य के साथ यह समारोह सम्पूर्ण हुआ।

Hindi Samiti Bhavan

: ८६ :

मरिक भेः

रात बीत गई थी। बड़ा सुन्दर प्रभात था। रात भर सो चुकने के बाद अब सोम का मन बहुत हलका था, पर गहन चिन्तना से उनका ललाट सिकुड़ रहा था। भविष्य के सम्बन्ध में नहीं, बीते हुए गिनती के दिनों के सम्बन्ध में। भाग्य ने उन्हें कैसे खेल खिलाये थे। खिड़की से छनकर प्रभात का क्षीण प्रकाश उनकी शैया पर आलोक की रेखायें खींच रहा था और वह सुदूर नीलाकाश में टकटकी बांधे मन्द स्मित कर रहे थे। तभी उनके पैरों के पास चुपचाप बैठा था, बहुत सा रक्त निकल जाने से उसका घनश्याम वर्ण मुख विवर्ण हो रहा था, फिर भी वह अपने स्वामी के चिन्तन से सिकुड़े हुए ललाट को देख २ कर मन ही मन उद्विग्न हो रहा था। इसी समय जीवक कौमारभृत्य ने आकर कहा—"महाराजाधिराज अभी आपको देखा चाहते हैं, भन्ते सेनापति।"

सोम तुरन्त तैयार हो गये। मुंह से उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा।

विदूडभ एक छोटी शैया पर लेटे हुए थे, सोम ने शैया के निकट पहुंच कर कहा—'अब देव कोशलपति का मैं और क्या प्रिय कर सकता हूं?"

विदूडभ अभी भी बहुत दुर्बल थे। उन्होंने स्निग्ध दृष्टि से सोम की ओर देखा और दोनों हाथ उनकी ओर पसार कर धीमे स्वर से कहा—"मित्र सोम, अधिक कहने के योग्य नहीं हूं। परन्तु मित्र, कोशल का यह राज्य तुम्हारा ही है।"

'सुनकर सुखी हुआ महाराज, मेरी अकिञ्चन सेवाएं कोशल

और कोशलपति के लिए सदा प्रस्तुत रहेगी।"

विदूडभ ने अर्ध निमीलित नेत्रो से सुदूर नीलाकाश को देखते हुए कहा—"मैंने बहुत चाहा था मित्र, कि तुम्हें अपने प्राणों के समान अपने ही निकट रखू, परन्तु महाश्रमण महावीर और माता कलिंगसेना ने यह ठीक नही समझा। मित्र, राजनीति ही तुम से मेरा विच्छोह करती है।"

"और भी बहुत कुछ महाराज, परन्तु राजनीति मानवजनपद की चरम व्यवस्था है, उसके लिए हमें त्याग करना ही होगा।"

"सो मै प्राणाधिक मित्र को त्याग रहा हू वयस्य।" विदूडभ की आखों मे आसू भर आये और उन्होने तनिक उठकर सोम को अङ्क में भर लिया।

सोम के होठ भी कुछ कहने को फडके, परन्तु मुंह से शब्द नही निकले। उन्होने कापते हाथ से विदूडभ का हाथ पकड कर कहा—'कामना करता हू, महाराज सुखी हों, समृद्ध हों। मै अब चला महाराज।"

"कोशल को सब कुछ देकर मित्र!" विदूडभ हठात् शैया से उठ खडे हुए। परन्तु जीवक ने उन्हे पकडकर शैया पर लिटा कर कहा—"शान्त हों देव, भन्ते सेनापति फिर आवेगे।"

सोम ने क्षण भर रुककर बिना ही विदूडभ की ओर देखे वहां से प्रस्थान किया।

: ६० :

चिरविदा

उन्होंने चीनांशुक धारण किया था, जिसके किनारों पर लाल लहरिया टका था। कण्ठ मे उज्ज्वल मोतियो की माला थी जिसकी आभा ने उनकी कम्बुग्रीवा और वक्ष को आलोकित कर रखा था। कपोलो पर लोध्ररेणु से सस्कार किया था और क्षालक्तक पैरो में कुसुम स्तवक ग्रथित उपानत सुशोभित थ। अशुकान्त से बाहर निकले हुए उनके अनावृत मृदुल युगल बाहु मृणालनाल की शोभा धारण कर रहे थे। प्रवाल के समान अरुण भ उत्फुल्ल अधरोष्ठो क बीच हीरकी सी आभावा। उज्ज्वल धवल दन्तपक्ति दखने ही बनती थी। गण्ड स्थल की रक्ताभ कान्ति मद्य आपूरित स्फटिक चषक की शोभा को लज्जित कर रही थी। उज्ज्वल उन्नत ललाट पर उन्होने मनःशिला की जो लाल श्री अकित की थी, वह सुवण दीप मे जलती दीप शिखा सी दिप रही थी। अमस्थलो मे लगा लोध्ररेणु उसके माणिक्य कुण्डलो पर एक धूमिल आवरण सा डाल रहा था। उनके लोचनो से एक अद्भुत मद धारा प्रवाहित हो रही थी। उनकी सघन कृष्ण केशराशि पर गूथे हुए बडे २ मौक्तिको की शोभा सुनील आकाश मे जगमगाते तारो की छवि धारण कर रही थी।

प्रासाद के उद्यान में अशोक के बडे २ वृक्षो की कतार चली गई थी। उनके नवीन लम्बे अनीदार गहरे हरे रंग के पत्तो के बीच खिले लाल २ फूल बडे सुहावने लग रहे थे। उसी वृक्षावली के बीच एक लताकुञ्ज थी, कुञ्ज के चारो ओर माधवी लता फैली हुई थी। उसी लताकुञ्ज मे बैठ तन्मय हो एक चित्र बना रही थीं। उनका कंचुक-

बन्धन शिथिल हो गया था, भावावेश से उनका श्वास आवेगित था। नेत्रों के पलक चित्र फलक पर स्थिर और मग्न थे। कोमल, चम्पक-वर्णी पतली उंगलियां कूचिका से लाक्षावर्त और मनःशिला की रेखायें चित्र पर खींच रही थी। वायु शान्त थी, वातावरण में सौरभ बिखर रहा था। लता गल्म स्तब्ध थे। वह यत्न से चित्र पर अंतिम स्पर्श दे रही थी। सारा चित्र एक वस्त्र खण्ड से ढका था।

सोम के आने की आहट उन्हें नहीं मिली। वह दबे पांव उनके पीछे जाकर खड़े हो गए।

चित्र को पूरा करके उन्होंने उस पर का आवरण उठाया। एक बूंद अश्रु चित्र पर गिर पड़ा।

उस दिन वसंत का वह प्रभात लाल लाल लावण्य स्रोत से प्लावित हो अनुराग सागर की तरल तरंगों में डूबता उतराता सा दीख रहा था।

चित्र सोमप्रभ का था।

सोम ने आगे बढ़कर कांपते स्वर में कहा—"शील।"

वह चौंक उठी। उन्होंने बड़ी २ पलक उठाकर सोम को देखा। लज्जा से उनका मुख झुक गया। दोनों हाथ निढाल से होकर नीचे को लटक गए। सोम ने घुटनों के बल बैठकर राजनन्दिनी के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर अवरुद्ध कण्ठ से फिर कहा—"शील।"

राजकुमारी ने बड़ २ भीगी पलक उठा कर सोम को देखा और असयत भाव से कहा—"सोम, प्रिय दर्शन, तुम आहत हो, बैठ जाओ, बैठ जाओ।"

"तो तुमने मुझे क्षमा कर दिया शील, यह मैं जानता था। मैं जानता था, तुम मुझे अवश्य क्षमा कर दोगी। परन्तु शील प्रिये, अपने को कभी नहीं क्षमा करूंगा, कभ नहीं।"

"वह सब तुम्हें करना पड़ा, सोमभद्र।"

"किन्तु प्रिये, मैंने जिस दिन प्रथम तुम्हें देखा था अपना हृदय तुम्हें दे दिया था। मैंने प्राणों से भी अधिक तुम्हें प्यार

किया तुम मेरे क्षुद्राशय को नहीं जानती। मेरा निश्चय था कि विदूडभ राजकुमार को बन्दीगृह में मरने दिया जाय, कोशल राजवंश का अन्त हो और यह अज्ञात कुलशील सोम कोशलपति बनकर तुम्हें कोशल पट्टराजमहिषी पद पर अभिषिक्त करे, सब कुछ अनुकूल था, एक भी बाधा नहीं थी।"

"मैं जानती हूं प्रियदर्शन, पर तुमने वही किया, जो तुम्हें करना योग्य था। किन्तु अब ?"

'अब मुझे जाना होगा प्रिये ?"

"तो मैं भी तुम्हारे साथ हूं, प्रिय।"

"नहीं शील, ऐसा नहीं हो सकता।' मुझे जाना होगा और तुम्हें रहना होगा। मैं कोशल का अधिपति न बन सका, किन्तु तुम कोशल की पट्टराजमहिषी रहोगी, यह ध्रुव है।"

'मैं, सोम प्रियदर्शन, तुम्हारी चिरकिंकरी पत्नी होने में गर्व अनुभव करूंगी।"

"ओह, नहीं, एक अज्ञात कुल शील नगण्य वैद्यक की पत्नी महा-महिमामयी चम्पा राजनन्दिनी नहीं हो सकती।"

"किन्तु सोमभद्र, मैं तुम्हारी चिरदासी शील हूं, मैं तुम्हें आप्यायित करूंगी। अपनी सेवा से, सान्निध्य से, निष्ठा से। और तुम अपना प्रेम प्रसाद दे कर मुझे आप्यायमान करना।'

"मेरे प्रत्येक रोम कूप का सम्पूर्ण प्रेम, मेरे शरीर की प्रत्येक रक्त बिन्दु, मेरे जीवन की प्रत्यक श्वास आसमाप्ति तुम्हारी है शील, पर यह नहीं हो सकता, तुम्हें कोशल की पट्ट राजमहिषी बनना होगा।"

"किन्तु मैं तुम्हें प्यार करती हूं सोम, केवल तुम्हें।"

"और मैं भी तुम्हें, प्राणाधिक शील। किन्तु पृथ्वी पर प्यार ही सब कुछ नहीं है, सोचो तो यदि प्यार ही की बात होती तो मैं विदूडभ का क्यों उद्धार करता, क्यों अपने हाथों उसके सिर पर कोशल का राज मुकुट रखकर कोशलेश्वर कह कर अभिवादन करता। प्रिये, चाह-

शीले, निष्ठा और कर्तव्य मानव जीवन का चरम उत्कर्ष है। मैंने उसी को निबाहा। अब तुम मुझे सहारा दो।"

सोम ने कुमारी के चरण तल में बैठ कर उसके दोनों हाथ अपने नेत्रों से लगा लिये। कुमारी कटे वृक्ष की भाँति उनके ऊपर गिर गई। उनकी आखों से अश्रु धारा बह चली। बहुत देर तक दोनों निर्वाक निश्चल रहे। फिर कुमारी ने उठ कर धीरे से जैसे मरता हुआ पुरुष बोलता है, कहा—"मैं जानती थी, तुम यही करोगे। सोम, प्रिय दर्शन, मेरे प्रत्येक रोम में तुम्हारा वास है और आजीवन रहेगा। जीवन के बाद भी, अनि चिरन्तन काल तक।"

"तुम्हारा कल्याण हो, तुम सुखी हो कौशल पट्टराजमहिषी शील-चन्दना चन्द्रभद्रे, सुभगे!" सोम ने झुक कर कुमारी को राजसी मर्यादा से खड्ग उष्णीष में लगा कर अभिवादन किया और कक्ष से बाहर पैर बढ़ाया। कुमारी ने एक पग आगे बढ़ाकर वाष्पावरुद्ध कण्ठ से कहा—"सोमभद्र, मेरे धूमकेतु को लेते जाओ वह बाहर है। उसे तुम पशु मत समझना, और मेरी ही भाँति प्यार करना।"

"ऐसा ही होगा शील, तुम्हारा यह प्रेमोपहार मेरे जीवन का बहुत बड़ा सहारा होगा।" और फिर सोम एक क्षण को भी नहीं रुके। लम्बे २ पैर बढ़ाते हुए प्रासाद के बाहरी प्रांगण में आ खड़े हुए। वहां कुण्डनी और शाम्ब उनकी प्रतीक्षा में खड़े थे। उन्होंने धूमकेतु पर प्यार की एक थपकी दी, फिर कुण्डनी की ओर देखकर मुस्कराये और बिना एक शब्द बोले तीनों प्राणियों ने उसी क्षण बंगाली के राजपथ पर अश्व छोड़ दिये।

पूर्वार्द्ध-समाप्त